मेरे जीवन की
अनुभव - कथा

सेठश्री नानजीभाई कालिदास मेहता

શેઠ શ્રી. નાનજીભાઈ કાલી
મહેતા.
તરફથી સપ્રેમ ભેટ
પોરબંદર

मेरे जीवन की
अनुभव - कथा

: लेखक :

सेठ श्री नानजीभाई कालिदास मेहता
एम. बी. ई.

['योरोप का प्रवास' और 'तपोभूमि बदरी - केदार' के कर्ता]

: अनुवादक :
आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री

प्रकाशक : 'शिष्ट साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट' पोरबन्दर

प्रथमावृत्ति - १०००] अप्रैल : १९५८ [मूल्य -

प्रकाशक : 'शिष्ट साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट' पोरबन्दर
प्राप्तिस्थान : 'शिष्ट साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट' पोरबन्दर

मुद्रक : जीवन गोरधन पोरीआ
मुद्रणस्थान : जीवन प्रिण्टींग प्रेस,
सुदामा रोड, पोरबन्दर, (सौराष्ट्र)

अर्पण पत्रिका

जिनके पुण्यप्रताप से मुझे जीवन में
निरंतर प्रेरणा और सफलता मिली
ऐसे
मेरे परम पूजनीय स्वर्गवासी

मातापिता को

भक्तिभावपूर्वक समर्पण

– नानजी

अनुवाद की भूमिका

सेठ श्री नानजी भाई कालिदास मेहता एक ऐसे व्यक्ति हैं जो अपने आप के स्वयं निर्माता हैं। एक छोटे ग्राम में जन्म लेकर बाल्यकाल में स्वल्प शिक्षा प्राप्त कर के भी अपने सतत प्रयत्न और अनुभवों से एक बड़े भारी उद्योगपति एवं कोटिपति बने। जीवन में किन किन बाधाओं को पार कर, किस कर्मण्यता से उन्हों ने व्यापार कर के अपनी यह विशेष स्थिति प्राप्त की तथा लक्ष्मीपति ही नहीं बने बल्कि उसकी धारा को दान के रूप में बहाकर नारी-शिक्षण, देश, धर्म, जाति आदि की रक्षा में एक महान् योग दिया – इत्यादि बातों का वर्णन उन्होंने अपनी गुजराती भाषा में लिखी आत्मकथा में किया है। "उद्योगिनं पुरुषसिंह मुपैति लक्ष्मीः – देवेन देयमिति कापुरुषा वदन्ति" – इस उक्ति को कार्यरूप में सफल करने वाले सेठ श्री नानजी भाई का जीवन इन प्रेरणाओं से भरा है। परन्तु पुस्तक के गुजराती भाषा में होने से गुजराती जानने वाले ही उसका लाभ ले सकते थे। पुस्तक भी इससे एक प्रान्त की सीमा में बंध जाने से सीमितजनों की ही वस्तु रह गयी थी, अधिसंख्यक लोगों की वह संग्राहक वस्तु नहीं बन सकती थी। इन सब बातों को ध्यान में रखकर और सेठश्री नानजीभाई के इष्ट मित्रों की इच्छाओं को पूर्ण करने के लिए मैंने इस पुस्तक का हिन्दी-भाषा मे अनुवाद करने का कार्य प्रारंभ किया। अनुवाद का कार्य पूरा हुआ और पुस्तक रूप में वह छपकर तैयार भी हो गया। कई देशी-विदेशी भाषाओं के अध्ययन किये हुये होने पर भी मैं गुजराती भाषा का पण्डित नहीं हूँ। फिर भी जैसा पूर्व कहा गया है, लोगों के आग्रह को मैं टाल नहीं सका और पुस्तक के अनुवाद को भाव, शैली, अनुरूप शब्द-रचना और वर्णन-प्रवाह को संतुलित एवं मनोज्ञ रखते हुये पूरा किया। मूल पुस्तक के शब्दों को हिन्दी भाषा में तद्भल और तदनुरूप शब्दों में अनूदित करने का भी पूरा ध्यान

रखा गया है। हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा है! अतः लोग इस राष्ट्रभाषा में किये अनुवाद से पुस्तक का उचित लाभ उठा सकेंगे और उठायेंगे - ऐसी मैं आशा रखता हूँ। हरएक भाषा-भाषी इसका लाभ लें इस धारणा से यह अनुवाद प्रस्तुत किया गया है। आशा है पाठक इस धारणा को सफल करेंगे। इस पुस्तक में बद्री-केदार की दूसरी यात्रा का विवरण अधिक जोड़ दिया गया है। सभी प्रकार की सतर्कताओं वर्तने पर भी पुस्तकों में कुछ न कुछ त्रुटियाँ रह जाती हैं जिनका न होना मानना मानव के स्वभाव को ही उसकी सीमा से बहुत ऊपर फेंक देता है। अतः पुस्तक में जो ऐसी त्रुटियाँ होगीं ज्ञात होने पर दूसरे संस्करण में दूर कर दी जावेंगी।

गुरुकुल, पोरबन्दर — वैद्यनाथ शास्त्री,
२५-३-५८

लेखक के दो शब्द

मेरे बालक, कुटुम्ब के लड़के, स्नेही मित्र सभी मुझे बार बार कहा करते थे कि "आप अपने अनुभव की प्रासंगिक जो बातें हमें कहते हैं उन्हें पुस्तक-रूप में लिखकर प्रकाशित करें तो बहुत से लोगों को लाभ मिले। परन्तु मुझे यह बात गले से उतरती नहीं थी क्यों कि मेरे जीवन में कोई ऐसी विशेष बात नहीं जिसको बताने से दुनिया का विशेष लाभ हो। मेरी अपेक्षा अनेक अन्य बड़े व्यापारी, प्रवासी और अनुभवी हो गये हैं, साहस करने वाले पुरुष हो गये हैं कि जिनके निकट मेरा अनुभव कुछ भी नहीं है। साथ ही मैं बिल्कुल अनपढ़, गाँव में पैदा हुआ और पला- इससे मुझे ऐसे लिखानें अथवा लिखवाने सफल अभ्यास नहीं है। ऐसा होने पर भी कितने ही स्नेहियों के आग्रह-वश होकर मैंने अपने अपनी जीवन के अनुभव की बातें लिखायी हैं। इससे पूर्व 'योरोप का प्रवास' और 'तपोभूमि बदरी-केदार' नाम से प्रकाशित पुस्तकों में अपने प्रवास का वर्णन दिया है। ये पुस्तकें गुजराती-पठित समाज को उपयोगी सिद्ध हुईं इससे यह अनुभव-कथा लिखने की आशा बढ़ी।

इस पुस्तक में अपने जीवन के अनुभवों में उतारे हुये विचारों को भी प्रकट किया गया है। देश-विदेश की यात्रा में अनेक प्रकार के लोगों का परिचय मुझे हुआ था। अपने धन्धे के प्रसंग में जाहिरी काम और संस्थाओं के चलाने में मुझे किस्म किस्म के मनुष्यों के परिचय में आना पड़ा, उससे मुझे लगा कि मनुष्य की प्रकृति भिन्न भिन्न है। यह वस्तु 'लोहाणा महापरिषद्' के संपादक के लेख में मुझे पढ़ने में आयी। इसमें मेरे विचार हूबहू वैसे ही दर्शाये गये हैं - ऐसा मुझे लगा। लेखक ने मानवजीवन की मिश्री और पत्थर से तुलना की है। यह उपमा सब प्रकार से ठीक बैठती है। मिश्री के टुकड़े को पानी में डालने पर वह तत्काल

पानी के साथ तद्रूप बन जाता है। अपने ठोस स्वभाव को तजकर वह पानी के तरल स्वभाव को धारण कर लेता है - इतना ही नहीं बल्कि अपनी मिठास को पानी को दे देता है और इसे मधुर बनाता है। परन्तु पत्थर को सहस्रों अथवा लाखों वर्ष पर्यन्त पानी में रखा जावे तो भी यह अपने ठोस स्वभाव को बदल कर पानी के साथ एकरूप नहीं होगा। समुद्र की लहर अथवा नदी के प्रवाह की मार खा-खाकर सैकड़ों बीस-मनी भारवाली पाषाण शिला टूट भले जावे, उसके छोटे छोटे टुकड़े हो जावे, इनकी भी लघु गुट्टियाँ बन जावें और वे भी चूर्ण होकर जबतक बारीक रेत में परिवर्त्तित न हो जावे तबतक पत्थर पानी का सहवास नहीं छोड़ेगा। अपने न घुलने वाले स्वभाव को छोड़कर पानी का स्वरूप नहीं धारण करेगा। कारण बहुत स्पष्ट है। मिश्री का डला तो असल में वहनशील पानी से ही बना है। ईख के रस पर विविध संस्कारों के पड़ने से इसमें से मिश्री का डला उत्पन्न होता है। वहनशील द्रव्य को मिला हुआ यह ठोसपना नैसर्गिक नहीं बल्कि कृत्रिम है, एवं मानव की करामात का परिणाम है। पानी का संयोग होते ही यह उसके साथ एकरूप हो जाता है। मिश्री और पानी का संयोग होते ही मिश्री के डले को अपना स्वरूप पीछे वापस आने का आनन्द होने पर उसके साथ एकरूप बन जाता है। मिश्री और पानी का संयोग समान तत्वों का संयोग है। इस मिलन में दोनों भिन्नता को भूलकर समानता को धारण कर लेते हैं। पानी मिश्री को उसका तरल स्वरूप वापस दिलाता है अतः उसके बदले में मिश्री पानी को अपनी मिठास दे देता है।

पत्थर और पानी का संयोग दो भिन्न स्वभाव के तत्वों का संयोग है। अनन्तकाल पर्यन्त दोनों साथ बसें तब भी पानी पत्थर के सहवास से ठोस नहीं बनता तथा पत्थर पानी के सहवास से घुलता नहीं। मानव के मेले में भी कुछ ऐसा ही दिखलायी पड़ता है। स्वजन तथा आप्तजन के सहवास में आने पर, अपने जैसे स्वाभाविक गुण और शक्तियों वाले दो मनुष्यों का मिलन होने पर दोनों एकरूप बन जाते हैं। एक दूसरे अपने में रहनेवाले गुणों का परस्पर आदान-प्रदान करते हैं - इससे दोनों विशेष समृद्ध, विशेष शक्तिमान् बनते हैं। कोमल हृदय का मनुष्य अपने जनों का दुःख देखकर स्वयं पिघल जाता है। परन्तु विकृत प्रकृति के मनुष्य

संयोगवश चाहे जितने समय तक एक दूसरे के साथ रहें, साथ मिलकर काम करें, तिसपर भी एकरूप नहीं बन सकते। पानी की चपेटें खाकर पत्थर की रेत बन जावेगी तिसपर भी इस रेती का कण न घुलने वाला ही रहेगा, कठोर रहेगा, कभी घुल नहीं सकेगा। यह प्रकृति के नियम का अनुभव मुझे अनेकों बार हुआ है। ऐसा होने पर भी सन्त तुलसीदास जी द्वारा कराये गये अवलोकन के अनुसार –"आप भला तो जग भला" यह बात सामान्य रीति से सच्ची है।

आजकल अक्षर-ज्ञान की क़ीमत अधिक पड़ती मालूम पड़ती है, परन्तु मेरे जीवन के अनुभव से मुझे लगा है कि जो काम अनुभवी लोग अपने हृदयोत्साह से कर सकते हैं वह पोथीपण्डित से हो नहीं सकता। जो कुछ भी हो, मनुष्य यदि ईश्वर पर पूर्ण श्रद्धा रखे तो प्रभु उसकी सहायता करता है, उसके निर्धारित कार्य को पार लगाता है।

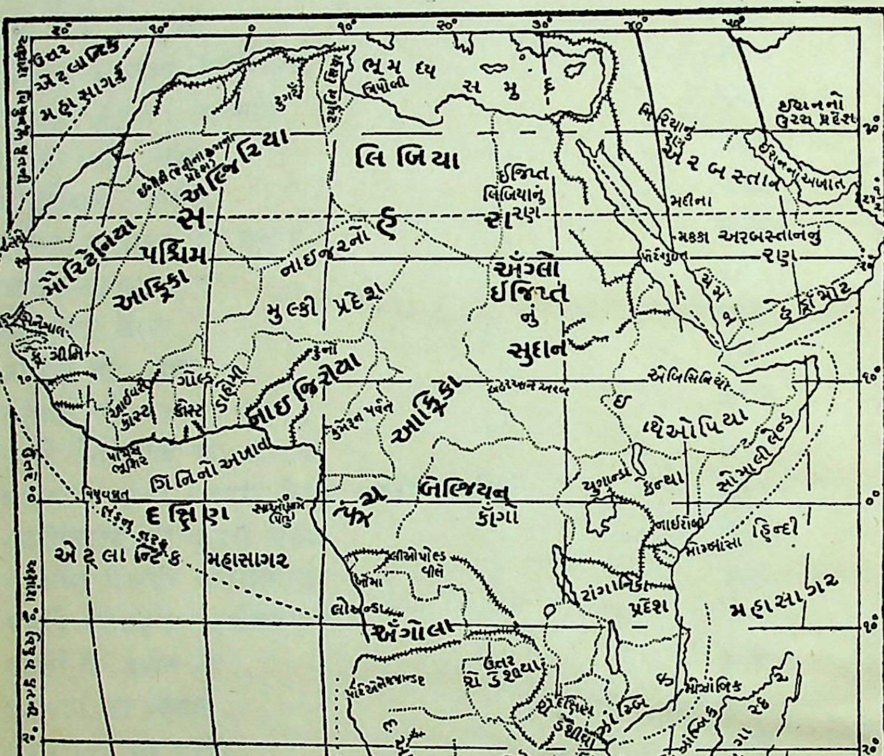
अन्ततोगत्वा इस प्रकार की पुस्तक तैयार करने की मेरी कोई योग्यता नहीं, इसलिए इसमें जो त्रुटियाँ रही हों उनके लिए पाठक क्षमा करेंगे – ऐसी आशा के साथ विराम लेता हूँ।

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः ॥

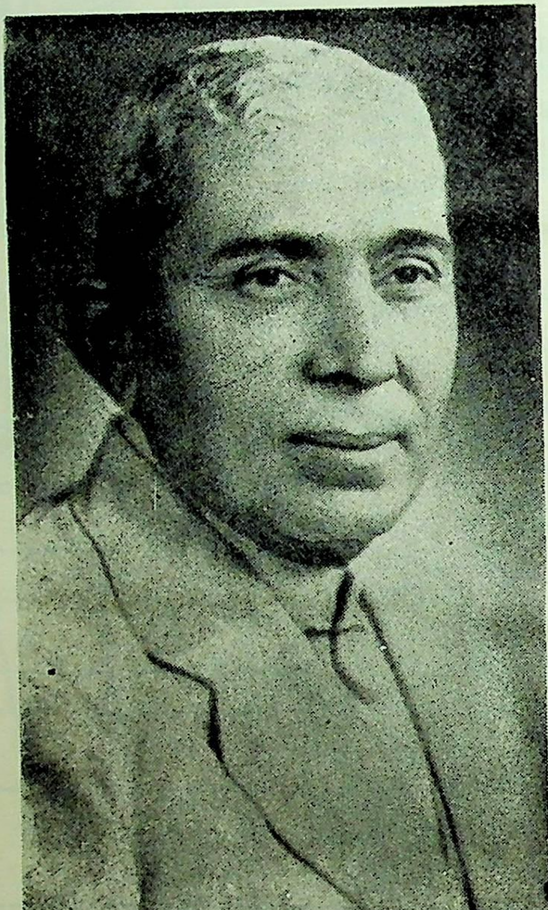
वसन्त पंचमी, २०११ — नानजी भाई कालिदास मेहता
स्वस्तिक भवन, पोरबन्दर

अनुक्रमणिका

मेरी अनुभव – कथा



अनुभव-कथा की पूर्वभूमिका



:: लेखक ::

सेठ श्री नानजीभाई कालिदास मेहता

वास्तविक निवास और पूर्वजजन

हमारे इष्ट देव श्री भगवान् रामचन्द्र और सीता माता हैं। हम रघुवंशी क्षत्रिय कहे जाते थे। हमारा मूल निवास अयोध्या में था। हमारे पूर्वपुरुष प्राचीन समय में गंगा, यमुना और सरयू के किनारे पर बसते थे। वहाँ से छोटी बड़ी जागीरें लेकर उन्होंने सिन्धु नदी के किनारे तक अपनी बसतियाँ बनाईं। शांति के समय में कृषि और गोपालन एवं लड़ाई के समय में राष्ट्र की रक्षा करना हमारे पूर्वजों का मुख्य धंधा था। जिस समय भारत पर विदेशियों के आक्रमण होने लगे उस समय रघुवंशी क्षत्रिय देश की रक्षा करने के लिए पंजाब में आकर बसे। श्री गुरु नानक तथा सिक्ख, जिनकी संख्या आज एक करोड़ है, इनमें बहुतेरे रघुवंशी हैं।

भारत के प्रवेशद्वार भूमिमार्ग से दर्राखैबर और दर्राबोलन हैं। इन्हीं मार्गों से विदेशियों का भारत में अधिकांश प्रवेश होता रहा। मध्य एशिया से हूण, शक, ग्रीक, ईरानी, अरब, पठान, तुर्क तथा मंगोल जाति के दल कल्पतरुवत् समृद्ध भारतभूमि में लूट की इच्छा से आने लगे थे। इन लुटेरों के समूह को रोकने के लिए एक मज़बूत मानव-भित्ति की आवश्यकता थी।

भारत की पश्चिमोत्तर दिशा में स्थित सीमान्त प्रान्त के इस पार दर्राखैबर से लगता हुआ शाहबाद ज़िला आता है। अंग्रेज़ी राज्य के दौरान में यहाँ तक ब्रिटिश राज्य की सीमा थी। उससे आगे अफ़ग़ानिस्तान प्रारंभ होता है।

यह शाहबाद ज़िला पूर्वकाल में लोहर देश कहा जाता था। यहाँ पर लोहरगढ़ अथवा लोहगढ़ नाम का प्रख्यात दुर्ग (क़िला) था। इस दुर्ग के ऊपर लोहर क्षत्रियों की सत्ता थी। वहाँ की भाषा में इन लोहर क्षत्रियों को 'लोहखत्रा' कहने में आता है। इन को रघुवंश एवं 'रामदा-पोतरा' भी कहा जाता है। आज पर्यन्त वहाँ बसने वाली क्षत्रिय जाति इसी नाम से प्रख्यात है।

भारत के प्रवेश द्वार पर अडिग प्रहरी बनकर खड़ी हुई यह

क्षत्रिय जाति अयोध्या की तरफ बसनेवाली रघुवंशी प्रजा की सन्तति थी। हूण जाति के आक्रमण को रोकने के लिए पंजाब तक आये हुये रघुवंशी आगे बढ़कर अफग़ानिस्तान पर्यन्त फैल गये। इन्होने पर्वतीय प्रदेश में छोटे मोटे क़िले बनाकर राष्ट्र की रक्षा की और भारत के द्वारपाल की पदवी प्राप्त की।

ग्यारहवीं शताब्दी में मंगोलों के शाह तेगुजी उर्फ खानखां जंगीसखान ने भारत पर आक्रमण किया। उस समय लोहरगढ़ के सिंहासन पर वीर दादा जशराज विराजमान थे। उन्होंने अपनी सेना के साथ विश्वविजेता जंगीसखान का सामना किया और मुल्तान के क़िले में घमासान युद्ध किया तथा अन्त में उसे वीरगति को प्राप्त कराया। ग़जनी का समर्थ इतिहासकार शिवप्रसाद शर्मा एक लोकगाथा में लिखता है - " तेगडा मांगोलियादा मौत, मुल्तानदा किल्ला विच राना जशराज मिराने कित्ता " (मंगोलियन राजा तेगुजी की मौत मुल्तान के क़िले में राणा जशराज के हाथ से हुई)। मुलतान के क़िले में शाह तेगूजी उर्फ खानखां जंगीसखान की क़ब्र है जिसके ऊपर चीनी भाषा में लेख खुदा हुआ है कि " खानखां जंगीसखान की मृत्यु लोहरगढ़ के राणा जशराज के हाथ से इस स्थल पर हुई। "

वीर दादा जशराज की मृत्यु के उपरान्त लोहर क्षत्रियों का संघटन टूट गया और सत्ता के लिये चढ़ा उपरी से आन्तरिक फ़ूट पड़ी। इस से लोहरक्षत्रिय राणा लोग कमजोर हो गये। परिणामस्वरूप लोहगढ़ का आधिपत्य समाप्त हो गया और वह विदेशियों के हाथ में चला गया। पर्याप्त समय तक लोहर क्षत्रियोंने गोरिला युद्ध किया। समीपवर्ती पहाड़ियों का आश्रय लेकर उन्होने जान-माल की रक्षा की। इन्हीं कारणों से इस विषय में एक कहावत बनी -" लोहरानेजी लज्ज रही वई उन पहाड़िआं से " अर्थात् इन पहाड़ियों के कारण लोहर क्षत्रियों की लाज रह गयी। इसके ही रूपान्तर में गुजराती में " लोहाणानी लाज राखी धन माता डुँगरी " कहावत प्रचलित हुई। " धनमाता " भले ही न हो परन्तु धनमता का यह अर्थ तो अवश्य रहा कि द्रव्य और माल की रक्षा पहाड़ों से हो सकी।

धीरे धीरे लोहर क्षत्रिय लोग सीमान्त प्रदेश से आकर सिंध में बस गये। सिन्ध में नारायणकोट का राजा दाहिर रघुवंशी था।

मसकत के अमरुबिन जमाल और उसके १५ साथियों ने मसकत के सरदार मीर क़ासम के साथ विद्रोह कर वहाँ से निकलकर राजा दाहिर की शरण ली। राणा दाहिरने शरण में आये हुवों की रक्षा के लिए मीर क़ासम के साथ संग्राम की घोषणा की। भयंकर संग्राम मचा और इसमें शरण में आये हुये अमरुबिन जमाल विपक्ष में मिल गये और दाहिर के सात पुत्र संग्राम में सदा के लिये सो गये। दाहिर भी स्वयं लड़ते लड़ते मरे। राजा दाहिर की राजधानी प्राचीन नारायणकोट ही वर्तमान हैदराबाद सिन्ध है।

उसके उपरान्त कई वर्षतक घोघो और चनेसर नाम के दो भाइयों के मध्य परस्पर अनबन होने के कारण सिंध पर अलाउद्दीन बादशाह ने आक्रमण किया। इस रक्त के प्यासे शाह ने महान् जनवध प्रारंभ किया। ऐसे समय में कितने ही लोहाणा क्षत्रियोंने सिन्ध की भूमि को अन्तिम नमस्कार किया। इसके अनन्तर मीर कलोडा के समय में उसकी घोर धर्मान्धता से त्रस्त हो कितने ही लोग सिन्ध छोड़कर कच्छ और काठियावाड़ की ओर आकर बस गये और वहां पर खेती और व्यापार को हाथ में लिया।

प्राचीन काल से यह देखा जाता है कि भारत घर की फ़ूट से बरबाद हुआ है। कौरव और पाण्डवों के मध्य होनेवाला महाभारत युद्ध भाई भाई के मध्य परस्पर फ़ूट का फल था। पृथ्वीराज चौहाण और जयचन्द राठोड की फ़ूट ने शाहाबुद्दीन गोरी जैसे विदेशी को भारत में आने का अवसर दिया। अधिकार और लक्ष्मी के लोभ में भाई भाई से ईर्ष्या करता है। परिणाम-स्वरूप फ़ूट का बीज बो उठता है, वैर बढ़ता है और देश शक्तिहीन हो जाता है।

पूज्य महात्मा गांधीजी के पुण्य-प्रताप से देश आज स्वाधीन हुआ है। अपनी बेजोड राष्ट्रीय संस्था कांग्रेस जिसको पूज्य महात्माजी ने अपना जीवन अर्पित कर महान् बनाया, उसकी बागडोर महात्माजी के उत्तराधिकारी पंडित जवाहरलाल जी के हाथ में है। जब तक कांग्रेस राष्ट्रहित का उत्तम कार्य कर रही है तब तक देश में किसी दूसरे पक्ष की आवश्यकता नहीं। परदेशीय प्रणाली के अनुसरण को लक्ष्य में रखते हुये यदि प्रजातंत्र में कोई भूल होवे तो उसके दिग्दर्शन के लिए विरोधी पक्ष का होना आवश्यक माना जाता है। विरोध पक्ष के रूप में कोई पक्ष भले ही रहे परन्तु वह वरिष्ठ सभा में ही होना चाहिए। शेष जनता में तो एक ही

नाँद बजता सुनाई पड़ना चाहिए। तन, मन, धन से सभी का एक स्वर हो; पग में पग मिलाकर भारत को उन्नति के शिखर पर पहुँचाने की अभिलाषा रखनी चाहिए। सब को एक रूप होकर भारत को जगत् के सब देशों में प्रथम पंक्ति में बैठाना चाहिए। प्रत्येक भारतवासी का यह कर्तव्य बन जाना चाहिए। अपने जातीय और व्यक्तिगत सुख का विचार बाद में होना चाहिए। देश का प्रथम होना चाहिए। संसार का प्रत्येक देश इसी रीतिसे आगे बढ़ा है।

प्रजातंत्र के नाम पर आज जो फूट का बीज बोया जा रहा है उसके कारण देश की अमूल्य स्वाधीनता संकट में पड़ गयी है। स्वतंत्रता की आधारशिला संघटन और एकता है। इस आधारशिला को हमें अधिकाधिक मज़बूत बनाना चाहिए।

लोहरगढ़ के क्षत्रियों के उदय और अस्त को दृष्टि में रखकर कवि भ्रमित जोशीने राष्ट्रीय एकता की भावना की प्रेरणा देते हुए एक सरस काव्य रचा है जो प्रसंग के अनुरूप होने से यहाँ पर दिया जाता है।

स्वाधीनता के शिखर पर, जब हिन्दोस्तां खड़ा था,
तब राना लोहर का, आपस में लड़ पड़ा था।
तब्हा (तबाह) हो गया लोहगढ़, मिट चुकी राने की रोशनाई,
घर की चिराग़ से कमबख्तोने अपने हाथों से जलाई।
न पृथ्वी कभी कैद होती, न गौरी यहाँ पैर लाता,
वही आग जयचन्दने जलाई, भारतके सर पर पराधीनता जड़ाई।
शकता और प्रताप आपस में न लड़ता,
जो मानसिंह कुल्हाड़ी का हत्था न बनता,
तो राजपूताना कभी जल न उठता,
न यहाँ भी क्षात्रत्व का दीवाला निकलता।
वही आग ने महाराष्ट्र में शकल दिखाया,
शिवाजी के सपूतोंने वही चिराग़ घर में जलाया।
सन सत्तावन की उषा, ये देश में दिखाई,
लक्ष्मी और नाना ने दिया देश को बधाई।
तब रामसिंह ने फिर अँधेरा कर दिखाया,
यूं आशा हमारी भस्म कर मिटाया,
वीर सावरकरने अखंड हिन्दोस्ताँ पुकारा,
तो जिन्ना साहब ने पाकिस्ताँ को ललकारा।
अलसर बन गया भारत, टुकड़ा में क्या क्या करोगे,

जो बन रही घरकी फूट तो, गुलामीकी जंजीरें खड़खड़ाते मरोगे।
भ्रमित जोशी कहता विषवाद की घटायें न सर पर से हटेंगी,
घर-फूट से वो! भारतीय जाति! तू जहाँ से मर मिटेगी।

अपने पूज्य राष्ट्रपिता को भारत की एकता के लिए अपने प्यारे प्राणों का बलिदान देना पड़ा। देश के युवक और युवतियाँ जब बाहरी आक्रमण से भारत की रक्षा के प्रयोजन से त्यागभावना का विस्तार करेंगे तभी जगत् में अपना गौरव जगमगावेगा।

रघुवंशी क्षत्रियों ने राष्ट्र की रक्षा के लिए अपने जीवन को सस्ता समझा था और मौत को मीठा के समान गिना था। उसी से आज उनका नाम इतिहास में अमर है। जिन रघुवंशी (सूर्यवंशी) लोहराणावों ने भारत के प्रवेशद्वार पर अडिग खड़े रहकर शताब्दियों तक विदेशी आक्रमण को मार भगाया और राष्ट्र की रक्षा की उन्हीं बलवान् प्रजा के उत्तराधिकारियों को अपनी आन्तरिक फूट के कारण दूसरे स्थानों पर जाना पड़ा।

उस समय वाहनव्यवहार की कोई सुविधा नहीं थी। रेल, विमान और मोटर के इस वैज्ञानिक युग में जो अपनी कल्पना में भी नहीं आ सकती ऐसी मुसीबतों में फँसी हुई इस प्रजा ने अपने धर्म की रक्षा के लिये स्थानान्तर का सहारा लिया। पशु, धनधाम कुटुम्ब-कुटुम्बियों आदि को लेकर इसने पेशावर के एक किनारे से सिन्ध में आगमन किया। सिन्ध से पुनः कच्छ आयी और लोहराणा से मिटकर लोहाणा बन गयी।

सिन्ध को छोड़कर कच्छ में आनेवाली इन लोहाणा जातियों ने कच्छ को निज देश बनाया। युद्ध को छोड़कर व्यापार प्रारंभ किया। फिर भी मीरों के आक्रमण से जब कभी लड़ाइयाँ हुईं उस समय उन्होने हथियार भी उठाया। जिस समय अंजार पर मीरों का अनिर्धारित आक्रमण हुआ उस समय लोहाणों ने वीरता के साथ अंजार की रक्षा की। इसी प्रकार अलाउद्दीन खिलजी के क्रूर सेनापति मलिक काफूर के साथ लड़ने में यदुवंशी जाडेजा लोगों का साथ देनेवालों में लोहाणे मुख्य थे। इस लड़ाई में अनेक लोहाणा वीर देश की रक्षा करते हुये स्वर्ग सिधार गये। कच्छ के लोहाणो में आज भी वीरता भरी पड़ी है।

कच्छ के राव जिस समय मुसल्मानी धर्म स्वीकार करने को तैयार हुये उस समय वहाँ के लोहाणा दीवान श्री देवकरण सेठ ने

कच्छ के जागीरदारों को इकट्ठा कर कच्छ के महाराव को बन्दी बनाकर इस्लाम धर्म अंगीकार करने से रोका था और कच्छ को मुस्लिम राज्य होने से बचाया था। दूसरे लोहाणा दीवानो ने भी कच्छ की दीवानगीरी को चमकाया है।

उसके उपरान्त दूसरे दीवान श्री मेघजी सेठ ने भी बहुत वर्षों तक दीवानगीरी की। राज्य में जो अंधेरगर्दी चल रही थी उसको दूर करने के लिए दृढ़ होकर दावपेच एव झगड़ा फंसाद करनेवालों को उन्होंने दबा दिया। इस संघर्ष में श्री मेघजी सेठ क़िले के बाहर धोखे से मारे गये, जिनके स्मारक के रूप में समाधि अभी भी मौजूद है और उनके उत्तराधिकारी उनकी पूजा करते हैं।

जब कभी भी राजावों को पैसे की आवश्यकता पड़ी अथवा दंगा तूफ़ान हुआ, अंजार के बड़े महाजनो ने प्रत्येक समय राज्य के भक्त रह कर सहायता की।

उसी प्रकार आज भी पाकिस्तान हो जाने पर सिन्धी लोहाणे, जिनके इष्टदेव श्री रामचन्द्र भगवान् हैं बहुत बुरी स्थिति में भारत में वापस आये हैं। उनकी तीन जातियें है- (१) लोहाणा, (२) खत्री और (३) एक कठाई जाति। उस प्रदेश में मुसलमानों का बहुमत होने से उनके आचार विचार भिन्न पड़ते है परन्तु मूलतः एक वंश से ही उनकी उत्पत्ति हुई है।

कच्छ से रावल जाम जिस समय काठियावाड़ की भूमि पर उतरे उस समय उनकी सेना में लोहाणा सैनिक थे। भूचर मोरी पर जिस समय दिल्ली का शाह सलीम चढ़ आया उस समय लोहाणा वीरों ने मोरी का साथ दिया और देश की रक्षा में प्राण अर्पित किया। उनके वंशजों को हालार के बाराडी विभाग में जमीने मिलीं और वहां पर उन्होने अपना निवास बनाया।

इस प्रकार लगभग साढ़े नवसौ बरस पहले अफग़ान सीमान्त से लोहाणा सिंध में आये। वहाँ से *लगभग चारसौ बरस से ऊपर समय हुआ कि लोहाणा जाति सिंध से कच्छ में आयी। अनुमानतः तीन सौ वर्ष पूर्व काठियावाड़ में हालार प्रदेश में आकर उसने अपना निवास स्थान बनाया।

*पृथ्वीराज के शहाबुद्दीन के साथ हुये युद्ध में सौराष्ट्र और कच्छ के लोहाणो ने उनका साथ दिया था। यह प्रमाणित उल्लेख "चन्द्ररासव" में मिलता है।



पू. पिताजी सेठ श्री कालिदास विश्राम मेहता



पू. माता श्री जमनाबाई कालिदास मेहता

२

जन्मभूमि और माता-पिता

सौराष्ट्र यह शूरवीरों की भूमि कहा जाता है। प्रेम, शौर्य साहस और नीतिज्ञता ये सौराष्ट्र के विशेष गुण हैं। परन्तु सब से बड़ी विशेषता तो यह है कि सौराष्ट्र सन्तों की भूमि है और है तीर्थभूमि। सौराष्ट्र के पश्चिमी तट पर भारत के सुप्रसिद्ध तीर्थ सोमनाथ, सुदामापुरी और द्वारिका विराजमान हैं। भारत के अड़सठ तीर्थों को करने के लिए निकले हुये तीर्थयात्री सर्वप्रथम सौराष्ट्र में जूनागढ़ आते हैं। वे गिरनार की यात्रा करके सोमनाथ पाटण जाते हैं। वहाँ सोमनाथ महादेव का दर्शन कर समुद्र के तट से चलने पर माधवपुर आता है। श्री माधवराय जी का दर्शन करके सीधे समुद्र के किनारे से सुदामापुरी पहुँचते हैं। सुदामापुरी से तात्पर्य वर्तमान पोरबन्दर से है जो महात्मा गांधीजी की जन्मभूमि है। इस स्थान से सात गाँव दूरीपर वीसावाडा ग्राम आता है जिसको मूल-द्वारिका कहा जाता है। प्रतिवर्ष हजारों की संख्या में यात्री लोग वहाँ आते हैं। प्राचीन मंदिरों और सर्वदेव की मूर्त्तियों का दर्शन वहाँ होता है। यह मूलद्वारिका अथवा वीसावाडा मेरे मामा का ग्राम है। मेरे बाल्यकाल की मधुर स्मृति के अनेक दिवस मेरे इस ननिहाल के गाँव में व्यतीत हुये। अपनी समुद्रपार यात्रा के सुमधुर स्वप्नों को मैंने इस भूमि मे ही अनुभव किया था। विदेश में जाकर व्यापार करने की हमारी अनेक कल्पनायें इस स्थान में ही प्रकट हुई थीं।

भारत के यात्री मूलद्वारिका का दर्शन कर वहाँ से तीन गाँवों की दूरीपर आनेवाले हरसिद्धि देवी के पवित्र स्थान पर पहुँचते हैं। यह हरसिद्धि देवी वीर विक्रम महाराज की इष्ट देवी थी और इसकी एक प्रतिमा उज्जैन में है और दूसरी इस मियाणी स्थान में है। हरसिद्धि देवी के इस पवित्र स्थान पर चावडा वंश की राजधानी थी। उनके किले, मकान और पुराने मंदिरों के खंडहर आठ मील में फैले खड़े हैं। तथा वहाँ से पाटण की चांदी के

सिक्के भी निकले हैं। हरसिद्धि से द्वारका केवल वीस ग्राम की दूरीपर है।

सोमनाथ से सुदामापुरी और सुदामापुरी से द्वारिका – ये सारे देवस्थान स्थान स्थान पर समुद्र के किनारे पर आते हैं। प्रतिवर्ष यह मार्ग सहस्रों यात्रियों एवं प्रवास करनेवालों की पदधूलि से पवित्र होता रहता है।

समुद्र के तट पर हम सदा घूमने जाते थे और वहाँ पर बैठते थे। उस समय समुद्र की तरंगो की भाँति हमारे मनकी तरंगें उछलती थीं।

समुद्र में द्वीप सी बनी हुई हरसिद्धि माता की मनोरम पहाड़ी के साथ ही लगभग तीन मील की दूरी पर रावल गाँव है। नदी का किनारा, सुंदर वृक्षराजि, पके फलोंके भार से लचकते हुए बग़ीचे, हरीभरी ज़मीन तथा वृक्ष-निकुंजसे रावलग्राम अत्यन्त रमणीक लगता है। रावल के बगल में ही माता की गोद में खेलते हुए बालक-सा, पंछी की माला के समान दो हज़ार की जनसंख्या वाला गोराणा नामका एक छोटा सा ग्राम है। बाराडी का यह आखरी गाँव है। यहीं से बरड प्रदेश प्रारंभ होता है। यही है मेरी जन्मभूमि और है यही मेरा प्यारा वतन।

मेरे परदादा वीरजी सेठ सलाया में रहते थे। इस समय मे जामनगर की गद्दी पर जाम रणमल थे। राज्य के भाग का उस समय ठीका दिया जाता था और मेरे दादा वीरजी शेठ कल्याणपूर महाल का ठीका रखते थे। इसी लिए कल्याणपूर महाल के मुख्य ग्राम रावल में आये। उससे आगे जाते हुए गोराणा मे निवास बनाया। धीरेधीरे वहींपर व्यापार प्रारंभ किया और वहींपर स्थिर हो गये।

वीरजी दादा के दो पुत्र हुए और उनका नाम विश्राम तथा राघवजी था। विश्राम दादा के चार पुत्र हुए जो नाम से- जीवराज, कालिदास, माधवजी और लालजी थे। मेरी माता श्री.जमनाबाई राज-परिवार की थी। मेरे नाना वेलजी बापा वीसावाडा मे रहते थे।

हम चार भाई बहन हैं- तीन भाई और एक बहन। बड़े भाई गोरधनदास, छोटे भाई मथुरादास हैं और मै मझला हूँ। देवकी बहन हम तीनो भाइयों से छोटी है। यह सबसे छोटी और अकेली (एक मात्र) बहन है। दूसरी भी एक बहन थी परन्तु वह जीवित नहीं है।

गोराणा मे राज्य के दोनो भागों के अतिरिक्त ऋण देने के धन्धे के भी प्रारंभ किया गया। राज्य का अन्नागार हमारे यहाँ था। तेलहन, अनाज आदि फुट कर सामान की दूकान भी चलती थी। आसपास के गावें से कपास खरीदना, उसको साफ कर और गाँठ बनाकर पोरबन्दर जाकर रूई के बेचना- इस प्रकार का धन्धा चलता था। उस समय पोरबन्दर व्यापार का मुख्य केन्द्र गिना जाता था। मेरा व्यापार का अधिकांश सम्बन्ध पोरबन्दर के साथ था और आज भी पोरबन्दर के साथ ही है।

व्यापार के अतिरिक्त हमारे बाप-दादों ने थोड़ी भूमि भी रखी थी। खेत मे से खाने भर का अनाज मिल जाता था। घर मे दूध देने वाले गाय, भैंस आदि पशु थे। व्यापार के कार्य के लिए घोड़ा भी रखा गया था। वर्ष में एक-दे। हज़ार कोरी (कच्छी सिक्का) की पैदायश थी और इतने से अति आनन्द और सन्तोष से रहते थे।

इस समय में व्यापार में भारी साहस करना पड़ता था। मेरे दादा राघवजी का लड़का गोकुलदास समय समय पर घी भर कर खंभालिया तथा सलाया की तरफ जाता। पचीस-पचास बैल भी साथ ले जाता। एक वार गोकुलदास बैल ले कर घी बेचने निकले। साथ मे दूसरे दे। आदमी थे। सामान से लदे हुये बैल आगे थे और आदमी पीछे थे। पहनाव में चूड़ीदार पैजामा, कमर के ऊपर पैजामे पर फेंटा बँधा, चुस्त और कसने वाली चौबन्दी और सिर पर बड़ी पगड़ी बँधी थी। हाथ में लोह जडा हुआ डण्डा और कमर में लम्बी तथा म्यानवाली छुरी थी। ऊँचा, कद्दावर शरीर, मज़बूत गठन, संयमी और सहनशील जीवन था। इस समय में शारीरिक संपत्ति एक खरी समृद्धि गिनी जाती थी। शरीर-बल यह एक बड़ा धन माना जाता था। अनेक वार चोर-डाकुवें का सामना करके रक्षण करना पड़ता था।

भाई गोकुलदास अपने साथियों के साथ बातचीत करते चले जा रहे थे। नदी का किनारा आया। नदी के तट पर वृक्षों का झुण्ड जमा हुआ था। जंगल में ताडी के वृक्षों की भरमार थी। इतनी घनी झाडियाँ थीं कि मनुष्य हाथ से ताली बजाता हुआ भी जावे ते। भी पता न चले। बबूल और काँटेदार सेंहुड़ से जंगल भरा हुआ था। ऐसे ज़माने में चोर-लुटेरों का भय सर्व सामान्य

वस्तु गिनी जाती थी। अभीतक वहाँपर इस प्रकार की टोलियाँ रहती थीं।

भाई गोकुलदास ज्योंही नदी के अन्तराल में उतरे त्योंही चार डाकू फटकार देते हुये खड़े हो गये। इनके पास नंगी तलवारें, बड़ी तीक्ष्ण कुल्हाडियें और लोहभरे डण्डे थे। लुटेरे द्विगुण मज़बूत और बहादुर थे। लुटेरे की फटकार को सुनते ही गोकुलदास सचेत हो गये। विचार करने का समय भी नहीं था। क्षणमात्र में उन्हो ने चारों ओर नज़र फेरी। समीप ही नदीतट की झाड़ी थी। वहां पर कटा हुआ बबूल का वृक्ष पड़ा था। मोटी मोटी डालें पड़ी हुई थीं। "हाज़िर सो हथियार" इस कहावत के अनुसार समय की चेतावनी का उपयोग लेकर जैसे तैसे दौड़कर पास में पड़े हुये एक बड़े मज़बूत बबूल के झांखर-झंखाल को उठा लिया और डाकुवों को पता न चल पाया कि पहले ही उस झांखर से मारना प्रारंभ कर दिया। साथ में रहने वाले दूसरे दोनो व्यक्ति लोहजड़े हुये दण्डे को लेकर मैदान में उतर पड़े। बबूल के झांखर-झंखाल का कांटा डाकुवों के मुँह के ऊपर तथा नाक, आँख और गाल में चुभ गया। मोटी डाल की मार से हाथ, पैर सीने में भयंकर पीड़ा होने लगी और दो डाकू ज़मीन पर लोट गये। डाकू लोग इस प्रकार की मौत से जीवन बचा कर भाग खड़े हुये। गोकुलदास ने हाथ के झांखर को फेंक दिया और श्वास लेकर अपने साथियों के साथ आगे चल पड़े। गाँव के मुखिया-रक्षक के पास जाकर सूचना दी। उसने आग्रह करकें रात भर उन्हे रोका और सवेरे उठकर वे सलाया की ओर चल पडे।

इस समय में ऐसी तो अनेकों घटनायें बनती थीं। इस प्रकार के साहस से शरीर और मन अधिक बलवान् होते थे। ख़तरे के बीच जीने में जीवन का वास्तविक आनन्द है, यह इस समय इनको अनुभव हुआ। इस तरीके से हमारे बापदादों का व्यापार चलता था और गृह के व्यय आदि की पूर्ति होती थी।

इस भांति हमारा व्यापार चल ही रहा था कि इस विषय में हमारे चाचा गोकुलदास को ऐसा विचार पैदा हुआ कि हम यहाँ पर यह छोटा सा व्यापार कर रहे हैं और इस में कोई सार एवं लाभ नहीं। सलाया के हमारे बहुत से कुटुम्बीजन अरब, अफ्रीका गये हुये थे। उनकी बातें वे सुनते थे और मन में होता था कि इसी प्रकार उन्हे भी परदेश की यात्रा करनी चाहिए। उनको यह

खबर मिली थी कि कच्छ के बहुतेरे भाटिया लोग जाकर अफ्रीका में बसे हैं और वहां पर उनकी बड़ी बड़ी व्यापार की दूकाने चलती हैं। कच्छ के इन भाटिया गृहस्थों के पास अपने समुद्री वाहन थे। समुद्री लुटेरे मार्ग में लूट न लेवें इस लिए इन नौकावों के साथ वे रक्षक दल भी रखते थे। छोटी तोपें भी रखते थे। ये लोग जंज़ीबार से सोना, तेजपत्र, लौंग, सीसम की लकड़ी और मजीठ की छाल आदि लाते थे और यहाँ से कपड़ा, तांबे और पीतल के बर्तन, रेशम के बेचने के सामान, चित्र किये हुये घड़े, लाल, नीले, पीले, रंगीन मोती, चांदी की वस्तुयें और हथियार आदि ले जाते थे। भाटिया व्यापारियों की दूकानें उस समय मुख्यतः जंज़ीबार में थीं। पूर्वी अफ्रीका पर उस समय जंज़ीबार के सुल्तान का आधिपत्य था और सुल्तान के साथ भाटिया गृहस्थों का घनिष्ठ सम्बन्ध था। उनका वहां पर राज्य की चुंगी का ठीका रहता था और वे सुल्तान को बड़ी मात्रा में ऋण भी दिया करते थे। लामू, लिंडी आदि स्थानो पर सूबेदार रहते थे और सुल्तान स्वयं जज़ीबार में रहता था। कच्छ के कितने गृहस्थों के परिवार जावा, बसरा, एडन और मसकत में भी थे। मसकत के अरबी सुल्तान उनको जंज़ीबार ले गये और वहांपर उन्हे बसाया। इन्हे मसकत से अपने पोतोंमें विशेष रूप से संभालकर ले गये।

मेरे चाचा गोकुलदास इन भाटिया गृहस्थों के व्यापार की बातें सलाया में सुना करते थे। हमारे कितने ही परिचित भी वहां जा बसे थे। इससे उनको यह विचार आया और वे जज़ीबार जा पहुँचे।

पांच वर्ष में थोड़ा बहुत पैसा लेकर देश वापस आये। उनके घर में पुत्र-पुत्रियों का बड़ा परिवार था। वे दो वर्ष तक देश में रुके। तत्पश्चात् पुनः संवत् १९४८ के अरसे में यात्रा के लिए प्रस्थान किया। वे यहां से सीधे जंज़ीबार पहुँचे। प्रारंभ में एक वोरा गृहस्थ के यहां दो वर्ष तक नौकरी में रहे। बाद में उन्होने अपनी स्वतंत्र दूकान करली।

हमारे निकट के कुटुम्बीजनों में सब से पूर्व विदेश जानेवाले मेरे चाचा गोकुलदास जी ही थे। उनसे ही हमें विदेश जाने की प्रेरणा मिली। वह भी किस प्रकार और किन परिस्थितियों में- यह अगले प्रकरणों में पढ़ने को मिलेगा। उससे पूर्व बाल्यकाल के कुछ मधुर संस्मरणों को यहां पर देता हूं।

३

बाल्यकाल के मधुर संस्मरण

मनुष्य को अपना बाल्यजीवन सबसे अधिक मधुर लगता है। बाल्यकाळ का स्मरण आते ही सारा जगत् भूल जाता है। इतनी अधिक मधुरता इसमें विद्यमान है। बालकपन कहते ही माता की मीठी गोद का बोध हो उठता है। यह जीवन निर्दोष होने से प्यारा लगता है। कारण यह है कि बालक प्रभु के समीप होता है। राजा-रंक दरिद्र तथा धनी सभी को अपना बाल्यजीवन एकसा प्रिय लगता है। ऐसा भास होता है कि मानो संसार में दुःख नाम की कोई वस्तु नहीं है। उसमें भी जिसका बचपन गावों के मध्य में व्यतीत हुआ हो उसके आनन्द की तो बात ही क्या ?। और तो क्या ? आज से पचास-साठ वर्ष पूर्व गांव स्वर्ग के समान थे। ये गाँव गोकुलिया (सुख संपन्न) कहे जाते थे। इस समय में गांव सचमुच नन्दन-वन जैसे थे।

मेरा जन्म संवत् १९४४ के मार्गशीर्ष मास में हुआ था। जब से मैं समझने लगा तबसे आज पर्यन्त अधिकांश बातें मुझे बराबर स्मरण हैं। नन्हेपन की मीठी स्मृतियाँ आज भी दृष्टि में तैरती हैं। माताजी प्रातः जल्दी उठाती थीं। चक्की की मधुर रणकार कानो को सुनाई पड़ती थी और माताजी का गीत भी साथ मे चलता होता था। उठने को मन नहीं कहता था। मुह ढँक कर सो रहता था। सारे घर का आँटा पीस लेने और छाछ मथ लेने के बाद माताजी फिर जगाती थीं – "नन्हे बच्चे उठो"।

माताजी की स्नेहभरी आवाज़ सुनकर मैं उठ जाता था। बाहर ओट पर बैठकर दातन करता था। हाथ मुँह धोकर पुनः घर में आता था। वहां पर प्रातराश (नाश्ता) तैयार रहता था। बाजरे की बासी रोटी, उसपर ताजा मक्खन और साथ मे तसली भर दही होता था। ऊपर से रहता था अँचार। प्रातराश लेकर पाठशाला जाया करता था। उस समय के स्कूलों की पढ़ाई आज की अपेक्षा बहुत ऊँची थी। गणित पक्का, अङ्क कण्ठस्थ, लेख

सुन्दर, अक्षर मोती के दाने समान (मेरे अक्षर मुझे स्वयं अच्छे नहीं लगते), वाचन स्पष्ट और उच्चारण समझने योग्य होता था। इतिहास, भूगोल का ज्ञान भी आज की अपेक्षा अधिक अच्छा था। पुस्तकें और कापियाँ थोड़ी होती थीं। शिक्षकजन अपने अनुभव से पढ़ाते थे। यदि विद्यार्थी बार बार पढ़ाने पर ध्यान न देवे और झगड़ा तूफान करे तो उसे शारीरिक दण्ड भी अध्यापक देते थे। भूल होने पर सोंटी से भी मारते थे। परन्तु अध्यापक स्नेह भी करते थे। अपने सगे बच्चे के समान प्रेम करते थे। विद्यार्थी उनके प्रति पिता के जैसा आदर करते थे। आज तो उनमे ऐसा कुछ है नहीं। विद्यालय सरस्वती का मन्दिर न रहकर व्यापारी की दूकान के समान बन गया है। शिक्षक वेतन की पूर्ति करने के लिए काम करते हैं। मानो भार उतारना हो, ऐसा समझकर अधिकांश अध्यापक अध्यापन का काम करते हैं। व्यापारी जिस प्रकार तोलकर सामान देता है उसी प्रकार समय के अनुसार अध्यापक भी माप तोलकर विद्या पढ़ाते हैं - ऐसा लगता है। आस पास प्रेम जैसी वस्तु कहीं पर दिखायी नहीं पड़ती। विद्यार्थियों मे भी अनुशासन, विनय और अध्यापक के प्रति आदरमान जैसी कोई चीज़ रह नहीं गई है। शिक्षकों का कोई प्रभाव विद्यार्थियों पर पड़ता है- ऐसा मालूम नहीं पड़ता। उस समय के हमारे शिक्षक आज भी हमे याद आते हैं। उनके जीवन की सरलता, निपुणता, नियमितता, प्रामाणिकता और सच्चाई आदि गुणों की छाप हमारे जीवन पर पड़ी है। ये दिन अब मिल ही कहाँ सकते हैं।

प्रातः साढ़े दश बजे विद्यालय से जब छूटता तब घर आजाता था। बस्ता रखकर सीधे नदी पर पहुँच जाता था। उस समय नदियों मे बारह मास पानी सूखता नहीं था। वर्षा नियमित और पूरी मात्रा मे पड़ती थी। पहाड़ बारह मास हरियाली से भरे रहते थे और नदियाँ जल से पूर्ण रहती थीं। नदी मे स्नान करने से बहुत आनन्द आता था। आज संगमरमर के बने हुये स्नानागारों मे नहाने वाले को इस आनन्द की कल्पना तक भी नहीं आ सकती। हम कपड़ा निकाल कर सीधे नदी में पड़ जाते और साथ साथ पानी भी उछालते। पानी मे डुबकी भी खेलते और तैरना सीखते थे। स्नान से सन्तुष्ट हो जाते तो नदी से बाहर निकलते। कपड़ा धोकर घर जाते थे और वहांपर भोजन तैयार मिलता था। यदि

नहाने मे देरी हो जाती थी तो माताजी थोड़ा गुस्से होती थीं और बाद मे प्रेम से भोजन परसती और प्रेम से खिलाती थीं। दोपहर में घर में खेल कूद तथा आराम कर के दो बजे बाद विद्यालय पहुँच जाता था। चार बजे दोपहर की नाश्ते की छुट्टी मिलती थी। इसमे बड़ी रोटी, दूध, मक्खन और घी जो दिखलायी पड़ता उसे खाकर पीछे विद्यालय वापस जाता। सायंकाल पांच बजे पहाड़ा कण्ठस्थ करता था। तदनन्तर घण्टे डेढ़ घण्टे व्यायाम और खेल-कूद चलता था। देशी खेलों का थोड़ा साधन हमारे स्कूल मे था। खेल में कन्दुकक्रीडा, सातकांकरी, हुतुतुतु, खोखो, आंबली-पीपला, ऊँची और लम्बी कूद, सीधी दौड़ तथा मल्ल-कुश्ती आदि खेलों को खूब आनन्द से खेलता था। युवक शिक्षक भी हमारे साथ खेलते थे। इससे खेलने का अधिक आनन्द आता था। लगभग दीवा बत्ती के समय घर आता था।

एक वार हम तीन चार विद्यार्थी यहीं पर अक्षर लिखने के लिए खड़िया मिट्टी लेने के लिए नदी पर गये। नदी के किनारे खड़िया मिट्टी के जैसी सफेद धूलकी भी कहीं कहीं पर खान होती है। हमें जबभी इसकी ज़रूरत पड़ती थी तो हम नदी के किनारे खेलते हुये जाते और वहाँ से खान में से खोद कर लाते। इस समय ऐसा हुआ कि जब मैं खड़िया मिट्टी की खानके गड्ढे की भांति इस श्वेत धूल के गड्ढे मे नीचे गहराई तक सीधा हाथ डालकर खड़िया मिट्टी निकालने लगा तो अन्दर से छोटे वृक्ष के मूल जैसी कोई वस्तु मेरे हाथ मे लिपट गई। मैंने हाथ बाहर निकाल कर देखा तो यह काला नाग था। मैं तो घबरा गया। इतने मे ही यह हाथ के ऊपर से उठकर बाजू के ऊपर आगया। परन्तु ईश्वर की कृपा थी कि वह बाद में बाजूके ऊपर से उछलकर नदी में पड़कर पानी मे चला गया। इसी का नाम है कि जिसको राम राखे उसको कौन मार सके?

इस समय हमारे घर का एक नियम था कि छोटे बड़े सभी ठाकुरजी के मन्दिर मे दर्शन करने जावें, रामनाम का जप कर, और घंटा बजाकर आकर फिर बाद मे ही रात्रिका भोजन करें।

इस समय में किट्सन लाइट अथवा बिजली की रोशनी नहीं थी। गाँवों मे बत्ती भी नहीं थी। मिट्टी के तेलका डब्बा अथवा तेलका मिट्टीवाला दीवा था। टिमटिमाते दीपक के न्यून प्रकाश मे आदमी देख नहीं सकता था। बहुत से भागों में मनुष्यको आवाज़

से पहचाना जाता था।

हमारे घर पर एक दो मेहमान रहेते हीथे। यह सुदामा पुरीसे द्वारिका का मुख्य मार्गथा अतः कोई न कोई यात्री साधु सन्त आही जाता था। मेरे पिता बड़े भावुक थे। साधु सन्तों के ऊपर उनको बड़ा विश्वास था। ग्राम के प्रवेशपथ से ही वे ऐसे लोगों को घर पर लेजाते थे, उनका प्रेमपूर्वक सत्कार करते थे और भावपूर्वक भोजन कराते थे। साथही मार्ग के व्यय के लिये दो पांच कोरी (पुराना कच्छी सिक्का) भी दे देते थे। हमे इन साधु सन्तों के समागम का लाभ मिलता था। भजनकीर्तन और कथावार्ता भी सुनने को मिलतेथे। ये संस्कार हमारे जीवन मे भिन गये थे।

हमारे घर में खाने पीने की स्वतंत्रताथी दूध घी की अधिकता थी। लोभ जैसी कोई वस्तु नहीं थी। सप्ताह मे एक दो चार मिष्टान्न तो होता ही था। दूकान मे नारियलकी गिरी, खजूर तथा शक्कर आदि वस्तुयें होती ही थीं। जो वस्तु अच्छी लगे और जितनी अच्छी लगे खाने की छूट थी। कभी कभी दूकान में से इन चीज़ों को अधिक खा लिया जाता था तो फुंसी फोड़े निकल आते थे और उस समय खाना वन्द कर दिया जाता था। किसी समय खाने की रोक होती तो मै चोरी से खा लेता था और मित्रों को खिलाया करता था।

इस काल में सस्तापन अधिक था। दश से बारह आने मन खजूर, दो रूपये मन गुड़, तथा तीन रूपये मन शक्कर मिलतीथी। फिर इसमें लोभ कौन करे? अन्न इतना अधिक सस्ता था कि मनुष्यको 'कल क्या होगा' इस वातकी चिन्ता ही नहीं होती थी। कृषकों के घर मे अन्न की कोठियाँ भरीही पड़ी रहती थीं। सेवा करनेवाली छोटी प्रजा नाई धोवी आदि के घर मे भी वर्ष-दिवस के लिए अन्न मौजूद रहता था। कृषक और व्यापारी लोग वर्ष पूरा होने पर अधिक अन्न निकाल दिया करते थे। साधारणतया खाने पीने का सवको सुख था।

नव वर्ष की उमर मे गुजराती की दो श्रेणियाँ पूरी करलीं। समझ बढ़ने लगी। दुनियाँ के विचार सामने आने लगे। रात्रिका भोजन करने के बाद जब मैं आंगन में चारपाई डालकर सोया होता तो आकाश में तारे दिखाई पड़ते। इस समय मनमे कई विचार तरंगे स्फुरित होती थीं। इस सवको किसने वनाया होगा? इनका कर्ता कौन है? ये सारे तारे विना किसी आधार के क्यों

और कैसे लटक रहे होंगे ? इसमें भगवान् कहाँ विराजमान होगा ? इन विचारों को करते हुये जब बहुत व्यग्र होजाता तब माताजीसे पूछता था। वे भी अनपढ थीं, अत: क्या जवाब देही सकती थीं ? ऐसे तैसे मेरे मनका समाधान करती थीं। माताजीसे गीत गवाकर मैं कहानियाँ कहलवाया करता था। नव साढ़े नव बजे सोजाया करता था।

उजाली रात्रि के खिलने पर चन्द्रमा की चांदनी में हम समान वय वाले लड़के गाँव के समीपवर्ती मैदान में निकल पड़ते। महाजन और मेहर के लड़के अधिक रात्रि तक मैदान में खेलते रहते थे। आधी रात होने लगती थी कि माताजी बुलाने आती थीं। परन्तु खेल मे जी इतना लगा होता था कि माताजी गुस्से होतीं, मारतीं फिर भी हम नहीं मानते थे। इस लिए वे दूसरे दिन प्रातःकाल में खूब पीटती थीं। माताजी का स्वभाव बहुत गरम था। मेरा भी साथ ही इतना ही गरम था। अठवारे मे एक बार मार न खाऊँ तो सन्तोष नहीं मिलता था।

वीसावाडा से मामा जी बार बार गोराणा आते थे। उनसे हमारे इन तूफानो की बातें माताजी करती थीं। इससे मामा जी हमें धमकी और डर देते थे। परन्तु हम इस पर ध्यान नहीं देते थे। प्रतिदिन मैं नदी मे स्नान करने जाता था। वहाँ पर दूर तक तैरने जाता था और मारा-मारी करता था। सायंकाल मे एकाध फरियाद तो घर मे आही जाती थी। पिताजी तो परमात्मा के भक्त थे। वे तो एक शब्द भी नहीं कहते थे। हम वैष्णव संप्रदाय के थे इसलिए हमारे पिताजी रोज़ रात्रि में "दो सौ बावन वैष्णव" पुस्तक बाँचते थे। रात्रि मे ११ बजे पर्यन्त सभी एकत्र हो कथा-कीर्तन करते थे। छोटे बच्चे सुनने के लिए बैठते थे।

पक्षियों को खाने का अनाज डालना और गायों को घास बाजरी आदि का ग्रास डालना पिताजी का एक नित्य का अटूट नियम था। दुष्काल अथवा आपत्ति के समय में भी वे पशुवों को बाजरी का टाण्डल डालते थे। इस प्रकार के गोग्रास के लिए मेरे पास से अफ्रीका से भी पैसा मगाते थे। इनके इस पुण्य कार्य के लिए हम भी जहाँ तक बन सकता था मदद करते थे। वे जबतक जीवित रहे तबतक इस प्रकार से मूक प्राणियों की सेवा करते रहे। पूर्वपुरुष के इस प्रकार के पुण्य आपत्ति में सहायक बनते हैं और मनुष्य विना किसी व्यग्रता एवं बाधा के विशेष

आपत्तियों से बँच जाता है। अपने को क्या मालूम है किसके भाग्य पर अपने आनन्द भोग रहे हैं और खाना खा रहे हैं। इसी कारण से पूर्वकाल मे अमुक अमुक धर्मकार्य करने के अटूट नियम को समझदार व्यक्ति अपनी शक्ति के अनुसार पालन करते थे। 'कोई कहता है कि अमुक मनुष्य बँच गया' तो मानता है कि बापदादों के पुण्य सहायक हुये। कौन किसके भाग्य का खाता इसकी खबर नहीं पड़ती। इसी प्रकार पिता पुत्र बनकर अपने रहते हैं इसकी खबर नहीं पड़ती है। वस्तुतः तो यह ऋण का अदृष्ट सम्बन्ध है।

परन्तु माता जी हमारी शरारतों से दुःखी हो जाती थीं। मैं ने नवम वर्ष में दो पुस्तकें पूरी कीं और वहाँ से मेरे मामा मुझे वीसावाडा ले गये।

४

सागरपार के स्वप्न

मामा की स्थिति बहुत अच्छी नहीं थी। इनका व्यापार कपड़े और अनाज का था। ये फुटकर माल रखते थे। अपने कुटुम्ब का निर्वाह अच्छी तरह चलाते थे। पन्द्रह दिन होते थे कि पिताजी मेरे लिए खजूर, नारियल की गिरी, मिश्री और गुड़ आदि खाने की वस्तुयें घोड़े पर लाते थे। मामा जी उनको ऐसा करने से रोकते थे तब भी मेरे प्रति ममता के कारण वे ले ही आते थे। इन दिनो को जब स्मरण करता हूँ तो पिता के प्रेम का विचार करते हुये हृदय भर आता है।

वीसावाडा को मूलद्वारिका कहा जाता है। वहाँ पर सैकड़ों यात्री दर्शन के लिये आते थे। आज भी आते हैं। हम प्रतिदिन मंदिर मे दर्शन के लिए जाते थे। वहाँ अक्षत डालकर भाव एवं आदर से पैर पर गिरते और सायंकाल आरती के समय मे घण्टा और नगाड़ा बजाते थे। लगभग अंधेरा हो जाने पर मै घर आता था। गोराणा की भांति ही वीसावाडा मे भी उजाली रात्रि मे महाजन और मेहर लोगों के समवयस्क बालकों के साथ खेलने जाता था। अधिक रात्रि तक धींगामस्ती और खेलकूद चलती रहती थी। मामा जी लेने को आते और हमारे नकार करने पर धमकाकर ले जाते थे। ओसारा के अन्दर अपने पास ही चारपाई डालकर मुझे सुलाते थे।

मेरे दो मामा थे। दोनो के बीच एक ही सन्तान थी। हमे बड़े प्यार से रखते थे। प्रत्येक ऋतु मे भिन्न भिन्न प्रकार की चीज़े वहाँ खाने को मिलती थीं। दीवाली आते ही बाजरे का नया होरहा, ज्वार का डण्ठल होता है, माघ महीने में गेहूँ का नया होरहा, गाजर, चना और ईख होते हैं। बरसात के चातुर्मास्य में फूटकंकड़ी और मक्की का भुट्टा मिलता है। इस समय में भूमि मे रसायन पदार्थ इतना अधिक होता था कि भूमि प्रचुर मात्रा में सार भरी रहती थी। तीन तीन फीट लम्बी फूटकंकड़ी हमने अपने

हाथों से काटा - यह हमें स्मरण है। कूटकंकड़ी, तरबूज़, मेवा, खिरनी और करौंदा इतना अधिक होता था कि खाने का कोई प्रश्न ही नहीं था। मनुष्यों का हृदय इतना विशाल था कि खाने को कोई बालकों को मना नहीं करता था। बच्चों के प्रति बहुत प्यार था। गाँव के जिस किसी भी बालक को चाहे कोई भी आदमी रोकता नहीं था बल्कि पाससे बुलाकर उसकी जेब भराता था। भूमि मे सारवत्ता जितनी ही अधिक थी उतना ही लोगों का हृदय भी कोमल एवं विशाल था। आज दोनो मे से एक भी दिखलायी नहीं पड़ते। मनुष्यों का हृदय संकुचित हुआ तो भूमि का रसीलापन भी सूख गया। आज पृथ्वी अपना दोह नहीं दे रही है। वह मानो दूध देनेवाली गाय के समान विसुक गई है।

इस काल की भावनायें बहुत उच्च थीं। इसमे मानवता भरी थी। सभी में पड़ोसी-धर्म था। सारा गाँव एक कुटुम्ब के समान लगता था। गाँव के अन्दर कोई भूखा नहीं सोता था। गाँव के मुखिया लोग चोरी से लुकछिप कर पता लगा लेते थे कि कोई भूखा तो नहीं है क्या ?। छाछ और दूध के लिए पैसा लेना महा-पाप समझा जाता था। लोग दही, दूध अथवा छाँछ को सूरज का फल मानते थे।

दीपावली, होली और जन्माष्टमी - ये तीनो बड़े पर्व गिने जाते थे और अभी भी गिने जाते हैं। इन त्यौहारों मे ग्रामों मे मानो नयी चेतना का संचार हो जाता है। स्त्री, पुरुष और बालक नये कपड़े और गहने पहन कर घूमने निकलते थे। नवयुवक लोग घोड़दौड़ करते और इस ढंग की बाज़ी लगाते थे। वे दोहा ललकारते थे और भजन-मंडलियाँ इकट्ठी होती थीं। मन्दिरो में मेला भराता था। इस प्रकार आनन्द का रंग उड़ता था।

इन त्यौहारों में जो कोई ग़रीब किसान अथवा छोटे मोटे आदमी होते थे गाँव के मुखिया लोग उन पर दृष्टि रखते थे। वे ग्राहक हों कि न हों गाँव मे कोई भी बिना पर्व मनाये हुये नहीं रहना चाहिए। उन लोगों को शक्कर अथवा गुड़, घी जो भी चाहिए था उधार दिया जाता था। पर्व को कोरा नहीं जाने दिया जाता था। भले ही पैसा छः बारह महीने में अथवा वर्ष दो वर्ष में आवे। किसी का बालक बिना पर्व मनाये नहीं रहता था। ग्राम में ऐसी कुटुम्ब-भावना थी, एकता थी और इसी कारण अधिक बरकत थी।

मेहर लोग जितने ही शूर थे उतने ही टेकवाले अथवा आनवाले थे। कितनी बार ये लोग बहुत झूठी आन रखते थे। ये अन्दर अन्दर वैर रखते थे इस कारण खूनखरावी होती थी। आज की भांति पहले भी ये बात-बात में खून कर डालते थे। नाथा, मोढा, देवा और रातडीगा आदि बहुतेरे जवाँमर्दों के हालात हम सुनते थे। एक भयंकर क़त्ल की घटना हमने अपनी आंखों से देखा था, उसको मैं यहांपर देता हूँ।

गोराणा का राजा ओखाई नाम का मेहर वीसावाडा में अपनी बहन के घर रहता था। पटेल के साथ साथीदार के रूप मे काम करता था। वीसावाडा के एक मेहर का उसके साथ बहुत पुराना वैर था। ये लोग मौके की खोज मे थे। एक बार राजा ओखाई खेत में हल जोत रहा था। उसने कुल्हाड़ी और सिरपर बांधने का कपड़ा खेत के मेंड अर्थात् सीमा पर डाल रखा था। उसके हाथ में बैल हांकने का पैना था। खेत की दीवाल के सहारे से पहले ही दो व्यक्ति छिपकर बैठे थे। उनके हाथ में तलवार और कुल्हाड़ी थी। हम पांच सात लड़के नदी पर घूमने के लिए निकले। हमने दूर से इन दो व्यक्तियों को दूर पर बैठा हुआ देखा। ये किस लिए इस प्रकार छिपकर बैठे होंगे ? इसकी हमे कोई ख़बर नहीं थी। हम तो दूर पर खड़े रहे। मन मे ऐसा आया कि हम देखें तो सही कि ये लोग क्या करने के लिए इस भांति बैठे हैं।

राजा हल को हांकते हुये इस तरफ आ रहा था। बड़ी उमंग के साथ यह दोहा गाता हुआ आ रहा था। सर्वथा निश्चिन्त था। यह ज्योंही खेत की दीवाल के पास आया और बैल को फेरकर पीछे फिरा त्योंही पहले छिपे हुये दो नौजवान फटकारते हुये खड़े हो गये। राजा पूरा पांच हाथ का था। अकेले ही पांच व्यक्तियों को दबोच दे इतना शक्तिशाली और हिम्मतवाला था। परन्तु इसके हाथ में कोई हथियार नहीं था। फिर भी वह निश्चिन्त था। पूर्ववाले दोनो व्यक्ति एकदम झपट के साथ दौड़कर आगये। एक ने तलवार का वार किया। प्रथम प्रहार मे ही सिर कट कर पृथक् हो गया। वे दोनो व्यक्ति भाग पड़े। हम भयभीत होकर एक तरफ छिपे देख रहे थे। इतने मे राजा का सिरविहीन धड़ मारने वाले के पीछे दौड़ा। रक्त बहता जाता था और धारा बहती जाती थी। धड़ को पीछे आता देखकर दोनो मे

से पहले आदमी ने पीछे मुड़कर कुल्हाड़ी का प्रहार किया। राजा का धड़ जमीन पर गिर गया। हम लोग दौड़कर गाँव में पहुंच गये। इतनी देर में तो गाँव में गूँजती हुई खबर पहुँच गयी। वैमनस्य का तो पता था ही इसलिए मारने वाला कौन है, इसका अनुमान लोगों को फौरन ही हो गया। परन्तु ये मारने वाले लोग भाग गये। ओखाई के सगे सम्बन्धियों और पक्षवालों के लगभग पचास घर थे। विरोधी पक्ष में भी लगभग इतने घर थे। यदि इस समय जोश में आकर लड़ाई मचे तो मारकाट चल पड़े और कितने ही युवक समाप्त हो जावें। इस लिये कोई बाहर नहीं निकला।

मुक़द्दमा चलाया गया और कातिल पकडा गया। लम्बी सजा मिली। इस समय मे छोटी रात्रि लम्बी सजा वाले कैदियों को अपने व्यय पर सरकार को सौंप देते थे। इन दोनों सज़ा पाये हुये व्यक्तियों को साबरमती जेलमें भेज दिया गया।

क़ातिलोंको सख्त सजा मिलने पर भी राजा ओखाई के भाइयों तथा सगे सम्बन्धियों के मनमें से वैर की भावना दूर नहीं हुई। वैर का जबतक बदला न लिया जाय तब तक ठेस के कारण वे सिर में पगड़ी नहीं बाँधते थे। ये वैर का बदला लेनेका अवसर खोजने लगे और इस बात को पांच वर्ष बीत गये। पांच वर्ष बाद गोराणा के दो युवक बीसावाडा आये। यहां पर अपने दो दूसरे सम्बन्धी युवकों को मिलाकर कपटयोजना रची। राजा को मारनेवाले दो आदमी तो जेलमें थे। परन्तु उनके दूसरे भाई स्वतंत्र फिरते और मूँछ पर ताव देते थे। इनके ऊपर वैरका बदला साधने का राजा के आदमियों ने निश्चय किया।

राजा के क़ातिलों के भाइयों की खेती बारी की ज़मीन मोढवाडा गाँव के सीमा के समीप थी। वहाँ से सायंकाल मोट, मोट की रस्सी (वरत्रा) और सामान-साज गाड़ीमे रख कर दोनो भाई आ रहे थे। राजा के आदमियोने इनका रास्ता घेर लिया। दो व्यक्ति आगे बैठे और दो थोड़ी दूर पर बैठे। दीवाल की आड़ में रास्ते के पास ये छिपे रहे। बैलगाड़ी ज्यों ही समीप आई त्योंही इन्होने बन्दूक छोड़ी परन्तु बार खाली गया। उन्होने गाड़ी दौड़ायी। परन्तु पहले छिपकर बैठे हुये व्यक्तियों ने दौड़ते हुये गाड़ी का पीछा किया। आगे छिपकर बैठे हुये दो आदमियोंने गाड़ीवाले का मार्ग रोक लिया। कुल्हाड़ी लेकर उतर पड़े। इतने मे पीछेवाले भी आदमी पहुँच गये।

इन गाड़ी में बैठे लोगों को मालूम भी नहीं हो पाया कि इतने मे दोनो को राजा के आदमियों ने घायल कर दिया और क्षणमात्र मे ही उनका काम तमाम कर दिया। उनके रक्त को जूते मे भरा और खेतमे राजा ओखाई की मृत्यु के निशान गड़े थे उनपर चढ़ाया और कहा कि तुम्हारी हत्या करनेवाले का बदला हमने ले लिया है, यह रक्त तुम्हारी आत्मा की सद्‌गति करे।

क़त्ल कर के दोनो भाई गोराणा भाग आये। रिपोर्ट की गयी। पोरबन्दर और कल्याणपुर के फौज़दार आये। दोनो को पकड़ लिया। मुक़दमा चला। दोनो पक्षों मे आमने-सामने मारा मारी हुई अतः हमने अपने बचाव के लिए उनको मारा ऐसा खूनियों ने मुक़दमें मे बयान दिया। फिर भी लम्बी सज़ा हुई। दोनो साबरमती ले जाये गये। राजा ओखाई के क़ातिलों की सज़ा के दश वर्ष बाकी रह गये थे अतः उन्हें यरवदा जेल में बदली की गई कि जिससे वे जेल में झगड़ा न करें।

यह बात मैंने बाद में सुनी। भाई भाई का वैर चला ही करता है। मेहर जैसी शूरवीर, उदार और साहसवाली जाति फूट के कारण आगे बढ़ नहीं सकती। उन में यदि एकता और संघटन पैदा हो जावे तो देश की रक्षा कर सकें- इतनी शक्ति और साहस इन में भरा पड़ा है। जूनागढ़ मे कालवा मेहर की शूरवीरता को प्रमाणित करने वाला कालवा दरवाज़ा है। मेहर लोगों द्वारा दान मे दी गई भूमि का साधु-बावे आजतक उपयोग करते हैं। जूनागढ़ की अस्थायी हुकूमत के समय इन्हों ने इस बात को प्रमाणित किया।

वीसावाडा समुद्र के किनारे पर है। हम चार भाई बन्धु समय समय पर समुद्र के किनारे चले जाते थे। वहाँ पर कौड़ी, सीप और शंख एकत्र करते थे। समुद्र की लहरें आगे आतीं और पीछे जातीं। लहरों के साथ हमारी दौड़ने की स्पर्धा लगती थी। मानो समुद्र के साथ पुरानी मैत्री हो ऐसे घड़ियों पर्यन्त किनारे पर बैठते। दूर दूर तक नौकायें जाती थीं, इनका श्वेत मस्तूल वस्त्र (पाल) सूर्य के प्रकाश में दिखाई पड़ता था। इसके सामने देखता रहता था। मन में यह विचार उठता कि क्या इस नौका मे डूबना नहीं होता? चाचा जी इस मे गये थे। वे किस प्रकार कितनी कठिनाई से पहुँचे होगें? नौका किस प्रकार तरती होगी? क्या

उल्टी नहीं पड़ जाती होगी ? वर्षा आती होगी तब क्या होता होगा ? समुद्र का खारा पानी कैसे पिया जाता होगा ? इस में मीठा पानी कहाँ से लाया जाता होगा ? भोजन किस प्रकार पकता होगा ? सोने के लिए चारपाई किस जगह पर लोग डालते होगें ? सामने का तट कितनी दूर होगा ? इस प्रकार की अनेक तरंगे मन में उठती थीं।

चाचा जी की यात्रा जब दूसरी बार हुई तो वे अपने दोनो लड़कों को साथ ले गये। वर्ष के पश्चात् मेरे बड़े भाई गोरधनदास को भी उन्होने बुला लिया। सलाया से हमारे दूर के कुटुम्बी का एक लड़का भी गया। कोई जंज़ीबार, कोई एडन और कोई मेडागास्कर गया। उस समय अफ्रीका जाना महान् आपत्ति गिनी जाती थी। छः छः मास तक घर के मनुष्यों की आंख के आंसू नहीं सूखते थे। मातायें व्रत करती थीं। जब तक वहाँ पहुँचने का पत्र न आजावे तब तक मातायें दूध-घी का चढ़ावा चढ़ाया करती थीं।

इस प्रकार एक के बाद एक करके सब को परदेश जाता देखकर मेरे मन मे भी विचार आया कि मुझे क्योंकर यहाँ पर ही पड़े रहना चाहिए ? मेरा मन दूर देश को देखने के लिए दौड़ जाता था। समुद्र के दुःख का विचार नवीन दुनियाँ के देखने के उत्साह में कहीं का कहीं उड़ जाता था। परन्तु ऐसे कौन जाने दे। बड़े भाई गये उस समय माता जी और भाभीजी खूब रोयीं। कितने ही दिनों तक इन्होने पेट भर भोजन भी नहीं किया। यह सब स्मरण आते ही मन पीछे हट जाता था। तिस पर भी बार बार समुद्र की यात्रा करने के विचारों से मन भर जाता था।

इस समय मेरे ग्यारह वर्ष पूरे हुये थे। पढ़ने मे मन बहुत लगता नहीं था। घर स्मरण आया करता था इस लिए बीसावाडा छोड़कर गोराणा गया। चार किताबें पूरी कीं। इस समय में बीसावाडा अथवा गोराणा मे इससे आगे पढ़ने की सुविधा नहीं थी। इस लिए पिता जी के साथ व्यापार में जुट गया।

पिताजी के साथ व्यापार मे

मेरे बड़े भाई १९०० की साल मे चाचा जी के लड़कों के साथ अफ्रीका, मेडागास्कर गये। उसी समय से १२ वें वर्ष की अवस्था मे मैं पिताजी के साथ व्यापार में लग गया।

व्यापारी के बालक के लिए अपनी घर की दूकान एक विद्यालय है। प्राचीन समय में अधिकांश मे प्रत्येक व्यक्ति बाप-दादा की परम्परा से उत्तराधिकार में मिले धंधे को करता था। बढ़ई का बालक अपने पिता की दूकान में साथ बैठकर गढ़ने का कार्य करता था और इसी में से बढ़ई का कार्य सीख लेता था। इसी प्रकार लोहार, दर्ज़ी और कुम्हार आदि के लड़के अपने पिता के साथ कार्य करते करते ही कार्य का शिक्षण ले लिया करते थे। कृषक का बालक छोटेपन से ही खेत में कार्य करके कृषि के कार्य में निपुण हो जाता था। स्कूल में जो शिक्षण नहीं मिलता वह इनको अपने पिता के पास से मिलता रहता था। रक्त मे जो संस्कार उतर चुका हो उस सम्बन्धी धन्धा फौरन हाथ में बैठ जाता है और वंशपरम्परा पर्यन्त चलता है। यह एक स्वाभाविक वस्तु थी। पूज्य महात्मा गान्धी जी ने वर्धा में जो नयी तालीम की योजना की वह इससे मिलती जुलती ही थी। पूज्य बापूजी पुराने ज़माने को देखते थे। इसी लिए उन्हे यह रीति अन्दर से अपने आप सूझी थी।

अपनी दूकान पर काम करने में मुझे बहुत आनन्द आता था। पिता जी की सूचना के अनुसार कपड़ा नाप देना, जैसा वे कहते थे उसके अनुसार तेल, गुड़, शक्कर आदि का वज़न करना – आदि कार्यों को मैं करता था। इस समय मे कृषक लोग नक़द पैसा नहीं लाते थे। केवल अनाज, रूई, तेलहन आदि वस्तुयें लाते थे। उनके पास से अन्न अथवा रूई तौल लिया करता था और उसी के हिसाब से वस्तु जोखकर दे देता था। वस्तुवों के विनिमय से गाँव का व्यवहार चलता था। रूपये पैसे की अपेक्षा इसमें अधिक सुविधा थी। अपने खेत मे उत्पन्न हुई वस्तु को कोई व्यापारी दलाल

के द्वारा शहर मे बेंचे और उसका पैसा करे और व्यापारी के दलाली चढ़े माल को नक़द पैसे से खरीदना – इसमें किसानो को दूनी हानि होती थी। परन्तु आज तो मुद्रा के प्रचलन से दुनियाँ घिर गयी है। इसका प्रभाव छोटे गाँवों तक में पहुँच चुका है।

कल्याणपुर महाल का राजकीय अधियाका अन्नभाग हमारे यहाँ आता था। चुंगी का ठेका भी हमारे पास था। हमारा व्यापार पोरबन्दर के साथ था। रूई, तेल और अन्न आदि ऋतु अनुसार प्रत्येक वस्तु को लेकर पोरबन्दर जाना पड़ता था। यह काम मेरे हिस्से मे पड़ा था और इस में मुझे बहुत बड़ी तालीम मिली। दीपावली के बाद पोरबन्दर के लिए बैलगाड़ी चालू होती थी तथा लगभग बैसाख मास पर्यन्त चलती रहती थी। एक साथ दश, पन्द्रह, बीस गाड़ियों का समूह जुतता था। कभी कभी तो पैंतीस – चालीस गाड़ियाँ हुआ करती थीं। सायंकाल पांच छ बजे गाड़ी जुतती थी।। सबसे बाद वाली गाड़ी में मैं रहता था। मार्ग मे इस समय मे बहुत चोरियाँ हुआ करती थीं अतः जगते रहना पड़ता था। माताजी ने गाड़ी मे सोने के लिए गद्दा बना दिया था और एक सिरहाना भर कर दे दिया था। पहनने के वस्त्रों मे धोती कसी हुई चौबन्दी और सिर पर पगड़ी होती थी। इस काल में छूआछूत का प्रश्न बहुत बड़ा था। इस लिये माताजी दूध का ठेपला बना कर रख देती थीं। साथ मे गुड़ और अँचार भी रख देती थीं। सायंकाल पांच छः बजे गोराणा से हम निकलते थे।

पोरबन्दर जाते हुये मार्ग मे रामवाव नाम की सुन्दर जगह आती है। रात्रि में नव बजे के क़रीब हम वहाँ पहुँच जाते थे। रामवाव से पोरबन्दर चौदह मील है। मार्ग के समीप ही आनन्द की जगह है। वृक्ष – समूह की छाया थी और बावली मे निर्मल नीर भरा होता था। वहाँ पर बैलगाड़ी को छोड़ दिया जाता था। बैलों को चारा डाल कर सब नाश्ता (पाथेय) खाने बैठ जाते। ठेपला, गुड़ और अंचार बहुत मीठा लगता था। दो घण्टे तक बैलों को आराम देकर घासभूसा खालें इसके बाद गाड़ियाँ जोती जाती थीं। वहाँसे पोरबन्दर तक सीधी सड़क थी, इस लिए किसी प्रकार का भय नहीं था। गाड़ी मे लम्बे पड़कर कम्बल ओढ़कर सो जाते थे। बीच मे वावडा मे दो घण्टे तक गाड़ियाँ छोड़ी जाती

थीं। प्रातःकाल होते ही पोरबन्दर का जुबिली का चुँगी का नाका आ जाता था। वहाँ पर गाड़ी खड़ी रहती थी। एक आना चुँगी का "टोल" देना पड़ता था। शहर में प्रविष्ट होते थे। बाज़ार में जा कर सामान अढ़तिया को सौंप देते थे। वह बेंच डालता था। बाज़ार से पिताजी की चिट्ठी अनुसार गुड़, कपास के बीज, तेल, शक्कर, खजूर और नारियल आदि वस्तुयें लौटते समय गाड़ी में भर लेते थे। सामान भरने के लिये एक दो गाड़ियाँ रख कर बाकी को समय से वापस कर देते थे।

पोरबन्दर मे दोपहर को भोजनालय में भोजन करने जाते। इस ज़माने में डेढ़ आने मे दाल, भात, शाक और रोटी भोजनालय वाले खिलाते थे। दो पैसे की दही लेते थे। दो आने नाश्ते के लिये रख छोड़ता। रात्रि के लिए मार्ग में खाने के वास्ते मिष्टान्न ले लेता था।

सायंकाल चार बजे के लगभग गाड़ी जोतकर पीछे वापस लौटते थे। पोरबन्दर से सात मील की दूरी पर बावडेश्वर महादेव का स्थान है, वहां पहुँचते संध्या हो जाती थी। इस लिये गाड़ी छोड़कर बैलों को घासचारा डालकर हम नाश्ता पानी करते थे। बावडा से निकल कर रात्रि के दस ग्यारह बजे रामवाव पहुँच जाते थे। वहाँ रात्रि मे दो तीन घण्टे गाड़ी छोड़ कर आराम करते थे। गाड़ी मे माल भरा होता इस लिए बारी बारी से जागना पड़ता था। जागने मे अधिक आनन्द आता था। आकाश में तारे खिले होते थे, अथवा चन्द्रमा की चांदनी होती थी, चारों ओर चन्द्रचन्द्रिका बिखरी होती थी और साथ ही साथ दोहे की अखण्ड स्पर्धा चलती थी। कोई अर्धरात्रि के बाद का भजन मीठे राग से गाता था। बैल चारा खा लें, आराम कर लें बाद में पह फटने पर गाड़ी जोड़ी जाती थी। सूरज निकलने के पूर्व हम 'वरतु' नदी पर पहुँच जाते थे। वरतु नदी में इस समय बारह महीने पानी रहता था। वहां पर दातन-पानी कर के हम स्नान कर लेते थे। वरतु से गाड़ा जुड़ता और हम नहाकर चलकर पहुँच जाते थे।

एक रात्रि घर और दो रात्रि गाड़ी में – इस प्रकार कार्त्तिक से वैशाख मासतक सात महीने मुसाफिरी चलती थी। जिस रात्रि में घर होता था उस रात्रि में पिता को "भागवत वार्ता" नाम की धर्मकथा बांचकर सुनाता था। पिताजी को कम दीख पड़ता था

इस लिए उनकी माला लेकर सामने बैठकर मैं बांचता था। कथा सुनने के लिए गाँव के दूसरे लोग भी आते थे। "चौरासी वैष्णव" दो सौ बावन वैष्णव की कथायें बालबोध लिपि में व्रजभाषा मे छपी हुई आती थीं। उन मे भक्त हुये पठान और हवशी भक्तों की कथायें भी आती थीं। इस समय में माता-पिता की ओर से बहुत से धार्मिक संस्कार हमें मिले। कथा बाँची जाने के बाद कीर्तन होता था। कीर्तन होने के पश्चात् प्रसाद बांट कर सोने का अवकाश मिलता था।

इस काल में कोई ग्राम ऐसा नहीं था जिस मे रात्रि मे भजन-कीर्तन, कथावार्ता न होते हों। इस समय आज की भांति मनुष्यों का हृदय धर्म से रहित शून्य नहीं था। दिशायें श्रद्धा से शून्य नहीं थीं। लोगों के सामान्य जीवन मे भी आनन्द और उल्लास था। प्रतिदिन रात्रि में गली गली में छोटी छोटी बहुयें और लड़कियें रास भरती थीं। इसको देखकर बहु संख्या में स्त्री पुरुषों का मन प्रफुल्ल होता था। मंदिरों मे अथवा चौराहे पर जब पवित्र भावना एवं शुद्ध हृदय से भजन-कीर्तन जम जाता था उस समय सारे दुःख भूल जाते थे। मन की बुरी वासनायें चली जाती थीं।

इस ज़माने मे कोई व्यसन नहीं था। लोग बीड़ी यदा कदा ही पीते थे। अधिकतया लोग हुक्का पीते थे। घी, दूध, दही और छाँछ की भरमार थी। घास प्रचुर मात्रा मे थी। पशु मस्त रहते थे। गाय और भैंसें हृष्टपुष्ट थीं। उनमें किसी की शरीर की हड्डी तो दिखलाई ही नहीं पड़ती थी। इस काल मे लोग भी शक्तिशाली, सौंदर्ययुक्त, देखने योग्य, भरे हुये गाल और सुन्दर एवं विशाल आंखोवाले थे। इन को देखकर मन प्रमुदित होता था। आज के वर्तमान समय में इन बातों का विचार करते हुये मालूम पड़ता है कि यह मानो स्वप्न की चीज़ हो।

मेरे पिता जी कहते थे कि सौ वर्ष पूर्व गोराणा के पास इतनी घनी झाड़ियाँ थीं कि चीते का डर लगता था। मनुष्य हाथ से ताली देकर भागे तब भी पता नहीं चलता था। दिन अस्त होने के बाद कोई यात्रा नहीं कर सकता था। हिंसक पशु और चोर लुटेरों का भारी डर लगता था।

हर रविवार को उधार की वसूली के लिए पिता जी मुझे

गाँव में भेजते थे। गाँव की गली में जाते हुये मेहर स्त्रियाँ अपनी मीठी भाषा मे प्रेम से स्वागत करती थीं। रंगीन मचिया डालकर उस पर बैठाती थीं। अगर मेरे जाने का मौका बहुत दिन बाद हुआ हो तो अपना दुःखड़ा सुनाती थीं। विना ऐसा कहे ही कि उधार की वसूली के लिये आया हूँ, वे समझ जाती थीं और सामने से भाव भरे शब्दों मे कहती थीं "बच्चे छोटे! आनेवाले सोमवार को घी ले जाना। अभी कौड़ी का भी योग नहीं है बेटा!। इतनी मधुरता और हृदय की सचाई से कहती थीं कि इस पर फौरन विश्वास हो जाता था। शंका का कोई स्थान नहीं रहता था। पश्चात् घर की बहुत सी बातें पूछती थीं। पिता जी को जै श्रीकृष्ण कहलाती थीं और माता जी को निमंत्रण भेजती थीं। तिल से जेब भर देती थीं। इतना प्रेम दिखलाती थीं कि उधारी न वसूल होने का तनिक भी दुःख नहीं होता था।

नन्हेपन के बारह वर्ष की उमर की इन स्मृतियों के स्मरण आते ही हृदय भर जाता। आंख में आंसू आ जाते हैं। आज तो इस सम्बन्ध में कुछ रह ही नहीं गया है। इस मधुरता और प्रेम को कहाँ पर ढूढ़ने जावे? इसका तो आज आभास मात्र भी नहीं है। जब इन दिनों को स्मरण करते हैं तो हृदय खिन्न हो जाता है।

इस समय में मौसम के अनुसार गेहूँ, बाजरा, ज्वार और शाक-भाजी आदि पर्याप्त से अधिक होते थे। चारे की पूलियों का तो कोई पार नहीं था। कितनी बार तो हम ज्वार और बाजरा की बालें भी बैलों को खिलाते थे।

गाँव मे किसी समय यदि कोई झगड़ा अथवा विवाद खड़ा हो जाता तो गाँव के बैठक के स्थान पर बैठकर गाँव के मुख्य लोग निपटा देते थे। साथ में बैठाकर दोनो पक्ष को दूध पिलाते थे। जो साथ बैठकर दूध पी लेता था वह अन्दर अन्दर वैमनस्य नहीं करता था। ऐसा करने में वह पाप समझता था।

ऐसा करते हुये बारह वर्ष पूरे हुये। दूकान का काम नियमानुसार चलता था परन्तु इतने से ही सन्तोष नहीं था। मन दोलाचक्र मे चढ़ा हुआ था। यह विचार उठता था कि दुनियाँ मे आये हैं तो कुछ करना चाहिए। दूर देश मे निकल जावें। जीवन मे कोई साहस खेलें। ऐतिहासिक राजावों की कहानियाँ बाँचने में

आती थीं। मोई वियोगी प्रेमी की कहानियाँ वाँचता था। सदेवंत सावलिङ्गा, ढोला मारू और गजरामारू की कहानियाँ वाँचकर मन में अनेक तरंगें उठतीं थीं। सदा नये नये विचार आते जाते रहते थे। मन को कहीं पर शांति नहीं मिलती थी। जी बेचैन हो उठता था। कहीं पर भी चेन नहीं पड़ती थी।

दूसरी तरफ दूकान मे कामकाज बढ़ने लगा। व्यापार बढ़ गया। राज्य की अधिया की वसूली, अन्नागार और कर आदि का कार्य चालू था। इस लिए वीसावाडा से एक मामा को गोराणा बुला लिया। राज्य के कामकाज को पिता जी ने संभाला और दूकान का मामा जी संभालने लगे। पिता जी बहुत ईमानदार और सत्यवादी थे। किसी का बुरा करना, किसी की हानि करनी, झूंठा बोलना – ऐसा तो इन में स्वप्न में भी नहीं था। माता जी का अत्यन्त उग्र स्वभाव था फिर भी पिता जी ने कभी कठोर शब्द नहीं कहा। माँ के हाथ से तो मैंने मार भी खाई, नहीं करनी चाहिए थीं ऐसी शरारतें भी कीं, परन्तु पिता जी ने कभी ऊँची आवाज़ से बुलाया तक नहीं। पिता भगवान् के आदमी थे।

तेरहवें वर्ष का प्रारंभ हुआ। कुछ समझ परिपक्व होने लगी। सुदामापुरी से द्वारिकाका मुख्य मार्ग हमारे गाँव के पास से जाता था। इस लिये अनेक साधु सन्त वहाँ से गुजरते थे। भूखे साधु को पिता जी घर पर बुला लाते थे। उसको भोजन कराते। यदि वह न खावे तो उसे खजूर और मूँगफली का फलाहार कराते थे। वे साधु सन्तों के पास से अनेक धार्मिक कथावार्तायें सुनते थे। ये संस्कार मन मे दृढ़ होते जाते थे। छोटी छोटी धार्मिक पुस्तकें भी पढ़ने को मिलती थीं। उन में से एक 'ध्रुवाख्यान' मैंने पढ़ा। इस में ध्रुव तप करते हैं, भगवान् उन को दर्शन देते हैं – यह चित्र मैंने देखा। यह मन मे बस गया। कोमल मस्तिष्क पर इसकी छाप अङ्कित हो गई।

खीमा नाम का एक मेहर का लड़का था। यह मेरा बचपन का परम मित्र था। हम दोनो साथ पढ़ते थे। इसके साथ मैं हृदय खोल कर बात करता था। इस के पास जितना हृदय खुलता था उतना किसी दूसरे के पास नहीं खोल सकता था। एक दिन खीमा से मैं ने बात की कि मुझे यहां पर अच्छा नहीं लगता। जिस प्रकार ध्रुवजी ने तपश्चर्या की उसी प्रकार हमने तप कर के भगवान्

को प्रसन्न करना है। भगवान् यदि दर्शन न दे तो शरीर-त्याग कर देना है। इसी लिए मुझे दो चार दिन में घर छोड़कर भाग जाना है। बरडा पहाड़ में महादेव का एक मन्दिर है वहां जाकर मैं तप करूंगा। यह सुनकर खीमा गद्गद् हो गया और बोला "तुम अगर भाग जावोगे तो मैं कहां पर रहूँगा, तो फिर मैं भी साथ चलूँगा"।

हम दोनो ने निर्णय किया कि गुपचुप रातोरात किसी को खबर न पड़े इस प्रकार हम भग जावें। रात्रि में सब सो गये। सर्वत्र सोता पड़ गया। पक्षी-गण भी अपने घोंसलों मे सोने के लिए चले गये। ऐसे समय में हम दोनो तैयार हो गये। मेरे शरीर पर थोड़े आभूषण थे। गले मे मोहनमाला, हाथों मे चांदी के कड़े, पैर मे कड़े, कान मे तरकी और मुन्दरी तथा हाथ में अंगूठी इतनी वस्तुयें अपने पास थीं। इतनी चीज़े सदा माता जी पहनाती थीं। गाँवो में इस समय इतने आभूषण धनिकपन गिने जाते हैं। परन्तु इसी भांति यह ख़तरा भी गिना जाता है। मैं ने सभी आभूषणों को उतार दिया। एक पैर का कड़ा नहीं उतरा। इस को रस्सी बांध कर हम दोनों ने सामने-सामने खींचकर निकाल दिया। सभी आभूषणों को एक पेटी में संभालकर रख दिया। तथा पेटी को दूकान की पेटारी में डाल दिया। पेटारे में फुटकर और नक़द मिलाकर कोई पन्दरह रूपये ले लिए। कमर मे लपेटकर बाँधी जानेवाली थैली में पैसों को बांध लिया। मंदिर में से भगवान् की एक शंख, चक्र, गदा, पद्मवाली, पित्तल की चतुर्भुज मूर्त्ति ले ली। साथ मे एक डोरी लोटा, एक जोड़ा कपड़ा, कस पैजामा, पैजामे पर बांधने का फेंटा, कस चौवन्दी आदि आवश्यक कपड़ों को लेकर एक टाट के थैले में डाल लिया। कस चूड़ीदार पैजामा, कस चौवन्दी और सिर में पगड़ी - यह पोशाक मैंने पहना हुआ था। ऊपर से फेंटा भी लपेटा था। मध्यरात्रि की वेला में गांव छोड़कर हम दोनो निकल पड़े।

कोई सामने पड़ा तो देख लेगा इस लिए हमने खेत का रास्ता लिया। खीमो १४ वर्ष का और मैं १३ वर्ष का था। दोनो की बालकबुद्धि थी। आगे - पीछे का विना विचार किये घर छोड़कर हम चल निकले।

सवेरा होने तक ही रहे। रास्ते मे कहीं पर आराम भी

नहीं लिया। जितनी बन सके उतनी दूर निकल चलें यह मन मे धारणा थी। सूरज निकला उस समय भोमियावदर के सेवान मे हम पहुँचे। गाँव में न जाते हुये सीधे पहाड़ की तरफ का मार्ग लिया। पहाड़ की तलहटी में भुवनेश्वर महादेव का मंदिर आया। सुन्दर नाले वह रहे थे, वटवृक्ष की घटा, शंकर का मंदिर तथा शांत एकान्त स्थल देखते ही मन प्रसन्न हो गया। हमने विचार किया कि तप करने के लिये यह जगह बहुत सुन्दर है। जा कर मै मन्दिर की ओट पर बैठ गया।

थोड़ी देर आराम किया और बाद मे नदी मे स्नान किया। स्नान करने से सारी थकावट उतर गयी। आंख में जागरण से आलस्य था वह भी उतर गया। नहा धो कर मन्दिर में जा कर प्रार्थना की। एक दो भजन भी गाये। थोड़ा दिन चढ़ा अतः खीमा को गाँव मे भेजा। वह जा कर दूध लाया। एक आने मे दूध से घड़ा भर गया। हम दो नो जने अढ़ाई सेर दूध पी गये। दूध पी कर थोड़ी देर सो गये। उठकर हम पुनः भजन में बैठे। सारा दिवस भजन मे बिताया। सायंकाल को भी दूध मंगवाया। दूध पी कर ज्यों ही हमने मन्दिर के ओट पर बिस्तर बिछाया त्यों ही गाय-भैंस चरानेवाले रबारी आ निकले। उन लोगों ने पूँछतांछ किया परन्तु हम ने उन्हे कोई विशेष उत्तर नहीं दिया। थके पड़े थे इस लिए सो गये।

दूसरे दिन प्रातः शीघ्र उठ कर नहा धो कर पूजा में बैठे। पद्मासन डाल कर दोनो आमने सामने बैठ गये। ध्रुवजी ने जैसा तप किया था वैसा तप प्रारंभ किया। मन मे अधिक शान्ति हुई।

दोपहर को हम दोनो गाँव में गये और आंटा ले आये। खाखरे के पत्ते पर आंटा गूँधा। फिर गोबर के कण्डे बीन कर लाये और आग बना कर उसे फैला दिया। उस पर बाटी सेंक ली। बाटी और दूध खाया और बाद मे भजन में बैठ गये। सोचा कि हम तो वटवृक्ष के नीचे महादेव के सामने इस प्रकार प्रभुस्मरण कर रहे हैं और बैठे हैं कि मानो समस्त संसार को भूल गये हैं। मन मे विष्णु भगवान् की चतुर्भुज मूर्ति का ध्यान कर रहे हैं। ध्रुव को जिस प्रकार दर्शन हुआ वैसे ही हमे भी होगा - ऐसा मन मे विश्वास है। दिन पर दिन बीतने लगे।

सोमवार को भुवनेश्वर के रबारी घी बेंचने के लिये 'झारेरा'

गाँव को गये। वहां उन्हो ने व्यापारी से बात की कि दो महाजन के छोकरे आये हैं। दोनो समान ही सुन्दर हैं और शंकर के मन्दिर में बैठे हैं। रात्रि मे आनन्द के भजन गाते हैं। हम लोग सुनने जाते हैं। ग्वारियों की बात सुन कर झारेरा से दो एक व्यक्ति आये। इन्हो ने हमें पूछा- "कहां से आये हो ? किसके लड़के हो ? किस काम से आये हुये हो ?" हमने सच्चा वृतान्त कह सुनाया। इस लिए सामने ही उन्हों ने पूछा- "यहां खावोगे क्या ?"

"हमारे पास पैसा है, उस में से चलाऊँगा"

"पैसा तो कल सवेरे समाप्त हो जावेगा पीछे क्या करोगे ?"

"सबेरे भगवान् की भक्ति करेंगे, दोपहर को चार घण्टे मज़दूरी करने जावेंगे; इतने में खाने भर का पैसा मिल जावेगा। हमे किसी दूसरी वस्तु की जरूरत नहीं" हमारे इस स्पष्ट उत्तर को सुनकर ये भाई वापस चले गये। हम रात्रि में मन्दिर की गुम्मट के नीचे सो रहते थे। पहाड़ मे चीता रहता था। भगवान् हमारी रक्षा करेंगे - ऐसा हमें विश्वास था। हम जब घर से निकले तो एक पत्र लिख कर छोड़ आये थे। उस मे लिखा था कि "हमारी खोज करना नहीं, हम भगवान् की भक्ति करनें जा रहे हैं। आभूषण निकाल कर पेटारा में रख दिया है। पन्द्रह रूपये साथ लेजा रहे हैं।"

सवेरे चिट्ठी पढ़कर घर मे दौड़ादौड़ी मच गयी। गांव के पटेल लोग घोडे लेकर चल पड़े। तलाश करते करते आठ दिन पीछे भाणवड के मार्ग से वे झारेरा आये। वहां से पता मिला इस लिए भुवनेश्वर आये। हमें पकड़ लिया। खूब कोसा और धमकाया। हमारे हाथ के कन्धों से हमे पकड़कर घोड़े पर डाल दिया और घर ले गये। हम लोग खूब रोये। मन में घबराहट हुई कि 'कार्य' सिद्ध नहीं हुआ। दुःख का पारावार नहीं रहा। मन की मन मे ही रह गयी।

घर के बड़े लोगों ने विचार किया कि यह लड़का हाथ का नहीं रह गया है। उनमे पुराने समय का अज्ञान था, इससे उन्होने निश्चय किया कि "इसका शीघ्र विवाह कर दो।"

मामा जी समझा बुझाकर वीसावाडा ले गये। वहुत लाड प्यार से रखने लगे। वहां मन्दिर में रोज़ रात्रि में भजन-कीर्तन होता था। उसमे मामा जी मेरे हाथ में झांझ पखावर दे देते थे।

उससे आनन्द होता था। मन कुछ स्थिर हुआ।

इतने मे समाचार मिला कि पिता जी ने फटाणा मे मेरी सगाई का निश्चय किया है। मेरी अवस्था तेरह वर्ष की और कन्या की उमर बारह वर्ष की थी। मुझे यह सुनकर आघात लगा। जिस समय विवाह करने की बात चलती उस समय मै कहता कि "मेरा कोई नाम न लेवे। मुझे तो भगत हो जाना है।" गृह के बड़े लोगों ने समझा कि यदि अभी ही इसका विवाह नहीं कर दिया गया तो निश्चय ही यह भगत बन जावेगा। वैशाख मास में लग्न किया गया। लग्न में कुछ समझ में तो आता नहीं था। श्वसुर को देखकर शरम खाता था। मन मे खेद होता था कि "यह क्या होने लगा है?" विवाह किसे कहा जाता है, इसकी कोई खबर नहीं थी। एकान्त में रोने को मन कहता था। परन्तु मेरे विचार मन मे ही रह गये। बुज़ुर्ग लोगों ने अपनी धारणा को पूर्ण किया। मेरी इच्छा के विरुद्ध मेरा विवाह हो गया। इस कारण एक प्रकार की न्यूनता भी हो गयी। इच्छा-विरुद्ध विवाह होने से जीवन में आनन्द आने के बदले एक प्रकार का झंझट आ गया और हमारे घर मे उमंग से भरी आई हुई एक अबोध, भोली-भाली कन्या के प्रति अनजानपन से मेरे मन में नापसंदगी का बीज बो उठा।

इस समय तो यह बात इतनी स्पष्ट नहीं समझ मे आती थी परन्तु अब विचार करने पर समझ मे आती है। बाद मे मेरे जीवन में आये अनुभवों से और कुछ पुस्तकों के पढ़ने से मुझे समझ मे आया कि जिनके वैवाहिक जीवन पर इस प्रकार से कोई न्यूनता आ गई हो वे जीवन में दूसरे क्षेत्रों में महान् साहस करने वाले पुरुषार्थी बनते हैं। विशाल से विशाल साम्राज्य की स्थापना करने वाले, महान् विजेता लोग, सेनाधिपति लोग, साहसिक व्यापारी, त्यागी सन्यासियों और स्वातंत्र्य वीरों ने कौटुम्बिक जीवन से पृथक् होकर रात्रि दिवस अपने ध्येय पर पहुँचने के लिए घोर प्रयत्न करते हैं। इन्हे गृहस्थ आश्रम का विलासमय जीवन और कुटुम्ब की ममता बांध नहीं सकती है। इसी लिए ये समुद्री यात्रा में, पर्वत के ऊँचे शिखर पर चढ़ने में महान् खतरों को उठा सकते हैं और अपने मन में निश्चित किये हुये आदर्श को पूर्ण कर सकते हैं। मेरे जीवन में भी जाने-अजाने ऐसा ही कुछ बना है।

भावीवशात् संवत् १९५६ के वर्ष में दुष्काल पड़ा। इसी वर्ष मे मेरा विवाह हुआ था। यह छप्पनियाँ (१९५६ मे होनेवाला) दुष्काल बहुत जबर्दस्त था अतः उधार की वसूली कुछ भी होती नहीं थी। भेंड़-बकरी वाले भाग गये थे। भैंसों वाले पहाड़ पर चले गये थे। अनाज सारा बेंच डाला था। घर मे केवल एक दो हजार कोरी का आभूषण था। बहुत संकट की स्थिति में आगया था। इतने अरसा में बड़े भाई का पत्र आया कि "मैं यहां पर अकेला हूँ। रसोइया मिलता नहीं है। 'नेटिवों' के हाथ का कैसे खाया जावे? छोटे भाई को भेजो तो कुछ व्यापार हो सके। मैं अभी तो दूसरे की भागीदारी में व्यापार करता हूँ। यदि भाई आ जावेतो स्वतंत्र दूकान कर सकते हैं।"

बड़े भाई का पत्र पढ़ कर पिताजी का मन कुछ पिघला। माता जी ने भी कहा कि इस समय परदेश जाने के लिये नकार करुँगी तो फिर से भग जावेगा। इस लिए इसने भी संमति दी। मामा जी ने खुश होकर स्वीकृति दिया।

मेरे चाचा जी का बड़ा लड़का भाई कानजीभाई अफ्रिका से देश मे आया था और फिर वापस जानेवाला था। उन के साथ जाने का निश्चय हुआ। थोड़ा सामान साथ में ले जाना ठीक होगा, मेरे पिताजी ने अमुक रक़म दी। सम्वत् १९५७ के पूष मास मे तदनुसार सन् १९०० की दिसम्बर में जाने का निर्णय किया गया। मेरे आनन्द की सीमा न रही। परदेश जाने की तैयारियाँ होने लगीं।

६

पहली यात्रा

यात्रा की शुभ घड़ी ज्यों ज्यों समीप आने लगी त्यों त्यों मन में अनेक प्रकार की कल्पनायें उठने लगीं। समुद्र मे नौका चलेगी, दूर के देश देखने को मिलेंगे। इस प्रकार के विचारों से मन मे आनन्द होता था। परन्तु घर में सभी उदास हो गये थे माताजी और भाभियों ने एक सप्ताह से खाना कम कर दिया था। वे रोया करती थीं। इस समय मे विदेश जाना बहुत कठिन कार्य था। समुद्र-यात्रा का दुःख सहन करना अति दुष्कर होता था। माता - पिता का जी किसी प्रकार इस चीज़ को चाहता नहीं था। आज - कल की भांति हार और फूल ले कर लोग पहुँचाने आवें और रूमाल उड़ाते हुये हंसते मुख से विदाई देवें- ऐसा उस काल में नहीं होता था। उस काल मे यात्रा इतनी कठिन थी कि लड़के का मुख पुनः कब देखने को मिलेगा- ऐसा विचार हो उठता था। इस विचार से कोमल, सरल हृदय पिघल जाता था। शरीर से आत्मा पृथक् हो रहा हो- ऐसा प्रतीत होता था।

आखिर शुभ मुहूर्त का दिन आही पहुँचा। सारे चौधरियों ने गाड़ी जोती, आधा गाँव विदाई देने आया, वृद्धजनो के पैर छू कर, सबका आशीर्वाद ले कर चल पड़ा। साथ मे इस प्रकार शुभ शकुन ले कर चलनेवालों में एक बावा, एक वालंद, दो मेहर और पाँच लोहाणे थे- जिससे यह हमारी पंचरंगी मण्डली जम गयी थी। इस मे हमारे साथ मे थे श्री. भाई कानजी गोकुलदास तथा श्री.वल्लभदास मूला जिनकी दूकान पहले अच्छी थी परन्तु बाद में व्यापार मंद होने से हमारे साथ आ गये हुये थे।

पोरबन्दर पहुँचे। वहाँ से स्टीमर में बम्बई जाना था। पिताजी पोरबन्दर तक विदा देने आये। वे अवसर अवसर पर "श्रीकृष्ण शरणं मम" का जाप जप रहे थे। स्टीमर पर चढ़ते हुये उनके पैर पर पड़कर विदा लेते हुये आंखे भीग गईं। उन्हो ने प्रेम से शुभाशीर्वाद दिया।

पोरबन्दर छोड़कर स्टीमर चली तो घड़ीभर मन उदास हो गया। नवीन दुनियाँ के देखने का आनन्द पलभर के लिए विस्मृत हो गया। गोराणा और वीसावाडा सभी दृष्टि में तरने लगे। फिर सब को कब मिलना होगा – यह विचार कर मन घोर चिन्ता मे उतर पड़ा परन्तु ज्यों ज्यों स्टीमर आगे बढ़ती गई त्यों त्यों यह उदासीनता कम होती गई। दूसरे दिन बम्बई पहुँच गये।

बम्बई के तट पर उतरते मुहूर्तमात्र मे ही कौतुक पैदा हो गया। भाई कानजीभाई और भाई वल्लभदास रेलवे के मार्ग से गये थे। हम सब अनजान थे। भाई वल्लभदास के श्वसुर बम्बई में रहते थे। उनका आदमी बन्दरगाह पर सामने आया हुआ था। उसने हमें उतार लिया। सामान बैलगाड़ी में भरा दिया। गाडीवाला मराठा था। वह मराठी भाषा बोलता था। हमे इसमें कुछ समझ नहीं पड़ता था। सामने आये हुये आदमीने मराठी में गाड़ीवाले से सब-कुछ तय किया। उस आदमीने हमे कहा कि "आप को विठ्ठलवाडी मे जानकी कूआँ के पास यह उतार देगा। वहाँपर आप सब के खाने पीने आदि की व्यवस्था की गई है" ऐसा कहकर वह चला गया।

हमारी बैलगाड़ी चल पड़ी। बम्बई के महलों को देखते हुये हम भी चल पड़े। बम्बई की बहुत सी बातें सुनी हुई थीं। बम्बई के ठग लोग ग्रामीणजनों के समान भोले नहीं होते। वे तो गाँव के आदमी को अंधेरी और अज्ञात गली मे लेजाकर लूट लें और मार डालें। ऐसी अनेक बातें सुनी थीं। उस समय मेरी अवस्था तेरह वर्ष की थी। अभी समझ कच्ची थी।

गाडी को विठ्ठलवाडी पहुँचते देर लगी। बम्बई मे एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाने में चार-छ मील तो सहज मे ही हो जाता है। इतना अधिक लम्बा रास्ता हुआ कि हमे सन्देह होने लगा। हमारे साथ मे कानजी भाई के शाले मजीवाणा के रईस भाई छगनलाल मोरारजी थे। उन को ऐसा हुआ कि ये लोग हमें किसी उल्टी-सीधी गली मे लेजाकर मार डालेंगे और सामान बेंच डालेंगे। इस लिये इन्होने गाडी वाले से पूँछना प्रारंभ किया। परन्तु कोई किसीकी बोली समझता नहीं था अतः बोल-चाल बढ़ती गई। दोनो ही लाल-पीले होने लगे। गाड़ीवाला उतावला होकर बैलों को उतावली के साथ हाँकने लगा। इस लिए दोनो मेहर युवक

कूदकर नीचे उतर पड़े। उल्टे मुड़कर बैल की नाथ पकड़ ली और हाँक मारकर पूँछा "तू हमे कहाँ ले जाता है।"

गाड़ी वाले दो व्यक्ति थे। इन में से एक नीचे उतरा और मेहरों को धक्का मारकर एक तरफ ढकेल दिया। इतने मे मेहरों ने लाठी उठाली। मारा-मारी होने लगी। मराठे भी बैल को हाँकने के लिए चमड़े और छड़ के बने हुये चाबुक को लेकर सामने खड़े हो गये। एक मराठे का सिर फूट गया। मेहर नौजवानो की पीठ में चाबुक का मोटा दाग़ पड़ गया। देखते देखते पांच-पचास आदमी इकट्ठे हो गये। समीप की चौकी से पुलीस दौड़कर आगई। गाड़ीवालों को और हमे पुलीस चौकी लेगयी। दूसरों को लोहे के पिंजरे में भर दिया और मुझे छोटा समझकर बाहर बैठाया। मुझे मन में विचार आया कि अब क्या होगा।

हमे उतरने की जगह पर पहुँचने में बहुत देर हुई इस लिए मेरे चाचा जी के लड़के बग्घी में बैठकर हमे ढूँढ़ने निकले। इसी रास्ते से गाड़ी निकली। मैंने दूर से देखा। फौरन ही मैंने पहचान लिया। हमारे गाँव में साधु-बाबा आते थे इसलिए इन की जैसी टूटी फूटी हिन्दी भाषा मे पुलीस के सामने देखकर मैंने पुकार दी – वह हमारा भाई जाता है।

पुलीस ने सीटी देकर गाड़ी खड़ी कराया। मुझे देखकर वे तत्काल नीचे उतरे। उन्होने इन की बोलचाल में पुलीस के साथ समझौता किया और हमे छुड़ाया। अज्ञात प्रदेश में इस प्रकार का झगड़ा करने के लिए हमे उन्होने भर्त्सना दी। भाषा की खराबी से नासमझी हुई।

गाड़ी वाले को समझाकर गाड़ी को भोजनालय में लाये। सामान उतारा। हमे खूब थकावट हो गई थी। भूख भी ऐसी ही लगी हुई थी। हमें सीधा भोजनालय में ले गये। इस समय भोजनालय में साढ़े चार चार रूपये मासिक लिया जाता था। घी, दूध और दही अपना पृथक् होता था। हमें पन्द्रह दिन रहना था इस लिए होटल मे प्रबन्ध कर लिया।

भोजन करने बैठे। प्रातःकाल के भूखे थे। समय भी लगभग सायंकाल का होने लगा था। कड़क भूख लगी थी। स्टीमर मे भात खाऐ थे। यहाँ पर गरमागरम दाल, शाक और रोटी का फुलका आने लगा। चार फुलकों का एक ग्रास होता था। पचास

पचास रोटियाँ खाईं तब भी पेट नहीं भरा। मेहर किसानों की मोटी रोटी के आगे कागज जैसा फुलका किस गणना मे? होटलवाला खीझ गया। इसको कुछ कहा कि झगड़ा हुआ। बाद मे रोटी बन्द करके खिचड़ी बना डाली। जैसा तैसा करके पेट भरा। दोपहर को गाड़ीवाले के साथ झगड़ा हुआ - यह अनुभव ताज़ा था। इस लिए कुछ अधिक नहीं कहा चुपचाप सो रहे। मेहर लोग "भूखे मर गये" ऐसा बड़बड़ाते रहे। भोजनालय वाले ने रात्रि में आकर हमे कह दिया कि - "आप लोग अपना मुक़ाम उठा ले जावें, हमें ऐसी कमाई की आवश्यकता नहीं है।" हम मन मे सहम कर रह गये। विना अधिक विचार किये थके-थकाये हुये सो गये।

प्रातः उठकर जब दातन पानी किया तो भूख लगी। बाज़ार से लाकर नाश्ता किया। भाई कानजी भाई को पूँछा कि "अब कहाँ जाना है?" हम जहाँ उतरे थे उस सेठ ने एक कमरा भाड़े में दिला दिया था। जिस लोहार चाल में आज आलीशान महल खड़े हैं वहाँपर उस जमाने मे देशी नरिया के छप्परवाली सड़ी हुई पुरानी झोंपड़ियाँ थीं। इसमे हमने उतारा किया। आँटा, शाक और लकड़ी ले आये। हाथ से रसोई प्रारंभ कर दी।

इस काल मे खानेपीने में छुआछूत बहुत थी। एक साथ भोजन पकाना तो दूर रहा, रसाई करते हुये एक दूसरे को छूते भी नहीं थे। "बारह भाई और तेरह चूल्हा" इस कहावत के अनुसार हुआ करता था। यह बात केवल मिथ्या-ज्ञान रूप थी, नासमझी थी - ऐसा आज समझा जाता है। इस छुआछूत के पीछे केवल स्वच्छता और स्वास्थ्य हेतु थे। नहा धोकर स्वच्छ स्थान में अच्छी तरह से रसोई बनाई जाय तो उस में कोई हरकत नहीं होनी चाहिए। अनुभव में यह बात सच्ची लगती है। परन्तु पचास वर्ष पहले ज़माना भिन्न था। पका खाकर निरापद दोपहर में हम सीधे लेट गये। देश की अनेक बातें चल रही थीं। इतने मे ख़बर पड़ी कि बगल के मरले में महामारी की घटना हो गयी है।

हम घबराये। इस कालमें महामारी के नाम से लोग भड़कते थे। महामारी मे चूहा गिरता है, मनुष्य को ज्वर चढ़ता है, गाँठ निकलती है और तीसरे दिन मरीज़ चल बसता है। इस प्रकार धड़ाधड़ आदमी मरते हैं अतः महामारी (प्लेग) बहुत भयंकर लगती है। हमे बहुत घबराहट हुई। कानजी भाई को कहा कि "इसमे अपने से

नहीं रहा जा सकेगा। यहाँ से जल्दी भागना चाहिए। परदेश चले जावें नहीं तो पीछे घर वापस चलें। इन में से एकाध को यदि महामारी चिपटी तो कोई जीवित नहीं रह सकेगा।" कानजी भाई के मन में भी चिन्ता हुई थी परन्तु कोई स्टीमर तत्काल रवाना नहीं होनेवाली थी। बहुत पता लगाया परन्तु पता नहीं चला।

इस समय (तथा आज भी) मेडागास्कर को सीधी स्टीमर जाती नहीं थी। जंज़ीबार से बदलकर जाना पड़ता था और जंज़ीबार की स्टीमर को अभी देर थी – इस लिए हम व्यग्र हो उठे। इतने उत्साह से, इतनी तैयारी कर के निकलने पर पुनः पीछे कैसे जाया जावे?

पता लगा कि एक नौका जंज़ीबार होकर मेडागास्कर तक जानेवाली है, उसमे प्रबन्ध किया। हम प्रसन्न हुये। स्टीमर का किराया भी भारी था। बम्बई से जंज़ीबार का प्रत्येक व्यक्ति का पैंतीस रूपया और वहाँ से मजंगा का किराया छ पाउण्ड था। जब कि इस नौका में बम्बई से सीधे मजंगा का केवल दश रूपया था – इस लिए हमें नौका में जाना बहुत सस्ता पड़ा।

नौका मे माल भर लिया। एक हजार बोरी अर्थात् एक सौ टन भार भरा। हमने मार्ग मे खाने पीने की चीज़े पर्याप्त मात्रा में ले लीं। रसोई पकाने के सामान बर्तन आदि भी ले लिये। पन्द्रह दिन बम्बई में सुख दुःख से बिताकर हम भगवान् का नाम लेकर नौका में चढ़े। नाविक ने हमारी नौका को अरब सागर में हांका।

नौका के फाटक के ऊपर चटाई बांधी। वहाँ पर सोने बैठने के लिए बिस्तरा और दरी आदि की। नौका मे टट्टी की क्या सुविधा होती है, यह तो वही जानता है जिसने नौका से यात्रा की हो। नौका की बग़ल में एक गोल चक्र रखते हैं। उसके दोनो बगल में पग रखने की जगह होती है। आदमी जब बैठता है तो उसके पकड़ने के लिए लकड़ी के दो हैण्डिल रखे जाते हैं। ऐसी टट्टी मे बहुत सावधानी से बैठना पड़ता है। जब दश दश फीट नौका ऊपर उठती है तो जान ऊपर आ जाती है। स्नान करने के लिए खारा पानी मिलता है। मीठे पानी के लिए लकड़ी की एक बड़ी कोठी रखी थी। उसमे से जितना नाविक दे उतना ही पानी काम मे लाया जा सकता है। पकाने खाने की पूर्ति के लिए देख देख कर बहुत किफ़ायत के साथ बरतना पड़ता है। रसोई के लिए

नीचे के तले में लोहे का पहियादार लम्बा चूल्हा रखा हुआ था। उसमे पूरी, आलू अथवा प्याज की भाजी, खिचड़ी, कभी कभी रोटी, दाल, भात और शाक भी पकाया जाता है। सभी जुदा जुदा पकाते थे। इस समय में साथ में खाने में छुआछूत को लोग पाप मानते थे। यह केवल मन की मान्यता थी। इस समय बुद्धि से किसी वस्तु का विचार लोग नहीं करते थे। रूढि-परम्परा के अनुसार हर एक बात निश्चित होती थी। रूढि के बन्धन दृढ़ थे।

सायंकाल नाश्ते के लिए हलवा, सेव और पेड़ा आदि चार मन के लगभग भार साथ में लिया हुआ था। इस मे से मापकर खाने को मिलता था। कारण यह था कि यह नहीं मालूम था कि नौका मोम्बासा कितने दिन मे पहुँचेगी।

प्रारंभ मे हवा अनुकूल थी। परन्तु समुद्र गरम हो गया था, इस लिए भारी तरंगें नौका के साथ टकराने लगीं। जिन को सिर में चक्कर चढ़ता था वे उल्टियाँ करने लगे। इन को आंख मीचकर बिस्तर पर पड़े रहना पड़ता था। मुझे चक्कर आता नहीं था। कहते हैं कि जो बालपन मे खूब झूला झूला हो उसे चक्कर नहीं आता। धीरे धीरे समुद्र अधिक से अधिक गरम होने लगा। नौका मध्य समुद्र में चली। ऊपर क्षितिज और नीचे पानी था। जहाँ दृष्टि करें चारों ओर पानी ही पानी। मुझे बिल्कुल ही चक्कर नहीं आता था अतः बहुत आनन्द आता था। रसोई का काम सबने बाँट रखा था। मेरे ऊपर लकड़ी लाना, चटनी पीसना और पानी ले आना आदि फुटकर कार्य थे। खलासी बर्तन साफ कर देता था।

भोजन कर के दोपहर को दो घड़ी आराम करते थे। रामायण और महाभारत साथ में लिए हुये था। श्री. वल्लभदास मूला बहुत सुन्दर कण्ठ से रामायण और महाभारत बांचते थे। प्रातः दो घण्टे और दोपहर पश्चात् दो घण्टे वाचन का कार्य रखा गया था। हमे सुनने में बहुत मज़ा आता था। दिन आनन्द के साथ बीतते थे।

किसी समय हवा के कारण भारी तरंगें आती थीं तो हमे रसोई पकाने में बहुत असुविधा होती थी। ऐसे दिन पूरी और भाप दिया हुआ चना जो कुछ भी होता था उसीका नाश्ता कर पानी पीकर पेट भर लेते थे। समुद्र मे हवा ताज़ी और खुली होने से भूख खूब लगती थी परन्तु पूरा खाने को मिलता नहीं था। माता जी ने दो मन तिलवा बनाकर दिया था, मन डेढ़ मन गुड़-पापडी

बनाकर दिया था, धीरे धीरे इस सब को समाप्त कर दिया। नाश्ता की पेटी खुले कि हम पहुँच जाते थे। पेड़ा अथवा खाजली इधर उधर कर के छिपा लेते थे। जब भूख लगती थी तो चुपके खा लेते थे। एक दो बार इसी प्रकार खाते हुये पकड़े भी गये। उस समय भाई के हाथ की थप्पडें भी खायीं। रोज रात्रि में भोजन-पानी कर के भजन-मण्डली जमती थी। मल्लाह बहुत सरस भजन बोलता था। तबला, मंजीरा और करताल साथ में ले गये थे। मल्लाह की मीठी वाणी में हलक से गाया हुआ भजन कान और मन को बहुत मधुर लगता था। हमारे साथ वालंद और बावाजी थे। वे भी बहुत मधुर भजन बोलते थे। रात्रि मे ठण्ढक होती इससे बहुत आनन्द आता था। कभी कभी तो भजन के रस मे इस प्रकार एकतान हो जाते थे कि मध्य-रात्रि पर्यन्त धुन चलती रहती थी। इस समय घरबार, मातापिता, दोस्त-मित्र और देशबन्धु सभी भूल जाते थे।

समुद्र मे दिन की अपेक्षा रात्रि मे अधिक आनन्द आता था। नौका सड़ासड़ चली जाती हो, आकाश मे चन्द्रमा खिला हो, सामने समुद्र की लहरें ऐसे उछलती हों मानों पिता पुत्र से मिलने को हाथ बढ़ा रहा हो और अंधेरे मे सारा आकाश तारों से घिर गया हो, छोटे तारे समुद्र के पानी में चक्कर मारते हों - यह देखकर बहुत आनन्द आता था।

जिस दिन हवा निकलती थी और तूफान की तरह लगती थी उस दिन भजन बन्द रहता था। सभी मल्लाह अपनी अपनी जगह पर एक ध्यान होकर काम में लग जाते थे। बड़ा नाविक, छोटा नाविक और दूसरे मल्लाह इतनी शीघ्रता से काम करते थे कि मानो जीवित यंत्र हों। ऐसे समय मे भजन के बदले दोहा की धूम मचती थी। दोहा गाते हुये मेहर नौजवान रंग मे आ जाते थे।

रात्रि में नौका तारा की दिशा के ऊपर चलती थी। नाविक समुद्र मे दिशा जानने के यंत्र से दिशा का ज्ञान करते थे। नौका मे भारी शीशा रखा था। उससे दिवस के बारह बजे दोपहर में नाविक पानी मे किरणे देखता, पट्टी मे हिसाब करता और बाद मे बताता बम्बई से नौका अमुक माइल चल चुकी है और अमुक माइल दूर रह गया है। स्टीमर के समान सच्चा हिसाब तो नहीं मिलता था परन्तु लगभग निकटतम व्योरा होता था। मोम्बासा किस तारा के

ऊपर आवेगा यह भी बतला देता था। हमारे पोत के नाविक का नाम मेघा - नाविक और पोत का नाम "कूलभाभी" था। मेघा-नाविक तीन किताव पढ़ा हुआ, सरस, शान्त स्वभाव और स्थिर आदमी था। इस के हाथ के नीचे का छोटा नाविक तनिक कड़क था। ये दोनो मूल कच्छ के रहनेवाले थे तिसपर भी गुजराती बोल और समझ सकते थे। मेघा-नाविक का लड़का मेरे जितना ही था। उसके साथ मेरी मैत्री गँठ गई। हम दोनो नौका के आगे के सिरे पर जा बैठते थे। यह भी अपने पिता के साथ पहली बार इतनी लम्बी यात्रा पर निकला था। मेघा-नाविक जब दिन मे खाली होता था तो अपनी यात्रा की अनेक मधुर और रोमांचकारी बातें करता था। नौका किस प्रकार तूफान में पड़ती है, कैसे टूट जाती है, इसमें से किस प्रकार किनारे पर पहुँचती है - इसकी ऐसी साहस भरी बातें हमें बहुत रुचिकर लगती थीं। ऐसा लगता था कि सुनते ही रहें। नाविक के साथ नौका की यात्रा किया ही करें - ऐसी उत्कण्ठा होती थी। इसका लड़का इस प्रकार शिक्षण ग्रहण कर रहा था। इसे छोटे बड़े काम भी आते थे। नाविक पास में बैठकर इस को सिखाता था।

किसी किसी समय मुझे घर स्मरण हो आता तो मन उदास पड़ जाता था। रोने के लिए मन होने लगता था। भाई चुप करे फिर भी तीन चार घण्टे रो लें तभी शान्ति मिले। जब तक हृदय खाली न हो तब तक चैन न पड़े। माता जी का प्रेम, घर का दही दूध, खाने-पीने और घूमने की स्वतंत्रता - ये सभी चीजें याद आती थीं। खिन्नता भर जाती थी। वाद मे कोई वात छिपी नहीं रह सकती थी। ज्यों ज्यों गुप्त रखें त्यों त्यों अधिक रुलाई आवे। विशेष तो समुद्र की भूख रुलाती थी। सप्ताह में दो वार तो रोने को होता ही था। एक बार मन को भारी आघात लगा। मन मे एकदम विचार उठ खड़ा हुआ कि बस घर वापस चलें और माँ बाप को मिलें। ऐसी घबराहट होने लगी कि गले में अवरोध हो गया। वाणी से कहा न जा सके ऐसा भारी वियोग-दुःख सताने लगा। सरल हृदय हो तो वही इस वेदना को समझ सकता है। दूसरे को इसका आभासमात्र भी नहीं हो सकता। पीछे वापस जाना तो असंभव था इस लिए जैसे तैसे मन रोककर बैठ जाता था। जिस समय घर से निकला उस समय ऐसे दुःख की कल्पना भी

नहीं थी। कोमल हृदय समुद्र के वश मे दुःख से टूक-टूक हो जाता परन्तु मानो किसी वस्तु की गढ़ाई हो रही हो ऐसा होकर धीरे धीरे कठिन हो जाता था। मालूम पड़ता था कि दुःख ऊपर न रहकर अब हृदय मे विलीन होता जा रहा हो।

ऐसा करते हुये २६ वें दिन किनारा दिखाई पड़ा। दूर दूर से काली भौंहों के समान किनार दिखाई पड़ा। जमीन देखते ही हमारे हर्ष का पार नहीं रहा। सब की जान में जान पड़ी – मानो ज़मीन कभी देखी न हो। माता को देख कर जैसे हर्ष उमड़ता है वैसे ही ज़मीन के किनारे को देखते हुये आनन्द हुआ। समुद्र में तूफान आया तो सभी को एसा होने लगा कि जीवित पहुँचेंगे या नहीं। परन्तु मुझे कभी ऐसा भय लगा नहीं था। जीने मरने को मैं कुछ समझता नहीं था। मेघा-नाविक ने बताया कि मोम्बासा के समीप आ पहुँचे हैं। इस समाचार से सब उल्लास में आ गये।

७

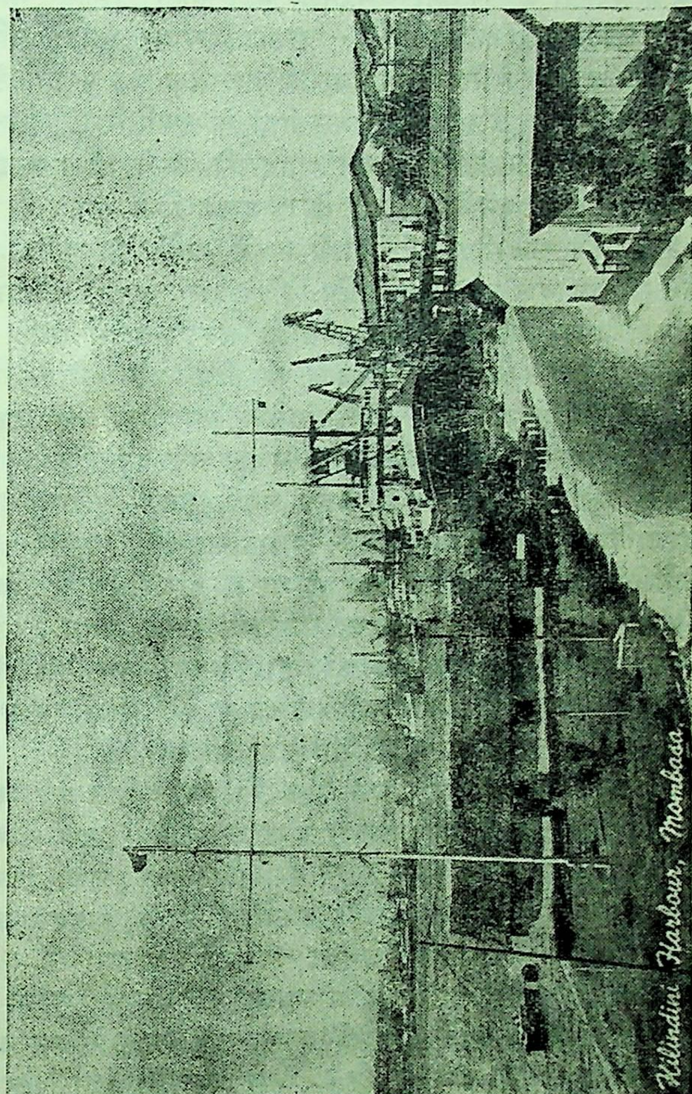
मोम्बासा और जंज़ीबार

दूर से मोम्बासा बंदर दिखाई पड़ा। आगे चलकर दुनियाँ के बहुत से बन्दर मैंने स्टीमर से देखे परन्तु मोम्बासा का दृश्य अपूर्व है। मोम्बासा का मूल नाम कीसी-वाचा-वीटा अर्थात् 'युद्ध का टापू' है। पूर्व अफ्रीका पर प्रभुता जमाने के लिए इस टापू मे अनेकों बार युद्ध हुये हैं। अरब, पोर्चुगीज़, जर्मन और अंग्रेज़ इन चारों प्रजावों ने राज्यलोभ और धन-लोभ के कारण इस टापू को अनेक निर्दोष सैनिकों के रक्त से रंजित किया है। मोम्बासा पूर्व अफ्रीका का प्रवेशद्वार है। वहाँ से केनियाँ-युगण्डा रेलवे प्रारंभ होती है। हर पक्ष में सैकड़ों भारतीय मोम्बासा में उतरते हैं और अफ्रीका मे समा जाते हैं। उस समय इतनी सुविधा नहीं थी। रेलवे भी थोड़ी दूर तक गई थी। बस्ती भी पूरी नहीं हुई थी।

मैंने मोम्बासा में कदम रखा कि उसके दूसरे ही दिन (प्रायः) महाराणी विक्टोरिया गुजर गईं। इस दिन सन् १९०१ की जनवरी की १७ वीं तारीख़ थी। इस कारण से नगर में हड़ताल थी। शहर मे सूना था। शहर मे घूमकर नौका पर वापस आये। रसोई की और खाकर सो गये। दूसरे दिन नगर मे गये। वहाँ पर थोड़े गुजराती युवक मिले। उनमें जोडिया के श्री. पोपट मास्टर थे। आगे चलकर वे लक्षाधिपति बने फिर भी वे "मास्टर" उपनाम से ही प्रसिद्ध थे।

हममे जो लोहाणा थे वे मास्टर जी के घर भोजन करने गये। मेहर, बावा और वालन्द नौका पर रहे। वे हाथ से पकाकर खाते थे। हमने मास्टर से कहा कि दाल भात, शाक खाने की इच्छा है। महीने भर से हमने पूर्ण भोजन नहीं किया है। उन्हो ने अति प्रेम से दाल, भात, शाक और रोटी बनवा कर खिलाया। सायंकाल को खिचड़ी बनाई गई और हमने पेट भर कर भोजन किया।

इस समय मे मोम्बासा में हिन्दुवों की बस्ती कठिनता से तीन चार सौ भाइयों की रही होगी। मुसल्मान भाई हजार-बारह सौ रहे होंगे। उनमे वोरा, खोजा और मोमिन सभी जाति के थे।



किलिंडिनी बंदर, मोंबासा

अधिकांश में कच्छ काठियावाड़ की तरफ के थे। कुछ नौकरी वाले और कारीगर थे। शेष लोग स्वतंत्र रूप से व्यापार करते थे। इस काल में मोम्बासा में एक भी धर्मशाला नहीं थी। पुराने मोम्बासा का थोड़ा भाग आज रह गया है – वास्कोडी गामा स्ट्रीट, नडियाकू स्ट्रीट, मोम्बासा की ऐतिहासिक इमारत पोर्चुगीज़ का पुराना किला-जिसमे इस समय जेल है। भारतीयों के अतिरिक्त अरबलोग, सीरियन, गोवानीज़ तथा यूरोपियन आदि की वस्ती थी। बन्दरगाह, रेलवे और आफिस बनाये जा रहे थे। उसके लिए भारत से सशर्त भरती किये हुये आदमी आ रहे थे। वे और सरकारी आदमी मिलकर लगभग दश हज़ार भारतीय थे। इस समय मोम्बासा में भारत का क़ायदा, प्रचलन और भारत के पोस्ट स्टैम्प्स आदि व्यवहार में आते थे। सेना मे मुख्यतया भारतीय लोग थे।

आज का मोम्बासा तो मानो इंगलैण्ड का नन्हा बच्चा हो ऐसा लगता है। विशाल राजमार्ग, भव्य बंगले, बड़े बड़े होटल, क्लब, स्कूल और मनोहर बग़ीचे हैं। सम्पूर्ण नगर सुन्दर सुशोभित वृक्षों से आच्छादित है। पुराने काल में मोम्बासा का व्यापार अरबों, भारतीयों और येरोपियनों के हाथ में था। इस समय मे मोम्बासा केनियाँ की राजधानी के समान था, नैरोबी उस समय तक पूरा वसा नहीं था। पूर्वीय अफ्रीका का बड़ा से बड़ा नगर नैरोबी है। डेढ़ लाख की वस्ती है और चालीस मील के विस्तार में बसा है। उस समय नैरोबी नाम मात्र का भी नहीं था।

मोम्बासा में इस समय एक लाख की वस्ती है। पूर्व अफ्रीका का यह प्रवेशद्वार है। यह सब से बड़ा बन्दर है। एक साथ दश स्टीमर 'डाक' में आकर खड़ी रहें – ऐसी सुविधा तथा व्यवस्था मोम्बासा के बन्दर में है। करोड़ों रूपयों का माल चढ़ता उतरता है। पचास वर्ष मे मोम्बासा सर्वथा नया ही बन गया है। बहुत बड़ी जागृति हो गई है। पहले मोम्बासा मे रूपया, आना और पाई चलते थे। आज पाउण्ड, शिलिंग का प्रचलन है। इस काल में एक आना ग़ज़ ज़मीन मिलती थी। आज एक ग़ज़ का पांचसौ से हज़ार रूपया हो गया है। इस पर से कल्पना की जा सकती है कि यह देश कितना समृद्ध बन गया है। इस का विशेष वर्णन आगे करने में आवेगा।

यहाँ एक विनोद भरी कहानी देने का मन होता है। हम

मोम्बासा का 'किलिंडिनी' वन्दर देखने गये थे। किलिंडिनी का अर्थ स्वाहिली (अफ्रीकन) भाषा में 'अगाध नीर' होता है। उस समय मे किलिंडिनी की तरफ रात्रि में कदाचित् ही कोई आदमी घूमने जाता रहा होगा। रात्रि में कोई अज्ञात मनुष्य आवे तो वहां के लोग उसे मार डालते थे। हम किलिंडिनी देखने गये। हमारे लोगो में भाई वल्लभदास मूला बहुत सुन्दर थे। मोटी मूँछ, गठिल शरीर, धोती, शेरवानी और पगड़ी बाँधे हुये थे। बड़े रोव से आगे चल रहे थे। वन्दरगाह के ऊपर हम गये तो वहाँपर कितने ही देशीलोग जिन्हे 'नेटिव' कहा जाता है, वहाँ पर खड़े थे। उनके हाथ में छोटी (घास) टोकरियाँ थीं। हम उनकी भाषा समझते नहीं थे। हमें दिखलाने के लिये आये भाई गोरधनदास को भाई वल्लभदास ने पूँछा कि "इन लोगों को 'रामराम' करना हो तो क्या करना चाहिए?" उन्हो ने कहा "वाना, जांबूं टेम्बिया वापी" अर्थात् भाई तुम्हे रामराम! आप किस तरफ फिरने निकले हैं?। वल्लभदास ने इसी अनुसार पहले नेटिव के प्रति कहा। बोलना पूरा आता नहीं था इसलिए उच्चारण ग़लत हुआ। नेटिव को जान पड़ा कि यह कोई नया आदमी मालूम पड़ता है और हमारा परिहास कर रहा है। उसकी टोकरी में मछली भरी थी। उस मे से एक लम्बी मछली निकालकर उस ने वल्लभदास के मत्थे पर मारा और बोला- "सीक्या रफीकी" अर्थात् क्यों मित्र! तुम्हे मालूम पड़ा। हम भगे। सिर से पगड़ी का टोप नीचे गिर गया। इस को उठाकर भग गये। नेटिव अपनी टोकरी लेकर हँसता हँसता चला गया। हम सव समुद्र के किनारे आये तथा मरजादी वैष्णवों की भांति कपड़ा उतार कर वल्लभदास ने स्नान किया। दूसरे कपड़े पहने। इस प्रकार देशी लोगों के विनोद करने का हमे दिलचस्प अनुभव हुआ।

चौदह दिन हमने मोम्वासा में विताया। वहाँ से खाने का सामान, लकड़ी और पानी आदि नौका मे हमने ले लिया। व्यापारी का माल उतार दिया। पन्द्रहवें दिन नौका को जंज़ीवार की ओर हाँक दिया।

वम्बई से मोम्बासा २,४०० मील है।
मोम्बासा से जंज़ीबार १२० मील है।
जंज़ीबार से मजंगा १,०४० मील है।

हमारी नौका अनुकूल हवा होने से दूसरे ही दिन जंज़ीबार पहुँच गई। नौका में लंगर डाला और सब तट पर उतरे।

जंज़ीबार ७२० वर्गमील में फैला है। जंज़ीबार और पेम्बा दोनो टापू साथ साथ आये हैं। ये दोनो टापू मिलकर सारी दुनियाँ के बड़े भाग को लौंग पूरा करते हैं। लौंग की प्रथम खेती जंज़ीबार में सन् १७९० मे हुई। जंज़ीबार पंचरत्न की खान है-लौंग, मोसम्बी, केला, नारियल और आम। इन पांच मुख्य वस्तुवों के अतिरिक्त काजू, दालचीनी और सुपारी भी वहाँ होते हैं। एक समय ऐसा था कि जब कच्छी व्यापारियों की नौकायें माँडवी बन्दर से सीधा जंज़ीबार के तटपर जाती थीं। अफ्रीका का हाथीदांत और दूसरा माल जंज़ीबार होकर माँडवी बंदर पर उतरता था। इस समय जंज़ीबार के ऊपर चौरासी बन्दरगाहों के ध्वज लहराया करते थे। जंज़ीबार का बाज़ार कच्छी भाटियों के हाथ में था। भारतीय व्यापारियों की ईमान्दारी, सच्चाई और साहस के प्रति सुल्तान को भारी विश्वास था। सेठ जी ईबजी शिवजी के घर सुल्तान के चुंगी-कर का ठीका था। सन् १८८५ में जब पूर्व अफ्रीका का बँटवारा हुआ और जर्मन, ब्रिटिश, बेल्जियम और इटली की सत्तावों के मध्य ये भाग बँट गये उस समय सेठ ईबजी शिवजी का ठीका बन्द हुआ और सुल्तान की प्रभुता टूटी।

ओडदर के सेठ जेठा लधा इस समय जंज़ीबार में व्यापार करते थे। जंज़ीवार अरब सुल्तान की राजधानी का शहर था। वहाँ पर अंग्रेज रेज़ीडेण्ट रहता था। जंज़ीवार मे जर्मन और फ्रेंच व्यापारियों की भी दूकानें थीं। यूरोप से बहुत सी स्टीमरें जंज़ीबार आतीं थीं। हिन्दुस्तान की स्टीमर हर पन्द्रह दिन मे आती थी। जंज़ीबार से लौंग, नारियल की गिरी, मजीठ, छोटी शंखें, सीप, लकड़ी और फल भरकर स्टीमरें देशान्तर को जाती थीं। हम जब गये तो जंज़ीवार में लगभग सात हजार भारतीयों की वस्ती थी।

दुनियाँ के सुन्दर से सुन्दर टापुवों मे जंज़ीवार की गणना होती है। यह ७२० वर्गमील में फैला है। जंज़ीबार और पेम्वा दोनो टापुवों की सम्मिलित जनसंख्या लगभग पांच लाख है। उस समय के भाव से चार करोड़ रूपये का लौंग (आज के भाव से ४० करोड़) वहाँ से देशान्तर को जाता है। इस समय यह टापू ब्रिटिश सत्ता के नीचे है। सुल्तान को वार्षिक रूप में रक़म बांधी

हुई है। उसकी प्रभुता नाम मात्र की है। ब्रिटिश और सुल्तान दोनो का झंडा फहराया जाता है।

जंज़ीबार शहर की रचना पुराने ढंग की है। वहाँ पर ऊँचे मकान और संकरी बाज़ारें हैं। शहर में बड़े बड़े बग़ीचे हैं। मीलों पर्यन्त सुन्दर समुद्र का किनारा आता है। अस्सी इंच के क़रीब बरसात पड़ती है। यह वस्तुतः कोई अलौकिक टापू है। सारा टापू बारह मास हरा भरा रहता है। नन्दन यहां पर ही देख लो। किसी स्थान पर घास का सूखा स्थान देखने को मिलता नहीं। वायु-जल अच्छा है। समुद्र में से रात्रि के समय जंज़ीबार नगर सुन्दर लगता है। सम्पूर्ण टापू सुन्दरता के नमूने के समान है।

इस समय जंज़ीबार पामाल हो गया है। राजधानी चली गई और व्यापार मन्द हो गया है। बड़े बड़े महल बिल्कुल खंडहर जैसे पड़े हैं। कच्छी भाटियों और व्यापारियों की सारी समृद्धि समाप्त हो गई है।

जब हम गये उसके पहले लगभग सौ वर्ष के अर्से में जंज़ीबार में गुलामों का बड़ा भारी व्यापार चलता था। इन गुलामों के व्यापार की बातें सुनते हुये कठिन से कठिन कलेजे वाले मनुष्य का हृदय भी दहल जाता है। आगे चलकर मैंने इस घातकी अमानुषी प्रथा के विषय में बहुत ज्यादा सुना और पढ़ा तो मुझे रोमाञ्च हो गया। मन में हुआ कि मनुष्य अपने आतमीय मानव बन्धु के प्रति इतना निर्दय कैसे हो सकता होगा?

अरब और देशी परदेशी लोगों के पोत जंज़ीबार के सामने के तट पर खड़े होते थे। जंज़ीबार से आगे दारेसलाम, लिण्डी, मोज़म्बिक, बागमायु, मलिंडिनी और लामु तक के किनारे पर अरब लोग बन्दूक लेकर उतर पड़ते थे। दासों को पकड़ने वाले अपने साथ जानकार आदमी रखते थे जो जंगलवासियों के झोंपड़े बता देते थे।

निर्दोष और भोले हबसी अपने झोंपड़ें में आनन्द से सोये होते उसी समय अचानक ये लोग उन को घेर लेते और सोते हुये पकड़ लेते थे। स्त्री और बालकों की करुणाभरी चीत्कार के मध्य जवान पुरुष स्त्रियों को रस्सी और जंज़ीरों से बाँध कर उठा ले जाते। ये भले भोले दास लोग प्रकृति के वातावरण में आनन्द से अपना जीवन व्यतीत करते थे। इन को इस घातक हमले का स्वप्न मे भी ख़्याल नहीं होता था। वर्षा आती तो उस समय नाच गान करनेवाले,

आमने सामने और समीप के जंगलों के दूध, मक्की फल और कंदमूल खाकर जीनेवाले, भगवान् के भरोसे जीवन व्यतीत करनेवाले इन बेचारों को अचानक, अकस्मात् बन्दूक की नोंक के बलपर पकड़ लेते थे। पकड़े गये गुलामों को मज़बूत रस्सी से एक दूसरे के साथ बांध दिया जाता था। इस मे स्त्री-पुरुषों का भेद नहीं रखते थे। इनको इस प्रकार बांध कर किनारे पर लाते थे। जब तक विदेशी पोत किनारे पर नहीं लगता था तब तक पशुवों की भांति एक बड़े बाड़े में इन को भर देते थे। नौका में चढ़ा कर इन्हे जंज़ीबार लाया जाता था। वहाँ पर उनका बाज़ार लगता था। बाज़ार में बेंचते समय उनका वर्ग बना दिया जाता था। वृद्ध पुरुष, युवा पुरुष और स्त्रियाँ - इसी प्रकार छोटी बड़ी उमर की, सशक्त और अशक्त का भेद कर दिया जाता था। सभी गुलाम नग्न अवस्था मे ही एक पंक्ति में खड़े रहते थे। उनको खरीदने वाले स्थानीय दलाल और बड़े व्यापारी आते। बाद में उनकी देखभाल होती। जिस प्रकार बैल और गायों की पसंदगी के समय उनके दांत और दूसरे अंगों की जाँच होती है उसी प्रकार ये दलाल सर्वथा निर्लज्ज तरीके से दास स्त्री-पुरुषों की देखभाल करते थे। ऐसे एक दो नहीं बल्कि दश-बीस व्यापारी होते थे। विवश अबलायें लज्जा से नीचे देखती रहती थी परन्तु इन नर-राक्षसों को तनिक भी लज्जा नहीं आती थी। जांच करने के उपरान्त उनकी क़ीमत कूती जाती थी। बाद मे दलाल लोग ख़रीद कर उन्हे वाड़ा में डाल देते। इनको दोष ढाँकने-भर का कपड़े का टुकड़ा देते थे। उन्हे खाना मिलता। जैसे वडे व्यापारी थोक-के-थोक माल की दूकानें भर रखते हैं वैसे ही इन दासों का बाड़ा भर रखते थे। उस में लाखों डालर की राशि रुकी रहती थी।

ये दास जबतक जंज़ीबार में रहते तबतक उन्हे लौंग और मोसंबी के बगीचों मे कामके लिए भेजा जाता था। वहाँ उनसे काम लिया जाता था। जंज़ीबार में जो सुन्दर बग़ीचे आज लौंग, नारियल, और मोसम्बी से समृद्ध बने हैं उन मे इन सहस्रों निर्दोष दासों का रक्त और पसीना वहा हुआ है।

अमेरिका के नौ-यान ज़ब दासों को खरीदने के लिये जंज़ीबार आते थे तो सोना-चाँदी के सिक्कों की वहाँ पर टकसाल लगजाती। दासों की अपेक्षा दासियों की क़ीमत अधिक लगती थी। अमेरिका मे

पहुँचने के बाद वे दूसरे गुलामों को उत्पन्न करती थीं। पशु की उत्तम सन्तति के लिए जिस प्रकार साँड़ रखा जाता है उसी प्रकार अमेरिका में बलवान् दासों को विशेषरूप में रखा जाता था। आज अमेरिका में लगभग डेढ़ करोड़ हवशी हैं वे इन्ही के वंश के हैं।

यह कथित जंगली प्रजा इस समय मे जब तक नग्नावस्था मे थी तबतक इसमें प्राकृतिक रीति से संयम और लज्जाथी। स्वाभाविक संकोच उनकी ढाल थी। कपड़े के आवरण की अपेक्षा यह लज्जा अधिक रक्षण करती थी। आज भी कितनी जातियों में अफ्रीका के निचले भाग में कोई कोई सर्वथा नग्न दशा में रहते हैं फिर भी उनमें विकार का नाम और निशान भी नहीं। कुछ समय पूर्व लिखी एक पुस्तक मे उसके लेखक ने अपने अनुभव की कहानी वर्णन की है। उसे यहाँ उद्धृत करने से अफ्रीका के मूल निवासियों की निर्दोष व्यवस्थावों का सच्चा विचार पाठकों को मिल सकेगा।

वह लेखक लिखता है "मैं एक व्यापारी की दूकान पर बैठा था। वहाँ पर एक बूढ़ा आदमी अपने परिवार के साथ आया। ये सभी विना वस्त्र के थे। मै ने इस वृद्धसे पूछा—'तुम लोग कपड़ा क्यों नहीं पहनते ?' उसने जवाब दिया— 'पक्षी को परमेश्वरने पंख दिया है पशुवों को शरीर पर बाल दिया है, हमे ऐसा कुछ भी नहीं दिया है। इस लिए भगवान् की ऐसी इच्छा नहीं थी कि हमें अंग ढँकना चाहिए।' तुम लोग सर्वथा नग्न रहते हो—ऐसा हमे ठीक नहीं लगता। यह सुनकर पहला बूढा बोल उठा— 'तुम्हारी आंख गन्दी है, इस विकृत दृष्टि के लिए मै दुःखी हूँ। तुम्हारी दृष्टि इन अङ्गों की तरफ़ कैसे जाती है ? अन्य अङ्गों की अपेक्षा इस में भिन्नता क्या है ?' इस बनवासी पवित्र पुरुष के निर्दोष उत्तर से मुझे लज्जित होना पड़ा। इन लोगों की तीक्ष्ण दृष्टि हम सुधरे हुये गिने जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक पवित्र थी - ऐसा मुझे निश्चय हुआ।"

जंज़ीबार में जब दासों का बाज़ार लगता था तब ऐसी विकृत दृष्टिवाले दलाल वहाँ विशेष रूप से आते थे। तथा सुन्दर दास स्त्रियों को अधिक मूल्य देकर ख़रीद लेते थे। पिता पुत्र से अलग होता, स्त्री पति से वियुक्त होती और भाई भाई से पृथक् होता था। इस समय की इतनी भयंकर चीत्कार और क्रन्दन करुणा-जनक होता था। बस में मार मारकर उनको एक दूसरे से पृथक् किया जाता था।

कसाई-खाने में जाते हुये भेंडों के समान भयावह आवाज़ सुनाई पड़ती थी। अमेरिका जाने के लिए नौका पर चढ़ते समय यदि कोई आनाकानी करता अथवा सामने खड़ा होता तो उसकी चमड़ी उतर जावे ऐसी कोड़े की मार मारने में आती थी। यदि कोई बहुत तूफान मचाता तो उसे गोली से मार दिया जाता था। बाक़ी लोगों पर इसकी इतनी धाक बैठ जाती थी कि ये गाय के समान बन जाते थे। ऐसा कहा जाता है कि जंज़ीबार में जहां पर इन गुलामों का बाज़ार लगता था वहां मकानो की नींव खोदने पर आज भी उसमे से मनुष्यों की हड्डी के टुकड़े निकलते हैं।

जंज़ीबार, लामु, मलिंडिनी और बागमायु – इन चार जगहों मे दासों का बाज़ार लगता था और अमेरिका, मारीशस टापुवों, क्यूबा, ज़मेको आदि स्थानों में मज़दूरों की तंगी के कारण इन को खरीदकर लेजाते थे।

यह दासों के व्यापार की प्रथा वस्तुतः मानवता को कलङ्क लगाने वाली थी। "अफ्रीका में चलता गुलामों का व्यापार" इस पुस्तक के बाँचने से विशेष तथ्य मालूम पड़ेगा। इसके सामने दया-भाव से प्रेरित हो अनेक सहृदय व्यापारियों ने विरोध उठाया। उन में अपने भाटिया गृहस्थ भी थे। उन्होने इस प्रथा को दूर करने के लिए आन्दोलन उठाकर संघर्ष किया था। छोटी बड़ी लड़ाइयाँ हुईं। अंग्रेज़ पादरियों नें इस प्रथा को दूर करने के लिए खूब परिश्रम किया। इतने ही अरसे में इन ग़रीब और असहाय दासों की मूक हाय को अमेरिका के परोपकारी प्रमुख इब्राहम लिंकन ने सुना। यह मानवप्रेमी महात्मा जब प्रधानपद पर आये तो दास-प्रथा को नष्ट करने के लिए राज्य-सभा में बिल उपस्थित किया। इस विषय मे भारी उहापोह हुआ। उत्तर और दक्षिण के संस्थानो के मध्य युद्ध की ज्वाला सुलग पड़ी। चार वर्ष पर्यन्त यह आन्तरिक विग्रह चला। अन्त मे लिंकन की विजय हुई। दास प्रथा सदा के लिए उन्मूलित हो गई। परन्तु इस महान् कार्य के करने के लिए इस साधु पुरुष को अपने प्राणों का बलिदान देना पड़ा। दक्षिण संस्थान के एक गोरे ने लिंकन का बध किया। लिंकन के विनश्वर शरीर का नाश हुआ परन्तु करोड़ों मूक मानवों के आशीर्वाद प्राप्त कर परोपकारी महात्मा अमर बना।

जंज़ीबार के किनारे उतरे तो उसी दिन एक विनोदभरी घटना

वनी। उसका उल्लेख कर के पश्चात् मजंगा की तरफ अपनी नौका को ले चलते हैं।

जंज़ीबार में हवसी के बालक बहुत तूफानी और मज़ाकिये थे। हम स्वाहिली भाषा नहीं जानते थे। किनारे पर घूमने के लिए निकले। धोती पहने हुये थे। हवशी लोग लुंगी पहनते हैं। हम पीछे लांग खोंसकर धोती पहनते हैं - यह इन को बहुत नवीन लगता है। हम को काछ बंधी धोती पहने हुये देखा। इस लिए दो तीन लड़के हमे मालूम न पड़े इस प्रकार हमारे पीछे आगये और धोती की लांग को खींचकर भाग गये। अजनबी समझ कर शैतानी करने लगे। हम सब नौका के ऊपर वापस गये।

दूसरे दिन बावाजी, वालंद, मेहर आदि चूडीदार पैजामा पहन कर तट पर उतरे। हाथ में एक वड़ी लकड़ी ली और सिर मे मस्तकबन्द बाँध लिया। क़द्दावर शरीर था। इन को देखकर फिर कोई पास नहीं फटका। आनन्द के साथ सारा शहर देखा। थकावट लगती थी इस लिए किसी के ओट पर बैठ जाते थे। थोड़ा नाश्ता कर के, पानी पीकर बाद में घूमने निकलते थे। इस तरह घूमघूम कर सब देख लिया।

हमारा जल-वाहन बारह दिन तक जंज़ीबार के बेसिन में रुका रहा। माल उतारा गया। नारियल और सुपारी के डोडे आदि सामान भर लिए। खाने पीने की वस्तुयें ले लीं। कानजी भाई तथा वल्लभदास चाचा जंज़ीबार से स्टीमर के रास्ते मजंगा गये। हम नौका में ही रहे। तेरहवें दिन हमारी नौका मजंगा की ओर चल पड़ी।

८

कठिन कसौटी

जंज़ीबार के बेसिन में से नौका बाहर निकलकर मेडागास्कर की ओर चली। समुद्र का जल काटने लगा। हवा अच्छी मालूम पड़ती थी। हम सब आनन्द मे थे। कुछ दिवस भूमि पर व्यतीत कर फिर समुद्र में पुनः यात्रा में चल पड़े, इससे मन में एक प्रकार की प्रसन्नता थी। खान-पान से ताजे हो गये थे। वल्लभदास चाचा और कानजी भाई के हमारे साथ न होने से हमारी मंडली अधूरी लगती थी। फिर भी मेघा-नाविक, उसका लड़का, मेहर नौजवान तथा बावाजी आदि आनन्द करते थे। बम्बई से निकल कर लगभग दो मास होने को आये इस लिए स्थान पर पहुँच जाने के लिए मन अधीर हो रहा था। परन्तु हमारी खरी कसौटी का समय अभी आनेवाला था और उसकी हम को ख़बर नहीं थी।

जंज़ीबार से निकलकर पूरे २४ घण्टे बीते। पीछे ज़मीन का दिखाई पड़ना बन्द हो गया। समुद्र के मध्य में नौका चली जा रही हुई थी। इतने मे हवा फिर गई। धीमे धीमे तूफान बढ़ने लगा - रात्रि की ठंडी के कारण ज़्यादा लगने लगा। बड़ी बड़ी तरंगें उछलने लगीं। सनसनाहट करती हुई हवा आती थी, पहाड़ जैसी लहरें उछलतीं, नौका को ऊँचा उठातीं और पीछे फेंक देती थीं। नौका जब नीचे जाती थी तो घुटनेभर पानी भर जाता था। नौका बड़े भारी तूफान में पड़ गई। ऐसा तूफान बम्बई से निकलने के बाद हमने कहीं पर देखा नहीं था, इससे हमारे होशहवास उड़ गये। इस स्थान पर अतलान्तिक, प्रशान्त सागर और हिन्द महासागर तीनो का प्रवाह मिलता है। नौका में अधिक पानी भरने लगा इस लिए नाविक की आज्ञा हुई "पानी को उलच दो, बेटा! घबरावो नहीं। अभी तत्काल हवा बन्द हो जावेगी।" मेघा-नाविक का लड़का उत्साहभरी तरंग मे आगया हो ऐसा झटपट काम करने लगा। सभी खलासी काम पर लग गये। बड़े नाविक का तो रोम भी फड़कता नहीं था। ऐसे तो कई तूफान इसने जीवन में देख लिया

था। यह तो शान्ति से नौका के मार्गपरिवर्तक यंत्र को पकड़े हुये बैठा था और आनन्द से सब को सूचना देता जाता था। हम सभी इसके कहने के अनुसार कार्य में लग गये थे। डोल भरभर कर पानी बाहर फेंकते जाते थे। किसी प्रकार रात पड़ी परन्तु तूफान कम नहीं हुआ। रात्रि में निद्रा क्योंकर आवे? डोल, पतीली तथा तसली जो भी हाथ में आयी उसको लेकर सारी रात पानी निकालते रहे। जिसके ऊपर पाल चढ़ाया जाता है वह बिचला खम्भा हवा लगने से कडकडाने लगा। नौका के जोड़ ढीले पड़ने लगे। नीचे के भाग में पानी अधिक भरने लगा। हवा का वेग बढ़ता जा रहा था। बाद में पानी निकालने की बारी लगा दी गई। बारी के क्रम से रात्रि दिवस पानी निकाल दिया जाने लगा। खलासियों के लिए तो यह एक आनन्द का विषय था। मेघा नाविक ने अपने लड़के को ऐसी शिक्षा मिल सके इस लिए उसे साथ में लिया था। समुद्र जब शान्त होता था तो मेघा नाविक इसे तारा बतलाता था और नौका की दिशा कैसे देखनी चाहिए यह भी समझाता था। किस बन्दरगाह की कौन सी निशानी है और कहाँ पर कैसे क्या खराबी आती है इसका भी उसे ज्ञान देता था। यह भी शिक्षण उसे देता था कि यदि ऐसा तूफान आवे तो कैसी सावधानता रखनी चाहिए। जिस प्रकार कुशल व्यापारी अपने लड़के को माल की किस्म, भाव-ताव, लेन-देन और हिसाब-किताब अच्छी तरह समझाता है, वैसे ही मेघा नाविक उसको समुद्रयात्रा की विधि बतलाता था। कैसी परीक्षा करनेवाली यह पाठशाला थी। चार दीवालों के मध्य पुस्तकों की पढ़ाई पढ़ते हुये विद्यार्थियों को इस पढ़ाई की कल्पना तक किस प्रकार आवे। खतरे से खाली जीवन सच्चा जीवन नहीं है। जीने का सच्चा आनन्द खतरे मे ही है। इस बात का यह पहला अनुभव हमें हुआ।

नाविक अपने स्थान पर शान्ति से बैठा था। रात्रि मे तारा देखकर वह दिशा और दूरी मापता था परन्तु साइक्लोन की उसको कोई सूचना पड़ती नहीं थी। जब वात्याचक्र बढ़ने लगा तो नाविक को छिपे तौर पर अन्दर से कुछ चिन्ता होने लगी। नौका दिशा न छोड़े इस बात की सावधानी रखता था। उसके अधिक परिश्रम करने पर भी नौका अधिकाधिक उछलने लगी। लहरों के तांते के तांते आ रहे थे। धीरे धीरे समुद्र ने

भयंकर रूप धारण कर लिया। कहाँ हमारी छोटी सी नौका और कहाँ अपार महासागर। हमारा तो हृदय ही दहल गया। अन्त में नाविक के मुख से शब्द निकल ही पड़ा, "भगवान् बँचावे तभी बँचूँगा।" नाविक के चेहरे पर शोक की घटा छा गई थी। एक दिन, दो दिन, तीन दिन- इस प्रकार दिन पर दिन बीतने लगे परंतु तूफान बन्द नहीं हुआ। शौच जाने की बड़ी कठिनाई थी। नहाने धोने की तो बात ही क्यों करनी चाहिये? रसोई पकाना भी जैसे तैसे कठिनाई से हो पाता था। चने की बोरियां भरी थीं। रात्रि में खारे पानी में चना भिगो रखते थे और प्रातः मीठे पानी से धो कर उबाल लिया करते थे। इसमें चटनी डाल कर पाव-पाव चना खा कर पानी पी लेते थे। पीने का पानी भी पूरा नहीं मिलता था। दो घूँट पी कर सन्तोष मानना पड़ता था।

चार पांच दिवस तूफान चला इस लिए हम सब तूफान से अभ्यस्त हो गये। मनुष्य के मन की रचना भगवान् ने ऐसी की है कि कितना भी दुःख पड़े परन्तु समय जाने पर उसका अभ्यासी बन जाता है। "दुःख की दवा दिन" यह कहावत अनुभव से प्रचलित हुई है। लम्बे समय का रोगी भी रोग को भूल जाता है। बीस वर्ष की सजा पाया हुआ क़ैदी जेल में गिलहरी और कौवों के साथ आनन्द करता है। इस प्रकार खाने पीने की और दूसरी भी बहुत सी कठिनाइयाँ थी। नौका किस घड़ी डूब जावेगी यह कुछ निश्चित नहीं था। फिर भी हम इस प्रकार के तूफान के अभ्यस्त हो गये थे। हममें से किसी को पूड़ी और आलू प्याज का शाक खाने की इच्छा हुई। हमने नौका मे भोजन पकाने के स्थान में जा कर लोहे के चूल्हे पर कड़ाही साफ कर उसमे तेल डाल दिया। आग जलाई और पूड़ी बनाना प्रारंभ किया। इतने मे एक लहर आयी और वह कड़ाही उछल कर रसोई करने वाले भाई पोपटलाल के पैर और हाथ के ऊपरी भाग में पड़ी। धधकता हुआ तेल पैर के साथ ऊपर पड़ गया इससे वे बुरी तरह जल गये। इन्हो ने "पानी पानी" की आवाज़ की। इतने में एक मेहर भाई खारे पानी की डोल भर कर लाया और जले हुये पर डाल दिया। खारा पानी पड़ते ही चमड़ी उतर गई। इनसे चीख निकल पड़ी। घाव की जलन का कोई पार नहीं रहा।

बड़ा शोर शराबा मच गया। हमारे साथ कोई दवा भी नहीं थी। एकने समयोचित समझदारी वर्तकर घी निकाला। घी को सौ पानी धो कर घाव पर चोपड़ दिया। कितने दिनो तक तत्परता से ऐसी सावधानी वर्ती तब कहीं कठिनाई से वे ठीक हुये।

तूफान जब आठ दिवस पर्यन्त बन्द नहीं हुआ तो नाविक ने कहा "अब अपनी नौका बँचे ऐसा मालूम नहीं पड़ता। मै एक अन्तिम प्रयत्न करने वाला हूँ। इसके पूर्व नौका को हल्की करने के लिए (अन्दर भरते हुये पानी से वज़न बढ़े उससे हलका करने के लिए) माल को समुद्र में फेंक देना पड़ेगा।"

हम सब सुन रहे थे। कितने तो किंकर्तव्य-विमूढ से हो गये। मुझे तो पहले से ही मरने का डर लगता नहीं था। भूख के दुःख से बेचैनी थी। तूफान ज्यों का त्यों चालू रहा। मोटे पहाड़ के समान लहर आती थी। सौ डेढ़-सौ फ़ूट ऊँचा ढेर हो जाता था। इस मे नौका पड़ जाती थी और बाहर आती थी। इस समय सब के प्राण उड़ जाते थे। पोत मे घुटने भर पानी भर जाता था और उसके निकालने का काम चालू था। वर्षा की झड़ी पड़ती थी और तिस पर भी ज़ोरदार हवा। इस प्रकार के कठिन साइक्लोन को हमने देखा नहीं था। कपड़ा गीला हो जाता था और वह नौका की रस्सी पर फैलाने और सुखाने पर भी पूरा सूखता नहीं था।

अन्त मे नव वें दिन सामान रखने की जगह को खोल कर हमने माल बाहर निकाला और समुद्र मे फेंकना प्रारंभ किया। कौन सा माल क़ीमती और कौन सा सस्ता इस को बिना देखे एक के बाद एक पेटी को समुद्र में फेंकने लगे। दो तिहाई माल समुद्र मे डाल दिया। केवल एक तिहाई माल रह गया- जिसमें मूँग, बाजरा और थोड़ा कपड़े के कटे टुकडों का सामान था। हमारे लिए उस समय माल नहीं जीवन की क़ीमत थी।

नाविक ने समझा कि भार कम होगा तो नौका हलकी हो जावेगी तथा बराबर चलेगी परन्तु वजन कम होजाने से वह और अधिक धक्का खाने लगी। हमे यह दहशत लगती थी कि नीचे के भार से नौका में छेद हो जावेंगे। यह कड़क की आवाज़ करता था इस लिए हम सब ऊपर क्षितिज की तरफ देखने लगते थे। ईश्वर रक्षा करे तो ही बँचें ऐसी स्थिति हो गई थी। नाविक खूब घब-

राया हुआ था। इसे अपने जीवन की परवाह नहीं थी - किन्तु बत्तीस आदमियों का यह रक्षक था। हमें बँचाने के लिए यह अनेक युक्तियाँ करता था। विचार करते हुये इसे एक नयी युक्ति सूझी। पाल का खम्भा हवा मे डोल रहा था और उसके कारण नौका के उल्टी हो जाने का भय था। इससे उसे यह विचार आया कि इस खम्भे को काट डाला जावे अथवा बीच में खड़ा कर दें। इस समय चाहे जो खराब होवे जीवन बँचाने की बात थी। रात्रि ऐसे कैसे बीती। प्रातः होते ही खम्भा काटने का काम प्रारंभ हो गया। दो दो आदमी पारी पारी से आरा चलाने लगे। खम्भे के चारों तरफ़ मज़बूत रस्सी बांधी गई। खम्भा कटने लगा। सभी की दृष्टि खम्भे पर लगी हुई थी, मानो हमारे जीवन का यह आधार था। यह खम्भा किस प्रकार किस बाजू पड़े इसपर नौका के बँचने अथवा डूबने का आधार था।

हवा का सन्नाटा, लहरों की चपेट और सागर की गुर्राहट (गर्जना) चालू ही थी। नौका उछल उछल कर पड़ती थी। जीवन की नौका डाँवाँडोल हो रही थी। इस समय की दशा के वर्णन के लिए मेरे पास शब्द नहीं। यह केवल अनुभव से ही समझा जा सकता है। जिसको ऐसे तूफानों का अनुभव होगा वही सच्चा ख़्याल कर सकता है। इस जीवन और मरण के मध्य सब झूला खा रहे थे। सब की जिह्वा पर ईश्वर का नाम था। परम कृपालु परमेश्वर ही इस में से उबार सकेंगे - यही भरोसा था।

धीरे धीरे खम्भा कटने को आगया। एक तरफ को स्वभावतः झुक गया। पोत भी झुक गया। सब की जान घबराहट मे पड़ गई। बड़े कड़ाके के साथ खम्भा टूटा और समुद्र में जा पड़ा। लहरें उठीं नौका को एक ज़बर्दस्त चपेट दी और भयंकर धक्का लगा। मालूम पड़ता था कि नौका अभी ही समुद्र में डूब जावेगी। बस समाप्त हुये। यह अन्तिम घड़ी है। परन्तु जिसको भगवान् रखे उसको कौन मार सकता है। ईश्वर को रक्षा करना रहा होगा इस लिए नौका के फाटक का एक हिस्सा टूट गया। इस लिये नौका पीछे एकदम सीधी हो गई। बत्तीसों आदमी बाल्टी, पतीली आदि लेकर दौड़ पड़े। समुद्र मे जल-समाधि लेने की घड़ी दूर होते ही सब की जान में जान आगई। सभी नौका मे से पानी फेंकने लगे। अब नौका मे केवल छोटा खम्भा ही रह गया था। उसके ऊपर

हवा का पाल चढ़ा दिया गया। परन्तु बड़े खम्भे के जाते ही नौका निराधार हो गई। उसके विना वेग नहीं पकड़ सकती थी। दिशा परिवर्तन करने का यंत्र भी हाथ में नहीं रहता था। इस समय तूफान भारी था। जिस तरफ हवा जावे उस तरफ नौका फिरती थी। नौका तो मानो दोलाचक्र में चढ़ी हुई थी। यह एक नया भय पैदा हो गया। बहाववाली दिशा में नौका को लेजाना कठिन होने लगा। इतने मे नौका फेरकूद कर रही हो ऐसा होने लगा। इसमें सब से बड़ा खतरा लहरों का था। किस घड़ी लहर आवे और नौका ग़ोता खा जावे - यह कहा नहीं जा सकता था। पानी भरता ही जाता था। उसे बाहर निकालने का कार्य भी चालू ही रहता था। जान बँचने की ही आशा नहीं थी फिर खाने-पीने का विचार भी कहाँ से आवे? दो दिन और दो रात हम जहाँ पर थे वहीं के वहीं फिरते रहते थे। नौका के पीछे के कोनेपर लगभग बीस फुट की एक ऊँची लकड़ी बांधी और इसके ऊपर काला झंडा चढ़ा दिया। स्यात् कोई नौका अथवा स्टीमर दूर से जाते समय हमें देखे तो सहायता को आवे। अड़तालीस घण्टे ऐसे के ऐसे ही बीते। कोई सहायता को नहीं आया।

परन्तु अन्त मे ईश्वर ने लाज रखी। हमारी परीक्षा पूरी हुई। तूफ़ान धीरे धीरे दो तीन दिन में शान्त पड़ गया। हृदय में ढाढ़स हुआ। नाविक के मुखड़े पर सहज आनन्द की रेखा दीखने लगी। हम दश बारह दिन तक चने की दाल पर ही थे। रात दिन पानी उलचते हुये थककर लोथड़ा हो गये थे। वात्याचक्र शान्त हुआ और सूर्य दिखाई पड़ा। धीरे धीरे समुद्र भी ठण्डा पड़ा। पन्द्रह पन्द्रह दिनों उमड़े घनघोर बादल सूर्य की एक किरण के साथ ही उड़ गये। जीने की आशा वापस आयी। सब के चेहरे पर तेज दिखाई पड़ा, मानो नया जीवन मिला।

समुद्र में जिस माल की आहुति चढ़ा दी थी उसमें आँटा की बोरियाँ भी फेंक दी थीं। थोड़ा सा बाजरा, मूँग और चावल रह गया था। सवेरे के समय मे हम बाजरा और चावल पीसने बैठ गये। नौका मे चक्की भी साथ मे ही थी। बारी बारी से पीसना प्रारंभ किया। आँटा तैयार हो गया परन्तु नमक नहीं था। नमक की बोरी भी फेंक दी थी। थोड़े नमकीन पानी से आँटा गूँधा। मिर्चे मे खारा पानी और लहसुन डालकर चटनी

पीसी। पीने के पानी की भारी तंगी थी। लगभग प्रतिदिन एक घड़ा पानी मिलता था। उसमें से दो हिस्सा पीने में और एक हिस्सा रोटी के लिए आँटा गूँधने मे खर्च होता था। दोपहर को एक समय बाजरा और चावल की मोटी रोटियाँ बना लेते और दोनो ही समय खाते थे। खाने की रुचि भी कम ही थी। मरने के भय से भूख और प्यास उड़ गये थे। दूसरी बातें तो सब ठीक थी परन्तु इस समय छुआछूत छोड़ें बिना ही चली गई थी। नौका डूबती हो, आग लगी हो, पानी की बाढ़ आयी हो अथवा कुदरती आपदाओं के समय मनुष्यमात्र एक हो जाते हैं। ईश्वर के रचे हुये सभी मानव एक हैं, इस बात का सच्चा विचार इस प्रकार के संकट के समय में आता है। मनुष्य मनुष्य के बीच का पारस्परिक कृत्रिम भेद्भाव ऐसे समय मे विनष्ट हो जाता है। इस समय मे स्वाभाविक परिस्थिति का अनुभव होता है। प्रभु के घर के समक्ष सब समान हैं– इस चीज़ का भान आफत के अवसर पर होता है। मृत्यु – यह सभी भेदभावों को टालनेवाली है – इस बात का हम सब को निश्चय हो गया। इस अनुभव की छाप मेरे कोमल हृदय पर इतनी अमिट पड़ी कि जीवनभर कोई भेदभाव मन में बसा ही नहीं। जन्म के कारण किसी मनुष्य को उच्च अथवा नीच माननेवाला प्रभु का गुनाहगार होने जैसा है – यह बात मुझे इस समय के अनुभव से समझ में आयी।

भारी तूफान शान्त हुआ। परन्तु सख्त हवा चालू रही। पाल के विना हमारी नौका पवन के वेग को सहन करते हुये एक डेढ़ मासतक ऐसे वैसे संघर्ष करती रही। हमें कहाँ जाना चाहिये और कहाँ जा रहे हैं? इसका कुछ भी परिज्ञान नहीं था। नाविक को कभी सूर्य के ऊपर से और कभी तारे के द्वारा पता चल जाता था। परन्तु नौका को सच्ची दिशा में लेजाने का नाविक के हाथ मे नहीं था। इस लिए विवश होकर वह मर्ज़ी के अनुसार चलने देता था। सर्वथा उल्टी दिशा न पकड़ ले – इतना ध्यान वह रखता था।

अन्त मे लगभग डेढ़ मास मे समुद्र का प्रवाह फिरा। तूफान एकाएक बन्द पड़ गया। हमे ज़मीन का दर्शन हुआ। दूर दूर पर काला किनारा दिखाई पड़ने लगा। ज़मीन दृष्टि में आते ही हमारे आनन्द का पार नहीं रहा। कोई भी देश हो परन्तु ज़मीन तो

होगी ही । देश तो होगा । वहाँ आदमी तो मिलेंगे । बस इतना हमारे लिए पर्याप्त था । मनुष्य समुद्र का प्राणी नहीं है । इस लिए इसे भूमि से वियुक्त होते हुये दुःख होता है । जिस प्रकार गाय का बछड़ा गाय से वियुक्त होने पर चिल्लाता है उसी प्रकार हमारी जान भूमि देखे विना तड़पती थी । भूमि का तट देखते ही हमारा हृदय हर्ष से नाचने लगा ।

ज़मीन दिखाई पड़ने के सातवें दिन हम किनारे पहुँचे । पता लगाने पर मालूम पड़ा कि यह गजीजा-मयूती नाम का फ्रेञ्च टापू है । हमने प्रभु का आभार माना । नौका ने लंगर डाला । किश्ती उतारी और हम सब किनारे पर उतर गये । भूमि पर पग डालते हुये मानो हम माता की गोद में आगये हों-ऐसा आनन्द हुआ ।

समीप मे ही एक नदी थी । दौड़ कर उसमें घुस गये । खूब स्नान किया । कपड़ों मे जूँ पड़ गई थी - उन्हे खूब धोया । मीठे पानी में आनन्द लेकर नदी के तट पर केले, नारियल, रतालू और गाजर की सुन्दर बाड़ियाँ थीं, उन मे गये । पेट भरभर कर केला खाया, नारियल का पानी पिया और कच्चे रतालू खाये ।

हमे देखकर वहाँ के देशी लोग दौड़कर आगये । वे हमारी भाषा नहीं समझते थे हम उनकी भाषा नहीं समझ पाते थे । मेघा नाविक उनकी टूटी फूटी भाषा जानता था । उसके साथ वे बात करने लगे । कहाँ से आते है ? कहाँ जाना है ? यह सब पूँछ परख हुई । हमारी बात सुनकर वे खुश हो गये । प्रेम से शुभागमन कहा और बोले " तुम्हें भावे उतना खावो, ये बाड़ियाँ तुम्हारी ही हैं " ।

दुनियाँ के किसी कोने में जावें परन्तु मनुष्य को देखकर मनुष्य को स्वाभाविक स्नेह उमड़ पड़ता है । कहाँ भारत और कहाँ गजीजा टापू । एक दूसरे को स्वप्न मे भी देखा नहीं, एक दूसरे की भाषा भी नहीं समझते हैं, फिर भी मनुष्य को देखते ही मनुष्य मनुष्य को प्रेम उमड़ता है-यह बताता है कि ईश्वर ने मानवमात्र के हृदय में प्रेम का एक बहता हुआ अखंड स्रोत रखा है । सत्ता के भूखे राजनैतिक पुरुष और धनलोलुप व्यापारी यदि प्रेम को विकृत न करें तो भाईचारा बढ़े । यह मानवभक्षी युद्ध बन्द हो जावें और पृथ्वी पर स्वर्ग उतरे । इस वक्त तो मैंने इतना ही समझा कि दुनियाँ मे भगवान् व्यापक हो रहा है । अदृष्ट-हेतु से आदर देने-

वाले मनुष्य में एक ही प्रभु निवास करता है। इन 'नेटिवों' की आंख में हमने विशुद्ध प्रेम का दर्शन किया। तट के समीप मे ही इन का एक छोटासा कस्बा था। हम सब वहाँ गये। कस्बे मे अरबों की थोड़ी दूकाने थीं। उन मे चावल, मूँग, सोयाबीन की फली, नमक, लालमिश्री तथा ईख आदि बिकते थे। अरब व्यापारी लोग वहाँ से कच्चा माल खरीद कर मजांगा भेजते थे। मजांगा से पक्का माल आता था। ये अरब लोग वस्तुतः जंज़ीबार से वहाँ गये थे। यह टापू जंज़ीबार से लगभग ८०० से ९०० मील की दूरी पर है। हमने इन व्यापारियों से पौंड भुनाकर रियाल किया। एक पाउण्ड का पांच रियाल भाव था।

हमने आवश्यक माल की खरीद की। शहर में घूमे। नये चेहरे, नयी वेषभूषा, नये ढंग के मकान, नवीन देश तथा नयी भाषा-आदि सभी नवीन देखकर हमे खूब आनन्द हुआ। शहर देखकर फिर वापस नौका पर सायंकाल को आगये।

खा पीकर आनन्द से सोये। कितनी रात्रियों के बाद आज आनन्द से सोने को मिला। बिस्तर पर बैठकर परमेश्वर की प्रार्थना की। बाद में झटपट सो गये। एक निद्रा मे ही सबेरा हो गया। सबेरे पुनः तट पर उतरे। नाविक ने किसी एक को पूँछा कि इसके आसपास कोई गोरा रहता है क्या? इन लोगों ने कहा कि "यहाँ से बारह मील की दूरी पर एक मिशनरी रहता है।"

इस समय मिशनरी पादरी का अर्थ क्या है? यह मैं समझता नहीं था परन्तु आगे चलकर समझने लगा। पादरियों का परिचय हुआ तो मुझे ऐसा लगा कि भगवान् ईसू खीस्त के नाम पर ये प्रेम के पयगम्बर के शिष्य कहां कहां पर जा कर बसे हैं। अपने देश से हज़ारो मील दूर घर और परिवार को छोड़कर केवल प्रभु के नाम पर, अज्ञान और दलित की सेवा के कार्य में अनेक प्रकार के कष्टों में बैठकर ये आबाद हुये हैं। किसी जगह पर पाठशाला, तो कहीं पर औषधालय और किसी स्थान पर गिरजाघर इन्होने बनाये हैं। जहाँ पर भारी चर्च होता है वहाँ पर ये तीनो ही चींज़े देखने को मिलती हैं।

मेघा नाविक बारह मील चलकर मिशनरी के चर्च मे गया। इसने पादरी से पूँछ कर किसी स्टीमर अथवा नौका के विषय में पता लगाया। पादरी ने उसे सूचना दी कि "तीन मास खांड लेकर

छोटी स्टीमर आती है। मजंगा ढाई सौ मील दूर है। नौका को पहुँचने में यदि अनुकूल हवा हो तो दो दिन लगता है।"

पादरी लकड़ी का व्यापार भी करता था। हमारी नौका के लिए पाल का स्तम्भ पादरी ने दिया। अधिक सहानुभूति प्रकट की; माँगी मदद की और ग्राम के मुखिया के ऊपर पत्र भी लिख दिया। "खम्भे के पैसे के लिए कहा "तुम्हारे पास न हो तो कोई बात नहीं, मै सरकार के पास से लेलूँगा। बाद तुम सरकार में भर देना।" इस प्रकार पादरी की यह सहायता हमे बहुत उपयोगी सिद्ध हुई। उसने अपनी भाषा में हमे सहायता करने के बदले में प्रमाणपत्र लिख कर दिया।

नौका की पट्टियाँ झांझर हो गई थीं। उसमें अलक़तरा भरने की आवश्यकता थी। अलक़तरा कहीं पर मिलता नहीं था। नाविकने इसका एक मार्ग खोज निकाला। तटपर जो वृक्ष थे उनमें एक प्रकार का रस होता था। इस रस की गोंद 'नेटिव' लोग अपनी किश्ती मे भरते थे, यह हमने देखा। हमारी नौका की संधि में गोंद भरने से यह अलक़तरे जैसा ही कार्य करेगा - ऐसा लगा। ज्वार-भाटें के प्रवाह के समय में नौका को किनारे पर लेगये और रेत मे चढ़ा दिया। नौका के छिद्र में गोंद भरकर खम्भा तैयार किया। इस टापू मे हमने चौंतीस दिन व्यतीत किये। ये दिवस हमारी ज़िन्दगी के दिन थे। नौका को ठीक करने के कार्य में दिन कहाँ चले गये - इसकी हमें खबर भी नहीं पड़ी। खाने-पीने की पूरी सुविधा थी। हम केला, रतालू, गाजर का शाक, भात-दाल, रोटी बनाते थे। शहर में जाकर बाज़ार से दूध का डब्बा ले आते थे। घूमने-फिरने का खूब आनन्द था। सभी ताज़े हो गये। मानो नया जीवन आगया। पूरे पैतीसवें दिन हमने नौका हाँकी। सामान्यतः नौका तीसरे दिन मजंगा पहुँच जाती थी। परन्तु हमे हवा का सामना करना पड़ा इस लिए चौदहवें दिन नौका मजंगा पहुँची।

पोर्ट-कर्मचारियों ने जांच पड़ताल की। हमारी शकलें देखकर नाविक से पूँछा "नौका को इतने अधिक दिन क्यों लगे? तुम्हारी नौका मे कोई बीमारी होनी चाहिए।" ऐसा कहकर हमारा उत्तर सुने बिना ही एक मास की क्वेरेण्टाइन दे दी। क्वेरेण्टाइन क्या है?- सूतक। अपनी तरफ किसी के घर मे मरण हुआ हो और उसके

निकट सम्बन्धियों को अमुक दिवस का सूतक लगता है तो उन्हे कोई छूता नहीं है, इसी प्रकार जिस नौका अथवा स्टीमर में मरण अथवा बीमारी हुई हो, जिस देश से नौका या स्टीमर आती हो और उस देश मे यदि कोई महामारी अथवा स्पर्शजन्य रोग होता तो उन्हें दो चार दिन की क्वैरण्टाइन दी जाती है। इसके लिए अलग टापू रखा है। वहाँ पर थोड़े मकान भी थे। हमे एक मास की क्वैरण्टाइन मिली।

देश से हमे रवाना हुये पांच पांच मास हो गये थे। घर में सब को चिन्ता हो रही थी। इन्हो ने तो समझ लिया था कि डूब मरे होंगे। बड़े भाई को भी फिक्र हो पड़ी थी। कानजी भाई को पहुँचे भी तीन मास हो चले थे। इन्हो ने भी मान लिया था कि नौका बीच मे ही रह गयी। इतने मे नौका के किनारे पर आने की सूचना मिली। इस से सारा शहर उमड़ पड़ा। जो लोग जानते थे वे सभी किनारे पर आ पहुँचे। पास खड़े होकर नमस्कार लेने लगे। चार आँखें एक होने से मिलने जैसा आनन्द हुआ। ये लोग शहर में दौड़कर गये और देश को तार दिया।

हमारी नौका को क्वैरण्टाइन में ले गये, वहां पर खाने पीने और रहने का आनन्द था। ताज़ा फल, टीनफ्रुट, दूध का डब्बा और आम की टोकरी आदि खाने के लिये शहर से खूब आती थीं। रोज़ सबेरे किश्ती मे भरकर फल-फूल, मिष्टान्न आदि आते थे। प्रातः, दोपहर और सायं तीन समय पेट भरकर खाते थे। टापू मे घूमने का आनन्द था। रात्रि मे दोहा, कथा और रामायण चलते। समुद्र का दुःख भूला - सुख का स्मरण आया। खा पीकर सब ताजे हुये।

हेल्थ आफिसर ने हमारे स्वास्थ्य को देखकर महीने के बदले छब्बीसवें दिन शहर मे प्रविष्ट होने की स्वीकृति दे दी। नौका में बैठकर शहर में आगये। बड़े भाई और दूसरे सम्बन्धी प्रेम से भेंटने लगे। आनन्द का उत्सव होने लगा। पांच दश दिन तो दोस्तों के घर पर दावतें मिलीं, मिष्टान्न खाये और सब से परिचित हुये। मेहमानगीरी पूरी हुई। यात्रा की थकावट उतरी। बड़े भाई के साथ दूकान मे जुड़ गये। इस समय मुझे १४ वां वर्ष होने लगा था।

९

मेडागास्कर

अफ्रीका मे मेडागास्कर यह एक बड़े से बड़ा टापू है। यह लगभग साढ़े तीन लाख वर्गमील में विस्तृत है। यहां पर लगभग साठ लाख की जनसंख्या है। यहां पर फ्रेञ्च सरकार का राज्य है। टापू का कितना ही भाग उच्च प्रदेश है। अमुक भाग अत्यन्त सुन्दर है। समूचा टापू समृद्धि से भरा हुआ है। पर्याप्त वर्षा पड़ती है। पहाडों से अनेक नदियाँ बहती हैं। अमुक भाग में घना जंगल है। छोटा भाग पार्वतीय है। फल के वृक्ष इतने अधिक हैं कि ज़मीन पर फल भर जाता है फिर उनका लेनेवाला अथवा खानेवाला कोई नहीं होता। मेडागास्कर में अनेक प्रकार की संपत्ति भरी हुई है। काजू, लौंग, रफिया (घास), चावल, खांड, मोमफली, सोयाबीन, सोना, सीसम, भुडथी की लकड़ी (जिसमें से पलंग का पावा बनता है) और कौड़ी आदि प्रचुर मात्रा में होते हैं। पशुधन खूब है।

वहाँ के मूल निवासी भले, सुन्दर, मिलनसार और सशक्त होते हैं। उनकी भाषा मलगास बहुत मधुर है। उनकी खूराक मांस-मछली के अतिरिक्त फेटियाको, मकाई, सोयाबीन, चावल, कठोला और फल है। खाने-पीने की कोई कमी नहीं। अपने देश में भी एक समय धनधान्य का ढेर था। भारत की समृद्धि की प्रशंसा जगत् के यात्रीलोग करते हैं। आज भारत अनाज की न्यूनतावाला देश हो गया है जब कि दूसरे देश धनधान्य से भरपूर हो रहे हैं और खा पीकर मौज करते हैं। मेडागास्कर में सोयाबीन बहुत होता है। रंगबिरंगे दाने और मीठी मक्की से मिलकर यह अनाज पुष्टिकारक होता है। वहाँ का हवा-पानी भी बहुत अच्छा है। खूब भूख लगती है, स्वास्थ्य सुधरता है, शक्ति और लालिमा आजाती है।

फ्राँस की सरकार स्वच्छता में बहुत ही सख़्त है। मार्ग में अथवा गली में कहींपर कागज़ का टुकड़ा, बींड़ी की कनखी और

तृण का तिनका भी नहीं मिलता है। यदि किसी को कूड़ा कर्कट मार्ग पर फेंकता देखे तो पुलीस पकड़ कर सीधा जेल मे लेजाती है और खूब डाँट फटकार देती है। चाहे वह 'नेटिव' हो, चाहे भारतीय हो अथवा अन्य कोई प्रजा हो। शीघ्र उठकर सभी को अपनी दूकाने और कम्पाउण्ड को स्वच्छ कर डालना चाहिए। मकान में भी जाला नहीं दिखाई पड़ना चाहिए। वस्त्र विना दागदूग़ के पहनना चाहिए। गंदा कपड़ा पहन कर कोई बाहर निकले तो पकड़ कर जेल में डाल दे अथवा बाँधकर चाबुक मारे।

जापान सरकार के समान सख़्त स्वच्छता-सम्बन्धी फ्रेञ्च सरकार की नीति ने मेडागास्कर को स्वर्ग बना दिया है। हिन्द में गन्दगी से इसे नर्क बना दिया गया हो - ऐसा मालूम पड़ता है। इसी कारण अनेक प्रकार की बीमारियाँ देश मे प्रविष्ट हो गई हैं और अभी बढ़ती जाती हैं। हज़ारों डाक्टर और वैद्य कालेजों से प्रतिवर्ष निकलते हैं। ये देश के लिए पूरे नहीं पड़ते। यह दशा हमने स्वयं पैदा की है। सरकार घर घर स्वच्छता के लिए चौकी पहरा न रख सके और सख़्ती करे तो बड़ा जुलूस निकालें और "हमे गंदा ही रहने दो, बीच मे पड़ो नहीं - प्रजातंत्र का भंग होता है" ऐसा कहें। यह अपनी हालत है। भगवान् ने स्वर्ग दिया है - इसको नरक बनाना है - ऐसा लगता है। गावों और छोटे शहरों की दशा देखें तो गन्दगी का कोई पार नहीं है। पशु और मनुष्य साथ रहने में आनन्द मानते हैं। पशु की सुगन्धि मानो मनुष्य ने ग्रहण कर ली है ऐसा मालूम पड़ता है। मनुष्य निश्चय कर ले तो इतनी जगह अथवा ज़मीन में सुधार कर ही सकता है। सिर्फ मेहनत का काम है। अपने यह काम करना नहीं और भगवान् और सरकार के ऊपर इसके भार का टोप छोड़कर बँच जाते हैं। परमेश्वर भी ऐसे प्राणी की कहां मदद करे। कर्म का फल भोगना चाहिए और भोगते हैं। इसमे से छूटना अपने हाथ मे है। इसमे पंचवर्षीय योजना की ज़रूरत नहीं है। सारा देश निश्चय कर ले कि हमे गन्दगी निकालना है छ मास में गाँव ठीक हो जावें। पशु से मनुष्य पृथक् रहना सीख लें और इसका फल सुन्दर मिले।

फ्रेञ्च लोग जहाँ जाकर वसते हैं प्रजा को संकर बना देते हैं। फ्रांसीसी के घर में 'नेटिव' स्त्री होगी और इसी प्रकार 'नेटिव' के घर में गोरी स्त्री होगी। फ्रेञ्च लोगों को अंग्रेज़ों की भांति रंगभेद की

घृणा नहीं होती। इनका नैतिक मानदण्ड अंग्रेज़ तथा जर्मन लोगों की अपेक्षा वैभवमय है। स्त्री-पुरुष के स्वतंत्र व्यवहार को ये लोग आनन्द की वस्तु मानते हैं। यूरोप की दूसरी प्रजा की अपेक्षा यह प्रजा कुछ तरंग वाली गिनी जाती है। खाने के बाद शराब पीती है, नाचगान करती है और अधिक रात्रि तक रंग-तरंग में मस्त रहती है। बात करनेवाली भी ज़बर्दश्त। उनकी कोर्ट में केस चलता हो तो मुद्दत ही पड़ती रहती है। पांच, दस, बीस, तीस अथवा चालीस वर्ष के पुराने उदाहरण मिलते हैं। फ्रेञ्च सरकार के प्रतिनिधि के रूप में वहाँपर गवर्नर और कमिश्नर रहते हैं।

इस समय वहाँपर लगभग दस सहस्र भारतीयों की वस्ती है। वहाँ की नदियों में कितने ही स्थानों पर सोना निकलता है, जिसको हरकोई व्यक्ति ले सकता है और सरकार भी निकलवाती है। मेडागास्कर की राजधानी तानानारेव समुद्री तल से सात हज़ार फ़ीट ऊँची है। बन्दरगाह कई हैं। उसमे डीगोस सेना का मुख्य स्थान है। इसका बाड़ा बड़ा है कि वहाँपर हज़ार स्टीमरें पड़ी हों तो भी किसी को पता न चले। अगले भाग में जो प्रवेशद्वार है वह इतना सांकरा है कि इसके मुख में एक ही तोप यदि रखी हो तो भी शत्रु की स्टीमरों को रोंक सकती है। सन् १९२७ में मैं मोरिशस टापू में ईख की खेती और खांड का कारखाना देखने गया तो उस समय मेडागास्कर टापू बहुत बारीकी से देखने को मिला था।

मेरे बड़े भाई की दूकान मजंगा में थी। मेरे वहाँ जाने से उनका बोझा अधिक हलका हुआ। गोराणा में पिता जी के साथ व्यापार करते थे तो वहाँ मेरे हिस्से में बहुधा वही काम करने को होता था जो पिता जी की आज्ञा के अनुसार मिलता था परन्तु यहाँ-पर तो दूकान मुझे ही चलानी थी। सब व्यवहार मुझे ही करने को मिला। बड़े भाई बिल्कुल शान्त स्वभाव के, पैसे की बहुत परवाह न करने वाले और भगवद्-भजन में ज्यादा मन लगाने वाले थे। हररोज़ रात्रि मे नियमित रूप से राम-कथा बाँचते थे। मेरे जाने से उनका भार हलका हो गया।

प्रातःकाल मैं जल्दी उठता था। शौच, दन्तधावन आदि से निवृत्त होकर घर तथा दूकान की सफाई आदि करता था। माल ठीक करता था। फिर अच्छे प्रकार से दूध डालकर काफ़ी बनाता था। हम दोनो ही भाई प्रातःकाल काफ़ी पीते थे। दूकान

का फुटकर काम और रसोई मुझे करनी पड़ती थी। केवल दो चीज़ें बनाता था। रोटला-शाक, खीचड़ी-शाक अथवा दाल-भात। पास दूध दही पर्याप्त होता था इस लिये तीसरी चीज़ की ज़रूरत नहीं होती थी। मेरे आने के बाद बड़े भाई की तबियत भी सुधरी।

छ महीने में मुझे फ्रेञ्च भाषा साधारणतया समझने और बोलने में आगयी। प्रतिदिन डेढ़ दो सौ रियाल की बिक्री होने लगी। दूकान मे भांति भांति के सामान रखता था। ग्राहकों को समझाने की दाँवपेंच आगई। बहुत बार कच्चा माल खरीदने के लिए गांव में जाना होता था। इस समय रेल्वे, मोटरबस अथवा ट्रक आदि की कोई सुविधा नहीं थी। गाड़ी जोड़कर गांवों में जाना पड़ता था। नेटिव लोग अपने घर हमें प्रेम से उतारते और खूब भावपूर्वक खिलाते पिलाते थे। अपना माल वाजिब मूल्य पर देते थे। कच्चे सामान मे मोमफली, सोयाबीन, रफिया (घास) और मोम आदि मिलते थे। उन लोगों का अतिथि-सत्कार अपने देश जैसा ही था। गांव का जीवन सादा और कुदरती था।

दूकान की सफ़ाई, व्यवस्थित करना, लेन-देन, घर का काम, रसोई, गांव मे से माल लाना तथा उधार वसूल करना आदि कामों का भार अपनी शक्ति भर अपने ऊपर मैंने उठा लिया। उसकी वजहसे मेरी शक्ति खूब खिली। अनुभव से मैंने देखा कि जो काम की चोरी करता है वह हरामखोर और कामचोर हो जाता है। उसका शरीर बैठोल हो जाता है और मन आलसी बनजाता है। इसकी कुदरती शक्तियाँ न्यून हो जाती हैं। जो मनुष्य जवाबदारी समझकर भार वहन करता जाता है उसकी कुशलता प्रतिदिन बढ़ती जाती है। उसके जीवनमें जोश और उत्साह की वृद्धि होती है और संपत्ति बढ़ती जाती है। उसे जीवन का खरा आनन्द आता है। सारा दिन सख्त काम करके रात्रि होते ही थक कर लोथड़ा हो जाता था। बिस्तर पर पड़ने के साथ ही निद्रा आजाती थी।

परन्तु इस अधिक पड़ते हुये भार को खींचने से वारवार ज्वर आने लगा। सप्ताह अथवा पक्ष में ज्वर आजाता था। बड़े भाईको भोजन बनाना नहीं आता था। चाचाजी आग्रह करते थे परन्तु उनके घर भोजन करने नहीं जाते थे। इससे ज्वर शरीर में भरा हो तब भी मैं रसोई में जाता था। रसोई कर के हम खाते थे।

छोटेपन से ही हमे ईख बहुत पसन्द थी। जैसे समुद्र के साथ

पूर्वजन्म की कोई प्रीति थी उसी प्रकार ईख के साथ कोई विशेष प्रीति थी। मजंगामें ईख खूब होती थी। अधिक ईख चूसने से ज्वर आता है-ऐसा बड़े भाईने अनुमान लगाया। उनका विचार हुआ कि ज्वर आने का यही कारण होना चाहिए। एक दो बार मुझे मार भी पड़ी। मुझे मजंगा आये हुये दो वर्ष होने को थे। मेरा मन उचट गया। मन में हुआ कि "अब हमें इस देश में नहीं रहना है"

शक्तिभर काम करते हुये भी बड़ा भाई डाँटे और कभी कभी मारे भीं। मेरा स्वभाव तेज़ था। इससे सामने ही बोल उठता था। व्यापार में मेरे कार्य के लिए कुछ भी कहने जैसा नहीं था। अपने भारतीयोंकी दश बारह दूकाने एक दूसरे से लगी हुई थी परन्तु उनमें सबसे अधिक व्यापार हमारी दूकान में था। इतनी छोटी उम्र मे मेरी व्यापार शक्ति को देखकर दूसरे लोग आश्चर्य करते थे। परन्तु न जैसे कारण से भी बड़े भाई बार बार गुस्से होते थे। मेरे में कार्य की कुशलता अच्छी थी, बुद्धि भी तीव्र थी परन्तु जीभ ठीक नहीं थी, इसी से कभी कभी मार भी पड़ती थी। बोले जीभ और मार खावे पीठ। एक बार वे खूब नाराज़ हुये, तक़रार हुई और इससे मेरे मनको बड़ा आघात पहुँचा और क्रोध में मैं घर छोड़ कर चल पड़ा।

मेडागास्कर मे मलघास नाम की एक जाति है। मलाया और हिन्द-चीन द्वीप से फ्रेंञ्च लोग उसे लाये थे। वह संकर जाति मलघास कही जाती है। उस मे एक व्यक्ति के साथ मेरी बड़ी मैत्री थी। मैं सीधे उसके घर गया। उसने मेरी बड़ी आव भगत की। मै ने उस से सब बातें कहीं। इसने कहा-" भले तुम्हारा भाई छोड़ दे। तुम यहाँ हमारे साथ रहो। मेरे पास थोड़ी पूंजी है। इतने मे हम एक दूकान करेंगे और व्यापार जमावेंगे।

इसने मुझे रहने के लिए घास का बना हुआ एक सुन्दर, स्वच्छ कूबा (झोंपड़ा) निकाल दिया। मै ने इस मे स्थान ग्रहण किया। सारी रात अनेकों विचार आते रहते थे। अधिक रात्रि होने पर मन को दृढ़ कर के मैं सो गया।

दूसरे दि प्रातःकाल जब मेरे मित्र के साथ दूकान करने की बात चल रही थी तब मेरे बड़े भाई और दूसरे तीन-चार व्यक्ति मुझे समझाने के लिये वहाँ आये। मजंगा के नगरसेठ मनजी नथूभाई घेलाणी भी आये। इन सभी ने मुझे बहुत समझाया।

विश्वास दिलाया कि- "अब तुम्हे कोई डाँटेगा नहीं" मेरे मित्र ने कहा- "सब कहते हैं तो अब जावो। बड़े भाई को बुरा लगेगा।" इन सब का मान रखने के लिए मै मन मार कर पीछे वापस गया और दूकान के कार्य मे लग गया।

मजंगा मे हमने बहुत आनन्द किया। वर्ष मे दो तीन बार नौरात्र, दीपावली, होली और जन्माष्टमी जैसे बड़े पर्वों पर भजन-मण्डली, नाटक का खेल और गरबी आदि के कार्यक्रम का समारंभ होता था। इस मौज की तरङ्ग में छोटे बड़े सभी भाग लेते थे।

धीरे धीरे मेरा चित्त शान्त होने लगा। इसी समय मे मेडागास्कर मे महामारी आगयी। इस बीमारी मे एक दो गोरे गुज़र गये। दो तीन भारतीय भी चल बसे। इससे सरकार चिढ़ गई। इसने मान लिया कि भारतीय इस नये रोग को यहाँ लाये। भारतीयों का रहन-सहन गन्दा होता है। इनके घरों मे मच्छर आदि जन्तु होते हैं। इसी कारण चूहे होजाते हैं और चूहा महामारी लाता है। ऐसा सोचकर सरकार ने आज्ञा निकाली - "भारतीयों के सारे मकान जलादो, केवल पत्थर के पक्के मकान हों उन्हें रहने दो- शेष सब जला दो।"

सन् १९०१ में दक्षिण में 'बोअर वार' हुई तब से इस तरफ से परमिट अथवा विना परमिट के बहुत से भारतीय दक्षिण को गये। १९०२ में जब मेडागास्कर मे प्लेग पड़ी और फ्रेंच सरकार ने सख़्ती बर्ती तो कितने ही भारतीय दक्षिण (अफ्रीका) में चले गये जहाँ पूज्य महात्मा जी के इमीग्रेशन सेटलमेण्ट में उन्हे अधिकार मिला।

मेरा घर लकड़ी और पतरे का था। इसमें कोई परिवर्तन हो सके, ऐसा नहीं था। हम तो एक साधारण व्यापारी थे। परन्तु वहाँ के बड़े नगरसेठ मनजीभाई नथुभाई घेलाणी के घर में महामारी की घटना घटी। इससे इन्हे भी मकान खाली करने की आज्ञा मिली। अस्थायी मकान खड़े किये गये। उन मे बहुत माल सामान फेरना पड़ा। १५ दिन मे ही खाली करने की कठोर आज्ञा थी। व्यापार बन्द पड़ गया। सभी ने बिस्तर गठरी बांधी। पेटी-पिटारी लेकर कामचलाऊ छप्पर मे जा पहुँचे। हमारे पास माल था। जिस सेठिया का यह माल था उसको इसे वापस दिया। ब्रिटिश कौंसलर को मध्यस्थ रखा। जो लाभ हो वह हमे दे, ऐसी शर्त की। हम

भाड़े की दूकान में बैठते थे। जिनकी अपनी दूकान थी सरकार ने उनको मुआवज़ा दिया। जो कच्चे मकान मे रहते थे उनको तत्काल खाली करने की आज्ञा मिली। शहर से दो मील की दूरी-पर बड़ा गोदाम बनाया गया वहाँ पर सब को जाना था। कितने तो गोदाम मे ही रहे। चटाई बाँध कर झोंपड़ा खड़ा किया। बदनसीबी से वहाँ भी प्लेग पहुँच गयी। प्रतिदिन एक दो घटनायें हो जाती थीं। सभी घबरा गये। हम नौजवान लोग इस समय पड़ोसी की सहायता करते थे। मकान बदलने और जिनके घर में बीमारी हो उनकी देख-भाल में हम सहायता करते थे। जब घटनायें अधिक होने लगीं उस समय भारी घबराहट फैल गयी। किसकी बारी पहले आवेगी और किसकी बाद में, इसी की चर्चा चला करती थी। हम निश्चिन्त होकर घूमते थे। नौका के भयंकर तूफानो से हमारा मन कठोर होगया था। जीवन में ऐसे तूफान आया ही करते हैं – ऐसा मानकर हम कठिन बनते जाते थे। उसके बाद भी जीवन में छोटे बड़े प्रसंग आये परन्तु उन से विशेष घबराहट अथवा बेचैनी हुई नहीं। दूसरे लोग जब हिम्मत हार बैठते थे तब मैं शान्ति से इसके उपाय पर विचार कर कठिनाई को टालने का प्रयत्न करता था। इन्ही प्रसंगों से मेरा जीवन गढ़ा गया है।

धीरे धीरे भारतीय लोग अपने देश को जाने लगे। भारतीय सरकार ने इस कार्य मे सहायता की। बहुत से पोत सरकार की तरफ़ से तैयार हुये। उन मे भारतीयों के उपरान्त चीनियों को लेजाने की सुविधा की गई थी। सरकार ने बाहर घोषणा करदी कि जिनको जंज़ीबार जाना हो उन्हे जंज़ीबार और जिनको भारत जाना हो उनको भारत लेजाने मे आवेगा।

हम विचार मे पड़ गये कि हमें क्या करना चाहिए। मै ने बड़े भाई से कहा "आप साढे तीन वर्ष से यहाँ पर ही हो। माता जी और भाभी जी सभी आप की राह देखते होंगे। मैं तो अभी दो वर्ष से ही आया हूँ – इसलिए यहीं पर रहूँगा। आप जावें।" परन्तु बड़े भाई ने यह जवाब दिया "ऐसे समय में तुम्हे अकेला छोड़कर मुझ से नहीं जाया जावेगा। साथ ही हिसाब भी बाकी है। तुम जावो मै बाद मे आऊँगा।" मै ने बहुत आना-कानी की। मुझे भी ऐसी विपरीत अवस्था में बड़े भाई को अकेला छोड़ कर

जाना अच्छा नहीं लगता था। फिर भी इनके आग्रह के वश मे होना पड़ा। मेरे चाचा के लड़के, चाचा जीवनभाई राघवजी आदि हमारे सम्बन्धी सरकार से आज्ञा प्राप्त कर मजंगा से चार मील की दूरी पर मबीबु में रहने के लिये चले गये थे। मै ने वहाँ रहने की रजा मांगी परन्तु बड़े भाई एक से दो नहीं हुये। इस समय मजंगा में लगभग हज़ार भारतीय रहते थे। उनमें से सामान्य स्थिति के बहुत से भारतीय गाँवों में चले गये। बड़े भाई वहीं पर रुके और मुझे देश भेजने की तैयारी होने लगी।

हमने लगभग आठ हज़ार का सामान सेठिया को दिया और उसकी रसीद ले ली। शेष तीन हज़ार के लगभग बड़े भाई के पास रहा। मेरे लिए साठ पौण्ड का मेरे नाम का ड्राफ्ट निकलवा दिया। जाने का दिवस समीप आया। सब को छोड़कर जाना अच्छा लगता नहीं था परन्तु बड़े भाई को मेरी चिन्ता न रहे इस लिए निकलना पड़ा। सब को नमस्कार कर, मिलकर निश्चित दिन पर उत्तम शकुन देखकर नौका पर बैठ गये। हम चालीस व्यक्ति थे। जिस स्थान में दो वर्ष बिताया उसे छोड़ते हुये दुःख हुआ। फिर वापस कब आना होगा - यह निश्चित नहीं था। पोत से बाहर तट की ओर हम देख रहे थे। जो लोग विदाई देने के लिए आये थे वे रूमालें फहरा रहे थे। हम सामने से सलाम दे रहे थे। जीवन के सम्बन्ध को बाँधने के लिए बँधे हुये सम्बन्धों को छोड़कर ईश्वर की ईच्छा के आधीन हो चल निकला। इस प्रकार संयोग-वियोग का चक्र निरन्तर चलता ही रहता है।

नौका बन्दरगाह के स्थान से बाहर निकली और एकदम सीधी हवा लगी। इतनी सुन्दर और अनुकूल हवा निकली कि किसी कठिनाई के विना २६ वें दिवस द्वारका पहुँच गये। यात्रा मे कोई कठिनाई नहीं पड़ी। परमात्मा की गति कितनी गहन है - इसका ख़्याल आया। जाते समय कितनी कठिनाइयाँ पड़ीं? इस प्रकार की मस्तूल वाली नौका थी, इस प्रकार का समुद्र था, इस प्रकार की हमारी हालत थी, परन्तु कुदरत अनुकूल बन गयी तो जैसे एक घर को छोड़कर दूसरे घर मे रहने के लिए जाना हो इस सरलता के साथ हज़ारों मील का महासागर एक छोटी सी नौका में पार कर द्वारका पहुँच गये। किनारे उतरकर हमने प्रभु का धन्यवाद माना। जिसकी नौका मे हमने यात्रा की उसकी दो नौकायें टूट गयीं।

माल किनारे निकाला गया। अगर कहीं हम भी बाद में निकले होते तो हम भी तूफान में पड़ते। द्वारकादास सेठ के परिवार के दो आदमी डूब गये। नौका की टूटी लकड़ी और गुड़ की भेलियाँ आदि हमने किनारे पड़ी हुई देखी थीं। द्वारका में उनके घर जाकर इस विषय में दिलगीरी ज़ाहिर की।

दूसरे दिन गोमती जी मे स्नान करके रणछोडराय जी का दर्शन किया। निर्विघ्न यात्रा करने के बदले में भगवान् का उपकार माना। द्वारका से बैलगाड़ी करके दो दिन में गोराणा पहुँचा।

मुझे अचानक आया हुआ देखकर सब बहुत ही प्रसन्न हुये। सब के नेत्रों मे हर्ष के आँसू भर आये। आनन्द-मंगल होता रहा। माता जी और भाभी के हर्ष का पार नहीं रहा। पिता जी तो अपने सदा के भावुक प्रभुपरायण स्वभाव के अनुसार - "श्री कृष्ण शरणं मम" के जप से ईश्वर का आभार मान रहे थे। गाँव मे मानो उत्सव हो - इतना आनन्द हुआ। बहुत दिनो तक आमंत्रण-निमंत्रण चलते रहे।

इस प्रकार पहली यात्रा पूरी हुई। पहली यात्रा मुझे सदा की स्मृतिरूप बनी हुई है। उस जैसा आनन्द पुनः किसी यात्रा में आया नहीं। प्रभु की शक्ति की महत्ता भी ऐसे अवसरों पर याद आती है।

दुःख वस्तुतः प्रभु के समीप जाने की कुंजी है। दुःख मे ही राम याद आता है। यदि सुख में राम को भजे तो दुःख जगत् में हो ही क्यों ?। दुःख और सुख को उत्पन्न करने वाला मन है। मन प्रभु में लगे तो दुःख उस में रह नहीं सके। प्रभु दूर है- इस लिए दुःख समीप है।

१०

देशाटन

देश मे आकर घर की दूकान संभाली। पुराना उधार वसूल नहीं हुआ था। कितने ही ग्राहक मर गये थे। कितनो के पास से लेने मे अपना महत्व घटता था। लगभग हज़ार मन ज्वार आयी रही होगी, उसका बखार भरा। वर्षा अच्छी हुई थी इस लिए ज्वार की फसल सुन्दर हुई थी। गर्मी की ऋतु की ज्वार भी हुई। ज्वार बखारों मे सड़ रही थी। हैज़े का रोग आ गया। ऐसी स्थिति मे ज्वार की निकाल करने की आवश्यकता पड़ी। इस कारण मे गाँवों मे निकल पड़ा। आश्विन मास मे गाँव गाँव मे फिर कर मै ज्वार बेंचने लगा। साढ़े चार आने की मन ज्वार बेंची। किसी को नई फसल आने पर शीतकाल बाद वापस देने की शर्त पर दिया। ज्वार सड़ रही थी इस लिए उसको गोदाम में रखा नहीं जा सकता था - इस लिए नव आने मन खरीदी हुई को पचास प्रतिशत घाटा सहकर साढ़े चार आने मन बेंचनी पड़ी। लोगों को खाने पीने की कोई विशेष चिन्ता नहीं थी। नीला सुन्दर बाजरा बारह आने मन मिलता था। किसी भी आदमी का मन सवा मन अनाज से महीना निकल जाता था।

इस प्रकार ज्वार की निकासी की। इतने मे बड़े भाई देश मे आ पहुँचे। वे वहाँ की बहुत सी उधार रक़मो को वसूल करके थोड़ी बहुत धनराशि ले आये। इस लिए अर्थ की छूट हुई। देश मे तिल, बाजरी और रूई के डोडे आदि की ख़रीद प्रारंभ की। एक वर्ष इस प्रकार पूरा हुआ।

परदेश मे धुंवाधार व्यापार किया, ग्राहकों की भीड़ लगती थी- इस लिए देश के ठण्ढे वातावरण में कोई आनन्द नहीं आता था। मैं ने एक बार पिता जी से कहा कि "मुझे यहाँ अच्छा नहीं लगता है। मुझे तो परदेश जाना है।" उत्तर में उन्हो ने नकारात्मक सिर हिलाया। माता जी को सूचना मिली तो उन्हो ने बड़े ज़ोर की ना की। "मुझे पैसा नहीं चाहिए। पूरी न खाकर आधी खा लेंगे।

अब हम जुदा नहीं पड़ेंगे। दो वर्ष मान-मान कर विताया। भगवान् ने जो दिया है - वही पर्याप्त है। शान्ति से सब साथ रहकर खावेंगे और आनन्द करेंगे।

मुझे कहीं पर चैन नहीं पड़ती थी। परदेश जाने का विचार मन मे चक्कर देता रहता था। घर के छोटे व्यापार मे मन नहीं था। उसी प्रकार छोटे गृहसंसार के बाड़े में पड़े रहना भी अच्छा नहीं लगता था। इस में से भागकर छूटने के लिए मन हुआ करता था। यह बात किसी से की भी नहीं जा सकती, इससे मन अधिक खिन्न होता था। अपनी पुरानी कहावत के अनुसार मेरे मन की स्थिति थी। "कंथा! बात करम की किसी को कही न जाय। गूँगे को सपना भया समझ समझ पछताय॥" परन्तु इस प्रकार पिंजरा मे बन्द रहे - ऐसा मेरा जी नहीं था। अन्दर से वार वार प्रवल इच्छायें उठतीं। देश-देशान्तर में घूमना, यात्रायें करना, साधु महात्मावों के दर्शन करना, माता-पिता यदि प्रसन्नता से जाने न दें तो चुपके से बाबा बनकर भाग जाऊँ।

संयोगवश इसी अर्से में मेरी भाभी का अवसान होगया। बड़े भाई की दूसरी जगह सगाई की गई। विवाह हुआ। परन्तु यह पत्नी भी अपने माता-पिता के घर ही सांप के काटने से मृत्यु की ग्रास बन गई। इस घटना का मेरे मन पर भारी प्रभाव पड़ा। अफ्रीका जाने के लिए मेरा आग्रह चालू रहा। नहीं तो भग जाने का इरादा था। माता-पिता किसी भी प्रकार रज़ा नहीं दे रहे थे। अन्त में मै ने कामकाज छोड़ दिया। सदा झगड़ा होता रहता था। एकवार तो मैं ने स्पष्ट कह दिया कि "यदि मुझे जाने न दोगे तो मै भग जाऊँगा।" मेरे दृढ़ निश्चय से सब ने निश्चय किया कि- "एक लड़का भले जावे"।

हमारा एक परिचित अफ्रीका जानेवाला था। किसी कारण से इसका जाना रुक गया। सन् १९०४ तक दूसरे का पारपत्र लेकर नियम से अफ्रीका जाया जा सकता था। इस लिये उस की परमिट रूपये देकर खरीद ली। सन् १९०४ मे अफ्रीका जाने की तैयारी की। उत्साह के साथ पोरबन्दर गया। पिता जी और बड़े भाई सभी विदाई देने को आये। टिकिट भी ले लिया। एक दो दिन मे स्टीमर रवाना होनेवाली थी। इतने मे ही मुझे एकाएक ज्वर आगया। न उतरने वाले ज्वर मे पटका गया। चारपायी के अधीन हुआ।

इस अवस्था में कैसे जाया जा सके? पिता जी जाने भी कैसे दें? इतनी बड़ी मेहनत से जाने का निश्चय किया परन्तु अन्नजल नहीं था। अब परमिट और टिकिट को क्या किया जावे?। मेरी परमिट और टिकिट, मेरी पेटी और विस्तर लेकर मेरे बदले बड़े भाई स्टीमर में बैठ गये। मेरे चाचा जी के लड़के पहले से ही १९०१-२ में बोअर वार के समय मेडागास्कर छोड़कर दक्षिणी अफ्रीका पहुँच गये थे। बड़े भाई भी सीधे दक्षिण अफ्रीका गये और मैं रह गया।

पिता जी के साथ पीछे गोराणा आया। दूकान तो मेरे मामा संभालते थे। मेरा ज्वर उतरा परन्तु मन कहीं लगता नहीं था। दक्षिण अफ्रीका से बड़े भाई का समाचार आया। उन्हो ने चाचा जी के लड़के के साथ भागीदारी में दूकान कर ली। मनजीभाई घेलाणी नगरसेठ भी वहाँ पहुँच गये थे। यह सामाचार सुनकर मेरा मन परदेश जाने के लिए अत्यन्त उत्कण्ठित हो रहा था। छोटे भाई मथुरादास पिता जी के साथ थे। परन्तु पिताजी और माता जी कहते थे -"यह लड़का तो घर पर हमारी आँखो के सामने चाहिये ही।" घर का व्यापार कम कर दिया। गाँव का व्यापार काग़ज़ के पंखे के समान है। सिकोड़ना हो तो सिकोड़ ले और फैलाना हो तो फैलाया जा सकता है।

सन् १९१० मे जब मामा के घर वीसावाडा आया गया था तो उसके पहले पोरबन्दर में एक भक्तराज पीपा का नाटक देखा था। आज के समय में भौतिकवाद से भरे हुये कितने ही नाटकों का अभिनय किया जाता है। ऐसे नाटक उस समय में बहुत थोड़े खेले जाते थे। पूर्वकाल में भक्तिपूर्ण नाटक खेले जाते थे। आधुनिक समय में सिनेमा ने नाटक के धंधे को समाप्त कर दिया है। पहले के नाटकों ने इस दुनियाँ मे बहुत से परिवर्तन किये हैं। फ्रांस मे नाटकों से क्रान्ति उत्पन्न हुई थी। महाकवि कालिदास के नाटक दो हज़ार वर्ष होजाने पर भी आज ज्यों के त्यों जगत् में खेले जाते हैं।

गाँगरोड गढ़ का राजा पीपा भगत् श्री द्वारकापुरी में श्री कृष्ण भगवान् के दर्शन करने गया। वहाँ लम्बे समय से द्वारका में छापा (शंख, चक्र, गदा, पद्म, विष्णु के ही चिह्न) लोहे के गोले में उतारा रहता था। उस लोहे को खूब तपाकर लाल हो जाने पर हाथ मे छापा मारते हैं। साधु लोग अथवा भावुक-जन इन छापों को लेते

हैं। इस के कारण मे पंड्या लोग बताते हैं कि इस छापा के लेने से मृत्यु समय में यमराज का बुलावा आता है परन्तु जिसके शरीर पर यह छापा हो उसे यम छू नहीं सकता। भगवान् का विमान उसे लेने को आता है। यह दृश्य मै ने पीपा भगत के खेल में देखा। उस से मुझे भी हुआ कि प्रभु के पास जाना हो तो दूसरा कुछ नहीं बन सकता। इस लिए बीसावाडा मूल द्वारका जहां पर अभी भी छापा दिया जाता है वहाँ के मन्दिर के पुजारी को समझा कर लाल तपा हुआ छापा हाथ में लिया। अभी भी हमारे हाथ में छ चिह्नों के छापे की निशानी है। मरने के बाद कर्मानुसार भगवान् का विमान आवेगा कि नहीं यह तो खबर नहीं, परन्तु हाल में तो अपनी भारत सरकार के 'एयर इंडिया" के विमानों में जीते जी मौज कर रहा हूँ।

मामा जी को सूचना मिली कि मै ने छापा लिया है इस लिए एक लाठी लेकर उन्हो ने पुजारी को खूब पीटा और मुझे भी अच्छी तरह पीटा। साधु बावा छापा लेते हैं अपने गृहस्थ लोग नहीं लेते। हाथ पक गया। जले हुये पर लाठी-दण्ड देना पड़ा।

उन दिनो के विचारों और आज के विचारों का यहाँ पर हिमालय की तलेटी में मसूरी की पहाड़ी के ऊपर सामने से ही श्री बदरी केदारनाथ के बर्फ से छाये हुये पहाड़ों के दर्शन से तुलना करता हूँ। यह तथ्य आज से पचास वर्ष पहले का स्मरण कर के लिख रहा हूँ। आज का संसार कहाँ ले जावेगा - यह समझ में नहीं आता। आज भौतिक वाद का इतना बड़ा प्रवाह है कि मन को उसने विकृत कर रखा है। जाने विना जाने भी हम इस ओर घसीटे हुये जा रहे हैं और इस वेग को रोंका भी नहीं जा सकता।

गढवी भेरूभाई दोहा गाते हैं और मैंने सुना भो है कि जगत् में अनेक प्रकार के वियोग होते हैं। ईश्वर के साथ वियोग, मनुष्य के साथ का वियोग और स्त्री - मित्रों के साथ के वियोग आदि हैं। अन्तते-गत्वा थक कर दे शब्दों में समाप्ति करता है और अश्वासन के दे शब्दों में कहता है- "आ भव एले गयो, ओले भव अवाशे नहिं।" वियोगी दोने जन्मों का इसमे समावेश करता है।

मेरा मन किसी वस्तु में लगता नहीं था। माता - पिता किसी प्रकार रजा दें ऐसा नहीं था। इस लिए पहले मामा के

घर वीसावाडा गया। वहाँ मूल-द्वारिका मन्दिर में जाकर सबेरे और सायंकाल को बैठता था। सैकड़ों यात्री आते थे, पूजा-आरती होती थी और सत्सङ्ग का लाभ मिलता था। इस में मन संलग्न रहता था। अधिकांश में मूर्त्तियों के सामने बैठकर ध्यान लगाकर बैठा रहता था। भारत के कोने कोने से यात्री आते और उनसे यात्रा के धाम की बातें पूछा करता था। किस तीर्थधाम में कौन सी मूर्ति है? कहाँ से होकर कहाँ जाना होता है? रेलभाड़ा कितना पड़ता है? यह सब सूक्ष्मता से मै पूँछ लेता था। मन में था कि विदेश न जाया जावे तो कोई बात नहीं, एक बार देशाटन तो करना है। देशाटन के लाभ के विषय मे पुरानी पुस्तकों में पढ़ा था। कविता भी कण्ठस्थ की थी। देशाटन से अनुभव बढ़ता है, इतिहास भूगोल का ज्ञान मिलता है, देशभक्ति बढ़ती है, साहस तथा हिम्मत आते हैं, शरीर और मन पुष्ट होते देश-देश के रोज़गार, खेती-वारी आदि के सम्बन्ध में जानकारी मिलती है। ऐसा सोचकर देशाटन का निर्णय पक्का किया। थोड़े दिन पीछे गोराणा वापस गया।

गोराणा आकर श्री राम भगवान् के सुन्दर मन्दिर मे जाकर भगवान् श्री रामचन्द्र का दर्शन किया और प्रार्थना की। परदेश जाकर पैसा कमायें और देशाटन करके अनुभव लेवें - यह निश्चय करके घर आया। इस समय मेरी अवस्था १६ वर्ष की थी। रात हुई और सब सो गये। मै ने तैयारी की। पचास रूपया नक़द लिया। मोहनमाला, कबजा का सोने का बटन, अंगूठी, मेडागास्कर से ली हुई सोने की घड़ी, सोने की करधनी और बाँह का बाजूबन्द- इन आभूषणो को ले लिया। नये कपड़े को बोरे के थैले में डाला। पुराने फटे कपड़ों को पहन लिया - जिससे कोई रास्ते में मारकर ले न लेवे। भगवान् के पग लगकर रातोंरात अकेला चल पड़ा। सीधा पोरबन्दर पहुँचा। बम्बई का टिकिट लेकर सबेरे की ट्रेन में बैठ गया।

रास्ते मे बड़े बड़े स्टेशन आते थे, अनेक गाड़ियाँ खड़ी होती थीं। नये नये आदमी, भांति भांति की बोलियाँ, नदियों के पुल, शहरों आदि को देखता चल पड़ा। मार्ग मे बालक बुद्धि के कारण अनेक विचार आने लगे। बम्बई जाकर क्या करना है?। दक्षिण अफ्रीका जाने की कोई सुविधा बने तो किसी की परमिट लेकर

सीधे चला जाऊँ। नहीं तो किसी अनजाने ठेकाने पर चला जाऊँ जिससे पता भी न लगे। इस समय हाथ मे नहीं ही आऊँ - ऐसा निश्चय किया।

बम्बई पहुँचा। दक्षिण अफ्रीका की स्टीमर को बहुत देर थी। परमिट मिले ऐसा सम्भव नहीं था। बन्दरगाह पर पता लगाने से मालूम हुआ कि एक स्टीमर कराँची की ओर जा रही थी। हमारे सलाया के कितने ही सम्बन्धी सिन्ध में नगरठट्टा में थे और कराँची मे भी उनके बड़े व्यापार थे। इस लिए सिन्ध में जाने का विचार किया। वहाँ जाऊँ तो किसी को कोई वहम न पड़े। ऐसा विचार कर कराँची की स्टीमर में बैठ गया। कराँची पहुँचा। वहाँ से नगरठट्टा गया। वहाँ पर सलाया के हमारे सम्बन्धी थे। उन्हो ने बहुत प्रेम से स्वागत किया। "पहले से सूचना दी होती तो हम कराँची मे ही मिलते"- ऐसा कहा। मै ने उत्तर दिया - "एकाएक निकलना पड़ा। देश में व्यापार रोज़गार नहीं है, इससे यहीं पर कोई नौकरी मिले तो खोजने को निकला। इनका व्यापार ठीक चल रहा था। स्थिति भी ठीक थी। सिन्धु नदी में नौकायें आती थीं। वे माल खरीदकर कच्छ काठियावाड़ को भेजते थे। थोड़े दिन तक मैं उनके साथ रहा। दूसरे कुटुम्बियों के घर भी गया। लगभग १'१ दिवस रुक कर पीछे कराँची आया।

इस समय कराँची की समृद्धि बढ़ी चढ़ी थी। मध्य एशिया, अरबिस्तान, ईरान, पर्शिया और अखात आदि देशों के साथ कराँची का व्यापार बहुत अधिक था। कराँची नगर स्वच्छ और सुन्दर था। बड़े बड़े विशाल राजमार्ग, समुद्र का तट, मनोरा, सदर बाज़ार आदि दर्शनीय थे। सदर के एक होटेल में रहता था। छ रूपये महीने मे यह होटल रोटी, दाल, भात और शाक खिलाता था। दही, दूध, घी का दो रूपया अधिक देना पड़ता था। दो रूपये दूसरे फुटकर व्यय के होते थे। इस प्रकार दश रूपये में महीना आनन्द से निकल जाता था। सदर में एक सारस्वत ब्राह्मण की मिठाई की दूकान थी। एकबार इसकी दूकान पर जा पहुँचा। वहाँ पर आस-पास का परिचय निकला। यह सलाया का रईश हमारा गौर था। बस इतने परिचय से दोस्ती बंध गई। मुझे कोई विशेष काम नहीं था। खाता-पीता, घूमता-फिरता और नित्य नई चीजे देखता। सायं-प्रातः इस मिठाई वाले के यहाँ बैठना उठना प्रारंभ हुआ।

सायंकाल यह जब खाली होता था तो गप्प-सप्प की अनेक बातें करता था। यह जब मिठाई बनाने बैठता था तो गाँजा की चिलम चढ़ाता था। यह कहता था कि "गाँजा की धुन में मिठाई सुन्दर बनती है।" सारे शहर मे इसकी मिठाई का बखान होता था। जितनी मिठाई सबेरे बनाता था उतनी ही सायंकाल परन्तु सब बिक जाती थी। मुझे इसकी संगत का रंग चढ़ा। प्रथम परिचय, बाद में बैठना-उठना, पुनः मिठाई खाना प्रारंभ हुआ, और कभी कभी वह चिलम दे देता था - इससे गाँजे का व्यसन भी हुआ। गाँजे का नशा बहुत चढ़ता था। इस कारण मै दो चार फूँक ही लेता था। गाँजा पीने से भूख बहुत लगती थी। नाश्ता भी वहीं पर कर लेता था। धीरे धीरे इस के पाससे मिठाई की बानगियाँ बनाना भी सीख लिया। दो मास में पाँच-सात चीज़े आगईं, बनाने मे भी कला थी।

सायंकाल कई वार बाग़ में जाकर बैठता था। वहाँ मुझे अनेक विचार उठते थे। ऐसे वैसे कबतक बैठा रहूँगा। परदेश जाकर पैसा कमाने की इच्छा पूरी नहीं हुई। वैसे ही देशाटन कर के तीर्थयात्रा करने की बात भी नहीं बनी। मा-बाप खोज करते होंगे। घर मे दौड़ादौड़ी मची होगी। माता जी उपवास करती होंगी। इस प्रकार के विचारों में मन व्यग्र हो जाता था। कभी कभी घर वापस आने के लिए मन हो जाता था। बहुत से विचार उमड़ते थे। इस प्रकार दो मास कराँची मे बिताया और बाद में यात्रा का मार्ग लिया।

हरद्वार, काशी, मथुरा, वृंदाबन, दिल्ली, जयपुर, अजमेर, उदयपुर, चित्तोड़ और आबू आदि स्थानों में भ्रमण किया।

हरद्वार में इस समय आज की भांति रहने-करने की अथवा जाने-आने के लिए सवारियों की कोई सुविधा नहीं थी। उसी प्रकार आज के इतनी धांधली और अशांति भी नहीं थी। गंगा जी का शान्त किनारा, पहाड़ों का अद्‌भुत सौंदर्य, त्यागी वैरागी महात्मावों का समागम आदि आज की अपेक्षा पचास वर्ष पहले अधिक देखने को मिलता था। काशी में विश्वनाथ महादेव का दर्शन किया। मनकर्णिका के घाट पर स्नान किया। वहाँ से मथुरा आया। मथुरा से गोकुल गया। श्री कृष्ण भगवान् का लीलास्थान देखा। यमुना का सुन्दर तट जहाँ पर निर्दोष गोपियों के साथ कृष्ण भगवान् ने लीला की थी, जहाँ नन्द राजा और यशोदा जी ने उनका

लाड प्यार किया था, जहाँ पर सहस्रों गायों के झुण्ड को भगवान् कृष्ण चराते थे – इन पवित्र स्थानों को देखते ही आंखों मे हर्ष के आँसू आगए। वहाँ शान्ति के साथ दो तीन दिन रहा। मन को कई प्रकार की शान्ति मिली। गोकुल के पास मधुवन में यमुना के किनारे ध्रुव जी ने तप किया था। वहाँ भी तीन चार दिन रहा। यमुना के किनारे मंदिर, वृक्ष की घटा और शांत स्थल था।

भारत की राजधानी दिल्ली देखा। कौरव पाण्डव के समय से आज पर्यन्त अपनी यही राजधानी रही है। इसने अनेक छोटे बड़े साम्राज्यों का उत्थान-पतन को देखा है। लालकिला, जामा मस्जिद, कुतुब-मीनार, अशोक-लोहस्तम्भ तथा चाँदनी चौक आदि ऐतिहासिक स्थलों को देखा। उस समय नई दिल्ली नहीं थी। पुरानी दिल्ली देखकर जयपुर गया। इस समय मे भी जयपुर भारत का पैरिस गिना जाता था। एक तरह का बाज़ार, एक प्रकार की मकानो की रचना और मीलों पर्यन्त एक ही प्रकार का विशाल राजमार्ग देखकर चकित होना पड़ता है। राजा मानसिंह का महल और संग्रहस्थान देखा। उस समय इस विषय मे मुझे अधिक समझ नहीं थी, तिसपर भी इस मकान की विशालता, अन्दर की विविध प्रकार की वस्तुयें, पशु, पक्षी, वनस्पति आदि बहुत सी नवीन वस्तुयें देखने को मिलीं। जयपुर से अजमेर होकर चित्तौड़ गया। पूष का महीना चालू होने से खूब ठण्ढी थी। रात्रि मे नींद मे चित्तौड़ से आगे निकल गया। जहाँ पर जगा वहाँ उतर गया।

स्टेशन मास्टर गुजराती था। उसने गाड़ी में पीछे जाने को कहा। दातन – पानी करके, टिकट लेकर पीछे चित्तौड़ आया। इस ज़माने मे चित्तौड़ छोटा स्टेशन था। पास मे थोड़ी दूकने थीं। स्टेशन से नगर दो मील दूर है। मै दूकान की तरफ़ गया। दूकानें गन्दी थीं। मक्खियाँ भिन भिना रही थीं। बैठने की इच्छा नहीं होती थी। चारों ओर नज़र दौड़ाई। इतने में एक मारवाड़ी गृहस्थ मिला। पूँछने पर पता चला कि वह उदयपुर जानेवाला था। मुझे नाथद्वारा जाना था। गाड़ी को १५ घण्टे की देर थी। जाति आदि पूँछने पर उसने बताया कि वह भी वैश्य है। देश-देशान्तर मे फिरा था इस लिये खाने में उसे हरकत नहीं थी। मैने पूँछा "आप को आपत्ति न होवे तो रसोई बनावें।"

"किसमे बनावोगे ?"

"आप देखो तो सही" ऐसा कहकर मैंने दूकान से आँटा, गुड़, घी, मूँग की दाल, चावल और मसाला लेलिया। पास ही छोटी नदी थी। वहाँ जाकर वृक्ष के नीचे उतारा किया। साफ-सूफ करके पड़ाव डाला। मारवाडी को गोबर के कण्डे बिनकर लाने को कहा। मै ने ढाक के वृक्ष के पत्ते से दोना और पत्तल बनाया। कण्डा आ गया इस लिये भट्टा सुलगा दिया। हंडिया मे दाल चढ़ा दी। दाल चढ़ी रही। मसाला डालकर दोनों में निकाल लिया। ऊपर पत्तल से ढाँक कर बगल में पत्थर रख दिया। लोटा साफ करके, अन्दर घी का हाथ फेरकर भात के लिए अदहन चढ़ाया। अदहन होगया कि चावल चढ़ा दिया। भात तैयार हुआ और उतार लिया। इतने मे बाटी तैयार करके रखी थी उसे भट्ठी मे डाल दिया। आधे घण्टे में बाटी पक गई इस लिए इसे कपड़े में बांध कर ऊपर मूका मार मार कर फोड़ डाला। गरम-गरम बाटी के चूरे में गुड़-घी मिलाकर लड्डू बनाया। हंडिया में से भात निकाल कर पत्तल में रखा। ऊपर पत्तल ढँककर पत्थर रख दिया। दूसरे दो दोने बनाये। लोटा साफ करके पानी भर लिया। दाल-भात लड्डू-पक्की रसोई खाया। ऊपर से पानी पिया। तीन तीन लड्डू खाये। एक हंडियामें भोजन बनाया। थोड़ी देर आराम करके चित्तौड़ गढ़ देखने गया।

पहले इतिहास की पुस्तकें मैंने बहुत पढ़ी थीं। चित्तौड़ मे महाराणा प्रताप और उनके वीर पूर्वजों की स्मृति ताज़ी हो गई। किले के ऊपर गया। वहाँ पग-पग पर शौर्य और बलिदान की भावना दिखाई पड़ी। महाराणा प्रताप का जन्मस्थान, पन्ना-दायीका महल, सतीत्व की रक्षा के लिए छ सौ क्षत्राणियों के साथ चिता मे प्रवेश कर जौहर दिखलाने वाली पद्मिनी - ये सभी बलिदान के प्रेरणास्थान थे। मीराबाई का राजमहल और उनका कृष्ण-मन्दिर भक्तिभाव जगाता था। चित्तौड़ की भूमि देशभक्तों की भूमि है। मुझे इस समय बहुत समझ न थी। फिर भी उदारचरित भामाशाह के दान-वीरता की बातें बहुत सुनी थी। इनका इतिहास पढ़ा था। महाराणा जी जब मेवाड़ छोड़कर जा रहे थे उस समय इस वयोवृद्ध देशाभिमानी प्रधान ने अपना सात पीढ़ी से संचित सारा ही धन इनके चरणों पर रख दिया था। इसी लिये मेवाड़ की लाज रही, महाराणा प्रताप की टेक पूरी हुई। मेवाड़ की स्वतंत्रता प्राप्त करने में वीर एवं देशभक्त भामाशाह की उदारता अमर बन गई। इस

महापुरुष का हमारे कोमल हृदय पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा। किले को देखकर हम चित्तौड़ के बाज़ार में आये। वहाँ से स्टेशन पहुँचे। प्रातः मारवाडी गृहस्थ उदयपुर गया और मैं नाथद्वारा की ओर रवाना हो गया।

नाथद्वारा यह हमारा वैष्णव-संप्रदाय का बड़े से बड़ा तीर्थ है। इसकी प्रतिष्ठा सब से बड़ी है। भव्य मन्दिर और इसकी सुन्दर व्यवस्था। हृष्ट-पुष्ट गायें, घी-दूध का तो मानो हौज़ भरा हो। हरएक वस्तु में गाय के घी का ही प्रयोग होता है, तेल तो वर्ता ही नहीं जाता। दर्शन की भारी भीड़ मचती है। यात्रियों को उतरने के लिये अनेक धर्मशालाये हैं और खाने के लिये मन्दिर में तैयार भोजन मिलता है। भजन-कीर्तन की धुन चालू ही रहती है। मै नाथद्वारा से काँकरोली गया। काँकरोली के पास 'राजसमुद्र' नाम का विशाल सरोवर आया है। चारों तरफ हरियाली से युक्त पहाड़ियाँ, मील का घेरा और चौबीस गाँव के आदमी पानी पी सकें ऐसी सुविधा है। राणा राजसिंह ने एक बार दुष्काल पड़ने पर मेवाड़ी मज़दूरों को कार्य देने के लिए इसे बँधाया था। ऐसे समय मे एक करोड़ रूपयों का व्यय किया। सरोवर के किनारे नौ चौकी का घाट बाँधा गया है। नव नव सीढ़ियों का चौक डालकर घाट बाँधा गया है इस लिए नौ चौकी कहा जाता है। सीढ़ियों के प्रस्तार पर धूप में बैठने के लिए संगमरमर का मण्डप बनाया हुआ है। इसके खम्भे और छत के ऊपर मनुष्य जीवन की हरएक बात खुदी हुई है। यह तराशी का कार्य बहुत बारीक और अद्भुत है। घण्टों तक बैठे रहें तो भी उठनेको मन नहीं होता-ऐसा शान्त और एकान्त स्थान है। काँकरोली से नाथद्वारा होकर मैं उदयपुर गया।

महाराणा उदयसिंह द्वारा बसाया हुआ उदयपुर चारों तरफ़ पहाड़ियों से घिरा हुआ है। निर्मल जल से भरे हुये छोटेमोटे अनेक सरोवर हैं। अरावली पर्वत की पहाड़ियाँ, सरोवर और पकी फस्ल से झुकते हुये खेतों से मेवाड़ बहुत रमणीय प्रदेश लगता है। मेवाड़ में अनेक ऐतिहासिक तथा कुदरती स्थल आये हैं।

उदयपुर से मैं आबू गया। गुजरात के उत्तर मे आनेवाला अपना समीप का पड़ोसी आबू पर्वत है। आबू के ऊपर का स्थल बहुत पवित्र और सुन्दर है। आबू में देलवाडा दहेरा की कारीगरी देखकर यात्री आश्चर्य में पड़ जाते हैं। नखी सरोवर, आबू कैम्प, अद्धर देवी आदि स्थलों को देखकर मै वसिष्ठाश्रम गया।

ऊपर चढ़ते चढ़ते मुझे प्यास लगी। आसपास देखने पर मालूम हुआ कि समीप मे ही एक नीचा झरना है। उस में पानी भरा है। इस समय मुझ को एक विचार सूझा कि ऊपर से झरने में अपनी पगड़ी डालकर उसे झरने मे भिगोकर पानी प्राप्त करूं।

पगड़ी को मै ने झरने मे डाला परन्तु यह मध्य मे ही वृक्ष के पत्तों में फंस गई। बाद में पगड़ी पीछे खींचकर उसके एक कोने में एक ढेला बांधकर फिर इसे नीचे झरने में डाला, फिर भी कुछ न हुआ, क्योंकि वह मध्य मे ही अंटक गई। अन्त में यह विचार किया कि पास के वृक्ष की एक डाल से पगड़ी बांधकर उसके सहारे से नीचे झरने मे पहुंचकर पानी पी आऊं। यह साहस करके वृक्ष मे बाँधी हुई पगड़ी के आधार से मै नीचे झरने में उतरा। वहाँ पर पानी पिया और बाद मे इसी पगड़ी के सहारे कुशलता से ऊपर पहुंच गया। यह सब प्रकट करता है कि कठिनाई में मानव को प्रभु मार्ग बताता है। साहस हो तो मनुष्य की सहायता के लिए तो भगवान् सर्वदा तत्पर ही रहता है।

गुरु वसिष्ठ का आश्रम प्राचीन काल में इस स्थान पर था– ऐसा कहा जाता है। सात सौ पौड़ियाँ उतर कर आश्रम को जाना पड़ता है। यह अद्‌भुत स्थान है। यहां पर केतकी का वन है। चम्पा के बड़े वृक्ष हैं। कटहल के भी वृक्ष हैं। इसमे राम – लक्ष्मण और गुरु वसिष्ठ की मूर्त्तियाँ हैं। वसिष्ठाश्रम मे होकर आबू से खरेडी को पुराना रास्ता जाता है। वहाँ से देलवाडा से उत्तर जाते हुये अचलगढ़ का रमणीय स्थान आता है। वहाँ से तीन मील की दूरी पर आबू का सब से ऊंचा शिखर 'गुरु दत्तात्रेय' देखने गया। इस काल में वहाँ घोर जंगल था। शेर और चीते का वहाँ पर भय था। एक बावा की संगति मुझ को मिल गई। ऊपर हवा इतनी तेज़ चलती है कि मालूम पड़ता है कि उड़ जावेंगे। यह शिखर ५,६०० फीट ऊंचा है। चार वर्ष पूर्व वहाँ की छोटी धर्मशाला और गुरु दत्तात्रेय के मन्दिर का जीर्णोद्धार मेरी तरफ से करने में आया है। वहाँ से दूर दूर तक अरावली पर्वत की पहाड़ियाँ सागर की लहर की भांति ऊंची – नीची दिखाई पड़ती हैं। आबू में मैं खूब घूमा। पहाड़ और जंगलों को देखा परन्तु कहीं पर महात्मावों के दर्शन नहीं हुये। मन मे था कि कोई अच्छा महात्मा मिल जावे तो उसका शिष्य बनकर बैठ जाऊं,

भगवान् का भजन करूं- परन्तु ऐसा कोई नहीं मिला। मन मे अनेक तरंगें आती थीं, कहीं पर चैन नहीं पड़ती थी। रोने की तबियत हो उठती थी। आबू के ऊपर के मन्दिरों मे बहुत से साधू बाबा लोगों को देखा, उनकी गुफायें देखीं परन्तु चित्त को शान्ति देने वाला कोई सद्गुरु नहीं मिला। जैन-मन्दिरों मे वस्तुपाल और तेजपाल जैसे धनाढ्यों ने करोड़ों रूपया खर्च कर अद्भुत कारीगरी खोदाई है। उसे देख कर खूब धन कमाने और उसी प्रकार धन के सदुपयोग करने का मनसूबा पैदा हुआ। पन्द्रह दिवस पर्यन्त पहाड़ में घूमा। मन मे मरने का भय नहीं था। हथियार में एक छड़ी और एक छुरी रखी थी। शण की एक थैली थी, उसमे दूसरा जोड़ा कपड़े का, कम्बल और चौपाल था। थैली का सिरहाना कर लिया करता था। उसी मे सारी वस्तुयें रहती थीं। जो मिलता वह खा लेता था। एक लोटा, एक डोरी और एक छोटी थाली साथ में थी। उसमे आँटा गूंधकर बाटी बना लेता था। गुड़ और बाटी अथवा शाक और बाटी खाकर मस्त हो फिरा करता था। इसमें बड़ा आनन्द आता था परन्तु मन की मुराद पूरी नहीं हुई। साधु भी मिला तो ऐसा कि मैं माँग लाऊँ तो वह खावे। किसी के साथ मेरा मेल नहीं मिला। फिर फिर कर बाद में अहमदाबाद आया। अहमदाबाद में दो चार सप्ताह मानकर व्यतीत किया। वहाँ चैन न पड़ी, गंदा शहर, मिलों का धुवाँ, मज़दूरों की बदबू करती हुई चालें, गन्दगी और भीड़भाड़ - आबू की शान्ति से एकदम अहमदाबाद की अशान्ति में आया। उससे भी ज़्यादा बस में लगा। अहमदाबाद से बम्बई गया।

बम्बई मे अचानक उमंग उठी कि हैदराबाद देखूँ - इस लिए वहाँ के वास्ते चल पड़ा। इस समय बम्बई मे महामारी चल रही थी। महामारी की मुझे कोई खबर नहीं थी। बम्बई का इलाक़ा और निज़ाम का राज्य पृथक् पृथक् थे। बम्बई से निज़ाम की सीमा में जो आता उसे बीमारी के कारण क्वरेण्टाइन मिलती थी। हमे भी रास्ते में गुलबर्गा लेजाया गया। दस दिन की क्वरेण्टाइन मिली। मुझे इन चीज़ो का अभ्यास हो गया था, इसलिए कुछ नया नहीं लगा। बाकी दूसरों के लिए इस प्रकार अनिर्धारित मार्ग मे रोका जाना कठिन लगता था और क्लेश होता था। उन लोगों को मैं आश्वासन देता था। वहाँ एक मोढ ब्राह्मण मिला। हम

एक ही कमरे में थे। पूछ परख करने पर पहचान हुई। क्वरेण्टाइन में खाने-पीने का काफी सुख होता है। सरकार की ओर से स्थान-बर्तन सब मिलता था। हम साथ रहते थे और साथ खाते थे। भोजन एक समय पकाते और दोनो समय खाते थे। रात्रि मे भजन की धुन मचती थी। दस दिन तो पलक भाँजने के समान निकल गये। यह भाई मुझे हैदराबाद ले गया।

हैदराबाद में सेठ चन्दूलाल हरिलाल दीवान थे। वे मोढ वणिक थे। उनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। बड़ी असामी थी। वे निज़ाम को ऋण पर पैसा भी देते थे। गुजरात में दक्षिण हैदराबाद को चन्दूलाल का हैदराबाद कहा जाता था। क्वरेण्टाइन वाला मेरा मित्र चन्दूलाल सेठ के घर यजमानी के लिए जाता था। मुझे भी वह सेठ के घर लेगया। सेठ का परिवार बहुत बड़ा था। एक साथ ही पचास पाटले पड़ते थे। सौ व्यक्तियों वाला परिवार था। उनकी समृद्धि भी बहुत थी। घर पर घोड़ागाड़ी थी। उस समय में दो घोड़ों की गाड़ी का बहुत माहात्म्य था। महाजन का वहाँ उस समय बहुत ज़ोर था। इनके विषय में यह दन्तकथा चलती थी कि निज़ाम सरकार के राजकुमार की हर शुक्रवार (जुमा के दिन) सवारी निकलती। सरकारी कारबार मे चन्दूलाल दीवान थे। उनकी हवेली के पाससे गुज़रते हुये शाहज़ादा ने ऊपर देखा और एक कन्या पर दृष्टि डाली। इस विषय को लेकर बड़ा भारी झगड़ा खड़ा हुआ। निज़ाम मध्य में पड़े। दीवान चन्दूलाल को मनाया। सरकारी कर्मचारियों के स्थान से सवारी निकालने की मनाहीं की तब जाकर झगड़े का समाधान हुआ। इतना अधिक महाजन का संघटन था। हैदराबाद में बहुत आनन्द किया। आसपास के देखने योग्य स्थानो को देखा। छ मील की दूरीपर सिकन्दराबाद मे सुन्दर तालाब है। यह हवाखोरी का स्थल है। फौज़ी छावनी है। आज भी भारत सरकार की छावनी वहींपर है। छावनी का दृश्य बड़े शहर के समान लगता है।

श्री चन्दूलाल सेठ मोढ वैष्णव थे। रोज़ रात्रि मे भागवत पारायण कथा उनके घर चलती थी। महल के बड़े आंगण में रात्रि के समय सारा परिवार एकत्र होता था और कीर्तन चलता था। वहाँ मुझे खूब अच्छा लग गया था। इस लिए १५ दिवस के लग-भग शान्ति से व्यतीत हुये।

भजन-कीर्तन करके रात्रि में सोते समय मन मे अनेक विचार उठते थे। इस जीवन का हेतु क्या है? यात्रा में निकला तो मन मे हुआ कि कोई न कोई साधु महात्मा मिल जावेगा तो इस के साथ हिमालय चला जाऊँगा। परन्तु जितने साधु मिले सब माया में फँसे हुये मिले। उनके लिए माँगकर लाना पड़े ऐसी स्थिति थी। सच्चा साधु बाहर भाग्य से ही दिखाई पड़ता है। इस समय मुझे कोई नहीं मिला। इससे मन में विचार आया करता था, जीवन के ऊपर झंझट आता था, चैन नहीं पड़ती थी। परदेश जाकर कमाने की इच्छा भी पूरी नहीं हुई और भक्ति करने का मार्ग भी नहीं खुला।

हैदराबाद से फिर कर पीछे बम्बई आया। रूपया समाप्ति पर आगया हुआ था। मोहनमाला बेंचकर उससे अन्ततः अफ्रीका जाने का विचार आया। घर से परदेश जाने का निश्चय करके निकला। वस्तु चोरी गई इससे पीछे जाने का मन नहीं होता था। रह-रह कर अफ्रीका का विचार ज़ोर करने लगा। बम्बई में हमारे गाँव का जीवराज शामजी नाम का एक लोहाणा भाई बीडी बनाने का धंधा कर रहा था। मेरे से वह लगभग पाँच वर्ष बड़ा था। उसने सूचना दी कि "तुम्हारा मामा तुम्हे ढूँढने आया है। भीमड़ी में उसके मामा की दूकान है। तुम्हारी खूब खोज किया। ढूँढ-ढाँढ कर थक गया, इस लिये भीमड़ी गया है।

मै भी भटक भटक कर थक गया था। मुझे भी क्या करना है - यह सूझता नहीं था। मन मे अनेक तरंगें उठती थीं। मन में अनेक तरंगें उठतीं फिर भी मामा का समाचार मिलते ही प्रभाव पड़ने लगा। मेरे पीछे सब हैरान हुये इसका दुःख भी हुआ। मै तुरत भीमड़ी गया। एकाएक मामा को जाकर मिला। मुझे अचानक आया देखकर मामा हर्ष से भरे हुये भेंट पड़े। उनकी आंख में आंसू आगया। मै रोया और हृदय खाली किया।

मामा को देखकर मुझे अनेक विचार आये। मामा का पहाड़ जैसा क़द्दावर शरीर, गाँव की पोशाक। कभी बाहर निकले नहीं थे। उन्हे मेरे लिये कौन कौन से दुःख उठाने पड़े होंगे, इस बात का विचार आते ही हृदय भर आया। बहुत देर बाद मामा - भानजा स्वस्थ हुये। देश का समाचार पूछा। मेरी चिन्ता में मांता जी रो - रो कर आधी हो गई हैं। रात दिन रोया करती हैं - ऐसा कहा। कहाँ कहाँ मुझे ढूँढा - इस सम्बन्ध की सारी

बातें कहीं। सुनकर मुझे बहुत आघात लगा। मामा ने धैर्य से मुझे समझाते हुये कहा– "अब हम पीछे घर चलें क्या।" मै ने ज़ोर से इनकार किया। "घर तो मै आनेवाला ही नहीं था। मुझे ज़बर्दश्ती लेजावेंगे तो परिणाम अच्छा नहीं निकलेगा।"

"तो फिर क्या करना है?" "अफ्रीका जाना है।"

"अकेले नहीं जाने दूँगा।"

"परन्तु मुझे किसी प्रकार का भय नहीं है। पहली यात्रा मे सीधा मेडागास्कर तक फिर आया हूँ। इस समय दक्षिण अफ्रीका जाना है। बड़े भाई वहाँ पर हैं। मै देश-देशान्तर मे घूमता हूँ। मुझे साथ देनेवाले की आवश्यकता नहीं। भगवान् मेरा साथी है। वह मेरा ध्यान रखेगा। आप चिन्ता न करें।"

मामा ने मुझे खूब समझाया परन्तु मैं एक से दो नहीं हुआ। मामा इतनी कठिनाई में पड़कर आये, उन्हे काठियावाड़ से भीमड़ी तक आने में क्या मुसीबतें पड़ी होंगी – उसका ध्यान आया। कहाँ पर गाड़ी बदलनी, कहाँपर जंकशन आवे, किसी भी स्टेशन का पूरा नाम नहीं आवे। उनके दुःख का विचार कर मुझे बहुत दुःख हुआ। परन्तु अफ्रीका जाने का मेरा दृढ़ निश्चय था। मैने बल देकर कहा "मामा जी! आप घर जाइये। सब को अच्छा समाचार देना। मै तो अफ्रीका जानेवाला हूँ।

बहुत समझाने के बाद मामा जी पिघले। अफ्रीका जाने की आज्ञा दी। मुझे बहुत ही आनन्द हुआ। दूसरे ही दिन हम भीमड़ी से बम्बई आये। बम्बई में आकर नौका का पता लगाया।

मामा जी ने कहा "नौका मे नहीं जाना। स्टीमर मे जावो। पैसा न हो तो पचास रूपया लाकर दूँ।"

मै ने कहा "पैसे की ज़रूरत नहीं। मै घर से काफी पैसा ले आया हूँ। मुझे नौका में ही जाना है।" मामा को स्टीमर में देश में भेजा। कोई चिन्ता न करने को कहा। मामा जी ने आशीर्वाद देकर घर की ओर प्रस्थान किया।

हमने यात्रा की तैयारी की। भाई जीवराज शामजी मेरे साथ आने को तैयार हुये। दूसरे चार भाटिया गृहस्थ मेरे साथ आने को थे। उनको-लामू जाना था। हम सबने एक नौका मे जाने का निश्चय किया।

अन्त मे मुहूर्त्त देखकर हमारी नौका अफ्रीका के रास्ते महासागर मे चल निकली।

११

दूसरी यात्रा

मेरी दूसरी यात्रा प्रारंभ हुई । नौका के लिये हवा अनुकूल थी । वायु सुन्दर चल रहा था । नौका वेग के साथ चल रही थी । नौका को जब अनुकूल पवन मिल जाता है तब वह साधारण स्टीमर जैसा वेग पकड़ती है । अब हम पर समुद्री-यात्रा का प्रभाव नहीं पड़ता था । पहली यात्रा मे भी चक्कर नहीं चढ़ता था । इस समय तो समुद्र के साथ मैत्री हो, इस प्रकार नौका के ऊपर के भाग में मैं फिरता था।

हम निर्विघ्न लामू पहुँच गये। वहाँ पर भाटिया गृहस्थ उतरे। उनका माल उतारना था । एक सप्ताह तक नौका को रुकना था । हम भी नीचे उतरे ।

शहर मे भाटियों की एक धर्मशाला अच्छी थी – उसमें हमने उतारा किया । शहर से सीधा-सामान ले आते थे, रसोई बनाकर खाते थे और सबेरे तथा सायंकाल को घूमने जाते थे । नारियल और आमों के झुण्ड मे फिरने से बहुत आनन्द मिला ।

एक बार समुद्र में स्नान करने गया । तैरते हुये बहुत आगे निकल गया । ध्यान नहीं रहा । अचानक समुद्र का ज्वारभाटा शान्त हो गया । पीछे तो ज्यों ज्यों किनारे आने का प्रयत्न करता था त्यों त्यों अन्दर खिंचता जाता था । मन मे हुआ कि "आज सौवाँ वर्ष पूरा होने को है । "

मै तरंगों के साथ बहा जाता था । शरीर में पूरी ताक़त थी । तैरने से थक जाने का डर नहीं था । परन्तु दूर खिंच जाने पर गहरे पानी में मगर अथवा कोई अन्य जानवर खींच ले जावे तो क्या हाल हो – इसकी चिन्ता थी । भगवान् की प्रार्थना शुरू की । इतने में किनारे के पास कितने ही देशी पोत पड़े थे, उनमे से किसी की दृष्टि पड़ी। इन को मालूम पड़ा कि कोई दो आदमी खिंचे जा रहे हैं । फौरन छोटी बोट लेकर मल्लाह दौड़ पड़े और देखते देखते पहुँच गये । मुझे किश्ती मे ले लिया । मै रोने जैसा हो

गया। प्रभु का आभार माना।

लामू के भाटिया गृहस्थों ने मेरा अच्छा आतिथ्य किया। आगे के समय में इस देश में भारतीयों की बस्ती वहुत थोड़ी थी। देश से कोई भी आवे तो उसके प्रति वहाँ के भारतीय बहुत प्रेम करते थे। दोपहर के समय हम उनकी दूकान पर बैठते थे। लामू सुन्दर था। आठ दिवस रुककर हमारी नौका आगे चली। एकदम हवा अच्छी थी। दो ही दिन मे मोम्बासा पहुँच गया।

मोम्बासा मे महाशय ज्ञानी करके जामनगर के एक भाई रहते थे। उनके भोजनालय मे मैं उतरा। मेरे पास सिर्फ पन्द्रह रूपये बँचे थे। जीवराज शामजी का भाई मोम्बासा मे नौकरी करता था। भाई जीवराज ने मेरे पास से चालीस रूपया हथउधरा के रूप में थोड़े दिन मे वापस करने की शर्त पर लिया था। इन्हो ने कहा था कि मोम्बासा जाकर वे अपने भाई के पास से दिला देंगे। परन्तु इनका भाई खाना-पीना और पन्द्रह रूपये के वेतन से नौकरी करता था। उसके पास कोई बचत नहीं थी। फिर भी इन्हो ने अपने वेतन में से अग्रिम लेकर पन्द्रह रूपया मुझे और पन्द्रह रूपया भाई जीवराज को दिया।

मोम्बासा पहुँचकर मै ने दो पत्र लिखे। एक अपने चाचा जी को जो जिंजा मे थे और दूसरा दक्षिण (अफ्रीका) मे रहनेवाले अपने भाई को। बड़े भाई को लिखा " मेरे आने के लिए परमिट निकलवालें, जैसे भी हो मुझे वहाँ आना है।

परन्तु भाग्य ऐसी वस्तु है कि मनुष्य को जहां न जाना हो वहां भेज देता है और जहां जाना हो वहां से रोक रखता है। इसमे मनुष्य की बुद्धि काम कर सकती नहीं। इसका ही नाम भाग्ययोग है।

मोम्बासा मे कच्छ के रईस केशवजी आनन्दजी का परिवार था। आज भी है। भाई जीवराज और मैं इनके ओट पर बैठे। सेठ केशवजी आनन्दजी का भागीदार हुक्का चढ़ाकर पाटला पर बैठा था। उसने हमारे सामने देखा। हुक्के की एक दो फूंक ली। बाद में पूँछा " बालक ! तुम कौन हो ? "

" लोहाणा। "

" कहाँ जाना है ? "

" दक्षिण अफ्रीका जाना है। वहाँ पर हमारा कुटुम्ब है।

मेरा बड़ा भाई है। भाई के श्वसुर भी हैं। परमिट मिले तो जाने का विचार है।"

"परमिट मिलने में कितना समय लगेगा?"

"कहा नहीं जा सकता। समय पर मिले कि न मिले। बड़े भाई की वहाँ पर दूकान है। मुझे बुलाया है।"

"परन्तु यहाँ बैठकर क्या करोगे?"

"परमिट मिले तबतक नौकरी मिले तो नौकरी करूंगा।"

"कहाँ उतरे हो?"

"होटल मे।"

थोड़ा विचार कर उन्होंने प्रकट किया "वर्ष का दो सौ रूपया वेतन - खाना-पीना, कपड़ा-लत्ता आदि दूसरी वस्तुवों सहित। जंज़ीबार की दूकान पर काम करना है। यदि इच्छा हो तो भेज दूं।" मैने उत्तर दिया -"मेरे पिताजी के बड़े भाई का लड़का लोरेंजो मार्किस मे है। मेरा बड़ा भाई दक्षिण मे है। परमिट मिले तो वहाँ जाने का मेरा विचार है। परमिट आजाने पर मैं नौकरी छोड़कर जा सकूं - इस शर्तपर आप को जंज़ीबार जाने को तैयार हूं।" परमिट मिलने में इतना समय सहज मे जावेगा, ऐसा निश्चय कर उन्होने यह शर्त स्वीकार करली। जंज़ीबार जाने को मै तैयार हुआ। भोजनालय का पैसा चुका दिया। भाई जीवराजको रामराम किया। दूसरे दिन स्टीमर मे जंज़ीबार पहुंचा। सेठ केशवजी आनन्दजी की दूकान मे नौकरी प्रारंभ की।

जंज़ीबार में व्यापारी की दूकान में नौकरी करना - यह एक कसौटी थी। मुझे कोई भी कठिन कार्य हो सरल लगता था। मैने कामकाज संभाला। लिस्ट के अनुसार माल लेआना, कस्टम मे भरवाना और रसीद लेआना। जंगल की खरीदी लवंग आती थी तो काम की बड़ी भीड़ रहती थी। दोपहर को १२ बजे खाने और आराम करने के लिए दो घण्टे मिलता था। सारा दिन काम रहता था। सेठ ८ बजे आकर भोजन करते थे। भोजन करके फिर दूकान पर आते थे, इसलिए मुझे उधार की यादी और पैसे के लिए लम्बी थैली लेकर वसूली पर जाना पड़ता था। रात को दस बजे तक वसूली चलती थी। कहीं से नोटें मिलती थीं, कहीं से नक़द मिलता था, किसी जगह पर मिलता था और किसी जगह नकार मिलता था। जंज़ीबार के सेठियों का यह एक अलिखित

नियम था " बाद मे आना मेहताजी " ऐसा कहते थे। इस लिए तीसरे दिन जाना होता था - ऐसा रिवाज़ पड़ गया था। जंज़ीबार मे उधार की वसूली बहुत कठिन थी। महीने मे एकजोड़ा जूता घिस जाता था। कार्यकर लोगों को धक्का खिलाने मे जंज़ीबार के सेठियों को कुछ नहीं लगता था। रात्रि के दस बजे ठण्ढे कलेजे जवाब देते थे -" मेहताजी फिर आना " सुविधा हो तो भी ऐसा उत्तर देते थे। उद्योगी की जीभ चलती है और नौकर के पग- यह कहावत जंज़ीबार के हमारे अनुभव मे खरी उतरी।

रात्रि मे लगभग दश बजे उधार - वसूली से पीछे आकर दूकान पर बैठना होता था। सेठ बैठा हो तब तक सोया नहीं जा सकता था। वैसे ही दूकान भी बंद नहीं होती थी। सेठजी ११ बजे तक बैठते थे। उनके सामने झपकी नहीं खाई जा सकती थी, इस लिये दूकान के अन्दर थैली के आश्रय से बैठे - बैठे नीद का झोंका खाता था। इतने मे सेठ अचानक बुलावे- " लड़के पानी ला। " इस लिये झंपकी ले कर उठता था, पानी का लोटा भर कर देता था और दूसरे फुटकर काम - काज करना होता था। सेठ के जाने के बाद दूकान मे ही नीचे सो रहना होता था। हवा नहीं मिलती थी फिर भी थके - थुके होने से गाढ़ निद्रा आ जाती थी।

प्रातःकल सबेरे पांच बजे नीद उड़ जाती थी। अन्दर में नालीवाला सण्डास था। गाँव में रहने से जंगल मे खुले जाने की आदत थी इस लिए यह गंदगी असह्य लगती थी। माथा चकरा जावे तिस पर भी सहन करने से ही छुटकारा होता था। शौच, दन्तधावन आदि कर के, गादी - तकिया झाड़कर, दूकान को साफ - सूफ कर के दिन निकलने के पूर्व तैयार हो जाता था। ऊपर से मुनीम - सेठ आते थे। केशोद के सेठ प्रागजी रामजी नथवाणी जंज़ीबार की दूकान के मुनीम थे। डाक्टर नथवाणी और दिल्ली की लोक - सभा के सदस्य नरेन्द्र नथवाणी के वे पिता लगते थे। मुझे बहुत प्रेम से रखते थे। उनका वात्सल्यभाव मुझे अब भी यांद आता है।

दक्षिण अफ्रीका की परमिट के लिए फोटो निकलवाकर फार्म भेजा था। वहाँ से परमिट का इनकार आया। लोरेन्जो से पत्र आया कि- " सीधा दक्षिण अफ्रीका के लिए परमिट नहीं मिलता है।

पहले तुम यहाँ आवो। यहाँ से धीरे धीरे दक्षिण मे प्रवेश हो जावेगा।" मैने उन्हे इनकार लिख दिया- "मुझे वहाँ नहीं आना है। सीधा परमिट मिले तो, दक्षिण जाना है।"

बड़ेभाई ने लिखा- "डेलागोवा तक आवो। वहाँ से रास्ता निकलेगा। मै वहाँ पर तुम्हे मिल सकूंगा।"

परन्तु भाग्ययोग भिन्न ही था। मैंने उन्हे इनकार लिख दिया। संयोगवश उस दूकान के हिस्सेदार सेठ मूलजी भाई की पत्नी देश से आ रही थीं, स्टीमर में किसी को चेचक निकली इस से इन्हे करेण्टाइन मिला। उनका रसोइया किसी कारण से भाग गया, इस लिए उन्हो ने मुझे रसोई बनाने को कहा। मैने स्वादिष्ट रसोई बनायी। उनके मन मे हुआ- "इसे रसोइया के रूप में रख लेवें।" मुझ से पूछा - मैने जवाब दिया- "मैं रसोइया के रूप मे नहीं रहूँगा।" आपको कठिनाई है इस लिये छोटे भाई के रूप में थोड़े समय तक रसोई कर के खिलाऊँगा।

मैने एक मास तक रसोई की। इतने में एक दिन मालपूवा बनाने मे कोई भूल हुई। सेठ ने डाँट दी। इसी समय वेतन बिना लिये होटल में चला गया। श्री प्रागजीभाई ने दो दिन समझाया। मने साफ नकार किया। इन लोगों ने पहले तो वेतन नहीं मिलेगा - ऐसी धमकी दी। मैने धमकी की परवाह नहीं की। एकाध मास बाद उन्हो ने वेतन भेज दिया।

भाग्य की बलिहारी है। इन सेठ केशव जी आनन्द जी के चिरंजीवि मथुरादास भाई को टाँगानिका मे अपनी सुगर फैक्टरियों और कपड़े की एजेंसियाँ हमने दी हैं। वे मुझे सेठ कहते हैं। मै उन को सेठ कहता हूं। पचास वर्ष से कुटुम्ब जैसा सम्बन्ध अखण्ड चल रहा है। यह ईश्वर कृपा का फल है।

अपने चाचा जी को युगाण्डा मे मैने पत्र लिखा। उन्हो ने मुझे काम के लिए पच्चीस रूपया सेठ केशव जी आनन्द जी की दूकान के पते पर भेज दिया परन्तु मुझे पैसे की आवश्यकता नहीं थी। मै खूब किफायत सारी के साथ चलता था। बीड़ी, सिगरेट, पान आदि का कोई व्यसन नहीं था। मेरे पास थोड़ी बचत हुई थी। चाचा जी का पैसा मनीआर्डर से पीछे वापस भेज दिया

छोटेपन से मुझे मित-व्ययिता करने की आदत थी। यह

पैतृक सम्पत्ति के रूप में मिला हुआ सद्गुण था। किफायतसारी तीसरा बन्धु है। आय की अपेक्षा व्यय सदा थोड़ा रखना चाहिए। इन सभी स्वर्णिम सूत्रों को मैने बचपन मे ही सीखा था। प्रतिष्ठा और आन को रखने के लिए हर एक व्यापारी को इन नियमों का पालन करना चाहिए। सादापन और किफायतसारी घर में तथा व्यापार में बहुत बरकत देते हैं। मितव्ययिता से जीवन बिताने वाला किसी दिन पीछे नहीं हटता। आज के युवकों में ये गुण कम दिखाई पड़ते हैं। बोलने चालने में जहां एक शब्द से चले वहां दो शब्द नहीं प्रयुक्त करना चाहिए, लिखने में जहां एक वाक्य से काम चले वहां दो वाक्य नहीं लिखना चाहिये। आगे चलकर मेरे पास प्रभु का दिया हुआ पैसा हुआ। तिसपर भी मुझे कोई दुर्व्यसन लगा नहीं। आवश्यकता पड़ी वहां लाखों का व्यय किया। पाई भर का भी दुरुपयोग होने नहीं दिया।

इस प्रकार दक्षिण अफ्रीका जाने की इच्छा थी और मै पूर्व में चला गया। अपना निश्चय किया हुआ कुछ होता नहीं। "मनुष्य समझता है कि मै करता हूँ परन्तु हरि जो करता है वही होता है।"

इस अनुभव की वाणी के अनुसार देश से दक्षिण अफ्रीका जाने के लिए निकला था परन्तु भाग्य मुझे पूर्व अफ्रीका खींचकर ले गया। जंज़ीबार से स्टीमर मे मोम्बासा गया।

मोम्बासा से ट्रेन मे बैठकर सीधे युगण्डा जाने को रवाना हुआ।

१२

केनिया – युगण्डा रेलवे

इस समय युगण्डा रेलवे नई ही बांधी गई थी। इसके निर्माण मे भारतीयों की बड़ी भारी सहायता थी। केनिया – युगण्डा रेलवे, वहाँ का व्यापार, इस प्रदेश के शहरों अथवा गाँवो आदि प्रत्येक के विकास में भारतीय व्यापारियों, इन्जिनीयरों, क़ारीगरों और मज़दूरों आदि ने बड़ा साहस कर के अपना भाग अदा किया था। इसका इतिहास इस स्थान पर देने से पाठकों को सच्चा विवरण ज्ञात होगा और आनन्द मिलेगा।

ब्रिटिश ईस्ट अफ्रीका कम्पनी के पास से सन् १८९३ में इम्पीरियल सरकार ने युगण्डा का अधिकार संभाला। तदनन्तर केनिया – युगण्डा रेलवे बाँधने का प्रारंभ मोम्बासा से हुआ। इस रेलवे के निर्माण मे भारीं जोखिमों का सामना करना पड़ा। सारा रास्ता पहाड़ी और जंगलोंवाला था। उसमे बसनेवाले जंगली लोग वहम और जुनून से भरे हुये थे।

उनकी सहायता रेलवे बाँधने में ली जा सके ऐसा नहीं था। इस लिए ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सहायता से यह काम प्रारंभ हुआ। दक्षिण अफ्रीका मे डरवन से जोहान्सबर्ग रेलवे प्रारंभ हुई तो उस समय वहाँ के नेटिवों ने भी कोई सहायता नहीं की थी। वहाँ भी भारतीयों ने ही मुख्य सहायता की थी। केनिया – युगण्डा रेलवे का भी ऐसा ही बना। केनिया – युगण्डा की देशी प्रजा इस समय आधुनिक सुधारों से बिल्कुल अनभिज्ञ थी। अपने देश मे भी पहले रेलगाड़ी के विषय में ऐसा ही भ्रम और अज्ञान गाँववालों में था।

सूरत के इतिहास में लिखा है कि जब बम्बई से सर्व प्रथम रेलगाड़ी गुजरात में आयी, तो गुजरात के भोले लोग नारियल लाते थे। आगगाड़ी के एंजिन के सामने नारियल - फल डालकर इस महादेवी शक्ति की पूजा करते थे। इस ज़माने के भोले गुजराती मानते थे कि अब कलियुग आ चुका है, उसकी यह निशानी है,

नहीं तो बैल अथवा घोड़ा जोते बिना इस प्रकार गाड़ी ऐसी दौड़ती कैसे है ?

परन्तु केनिया के जंगली तो इन्जिन की सीटी सुनते ही दूर के जंगल में भग जाते और 'नांदी' जाति के लोग रातोरात आकर पटरी उखाड़ डालते थे। युगण्डा रेलवे का कार्य भारतीय मज़दूरों द्वारा प्रारंभ कर दिये जाने के पश्चात् ज्यों ज्यों रेलवे आगे बढ़ती गई त्यों त्यों अफ्रीका की जंगली प्रजा, वहाँ के शेर, हाथी, गैण्डा, भैंस आदि पशु इस कृत्रिम और परदेशीय वाहन से युद्ध करने में उतर पड़ें। इनको कोई आन्तरिक ही प्रेरणा हुई कि ये लोग अपना संहार करने आते हैं अतः उसके पूर्व हम इनका ही संहार कर डालें।

रेलवे लाइन पर काम करते हुये इन्जिनीयर तथा मज़दूर जंगल भरमे तम्बू और छोटी कनातें डाल कर पड़े होते थे, दिन मे लाइन पर कार्य चालू हो, रात मे तम्बू मे सोये हों, अथवा कोई भी अवस्था हो यह चिन्ता लगी रहती थी कि जंगल से सिंह अथवा चीता आ पहुँचे गा और एकाध मज़दूरें को उठा ले जावेगा। रावटी के बाहर सन्त्री भरी बन्दूकें लिये हुये पहरा देते थे। तिसपर भी पीछे से तम्बू फाड़कर घुस जाते थे और सोते हुये मज़दूरें को उठा के लेकर भगजाते थे। यह इस घोर जंगल में हिंसक पशुवें से रक्षा करने में कठिनाई थी। रातमे सोते समय मज़दूरें के दिलमे खटका रहता था कि प्रातः उठेंगे तो न जाने किसको शेर उठा ले गया होगा। ऐसे भय मे रात्रि बीतती थी। प्रातःकाल मज़दूरें की गणना करते समय कोई एक कम हुआ रहता था।

अपनी पुरानी लोक-कथावें में आता है कि अमुक गाँव में रात्रि में राक्षस आता था और अमुक को उठा ले जाता था। इस ही प्रकार केनिया - युगण्डा रेल्वे लाइन पर मज़दूरों के तंबुवों में एक प्रकार के भय का दौर दौरा रहता था। रात्रि-दिवस किसी भी समय जो कोई मज़दूर अकेला पड़ता था फौरन् वह सिंह का भोग बन जाता था। जंगल से कई वार तीन चार सिंहों का समूह एकदम आता था। मज़दूरें के रहने के स्थान पर आक्रमण करता, तम्बुवें को फ़ाड़कर सोते हुये मज़दूरें को खींचकर नज़दीक के जंगल में भग जाता था और वहाँ पर इस समूह का सिंह निश्चितता से दूमजरें को फाड़ कर खा जाता था।

इसी प्रकार जब सोता मजदूर सिंह के पंजे में अचानक पड़ जाता उस समय उसकी करुण चिंघाड़ से भयंकर जंगल रात्रि की गंभीर शान्ति में गूँज उठता था। इन शेरों को संत्री की गोली का भी डर नहीं था।

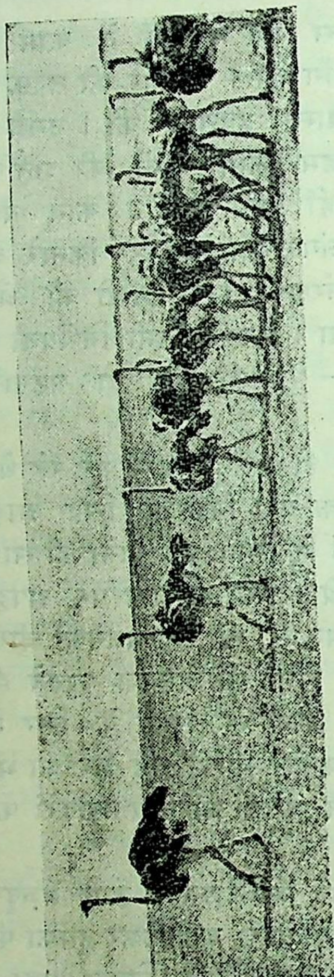
ऐसी घटनायें प्रतिदिन घटीं। इस लिए मज़दूरों ने काम बंद कर दिया। देश मे वापस जाने की माँग की। सरकार की तरफ़ से यह माँग शीघ्र स्वीकार हो इस वास्ते हड़ताल की। उन्हो ने सरकार को विशेषरूप में बताया कि "हम काम करने की शर्त पर आये हैं, सिंह का शिकार बनने को नहीं आये हैं"। काम बन्द करके सभी मज़दूर सिंह से भरे हुये जंगल को छोड़कर किनारे की ओर चल निकले। सरकारने उनके संरक्षण की गारण्टी की और समझा कर पुनः काम पर वापस लगाया। सिंह कितनी निर्भयता से भारतीय मज़दूरों का आखेट करता था- इसकी एक दो घटनायें यहाँ पर दी जाती हैं।

एक बार रेलवे लाइन पर कितने ही मज़दूर काम कर रहे थे। संध्या होने को आयी थी। इतने मे एक बड़ा विकराल सिंह झाड़ी मे से निकला। काम करनेवाले मज़दूरों मे पिता-पुत्र दोनो ही साथ थे। दोनो चार छ हाथके फासले पर थे। सिंह ने बाप पर झपट्टा मारा। शेर के पंजे पड़ते ही इस बूढ़े मज़दूर की करुणाजनक चीख़ सुनाई पड़ी— "बेटा! मैं जाता हूँ"। पिता की आवाज़ सुनते ही उसके युवा पुत्रने कुल्हाड़ी ले दौड़कर ज़ोर से सिंह के सिर में कुल्हाड़ी जमाया। कहा जाता है कि एक दो मारसे बूढ़े शेर का भी रामनाम सत्य हो गया। इस बूढे शेर ने अनेकों भारतीय मज़दूरों का शिकार किया था।

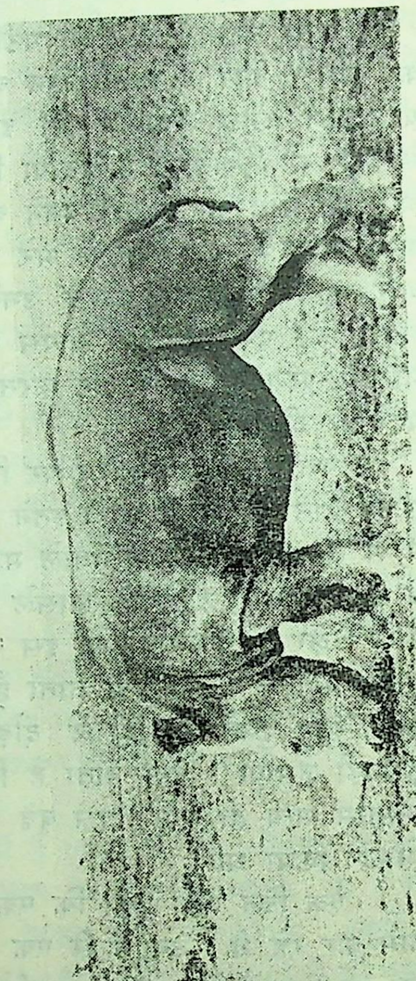
एक दिन ऐसा हुआ कि एक स्थान पर लाइन के ऊपर मज़दूर काम कर रहे थे। उन में से एक आदमी थोड़ी दूर बैठकर हुक्का पी रहा था। इतने मे पास की झाड़ी से एकायक सिंह निकल पड़ा। झपाटा मारकर उसने इस मनुष्य को उठाया। मरते मरते उसने चिल्लाहट मचायी : "मै जाता हूँ, मेरा हुक्का पहुँचाना"

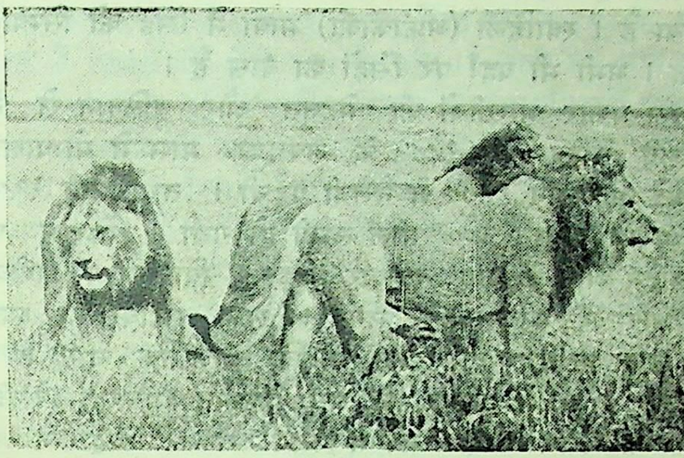
इस प्रकार केनिया-युगण्डा रेलवे लाइन ने सैकड़ों भारतीयों का बलिदान लिया है। पुराने समय में वहाँ रहते हुये भाई बात करते हैं कि वाई से सिम्बा स्टेशन तक की रेल की पटरी भारतीय मज़दूरो की हड्डियों पर बिछाई गई है। इस सौ मील लम्बी लाइन में

शुतुर्मुर्ग

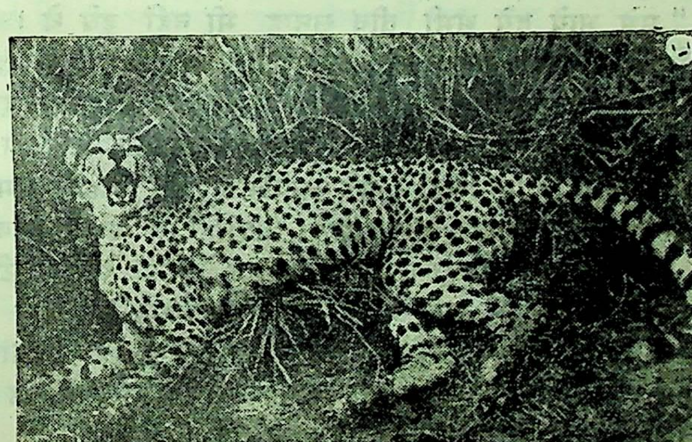


गैंडा





सिंह



चीता

अधिक से अधिक भारतीय खप गये हैं। यह स्थान शेरों का घर गिना जाता है। इसी कारण से इस स्टेशन का नाम भी "सिम्बा" रखा गया है। स्वाहिली (अफ्रीकाकी) भाषा में सिंह को सिम्बा कहा जाता है। अभी भी वहाँ पर सिंहों का वास है।

इस प्रकार भारतीयों की मेहनत और बलिदान से तैयार हुई रेलवे लाइन सन् १८८५ के अक्तूबर मास मे मोम्बासा से प्रारंभ हुई और सन् १८८८ मे नैरोबी पहुँची। तथा सन् १९०१ मे किसुमू पर्यन्त पहुँचते ६०० मील लम्बी हो गयी। किसुमू पर्यन्त रेलवे लाईन आने के बाद व्यापार बढ़ा। विक्टोरिया सरोवर में नौका और स्टीमरें घूमने लगीं। सारे सरोवर का व्यवहार किसुमू बन्दर के द्वारा होने लगा, जो कि आज तक चालू है।

सन् १८९८ में कर्नल जे. एच. पीटर्सन युगण्डा रेलवे की कामगीरी के लिए विशेष रूप मे आये थे। उन्हो ने अपने अनुभव की एक पुस्तक लिखी है। उसमें से कुछ एक उद्धरण यहां देने से केनिया-युगण्डा रेलवे के लिए भारतीयों द्वारा दिये गये बलिदानो का विशेष और सच्चा ख्याल आ सकेगा। यह किस्सा बहुत ही करुण और कुछ सीमा तक विनोदात्मक भी है।

"मुझे आये हुये अभी तीन सप्ताह भी नहीं हुये थे। एक जंगल से होकर रेलवे लाइन ली जानेवाली थी। वहाँ पर हमारा पड़ाव था। हम तम्बुवों मे सोये थे। उस रात को हम देर से सोये इस लिए ज़ोर की नींद आई। लगभग सवेरा होने को था कि मुझे एकाएक जागना पड़ा। मेरे सिपाहीने मुझे कहा 'जमादार ऊगमसिंह को सिंहने फाड़ खाया है'। बादमे स्वयं अपनी आंखो के सामने देखे हुये एक मज़दूरने कहा 'वस्तुतः घटना ऐसे घटी कि "जमादार ऊगमसिंह छ सात मज़दूरों के साथ तम्बू मे सोये थे। मध्यरात्रि में एक सिंह ने तम्बू में मुह डाला। तम्बू के दरवाज़े के पास जमादार सोये हुये थे, उनको गर्दन से पकड़ा। ऊगमसिंह बहुत ताक़तवाले थे। 'छोड़' ऐसी चिल्लाहट उन्होने की, सिंह की गर्दन के चारों ओर हाथ कसा परन्तु सिंह इन्हे खींच ले गया। हम सब भय से काँपते हुये ऊगमसिंह की कराहट सुनते रहे। इन्होने सिंहसे छूटने के लिए जो तड़फड़ाहट एवं संघर्ष किया वह अभी भी दृष्टि मे नाँच रहा है'।

एक समय दूसरे चौदह मज़दूर एक बड़े तम्बू में सोये थे।

एकाएक अर्धरात्रि में भयानक सिंह ने तम्बू पर आक्रमण किया। सभी भयभीत हो जाग उठे। सिंह ने एक मज़दूर के कंधे पर पंजा मारा, इसका कन्धा चीर डाला, परन्तु सिंह इस मज़दूर के बदले में उतावल में चावल की बोरी उठा ले गया। थोड़ी दूर जाने पर उसे अपनी भूल मालूम हुई, इस लिए छलांग मारकर जंगल में चला गया।

एक समय मेरे अस्पताल मे एक करुण घटना बन गई। अस्पताल के तम्बू में आठ मरीज़ सोये थे। रात्रि में एक सिंह घुस आया और दो व्यक्तियों को घायल किया, तीसरे एक आदमी को उठा लेजाकर फाड़ खाया। दूसरे दिन हमने अस्पताल बदल दिया। इसके चारों ओर रक्षार्थ प्रतिबंध बाँध दिया। वहाँ से भी अस्पताल के एक मिस्त्री को शेर उठा लेगया।

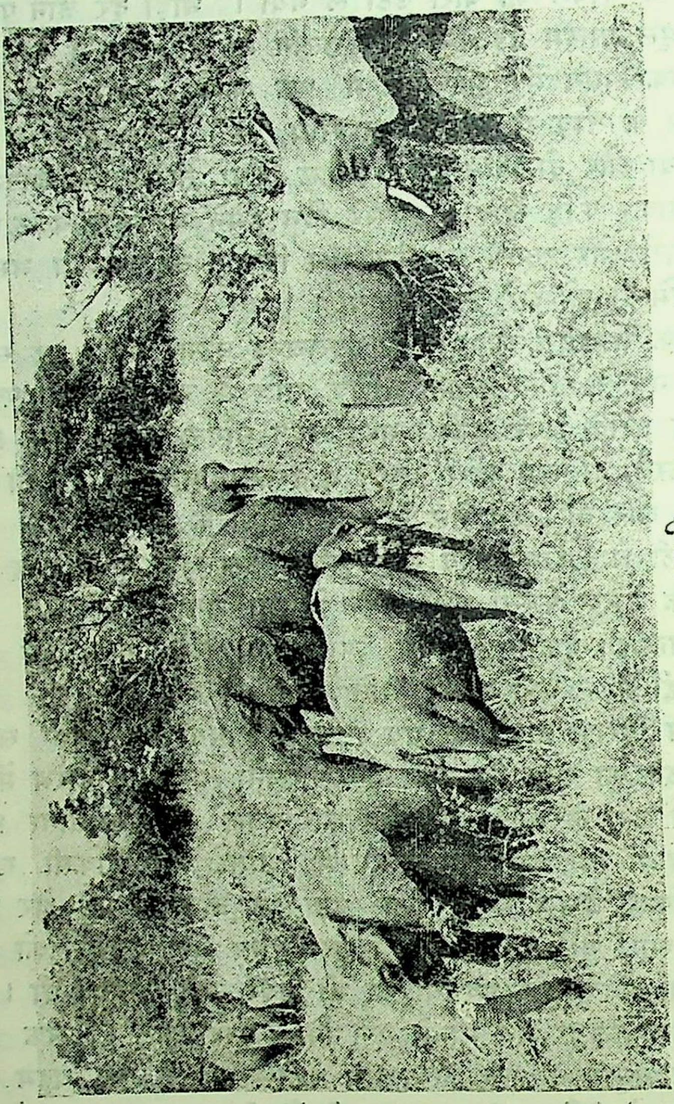
एक भारतीय व्यापारी की दिलचस्प घटना घटी। यह साहसी व्यापारी गधे के उपर बैठकर अधिक रात्रि में जा रहा था। एकाएक एक सिंह उसके ऊपर कूदा। गधा सख़्त घायल हुआ। सिंह इसको समाप्त करने जा रहा था। इतने में इसके दोनो पंजे गधे की पीठ पर दोनो ओर बाँधे हुये तेल के खाली डब्बों के छेद में अँटक गये। डब्बे खाली थे। इससे खूब खड़खड़ाये। इस आवाज़ से सिंह ऐसा भड़का कि हुंकार करता हुआ जंगल में भग गगा।

सिंह की हुँकार से गधे आँख मूद लेते हैं। हमें कोई देखता नहीं हैं - ऐसी इनकी मति होती है।

इस हिंसक प्राणी का भय इतना बढ़ गया कि तीन सप्ताह पर्यन्त रेलवे का काम निरन्तर बन्द रखना पड़ा। प्रारंभ में तो मनुष्य को उठा ले जाने का सिंह का प्रयत्न निष्फल जाता था। परन्तु बाद में तो यह नियमित रूप में आता और किसी खटके के बिना किसी बेचारे मज़दूर को उठा ले जाता। यह शेर ऐसी चुपकी के साथ युक्तिपूर्वक तम्बू में घुस जाता और मज़दूरों को उठा लेजाता कि अनेक वार संत्रियों को भी खबर नहीं पड़ती थी।

इससे मज़दूर यह मानने लगे कि "सिंह कोई हिंसक पशु नहीं वल्कि मनुष्य के रक्त का प्यासा राक्षस है।" इन्हे वहम था कि वहाँ के दो नेटिव पटेल गुज़र गये हैं, वे भूत बनकर आते हैं और अपने प्रदेश में डाली जाती हुई इस रेलवे लाइन को देखकर बदला लेने के लिए सिंह का रूप धारण करते हैं।"

केनिया-युगण्डा रेलवे के इस रोमांचकारी संक्षिप्त इतिहास को



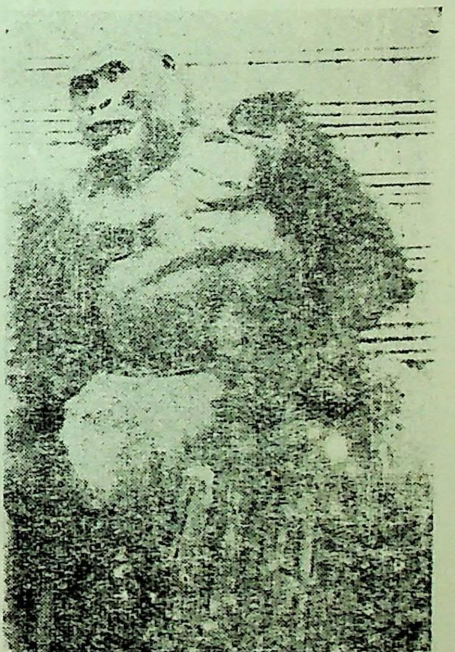
हाथी

यहाँ इस लिये दिया है कि इससे पाठक समझ सकें कि केनिया-युगण्डा के व्यापार को समृद्ध करने में जिस रेलवे ने साहाय्य दिया है उस रेलवे के बाँधने मे अनेक भारतीयों का मूल्यवान् बलिदान दिया गया है। केनिया और युगण्डा दोनो ही संस्थानो के जमाने मे यह इतिहास उल्लेखनीय है।

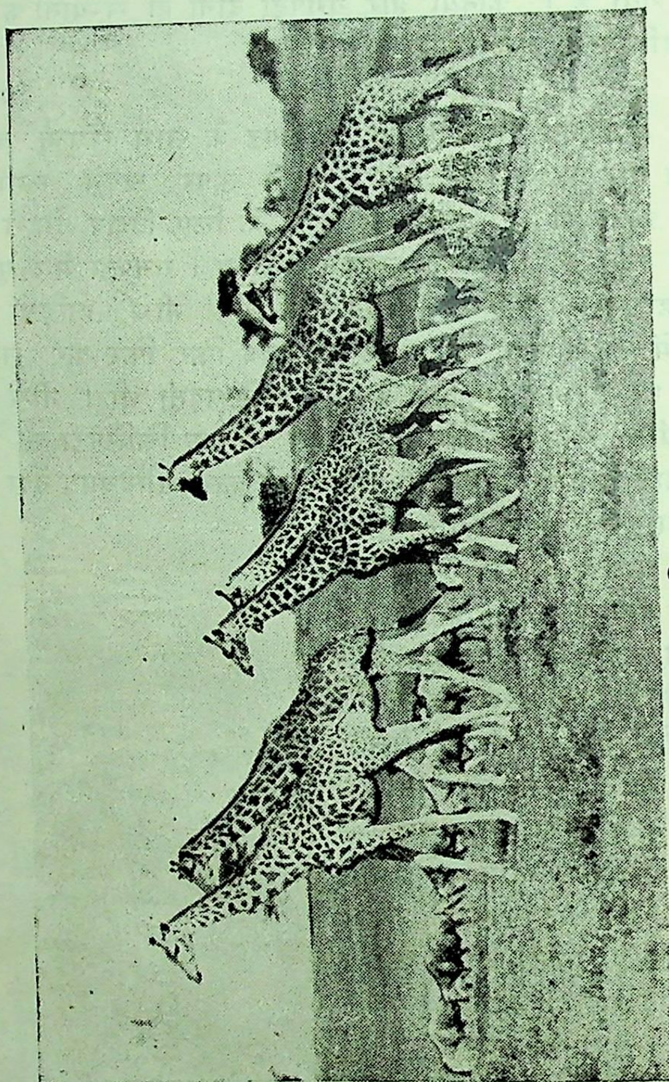
× × ×

मोम्बासा टापू को अफ्रीका खण्ड के साथ संयुक्त करने वाले मकूपा पुल को लाँघकर हमारी गाड़ी ऊपर चढ़ने लगी। आगे दोहरे इंजिन थे। (पहाड़ पर चढ़ने के लिए विशेष दोहरी कोटि के इंजिन आते हैं।) पीछे एकहरा इंजिन था। युगण्डा मेल पूरे वेग में जा रहा था। नारियल के वन घिरे थे। नीचे पहाड़ियों के संकरे मार्ग में नज़र करने पर जंगल का दृश्य फिर फिर कर समक्ष खड़ा होता था। रेलवे सर्पाकार रूप मे आगे बढ़ती थी। नीचे मोम्बासा का बगीचा सागर में तैरने लगा। दूर दूर तक किलिण्डी का बन्दरगाह दिखलायी पड़ता था। आगे चलते हुये कैसा सौन्दर्यमय देश देखने को मिलेगा, इसका ख्याल आता था।

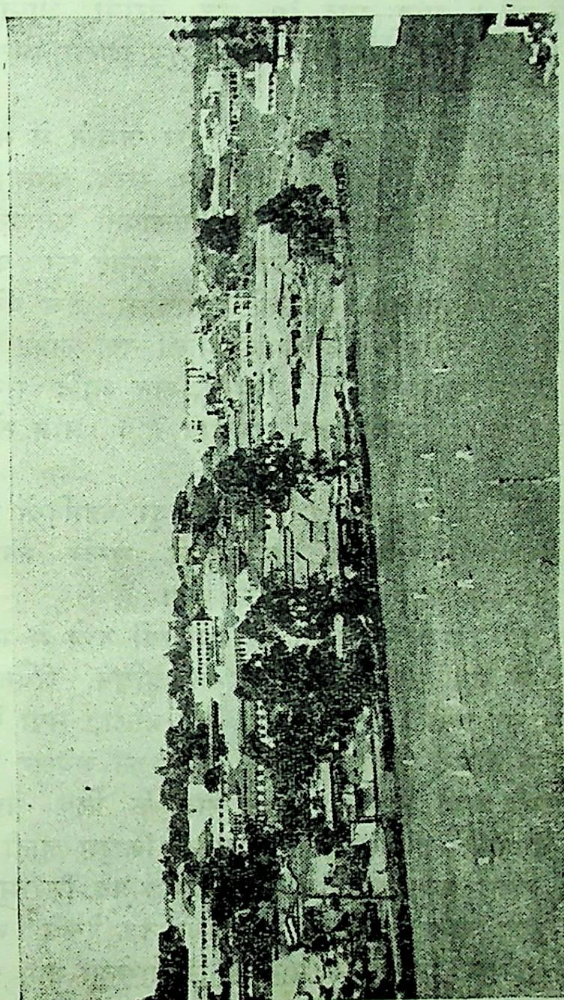
परन्तु पहला स्टेशन आया चंगामे (१९२ फीट)। प्रवासी लोगों की जानकारी के लिए पाटिया पर स्टेशन के नाम के नीचे समुद्रतल से उस प्रदेश की ऊँचाई का मान लिखा हुआ होता था। दूसरा स्टेशन मज़रस आया (५३४ फीट)। इसी प्रकार चढ़ते हुये मोगू (१७०३ फीट) आया और रात्रि पड़ गई। बाहर अंधेरा होगया। डब्बे मे रोशनी हुई। मैने शतरंजी दरी को फैलाया। सवेरा हुआ, उजाला पड़ा। स्टेशन आया और सीधी दृष्टि पटिया पर गई। ईमाली (३७१८ फीट)। ठंढी चमत्कार दिखाने



गोरिला



जिराफ़



कम्पाला का एक दृश्य

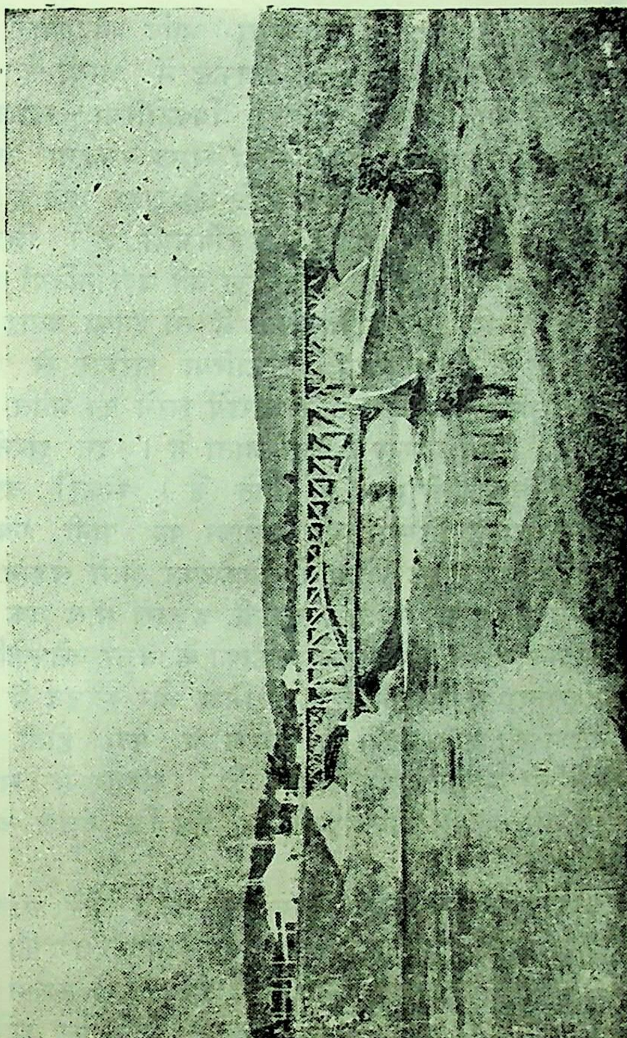
लगी। उच्च प्रदेश की ठंढक प्रकट होने लगी। मैंने कोट चढ़ाया। गाड़ी समुद्र के तल से लगभग चार हज़ार फीट की ऊँचाई पर दौड़ती जा रही थी। आस पास छोटी बड़ी पहाड़ियाँ दिखाई पड़ती थीं। जंगली पशु दृष्टि में आने लगे। उन में हिरण, ज़ेब्रा, जंगली भैंस आदि दिखाई पड़े। प्रातः साढ़े १० बजे नैरोबी आया। इसकी ऊँचाई ५,६५२ फीट है। लगभग आबू के गुरु शिखर जितना मालूम पड़ता है।

नैरोबी केनिया की राजधानी है। इस ज़माने मे नैरोबी अभी बस रहा था। तिसपर भी सरकारी आफिस, रेलवे, कचहरियाँ आदि नैरोबी मे ही थे। आज तो मकानों की विलायती बनावट, विस्तृत पक्की सड़कें, फैशनेबुल दूकानो आदि से मुम्बई का बच्चा जैसा लगता है। यूरोपियनो को गुलाबी ठण्डीवाला उच्च प्रदेश बहुत अनुकूल पड़ता है। नैरोबी के आसपास मीलों तक काफ़ी का बग़ीचा आता है। रास्ते के किनारे पर गुलमोर, सरू आदि सुन्दर वृक्षों की पंक्ति खड़ी है। नैरोबी शहर रमणीय है। आज तो वह खूब बढ़ गया है।

नैरोबी से हमारी गाड़ी आगे बढ़ी। दूर पहाड़ियों की गोद में सोया हुआ नैवाशा का तालाब गाड़ी मे से सुन्दर लगता था। सारा प्रदेश नीलाभ, पहाड़ियों से घिरा हुआ है।

गाड़ी ज्यों ज्यों आगे बढ़ती गई त्यों त्यों डब्बे मे भीड़ होती गई। शरीर मे चर्बी लपेटे हुये, चमड़े से वेष्ठित, अर्धनग्न नेटिवों से डब्बा पूरा भर गया। नया चेहरा, नई बोली, नया देश, नया वेश, तदुपरान्त तीसरी श्रेणी की यात्रा करने का अवसर मुझे मिला ही नहीं, तीसरी श्रेणी का यह अनुभव सदा के लिए याद रहेगा।

हाल मे नकुरू जंकशन से एक शाखा किसुमू जाती है और दूसरी जिंजा होकर कम्पाला जाती है। उस समय किसुमू से स्टीमर के मार्ग से जिंजा जाना पड़ता था। जिंजा तक रेलवे नहीं थी। आज नकुरू से जिंजा जाते हुये मार्ग में टिम्बोरोआ नाम का स्टेशन आता है। वह सारी दुनियाँ में सब से ऊँचा (समुद्र के तल से नव हज़ार फीट) है। वहाँ से लगभग जिंजा पर्यन्त गाड़ी नीचे उतरती है। इस रास्ते से आगे ऊपर कम्पाला पर्यन्त रेलवे लाइन हुई। उसके पश्चात् मुझे अनेकों वार जाने को हुआ है। उस समय यह वस्तु मेरे ध्यान मे आगई थी।



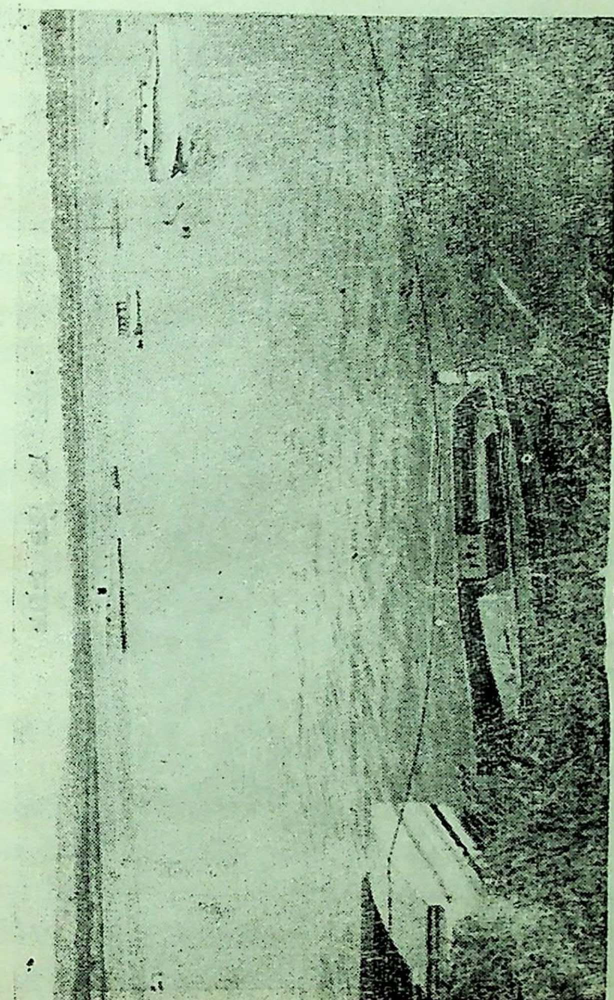
१९२८ में बँधा हुआ जिंजा के पास नाइल नदी का पुल

नकुरू जंकशन से मैं किसुमू गया। वहाँ से स्टीमर मे एण्टेबे होकर जिंजा पहुँचा। किसुमू, एण्टेबे, कम्पाला और जिंजा चारों ही विक्टोरिया - न्यांजा सरोवर के किनारे पर आये हुये बन्दरगाह हैं।

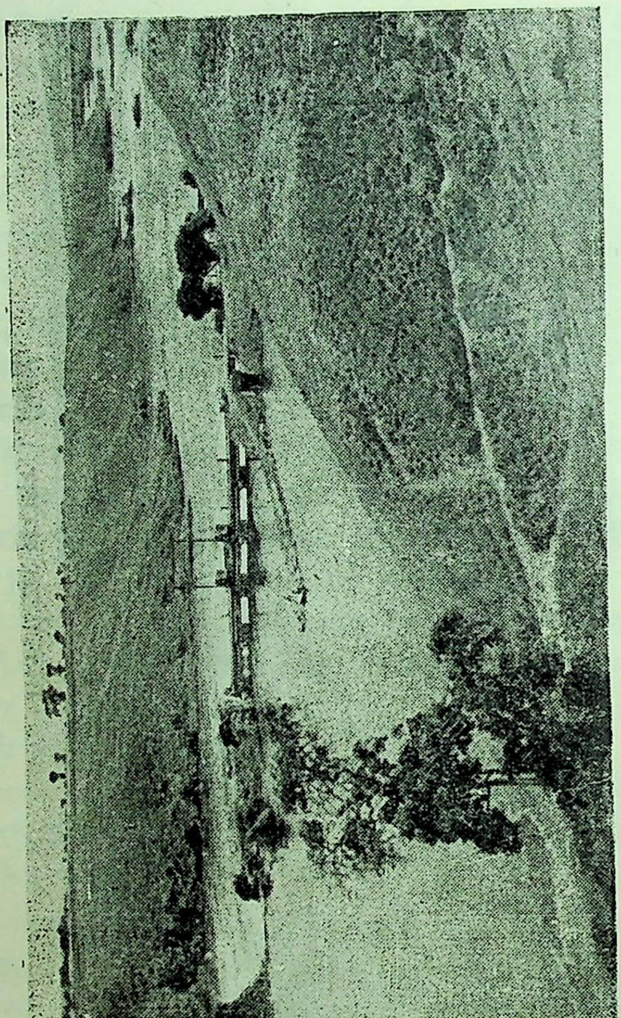
टाँगानिका में भी बुकोला, मुआंज़ा आदि बंदरगाह हैं। विक्टोरिया-न्यांज़ा २७८२८ वर्गमील के क्षेत्रफल में आयी है। यह लगभग सौराष्ट्र जितना क्षेत्रफल हुआ। विक्टोरिया - न्यांज़ा को तालाब अथवा सरोवर कहने के बजाय मीठा समुद्र कहना उपयुक्त होगा। इस सरोवर के किनारे अनेक छोटे बड़े शहर आये हैं। इस महान् सरोवर मे से ही प्रसिद्ध नाइल नदी निकली है। जिंजा के सीमाद्वार मे नाइल का मूल है। अपने देश की बड़ी नदियाँ सिंधु, ब्रह्मपुत्रा, गंगा, यमुना हिमालय से निकलती हैं तो इनका प्रवाह छोटे झरने जैसा होता है। जिस समय विक्टोरिया सरोवर से नाइल निकलती है उस समय एक साथ तीन धारायें झरने की भांति बाहर पड़ती हैं। उसे "रिपन फाल्स" कहा जाता है। इन झरनों को देखकर जगत् भर के प्रवासी मुग्ध हो जाते हैं। सैकड़ों वर्षों से यह झरना बहा करता है तिसपर भी सरोवर का पानी एक इंच बराबर भी घटता नहीं। नाइल जिंजा से निकलकर आगे सूडान तथा इजिप्त के विशाल प्रदेश को उपजाऊ बनाती, हज़ारों मील तक दोनो किनारों को फलवान् करती हुई अन्ततः अफ्रीका के उत्तर एलेक्ज़ेण्ड्रिया के पास भूमध्य सागर में मिलती है।। मिश्र और स्वेडन में उच्च दर्जे की रूई नाइल की बड़ी नहरों के कारण ही पैदा होती है। नाइल इस प्रदेश की जीवन-दात्री जननी है। संसार मे सब से बड़ी नदी मिसिसिपी ४,२०० मील लम्बी है, जब कि नाइल ४,००० मील है।

जिंजा उस समय में छोटा गाँव सा था। मेरे चाचा जी घास के झोंपड़े मे रहते थे। कोई दूकान इस समय पतरे की नहीं थी। सरकारी आफिस, दवाखाना, पुलीस चौकी - सभी मकान घास से छाये हुये झोंपड़े मे ही होते थे। जिंजा मे डिस्ट्रिक्ट कमिश्नर रहता था। पुलीस का शीर्षस्थ अधिकारी भी वही गिना जाता था। दो तीन सौ पुलीस रहती थी। जिस में थोड़े से भारतीय थे, शेष सब नेटिव थे।

जिंजा मे सेठ अलीदीना विश्राम की बड़ी दूकान थी। उस



विक्टोरिया सरोवर : जिंजा



नाहल नदी का उद्गम

जमाने में वे व्यापार के राजा माने जाते थे। वे बड़े साहसिक व्यापारी थे। केनिया, युगण्डा, टाँगानिका, काँगो और लगभग अबिसीनियाँ की सीमा पर्यन्त उनकी दूकानें चलती थीं। वे कच्छ के इस्माइली खोजा थे। जाति-पांति के किसी भेदभाव के बिना हिन्दू-मुसल्मान सभी को नौकरी देते थे। उनकी दूकानो मे एक समय पांच सौ जितने भारतीय नौकर थे। सरकार में तथा नेटिव प्रजा में उनका बहुत सम्मान था।

अकस्मात् लाखों का घाटा पड़ा। उनके भाग्य का चक्र फिरा तो इस आघात को वे बड़े धैर्य से सहन कर रहे थे। नौकरों को दूकाने सौंप दीं। सैकड़ों नौकरों का वेतन चुकाकर उन्हे भारत में भेज दिया। उतरती हुई दशा को देखने को वे जीवित नहीं रहे। उनकी स्मशान यात्रा में उन्हे अन्तिम मान देने के लिये युगण्डा के मा० गवर्नर भी उपस्थित थे। सरकार ने उनकी अच्छी सहायता की। उनके उज्ज्वल नाम को कलंक लगने नहीं दिया। सरकार ने उनकी बड़ी धनराशि के लेने देने का फैसला कर दिया। उनके पौत्रों को सरकार के खर्च से पढ़ने की सुविधा कर दी।

सैकड़ों व्यापारी बड़ा व्यापार कर गये हैं, करते हैं और करेंगे। उन व्यापारियों की उन्नति अवनति भी हुई है परन्तु सेठ अब्दुल रशीद अलीदीना जैसे दानवीर, उदार और नीतिमान् व्यापारी कम हैं। आज इस नेकदिल पुरुष को पूर्व अफ्रीका मानपूर्वक याद करता है। युगण्डा के व्यापार को खिलाने में उनका बड़ा हाथ था। युगण्डा में भारतीयों के व्यापार का श्री गणेश उन्हो ने ही किया था। आज खेती के व्यापार में युगण्डा बहुत आगे बढ़ा है। परन्तु उनकी नींव डालनेवाले वे ही थे। आजकल मोम्बासा मे सेठ अलीदीना विश्राम का बड़ा भारी हाईस्कूल चलता है। उसमे पन्द्रह सौ विद्यार्थी पढ़ते हैं।

जिंजा मे पैर रखते ही मैंने इनके विषय मे बहुत सी बातें सुनी। युगण्डा के व्यापार के राजा के रूप मे वे मेरे लिए आदर्श-रूप बने। कोमल मन के ऊपर जाने नजाने उनके नाम का प्रभाव पड़ा, जो कि बिल्कुल वास्तविक था। इस ज़माने मे उगते हुये नवजवान व्यापारियों के वे ही आदर्श थे।

१३

कमली मे दूकान

जिंजा से पैंतालीस मील की दूरी पर कमली नाम का गाँव आया है। उस समय मे जिंजा से कमली पैदल जाना पड़ता था। सवारी की कोई सुविधा नहीं थी। आसपास झाड़ी और जंगल था। गाँव बिल्कुल छोटा और झोंपड़ों से बसा था। वहाँ पर बहराम खान नाम के बलोची की एक दूकान थी। मेरे चाचा ने इसके यहां मेरी नौकरी पक्की कर रखी थी। दो - चार दिन जिंजा रुक कर मैं कमली गया।

कमली मे दूकान का काम संभाल लिया। सेठ बहराम खान बहुत भला आदमी था। मै उसे सेठ कहता और वह मुझे मेहता जी कह कर बुलाता था। मै जो कहता उस बात को सेठ स्वीकार करता था। सेठ आज्ञा नहीं देता था बल्कि हुकुम उठाता था - ऐसा कहें तो चल सकता है। कभी ऊँची आवाज़ से बुलाता नहीं था। वह बड़ा शिकारी था। हाथी का शिकार करके हाथी - दान्त ले आता था। रात्रि में अपनी भाषा में तम्बूरा के ऊपर सुन्दर भजन बोलता था। बलूची भाषा अपने को बहुत समझ में नहीं आती थी परन्तु आनन्द आता था। वह पाँच समय (पञ्चगान) नमाज़ पढ़ता था। बहुत ही धर्मपरायण था।

सेठ का व्यापार चमड़ा, हाथी - दान्त, तिल और छोटी मिर्च आदि का था। आसपास के प्रदेशों मे से ये वस्तुयें खरीद कर जिंजा भेजता था। मासिक हज़ार दो हज़ार का व्यापार था। मैंने थोड़े ही दिनो मे व्यापार को हाथ मे कर लिया। धीरे धीरे व्यापार बढ़ने लगा, दूकान जमने लगी। सेठ को सन्तोष हुआ। उन्हो ने मेरे ऊपर पूर्ण विश्वास किया। मैं सवेरे से सायंकाल तक दूकान के कार्य में व्यस्त रहता था। घर की दूकान हो - ऐसा रात दिन कार्य करता था।

दो - तीन मास में मुझे एकाध बार जिंजा जाना पड़ता था। इस समय रास्ता बहुत विकट था। पहाड़ी रास्ता, ऊभड़ खाभड़,

नदी-नाला बीच मे पड़ता था। पैंतालीस मील पैदल चलकर जाना होता था इसलिये बड़े ही सबेरे पाँच बजे तैयार हो जाता था। खाकी पोशाक, होलबूट और बिर्जिस पहनता था। बरसात के वास्ते ओवर कोट साथ मे रखता था। बिस्तरा और कपड़ा की पेटी उठाने के लिए दो मज़दूर साथ में रखता था। वे आगे आगे चलते थे। उनके हाथ में भाला रहता था। रास्ते मे ठहरना होता था तो नाश्ता-पानी करके दो घड़ी आराम लेता था। अधिकांश में सायंकाल सात बजे जिंजा पहुँच जाता था। चढ़ता खून था इसलिए थकावट नहीं जनाई पड़ती थी। भोजन पूरा खाया जाता था और काम भी वैसा ही था। व्यापार के कार्य में मेरा ध्यान ठीक लगता था। जिंजा मे वहुत ठहरने की इच्छा नहीं होती थी। काम को पूरा कर कमली वापस पहुँच जाता था। कच्चे माल की खरीद करने के लिए मुझे बार बार जंगल में जाना पड़ता था। एक बार तैयार होकर मैं निकल रहा था कि सेठ ने मुझे कहा "मेहताजी, आप सावधान और सचेत रहना। इस जंगल में चोरी का बड़ा डर है। ये लोग जादूगर होते हैं, इसलिये सचेत रहना।"

सेठ की चेतावनी को मैंने माना नहीं। मेरे स्वभाव मे एक प्रकार का साहस था। जोखिम हो वहाँ जाने में आनन्द आता था।

कमली से दूर पर जंगल मे एक गाँव मे हम पहुँचे। वहाँ नेटिव चीफ़ (पटेल) के घर पर ठहराव किया। मेरे साथ मुकादम सोया। साथ में पाँच मज़दूर थे, वे बगल के झोंपड़े मे सोये। मेरे साथ सन्दूक में कपड़ा था। मोड़ने वाली चारपाई थी। चारपाई पर मच्छरदानी लगाकर बिस्तरा बिछाकर मैं सो गया।

मध्यरात्रि के लगभग चोर आये। हम थकेथकाये गाढ़ निद्रा मे सो रहे थे। इन लोगों ने जड़ीबूटी का प्रयोग किया। किसी किस्म के वृक्ष के छिलके का चूरा ऊपर छिड़का। पहले मज़दूरों के ऊपर छिड़का और उन्हे बेहोशी मे डाल दिया। पीछे हमारे झोंपड़े मे आये। हमारे ऊपर भी इसी प्रकार जादू किया। हमे भी बेहोशी में डाला। हमे चारपाई पर से उठाकर नीचे डाला। बिस्तरा, कम्बल, पेटियाँ, कौड़ियों के थैले आदि सभी ले गये।

हमे ऐसी बेहोशी चढ़ गयी कि प्रातःकाल दस बज गये तब भी आंख नहीं खुली। मानो शीशी सुंघा दी हो। हमने आंख को

मीचकर देखा कि कहाँ पर सोये हैं। सभी ज़मीन पर पड़े हैं। सन्दूक में से कपड़ा उठा ले गये। टोपी भी ले गये। रात्रि की पोशाक, पैजामा और पहनने के दो कपड़े बँचे थे। इस प्रकार की दवा का प्रयोग करके वे लोग चोरी करते होंगे - यह वस्तु मेरे लिए नवीन थी। मुझे बहुत आश्चर्य लगा। मुक़ादम को जगाया। इसने मज़दूरों को उठाया।

मुक़ादम ने मुझे कहा "शेवो ए वेड्ये मजेको टवाडा कीठु कयोंना।" (मुरब्बी सेठ, चोर आप का सबकुछ उठा ले गया है।) आख़ीर मे कहा कि "इस प्रदेश में चोर बहुत होते हैं, इसीलिए तो मैंने सावधानी रखा परन्तु मुझे इसकी खबर नहीं।

मैंने मुक़ादम को भेजकर वहाँ के सरदार को बुलाया। सरदार आगया, मुझे देखकर जरा घबराया। भारतीयों से ये दबते थे, गोरे से डर कर जंगल में भग जाते थे।

यह अवसर मेरे लिए पहला ही था। सरदार को देखते ही मैंने उसे धमकाया "इस मामले की फरियाद तुम्हारे मुख्य सरदार और कमिश्नर को मै करने वाला हूँ।

मेरी धमकी से वह डर गया। विना कुछ बोले ही अपने साथ लाये हुये वल्कल (वृक्ष की छाल का कपड़ा) मुझे भेंट किया। केले की फलियाँ सेंक कर तैयार करायीं। (वहाँ पर केला पकता नहीं, उबाल कर अथवा सेंक कर खाया जा सकता है।) नाले से तुम्बा में अच्छा पानी भरकर लाया। सब ने नाश्ता किया। सरदार को ताक़ीद दी "आज से चार दिवस में मेरा सामान भेज देना नहीं तो तुम्हारे बड़े सरदार के पास फरियाद करूँगा और तुम्हे दण्ड दिलाऊँगा।"

मुखिया ने चोर पकड़ कर लाने की स्वीकारी दी। ग्यारह बजे हमने अपना पड़ाव उठाया। लकड़ी की लम्बी वल्लियों के साथ केले के रेसा से वल्कल बाँधकर डोली बनाकर लग्नडोला जैसा बनाया। आठ मज़दूरों को साथ मे लिया। वे बारी बारी से डोली उठाते थे। डोली में बैठकर मै पीछे फिरा। वर्षा पड़ रही थी। रात्रि मे एक बजे ४० मील चलकर कमली पहुँचा। वाय (काम करने वाले) से पानी गर्म कराया। नहाया और कपड़े बदले। केला और नमक खाकर प्रभु का नाम लेकर सो गया।

प्रातःकाल सेठ को मालूम हुआ। उन्हो ने हंसते हंसते पूछा-

" मेहताजी क्या हो गया ? "

मैंने कहा –" जैसा आपने कहा था वैसा ही होगया । "

सारे प्रान्त के मुख्य सरदार, जो लाख की वस्ती का सरदार गिना जाता था, उसे हमने फरियाद की । इन्हो ने फौरन् पुलीस भेजा । ताक़ीद की कि " सेठ का सभी सामान मिल जाना चाहिए। नहीं तो दस गाय और दो सौ मनुष्यों को लेकर यहाँ हाज़िर हों । इसमें अपराध करोगे तो जेल में भर दूँगा । "

यह हुकुम पहुँचते ही छोटा सरदार मेरे सारे सामान, दो सौ मज़दूरों को साथ लेकर चोर को बाँध कर हाज़िर हुआ । जिसने चोरी की थी उसको मुख्य सरदार ने कोड़ा मारने की आज्ञा दी । इसे लोगों ने उल्टा करके लेटा कर नंगा किया और पचास कोड़े मारे और बाद में जेल में डाल दिया । मुख्य सरदार ने छोटे सरदार को पाँच गायें भेंट में दीं ।

इस ज़माने में चोरों से कठिन कार्य लिया जाता था । रात्रि मे लकड़ी मे पैर डालकर खड़ा रखा जाता था । पैर इस प्रकार रखा जाता था कि आधा खड़ा रहकर मत्था टेक कर सो सके । अपने यहाँ पुराने ज़माने में लकड़ा मार देने की सज़ा होती थी उसी जैसा किया जाता था । उसे सवेरे खोलें तो वह बाहर निकल सकता था ।

हमारा सब सामान वापस मिला । मेरे लिए यह नया मूल्य-वान् अनुभव था । उस समय ऐसी चोरियाँ वार वार होती थीं । चोर को पकड़कर सख़्त ताड़ना दी जाती थी । यह वात जंगल मे चारों तरफ फैल जाती थी, उससे भय के मारे कोई भी जंगल में से वहुत दिनो तक बाहर निकल नहीं सकता था ।

एक अरब के पास हमारे सेठ के चार सौ रूपये रह गये थे। यह अरब इगांगा में रहता था । वह भाग जानेवाला था, ऐसी सूचना मिली । सेठ ने मुझ से कहा " मेहताजी आप जल्दी इगांगा जावो । चार-पाँच व्यापारी और वहाँ के नेटिव चीफ़ को कहकर लेने-देने के सम्बन्ध मे उसे देश जाने से रोंको । इस प्रकार से चीफ़ को रोंकने का अधिकार रहता है ।

मैंने छ मज़दूर साथ मे लिये । पहले जिंजा गया । जिंजा पहुँचते ही सांझ पड़ने लगी । जिंजा से इगांगा ३० मील दूर है । अरव एकाएक चला जावेगा - ऐसा भय था । इसलिये जिंजा मे

रात्रि का भोजन किया और रातोंरात इगांगा का रास्ता लिया। मार्ग जंगल का था। मेरे पास देशी बनावट की बनी हुई दारू भरकर दागने की सेठ की बन्दूक थी। मज़दूरों के पास भाले थे। एक मज़दूर लालटेन लेकर आगे चलता था। बीच और पीछे दोनो ही भाले वाले मज़दूर चलते थे। कमली से मैं डोली में निकला था।

जिंजा से लगभग २० मील चले। मध्यरात्रि बीत गई थी। आसपास घोर जंगल था। झींगर और दूसरे जन्तुवों की आवाज़ सुनाई पड़ती थी। कई बार जंगली पशुवों की आवाज़ सुनाई पड़ती। इस जंगल में सिंह का भय था। इस समय रास्ता भी कच्चा था। सवारी में केवल बैलगाड़ी चलती थी। आजकल तो तारकोल का रास्ता है और मोटर-बस, ट्रक आदि का यातायात अधिक बढ़ गया है। इससे जंगल कट गये हैं। उन दिनों एक्का दुक्का यात्रियों को दिन मे भी जानवर फाड़ खाते थे।

हम इगांगा से १० मील दूरी पर रहे होंगे, हमारा जमादार हाथ में दो नम्बर की लैनटर्न लेकर आगे आगे चल रहा था। इतने मे इसने रास्ते पर सिंह और सिंहिनी को खड़ा देखा। बत्ती देखकर सिंह ने गर्जना की। अचानक हुंकार को सुनकर जमादार चमक पड़ा। लैनटर्न को रास्ते मे छोड़कर भगा। डोलीवाले डोली छोड़कर भाग गये। इन लोगों ने मुझे ऊँचाई पर से ही छोड़ दिया। मेरे सिर मे डोली की लकड़ी लग गई। निद्रा से मै जल्दी से जाग उठा। सामने देखा कि सिंह और सिंहिनी हुंकार कर रहे हैं। लालटेन बराबर रास्ते के मध्य मे छोड़ी थी। उसके पास आने से डरे और गर्जना करे। मुझे विचार करने का समय नहीं था। सामने एक वृक्ष था। दौड़कर उसके ऊपर चढ़ने गया परन्तु यह काँटेवाला था, इसलिये चढ़ा न जा सका। सिंह और सिंहिनी रास्ते के दोनो तरफ़ इधर उधर चक्कर मारते हुये गर्जना कर रहे थे। रात्रि की गंभीर शान्ति में संपूर्ण जंगल प्रतिध्वनित हो रहा था। मज़दूर जंगल में छिप गये। "प्रभु की जैसी मर्ज़ी" ऐसा मन में ईश्वर का स्मरण करते हुये मैं खड़ा रहा। आज इस घटना का विचार करते हुये मुझे लगता है कि ऐसे वक्त में इतना धैर्य और शान्ति प्रभु की कृपा से ही मुझ मे रह सकी। मज़दूर बग़ल के जंगल में जाकर शोर मचाने लगे। वे भिन्न भिन्न आवाज़ करने लगे। सिंह और सिंहिनी धीरे धीरे घास में दूर दूर से सामने आवाज़

करते चले गये। इतने में मज़दूर पीछे आये। जमादार दौड़कर आया और लालटेन हाथ में ले ली। मेरे सामने देखने की इन लोगों की हिम्मत नहीं थी। मैने भी इस समय इन्हे कुछ कहा नहीं। क्यों कि शायद मुझे छोड़कर चले जावें। मै चुपचाप डोली में बैठ गया। मज़दूर डोली को उठाकर उतावल मे चलने लगे। रात्रि मे तीन बजे के लगभग हम इगांगा पहुँचे।

राणावाववाले सेठ विठ्ठलदास हरिदास इगांगा में रहते थे। उन्हे इसी समय उठाया। सारी बातें कीं। इस साहस करने के लिए उन्हो ने फटकार दी –"इस जंगल में रात्रि में कोई निकलता नहीं। आपने जोखिम उठाया।" इसी समय उन्हो ने चाय बनाई। चाय पानी पीकर प्रभात होने को था कि उस समय सोया।

सबेरे ८ बजे उठा। अरब आदमी का पता लगाया। इसे खबर मिल गई थी। वह कहींपर खिसक गया था। मिला नहीं। इस समय इगांगा में दो लोहाणा, एक भाटिया, तीन खोजे और एक अरब – सात आठ व्यक्तियों की दूकाने थीं। आज तो इगांगा छोटा शहर बन गया है। एक सौ के लगभग दूकाने हैं। व्यापार ठीक चलता है।

हम पूरी, शाक और दही खाकर ९ बजे के क़रीब रवाना हुये। दूसरे रास्ते से सीधा कमली जाना होता था। इस रास्ते से इगांगा से कमली पचास मील के लगभग थी। इस समय हम सीधे ही गये। रात्रि मे १० बजे के क़रीब सुख से कमली पहुँच गये।

बहराम सेठ को मेरे सफर की बात सुनकर आश्चर्य हुआ और शाबाशी दी।

उनकी दूकान में एक वर्ष नौकरी की। सन् १९०५ मे काम पर लगा। १९०६ की साल में मुक्त हुआ। सेठ ने बहुत आग्रह किया, परन्तु मैने इन्कार किया। मेरी इच्छा स्वतंत्र दूकान करने की थी, इस लिए सेठ ने राज़ी-खुशी से छुट्टी दी और दो सौ रूपये इनाम भी दिये।

× × ×

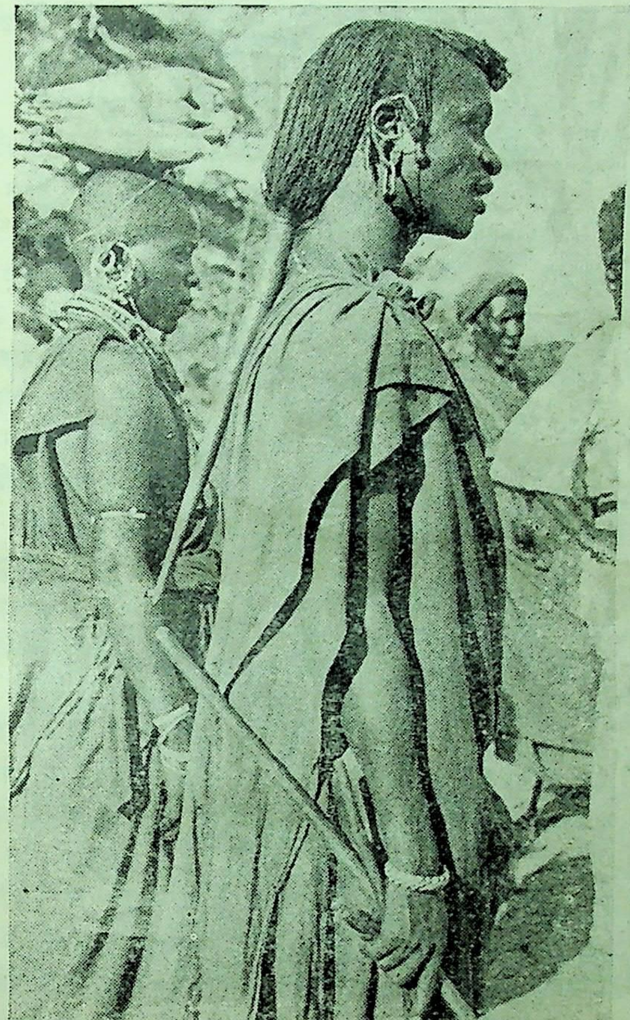
सन् १९०६ में कमली में स्वतंत्र दूकान की। उसी दिन से अफ्रीका के व्यापार का श्री गणेश हुआ। वहाँ की भाषा आगई थी। लोगों से परिचय हो गया था। वहाँ के व्यापार मे ध्यान लगने लगा था। विना पूँजी के स्वतंत्र दूकान चलाना एक साहस का काम

था। तिसपर भी मैं उधर झुका। मन मे निश्चय किया "हिम्मते मरदाँ मददे खुदा।"

दूकान मे सभी कुछ एक एक करके नये सिरे से शुरू करना था। लकड़ी खड़ी की, उसके साथ ज्वार के डंठल जैसे तैसे उल्टे सीधे बांधा। ऊपर से मिट्टी की थोप करके लेपन किया। पतरे का छप्पर डाला। पतरे का दरवाज़ा भी बनाया। उस समय वहाँ पर बढ़ई नहीं मिलता था। दो चार औज़ार लाकर छोटा-मोटा मकान हाथ से बना लिया। मेमार की फुट-त्रिकोणी की माप नहीं थी। एक आध फूट ऊँचा नीचा चलाऊ था। इस प्रकार कामचलाऊ मकान बना लिया - दूकान चालू किया। २४० रूपये की पूंजी और आबरूह के बलपर व्यापार प्रारंभ किया।

पहले दिवस से ही मैने देखा कि देश में अथवा विदेश मे प्रतिष्ठा और आन ये खरी पूँजी हैं। पैसा खरी पूंजी नहीं परन्तु प्रतिष्ठा पूंजी है। विश्वास से ही नौका चलती है और उसी प्रकार व्यापार भी विश्वास पर चलता है। जीवन के हरएक क्षेत्र में दिये हुए विश्वास को पालन करके करने से प्रतिष्ठा बढ़ती है, इज्ज़त की धाक बैठ जाती है और आगे बढ़ा जा सकता है। इस वस्तु से मेरा विश्वास बढ़ा।

कमली मे इस समय मुसल्मान भाइयों की दूकाने अधिक थीं। जिंजा में सेठ केशवजी आनन्दजी की दूकान थी। वे जंजीबार से सीधे सामान मंगाते थे। कपड़े, नक़ली मोती, नेटिवों के आभूषण में वर्ता जानेवाला छ नम्बर का पीतल का तार आदि वस्तुयें बाहर से मँगाते थे। निकासी की जाने वाली वस्तुवों में हाथी-दाँत, तिल, छोटी मिर्च, घी आदि मुख्य थे। मक्खन गर्म करके घी का डब्बा भरते थे। इस समय रूपये का ढाई मन घी मिलता था। कोई क़ीमत नहीं थी, नेटिवों के पास लाखों गायें थीं। अपने देश मे नन्दराज के पास प्राचीन समय में लाखों का गोधन था और गोकुल में गोवर्धन पर्वत के नीचे उनकी बड़ी बस्ती थी। यह बात अपने पुराणों मे आती है। मुझे तो यह आँख से देखने को मिला। गायों का हिसाब करने के लिये तीर रख छोड़ते थे। एक गाय बच्चा देवे तो एक तीर रख छोड़ते थे। मर जावे तो एक तीर तोड़ डालते थे। नेटिव लोग स्वभाव से बहुत ग़रीब और अज्ञ थे। कोई भारतीय निकले तो घुठने पर बैठकर नमस्कार करते थे - कोई योरोपियन



केनिया में बसती मसाई जाति का पुरुष



युगण्डा – कोंगो की सरहद के ठिंगूजी आदिवासी

निकले तो उसे देखकर जंगल मे भग जाते थे।

केनिया मे रहने वाली मसाई जाति बहुत बहादुर है। उस जाति का जो सरदार होता है उसे विवाह करने से पूर्व भाले से शेर का शिकार करना पड़ता है। वहाँ एक ऐसा रिवाज़ है कि यदि विवाह की इच्छा करने वाला अपने भाले से सिंह को मार कर उसका चमड़ा ओढ़ कर आवे तभी दूसरे सरदार की कन्या उससे विवाह करती है। कन्या के विवाह के समय उसके पिता की ओर से गाय और बकरियाँ दहेज में देने में आती हैं। कन्या यह मानती है कि यदि उसका वर बहादुर न हो तो दहेज में मिली गायों का बाद में सिंह से रक्षण दूसरा कौन कर सकेगा।

सरकार ने नेटिवों के छोटे छोटे राजा बना दिये थे। उन्हे "मामी" कहा जाता है। गाँव के पटेल को चीफ़ कहते हैं। चीफों को वेतन मिलता है। अभी भी मिलता है। हरएक "मामी" को अमुक बस्ती अथवा प्रदेश बाँट रखा है। बड़े 'मामी' को लाख जनसंख्या पर्यन्त की बस्ती का अधिकार सौंपने मे आता है। मामी को सरकार की ओर से कुर्सी मिलती और झब्बा मिलता था। महसूल वसूल करने का परवाना भी मिलता था। इस समय खेती अथवा दूसरा कोई उत्पादन का साधन नहीं था। इस लिए बकरे अथवा पशु बेचकर लोग महसूल भरते थे। इस वक्त हर एक को व्यक्ति पीछे आठ आना भरना पड़ता था। तिसपर भी इतनी रक़म भरने के लिये इन्हे गाय अथवा बकरा बेंचना पड़ता था। आज तो प्रति व्यक्ति पचास शिलिंग है फिर भी नक़द भर सकते हैं।

नेटिवों की खूराक उबाला हुआ केला, पका हुआ केला, मक्की, टोफियाको, शकरकन्द और शिकार में जो मिले वह है। इस समय केले का पूरा गुच्छा (घौंध) दो पैसे में मिलता था।

नेटिवों के रहन सहन मे सुधार करने का यश ईसाई पादरियों को है। वे भगवान् ईसा के नाम पर अपने देश और कुटुम्ब को छोड़ कर जंगलों में आकर बसे। उन्हों ने पाठशालायें और दवाखाने खोले। मन्दिर और गिरजे बनाये। जो नग्न फिरते थे उन्हे कपड़े पहनने वाला बनाया। लिपिज्ञान जिनको नहीं था उन्हे लिपिबोध कराया, अनपढ़ को पढ़ा लिखा किया, मनुष्य से डरने वालों को मनुष्य के मध्य मे रहना सिखाया। इस प्रकार उन्हो ने नेटिवों की भारी सेवा की परन्तु साथ साथ धर्म प्रचार किया। राजकीय

विचारों को स्थिर करने में उन्हो ने जानकर अथवा अनजानपने से अपना भाग अदा किया। बड़े भाग में नेटिव लोग ईसाई धर्म का पालन करतें हैं। दो केरोड़ की बस्ती है, इस में लगभग दस लाख लोग इस्लाम धर्म को मानते होंगे, शेष सभी ईसाई हैं। आज शिक्षा की मात्रा ५० प्रतिशत से अधिक है, इस मे पादरियों का सुन्दर भाग है।

दूकान का कामकाज धीरे धीरे जमने लगा। मेरा व्यापार छोटी मिर्च, तिल और घी का था। बाहर से माल लाकर मै निकास करता था। सारे दिन दूकान का काम-काज चलता था। रसोई हाथ से ही पकाता था। एक दो नेटिव नौकर रख लिये थे, वे फुटकर काम-काज करते थे। पानी भरना, बर्तन मांजना आदि फुटकर कार्य नौकर (बाय) करते थे। भोजन मे होता था बम्बई का चार नम्बर का नीले टिकिट का आँटा, जो दो चार मास में आता था, मांजा, बर्मा का चावल तथा केनिया की अरहर की दाल। शाक भाजी की खेती पहले नहीं थी। अपने ही प्रारंभ किया। आलू योरोपियनो ने पैदा किया।

रसोई और खाने पीने में मेरा समय थोड़ा जाता था। रात्रि मे देर तक दूकान का कार्य चलता था। चाहे जितने भी देर से सोऊँ फिर भी वहुत सवेरे आँख खुल जाती थी। सदा उठकर नहा धोकर प्रार्थना और माला फेरे विना चाय अथवा दूध न ग्रहण करने का मेरा नियम था। आज इन प्रारंभ के दिनो को याद करता हूँ तो मन मे होता है कि व्यापार मे भी सादे और संयमी जीवन की आवश्यकता है। उसमे भी सख़्त मेहनत करनी पड़ती है। मुझे एक ही धुन लगी थी कि मेरी दूकान दूसरी जमी हुई दूकानो की पंक्ति में किस तरह आवे।

घर से निकला उस समय मन में जो लगन गढ़ी थी वह याद आयी। पूरा पुरुषार्थ करके इस मनोरथ को पार लेजाने का मैने निश्चय किया। देश मे था तो मन में अनेक विचार आते थे- "परदेश जाऊँगा, दूकान करूँगा, व्यापार जमाऊँगा।" परन्तु दूकान करके व्यापार जमने लगा, इस लिए पीछे विचार करने का समय नहीं रहा। जो मनुष्य वैठे वैठे विचार ही किया करता है वह आगे बढ़ नहीं सकता। जो विचार के अनुसार काम करने का प्रयत्न करता है, वह आगे बढ़ सकता है। इस वस्तु का प्रत्यक्ष अनुभव

होने लगा। व्यापार मे मै इतना तल्लीन होगया कि कब दिन निकला, कब अस्त हुआ, कब दीपावली आयी और कब आयी हुताशनी-इस की कोई ख़बर नहीं थी। मेरा शरीर मज़बूत और मस्ताना था। बूट, मोज़ा, कोट, पैण्ट और सिर पर हैट पहनता था तो भाईबन्द कहते थे कि तू योरोपियन जैसा लगता है।

इस समय व्यापार के कार्य के अतिरिक्त घरबार की अथवा दूसरी किसी चीज़ की चिन्ता नहीं थी। व्यापार का कार्य मेरे मन में खेल जैसा लगता था। चाहे कितनी बड़ी रक़म का सौदा करना हो, चाहे कितने भी भयंकर जंगल में जाना हो, अज्ञात प्रदेश में परिचित होना - आदि में मुझे अनोखा आनन्द आता था। माता-पिता, भाईबन्द, पत्नी, सगासम्बन्धी कोई भी याद नहीं आता था। चढ़ता हुआ खून, भरी जवानी फिर भी संयम स्वाभाविक था-इसी से इतना कार्य खींच सका। दिन मे चालीस पचास मील चल सकता था। जीवन में जिसे किसी भी दिशा में अमुक ठोस ध्येय-सिद्धि करनी हो उसके लिए संयम आवश्यक है - ऐसा मैं अपने अनुभव से कहता हूँ।

१४

जंगल में व्यापार

कमली की दूकान को एक वर्ष पूरे हुये। वर्ष के अन्त मे हिसाब किताब किया। अच्छा लाभ दिखाई पड़ा। उससे हिम्मत बढ़ी। सन् १९०७ में देश में पत्र लिखा। एक सौ रूपये भेजे। उस समय मे देश मे सौ रूपया हज़ार जितना गिना जाता था। पैसा भेजने के साथ पत्र में मैंने लिखा–"मै सुखी हूँ। घर की दूकान करली है। व्यापार अच्छा चलता है। दिन प्रतिदिन बढ़ता जाता है। मेरी कोई चिन्ता न करें।"

श्री जीवन काका को जिंजा पत्र लिखा कि "आप यहाँ पर ही आजावें। अपने साथ व्यापार करें। हज़ार दो हज़ार पैदा करूँगा। आप को कोई झंझट नहीं रहेगा।" परन्तु उनका उत्तर आया कि "मुझे देश जाना है। फिर लौटकर अफ्रीका आना नहीं है।" वे अपने पत्र के अनुसार देश चले आये। पीछे वापस नहीं गये। उन्हो ने मुझे लाइन पर चढ़ाया और जानकार किया। उनका मेरे ऊपर बहुत बड़ा उपकार था।

मेरी दूकान जमने लगी। प्रतिष्ठा बढ़ने लगी। सब बुला बुलाकर माल देने लगे। पाँच–दश हजार उधार रखने लगे। जंगल से कच्चा माल खरीद कर लाना और जिंजा भेजना – इन दोनो कार्यों के लिए पहुँच पाना कठिन हो गया। दूसरे आदमी की आवश्यकता पड़ी। हमारे गाँव के लोहाणा भाई जीवन शामजी मोम्वासा आये हुये थे। उन को खाना–पीना और वर्ष के दो सौ रूपये ठहराकर साथ में रख लिया। उनको थोड़ा दूकान का और रसोई का काम सौंपा। कच्चे माल की खरीदी के लिए मै खाली हो गया।

युगण्डा की सरकार ज्यों ज्यों मुल्क को जीतती गई त्यों त्यों पीछे हम व्यापार के लिए वहाँ गये। जिंजा में जिस सेठ को मै कच्चा माल देता था, उससे जाकर बात की कि दूसरे ज़िलों मे जाकर मुझे व्यापार बढ़ाना है। वहाँ पर तिल, मिर्च, हाथी–दांत आदि पर्याप्त मिलते हैं। इस स्थान में मोती, कपड़ा, पीतल के

तार आदि वस्तुवों की खपत है। मेरी बात सुनकर सेठ प्रसन्न हुआ। उन्हो ने पन्द्रह हज़ार रूपये का माल उधार दिया। पचहत्तर के क़रीब मज़दूर और एक दो जमादार लेकर मैं कमली आया।

कमली आकर जंगल में जाने की तैयारी की। जंगल में लगभग डेढ़ दो सौ मील दूर जाना था।

युगण्डा यह कोई छोटा प्रांत नहीं। सौराष्ट्र से लगभग चार गुना बड़ा, एक लाख वर्गमील विस्तार वाला विशाल प्रदेश है। लगभग साठ लाख की वस्ती है। उसमे छोटे बड़े अनेक ज़िले आते हैं। जिंजा और कमली दोनो बुसोगा डिस्ट्रिक्ट में पड़ते हैं। बुसोगा विक्टोरिया सरोवर से लेकर क्योगा सरोवर तक फैला हुआ है। क्योगा सरोवर के पास सामने टेसो और लाँगो ज़िले आते हैं। कमली से टेसो लगभग सौ मील और लाँगो डेढ़ सौ मील दूर है। सूडान और काँगो की सीमा वहाँ पर लगी है। मुझे इन ज़िलों मे जाना था।

इस ज़माने मे सवारी की कोई सुविधा नहीं थी। पौना सौ मज़दूरों का दल लेकर मै चला। मज़दूरों के सर पर दो मन का मजीका (सामान का थैला) रखा। उसमे मोती, कपड़ा, पीतल के तार आदि वस्तुयें थीं। मेरे व्यक्तिगत उपयोग के सामान में मोड़-वाली चारपायी, गद्दी, कम्बल, बिस्तरा, कपड़ों की सन्दूक, ओवरकोट, रसोई के बर्तन, सीधा-सामान आदि आदि वस्तुयें थीं। माल खरीदने का काफी पैसा तथा कौड़ियों का थैला भर लिया था। इस समय कौड़ी का प्रचलन था। एक रूपये की हज़ार कौड़ी मिलती थी। सौ सौ कौड़ी के दस हारों की क़ीमत एक रूपया थी। केले के रेसा की चिकनी रस्सी बनाई जाती थी। उसको खीरोची कहा जाता था। कौड़ियों का थैला भरा हुआ था।

मीलों तक चलना नहीं हो सकता था - इस लिये एक डोली किया। वल्ली जैसी मज़बूत लकड़ी मे ज़ीन के मोटे कपड़े की झोली बनायी गई थी। पूर्व लिखे अनुसार विवाह की डोली जेसी बन गयी थी। चार नेटिव मज़दूर जीवित को ही बारी बारी से उठाते थे।

इस समय मेरी पोशाक यात्रा में खाकी कपड़े की थी। खाकी पतलून, शर्ट, कोट, ब्राँडीस और सिर पर हैट। पैर मे होल-बूट था। वहाँ पर 'इड' नाम का एक जन्तु होता है। आज तो थोड़ी मात्रा मे है। इस समय मे इसका बहुत डर था। भाग्य से ही

इस से कोई बँचता था। पिस्सू जैसा छोटा डुड पैर के अंगूठे मे पैठ जाता था। इस मे अंगूठा पकता था, सड़ता था और किसी की उँगलियाँ खा भी उठती थीं। आज जंगल कट गया है, हवा, प्रकाश खूब बढ़ गया है, स्वच्छता भी बहुत है, रास्ता सुन्दर बन गया है - इससे इस जन्तु का अधिक अंश में नाश हो गया है।



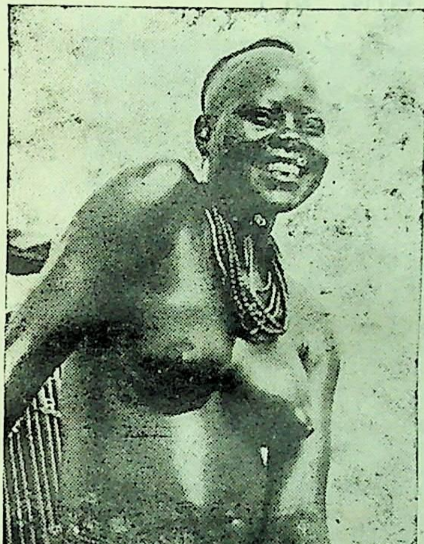
पूर्व अफ्रीका के लाँगो और टेसो की आदिवासी कन्यावों के अलंकार

मुझे जहाँ जाना था वह टेसो और लाँगो ज़िले इस ज़माने में बिल्कुल अज्ञान और पिछड़े हुये थे। स्त्री, पुरुष, बालक कोई कपड़ा पहनते ही नहीं थे। स्त्रियाँ केले के पत्ते का कमरबन्द करके एक टुकड़ा लटका लेती थीं। कोई कोई वल्कल का उपयोग करते थे। अधिक लोग नग्न फिरते थे। इस विषय में उन्हे दोष जैसी कोई वस्तु लगती नहीं थी। कुदरती जीवन होने से उनके लिये यह स्वाभाविक था। अपने और योरोपियनो के सहवास से धीरे धीरे कपड़े पहनने लगे।

घने जंगल हिंसक पशुवों से भरे थे। मार्ग ऊभड़-खाभड़ था। ऐसे जंगलों में छिट-फुट झोंपड़े बाँधकर ये लोग रहते थे। वे अपना झोंपड़ा अपने आप बाँध लेते थे। गुम्मटदार सुन्दर बनाते थे। ज्वार के डंठल का दरवाज़ा होता था। केले की छाल को गूँथकर बनायी हुयी रस्सी को हरएक वस्तु के बाँधने में इस्तेमाल करते थे। दीवालों में चारों तरफ से मिट्टी का लेप कर देते थे। आँगन इतने स्वच्छ रखते थे कि उड़कर आँख को सुन्दर लगे। झोपड़ों के चारों ओर केले का जंगल खड़ा होता था। ऊपर घास की छत डाली हुई होती थी। २०×२० अथवा २०×३० का झोंपड़ा

होता था। लीप-पोत कर आकाश के समान रमणीय बनाया हुआ होता था। हवा और प्रकाश के लिए अन्दर झरोखे डाले रहते थे। बरसात में बौछार न लगे, ठंढी में ठंढक न लगे और गर्मी मे गर्मी नहीं लगती थी।

इस प्रदेश के लोग अधिकांश में मांसाहारी थे। केले आदि भी खाते थे। पशु-धन पर्याप्त मात्रा मे था। बकरियाँ और गायें तो होती ही थीं। इस मुल्क में चमड़े का बड़ा व्यापार चलता था। यह व्यापार अधिकतर मुसल्मान भाइयों के हाथ में था। उसमें शतप्रतिशत कमाई थी। यूरोप की बड़ी कम्पनियाँ यह माल खरीदतीं। हिन्दू लोग बड़ी हद तक तिल, छोटी मिर्च, घी, मधु और मोम तथा हाथी-दाँत की खरीद करते थे।

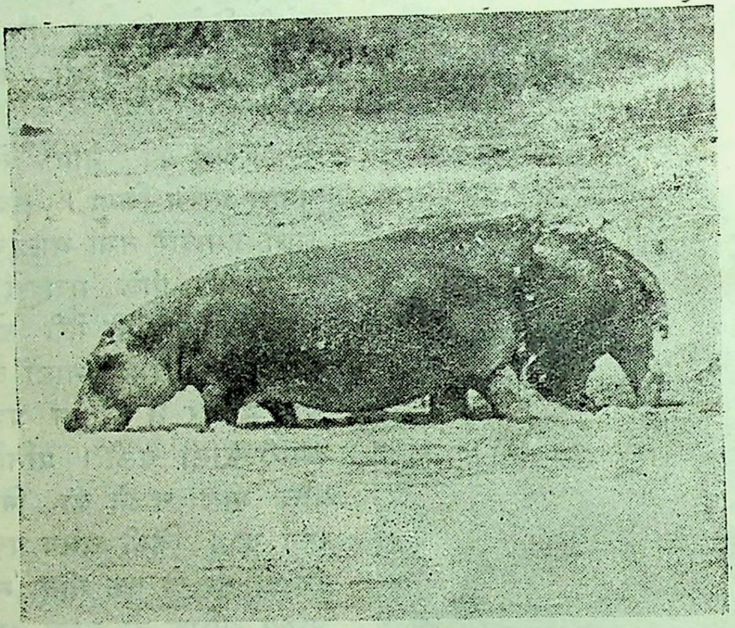


पूर्व अफ्रीका के लाँगो और टेसो की स्त्री का नैसर्गिक सौन्दर्य

प्रभु का नाम लेकर प्रवास प्रारंभ किया। सब से आगे जमादार तथा भालों वाले दो सिपाही, पीछे मज़दूरों का समूह, उसके पीछे मेरी डोली और सबके पीछे भालों वाले चार मज़दूर थे। इस प्रकार हमारी टोली चली। प्रतिदिन बीस मील चलने का नियम रखा था। किसी समय पड़ाव दूर हो तो दो एक मील न्यून अथवा अधिक हो जाता था। वहाँ के चीफों ने मार्ग मे आराम लेने के लिए रेस्ट-हाउस बना रखे हुये थे। घास का सुन्दर झोंपड़ा-यह था जंगल का रेस्ट हाउस। शहर की अपेक्षा अधिक शान्त और आरामदेह। पहली रात्रि में हमने ऐसे ही एक विश्रांति गृह में पड़ाव डाला।

पहाड़ी के ऊपर नैसर्गिक ऊँचाई पर रेस्ट हाउस बना हुआ

था। चारों तरफ घोर जंगल था। मैंने सफ़र की पोशाक उतारी। हाथ पैर धोकर रात की पोशाक पहनी। पाँच सेर दूध मँगाया। मेरा नौकर पानी भर लाया, लकड़ी भी लाया। मैंने रसोई शुरू की। खिचड़ी-शाक बनाया। खिचड़ी में ऊपर चढ़ाते समय ही आधा सेर घी डाल दिया। पाँच सेर दूध कढ़कर जब दो सेर रह गया तब उतारा। खिचड़ी-शाक, दूध आराम से खाया। भूख भी खूब लगी थी। रात्रि में जानवर पास न आवें, इस लिए मोटा लकड़ा सुलगा कर भट्टा तयार किया। इस भट्टे के ऊपर मज़दूरों ने अपने लिये केला उबाला। भुना हुआ अथवा उबाला हुआ केला और नमक का पानी यह इनकी खूराक थी।



लेक-क्यागो के सरोवर मे हिपोपोटेमस

रात्रि मे भोजन करने के उपरान्त सब मज़दूरों ने मिलकर नाचगान प्रारंभ किया। ये लोग बिल्कुल भोले और निर्दोष थे। खाना-पीना और आनन्द करना। कल की कोई चिन्ता नहीं, पहनने ओढ़ने की बहुत आवश्यकता नहीं। वल्कल ओढ़ते हैं। उनका जीवन पानी के प्रवाह की भांति सरल रीति से बहा जा रहा था। स्वाभाविक झरने जेसा निर्मल और मस्त जीवन था। इनके साथ सफ़र करने में एक प्रकार का आनन्द आता था। वे बहुत ही

दयालु थे। उनको पहनने के लिए हमने चड्ढी और कमीज़े दे रखी थीं।

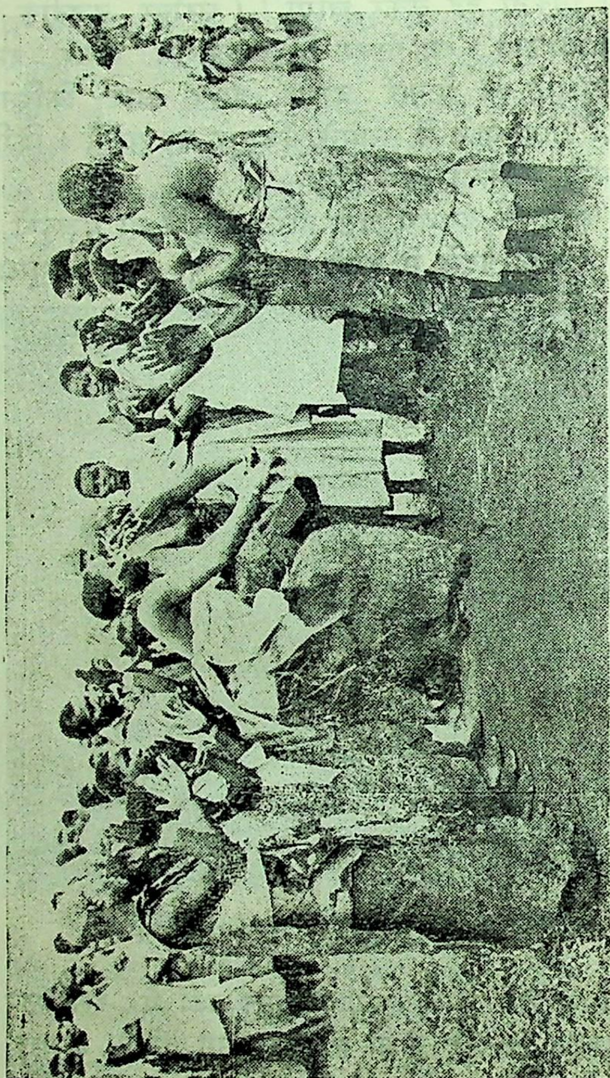
दो पड़ाव चलने के बाद हम एक ठिकाने पर दोपहर बिताने रुके। हमने शकरकन्द दूध मे उबाल कर खाया। इन लोगों ने केला और मछली बिकती हुई लेकर खायी। (सरोवर नज़दीक होने से उन्हे मछली मिली।) खा पीकर थोड़ा आराम लेकर हमने डेरा उठाया। सरोवर के किनारे जाकर हमने चार किश्तियाँ कीं। उसमें बैठकर तीन घण्टे में सामने किनारे पर पहुँचे। किश्तियों से उतरकर हमारा क़ाफला आगे चला।

चार मील के लगभग चले होंगे इतने मे दो मज़दूरों को ज्वर चढ़ गया। उनके बदले मे हमने वहाँ के दो मज़दूर बुला लिये।



पानी का प्राणी : हिपोपोटेमस

ये लोग सामान ढोने के बिल्कुल अभ्यस्त नहीं थे इस लिए चार-पाँच मील चलने के बाद बोझा फेंककर भाग गये। हमारा जमादार उनके पीछे दौड़ा और उन्हे पकड़ लिया। पकड़ कर दोनों को खूब मारा। वे क्रुद्ध हो गये। उन्हो ने सिग्नल (भय की निशानी) दिया। मुँह पर उल्टा हाथ रखकर एक प्रकार की विशेष आवाज़ की। देखते देखते आसपास के जंगल से पाँच सौ की संख्या में नेटिव दौड़ आये। उनके हाथों में भाले और तीरकमान थे। उन्होने हमारे



"गोमो" पूर्व अफ्रीका के आदिवासियों का नृत्य

चारों तरफ घेर लिया।

परन्तु मैंने तनिक भी घबराये विना अपने जमादार को कहा "इन लोगों के मामी (चीफ़) को बुलावो।

जमादार ने 'मामी' को बुलाया। चीफ़ ऊँचा और सुगठित क़द्दावर था। हाथ मे भाला, कन्धे पर चमड़े की ढाल, बड़ी भयंकर आँखे, कमर मे केले के पत्ते का टुकड़ा और चमड़ा लपेटे हुये था। गुस्से से उसका चेहरा गरम हो गया था। आस पास खड़े हुये जंगली आक्रोश कर रहे थे। अपनी भाषा मे "मारो, मारो," ऐसी आवाज़ कर रहे थे। इस जंगल मे पुलीस की अथवा किसी दूसरे की कोई सहायता हमें मिले ऐसा नहीं था। मैंने सब्र पकड़ा। अपने जमादार को कहा –"इस चीफ़ को समझावो कि तुम्हारे मज़दूर दोषी हैं। तुम हम को मारोगे तो हम सहन नहीं कर लेंगे। ये भारतीय कपड़ा और वस्तुयें लाये हैं। तुम्हें और तुम्हारी स्त्रियों को देंगे। तुम सामने आवोगे तो ये गोरे योरोपियनों को बुलावेंगे और वे तुम्हारी गायें और बकरियाँ लूट लेंगे। तुम सब मारे जावोगे।"

मेरे सभी मज़दूर अपने सामान नीचे डालकर उसके ऊपर बैठ गये थे। इन लोगों की भाषा पृथक् थी। मेरा जमादार दोनो भाषायें जानता था। इसने चीफ़ को सारी बातें समझायी। चीफ़ कुछ शान्त हुआ परन्तु साथ के समूह ने क्रुद्ध हो कहा "हमे कपड़ा और गहना चाहिये नहीं। जिसने हमारे आदमियों को मारा है उसे हम मारेंगे। इस मारने वाले को हमें सौंप दो।" ऐसा कह कर वे खलबलाहट करने लगे। चीफ़ ने आगे आकर सब को शान्त किया। बाद में एक बूढ़ा चीफ़ हमारे पास आया।

मै सहज में ही दूर खड़ा था। सिर मे जोर की धूप लग रही थी। लेक केयागो के ऊपर पहुँचने की उतावल थी, इस लिये मैंने दुभाषिये के द्वारा चीफ़ फो पूँछा –"अब इसमें क्या करना है?"

चीफ़ तथा दूसरे दो चार अगुवों के साथ मेरे जमादार ने सलाह की। बातचीत करके अंत मे निश्चय हुआ कि–"जिसने मज़दूरों को मारा है, उसको दो गायें दण्ड करने में आती हैं और गायें फौरन लाकर दो।"

परन्तु हम इस जंगल में गाय कहाँ से लाकर दें? इस लिए इन्हे पैसा लेने को कहा। एक ही आवाज़ में वे बोल उठे कि "पैसे को हम क्या करें? पैसे से हमें काम नहीं। हमे गायें दो।

नहीं तो लड़ाई करो।"

इस ज़माने में ये जंगली आदमी पैसे को कुछ समझते नहीं थे। आज के युग में वहाँ पर पैसा ही परमेश्वर बन गया है। आज से पचास वर्ष पूर्व पैसा कोई चीज़ नहीं था। अपने देश मे भी वस्तु-विनिमय से व्योहार चलता था। जब तक मनुष्य पैसे का गुलाम नहीं बना था तब तक सुखी था। वस्तु के बदले मे आवश्यक वस्तु का मिलना - यह सुख का मार्ग था। इस मे मनुष्य को सन्तोष रहता था। सन्तोष सुख का मूल है। पचास वर्ष पहले अफ्रीका के लोग पैसे को जानते नहीं थे - इस लिये सुखी थे।

हमारे पास गायें नहीं थी, परन्तु वे प्रसन्न होजावें ऐसी अन्य वस्तुयें थीं। इन लोगों को रंग-बिरंगे मोती बहुत पसन्द थे। हमारे पास किस्म किस्म के मोती और पीतल के तार थे। हमने एक सौ मोती की एक माला ऐसी सौ मालायें निकालीं तथा पीतल के तार निकाले। इनकी मूल क़ीमत गिनें तो दस रूपये होते हैं। मोती को देखकर अगुवा लोग बहुत खुश हुये। इस मोती से उनकी स्त्रियाँ बहुत ही प्रसन्न होंगी-इस विचार से अगुवों के मन का समाधान हुआ। इनके चीफ़ को रंगीन कपड़े के दो टुकड़े दिये। पीतल के तार दिये। अगुये की स्त्री साथ थी, उसको दो सेर खांड दी। जिन मज़दूरों को मार पड़ी थी उनको मोती की माला और पीतल का तार दिया। इस प्रकार सब को शान्त किया। पचीस रूपये का सामान देकर छुटकारे की श्वास ली। मौत के पंजे से छूटे। सब आनन्द की पुकारें करते हुये जंगल में चले गये। जितने ज़ोर से बादल घिरता और बिखरता है उतने वेग से वे जल्दी ही बिखर गये। मज़दूरों के सिरपर सामान लादकर हम आगे बढ़े।

थोड़ी दूर गया तो एक नाला पड़ा। उसमे कमर तक पानी था। नाले मे घुसकर एक मील पूरा कर हम सामने पार उतरे। पांच छ मील चले इतने में शाम हो गई। एक दूसरे चीफ़ का गाँव आया। इस चीफ़ को बुलवाया। इसने आकर नमस्कार किया। मैंने इसे मोती की माला भेंट की। हमारे लिए उसने पांच झोंपड़े खाली कराये। हमने पड़ाव डाला। झोंपड़े के आंगन में हमारा जमादार और चीफ़ आ बैठे। मैंने उसे कहा "आज अपने सब मज़दूरों को दूध पिलाना है।"

चीफ़ ने गायें दुहाकर दस मन दूध मगाया। पांच सेर और

दस सेर की माप का तुम्बा मंगाया। इससे भरकर दस मन दूध दिया। अपने हरएक मज़दूर को दूध दिया। केला उबाल कर खिलाया। अपने लिए पूड़ी शाक बनाया। कढ़ा हुआ दूध तैयार करके भोजन किया। हमने झोंपड़े में चारपाई डाली। वहाँ मच्छरों का भय होने से मच्छरदानी लगा दी। मज़दूर लोग खुले मैदान में भट्ठा सुलगाकर सोये। वहाँ का चीफ़ भला था। हमने वहाँ शान्तिपूर्वक रात्रि व्यतीत की।

मेरे मज़दूर लहर में रहते थे। इस समय भार ढोनेवाले मज़दूर का मासिक वेतन दो रूपया होता था। मासिक खूराक का आठ आना खर्च होता था। इतनी सस्ताई थी। कपड़ों मे उसको तीन मास में एक सुरवाल, एक कमीज़ और ओढ़ने का एक कम्बल दिया जाता था। इतने वेतन से वे खुश रहते थे। आज खूराक के साथ सौ शिलिंग वेतन देते हैं फिर भी काम नहीं करते। पचास वर्ष में दुनियाँ किस प्रकार बदल गई–यह इससे समझा जा सकता है।

हमने सवेरे के समय मे पड़ाव उठाया। लेक क्योगा के बुगोन्डो पोर्ट के किनारे आया। वहाँ से सामने पार जाने के लिए छोटी किश्ती मिलती थी। सामने किनारे पर लाँगो प्रान्त आया है। हम सब किश्ती में बैठ गये। आधे घण्टे में सामने किनारे पर पहुँच गये। सामने पार उतर कर मज़दूरों ने सामान उठाया। किनारे से बारह मील की दूरी पर 'कलाकी' नाम के गाँव पर संध्याकाल मे पहुँच गये। रोज़ के सामान के भार के साथ २५ से ३० मील चलने को था।

कलाकी में सरकारी रेस्ट–हाउस था। घास और मिट्टी के चौरस झोंपड़ा के मध्य में एक बड़ा चौक था। हमने वहाँ जाकर पड़ाव डाला। आस–पास के चीफ़ को सूचना दी कि "हम कपड़ा, मोती और गहने के तार लाये हैं। तिल के बदले में सब देंगे। जिसको चाहिए वह तिल और हाथी–दांत लेकर आवे। हमारे पास अगले दिन का तैयार भोजन था। उसे दोपहर को खा लिया और रात्रि में सभी ने पका कर खाया।

यह समाचार प्रत्येक जंगल में हवा के समान वेग से फैल गया। ज्यों ज्यों खबर पहुँचती गई त्यों त्यों लोग आने लगे। साथ में तिल भी लेते आते थे। हमने मोटे नैनक्लाथ का एक मन का थैला बनाया। इस थैली भर तिल देने वाले को उसके

बदले में एक रूपये का तार, मोती अथवा कपड़ा जो चाहिए देता था। तिल कम हो तो फिर से जाकर ले आयें।

कपड़ा और गहना देख कर वे खुश हो जाते थे। हमारे सामने बँधी दृष्टि से देखते रहते थे। इन्हो ने किसी दिन भारतीय अथवा योरोपियन देखा नहीं था इस लिए नयापन मालूम पड़ता था। झोंपड़े झोंपड़े समाचार पहुँच गया कि "मरुँगा का हिन्दुस्तानी आया है। कपड़ा, मोती और आभूषणके तार लाया है। तिलके बदले में देता है।"

रोज सबेरा पड़ते ही ये टोले के टोले में आने लगते थे। तिल भरकर देते थे और बदले में मोती, तार, कपड़ा जो चाहिए वह लेजाते थे।

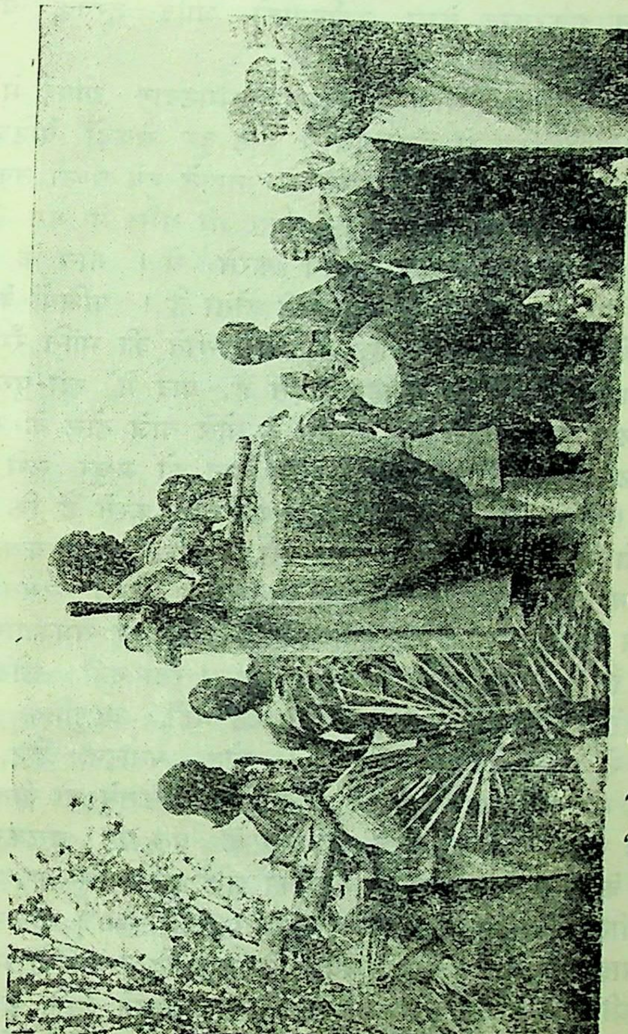
कितने ही चीफ़ भेंट लाते थे। मुर्गी-मुर्गे, बकरियाँ आदि मेरे सामने रखकर कहते थे "हमारे देश पर आपने उपकार किया है। ऐसी चीज़ें हमने कभी देखी नहीं थीं।" इन लोगों ने अपने प्रदेश में हुक्म फिरवाया कि "यह मरुँगा का धनी बहुत सी वस्तुयें लाया है। उसके साथ मज़दूर हैं, उन्हें कोई हरकत न करना, जहाँ तक हो सके सुविधा देना।"

इन चीफ़ों को मैने खांड, बिस्कुट आदि दिया। उनके द्वारा लाये हुये मुर्गे और बकरे वापस करते हुये मै कहता था कि "यह वस्तु मै खाता नहीं" इसलिए इन वस्तुवोंको बाय और मज़दूरोंको मुफ्त दे देता था।

ये लोग ईश्वर आकाश मे रहता है - ऐसा मानते हैं। सूर्य-चन्द्र को पूजते हैं तथा इन्ही को ईश्वर मानते हैं। जो कुछ कहना होता है वह सूर्य-चन्द्र को ही कहते हैं। वहाँ उस समय कोई धर्म नहीं था। इस समय सभी ईसाई हो गये हैं। इस प्रदेश मे 'मगांडा' के अतिरिक्त दूसरी जाति बसती है। युगण्डा मे सभी मिलकर छ जातियाँ बसती हैं - मगांडा, बुसोगा, मगीसु, टेसो, बुनोरो और लाँगो। हरएक की भाषा भिन्न होती है। लगभग ७० लाख की वस्ती हो गई है। सारा प्रदेश उपजाऊ है। बारह मास वर्षा पड़ती है - लगभग ४० से पचास इञ्च जितनी होती है।

मै टेसो और लाँगो प्रान्त मे दूर दूर तक फिरा हूँ। जंगल में किसी चीफ़ के यहाँ मैं पड़ाव करता था। चीफ़ को कपड़ा और उसकी स्त्री को खांड, नमक, मोती और गहने की भेंट देता था। वे हमारा प्रेम से स्वागत करते थे। वे आसपास के झोंपड़े में ख़बर पहुँचा देते थे। जगह जगह पर लोगों की भीड़ जमती थी।

जंगल के स्त्री पुरुष बिल्कुल नग्नदशा में थे, फिर भी उन में



बड़े ढोल के साथ आदिवासियों के नृत्य समय के वाद्य

विकार नहीं था। जिस प्रकार पशु-पक्षी निर्दोष होते हैं वैसे ही उनका प्राकृतिक जीवन पवित्र था। कुदरती मर्यादायें - यह उनकी स्वाभाविक स्थिति थी। उनकी खूराक भी कुदरती थी। शिकार के अतिरिक्त शकरकन्द, केला, टाफियाको आदि हरएक वस्तु वे उपयोग में लाते थे।

जंगल में किसी चीफ़ के सुन्दर गुम्मटदार झोंपड़े में बैठे होते और सामने हम से बीस-पचीस फीट दूर सैकड़ों नेटिव बैठे होते थे। रात्रि मे भट्ठे के चारों ओर तापते हुये घण्टों तक बातें करते थे। टूटी फूटी भाषा समझते फिर भी आँख में प्रेम दिखाई पड़ता था। कई बार ये लोग नाच करते थे। नाच के समय उनका शृंगार बहुत सुंदर और कुदरती होता है। पक्षियों के रंग-बिरंगे पंखों का मुकुट बनाते हैं, मुख को चीते की भांति रँगते हैं, सींग चढ़ाते हैं, चीते का चमड़ा ओढ़ते हैं, बाद में स्त्री-पुरुष एक साथ मिलकर नृत्य करते हैं। सींग के पोले बाजे ढोल के स्वर के साथ ताल का मेल मिलता है। गीत कान को मधुर लगे - ऐसा होता है। इतने अधिक आनन्द मे आकर नाच करते हैं कि समस्त संसार को भूल जाते हैं। छ छ और दस दस घण्टों तक नृत्य करते हैं।

उन दिनों को याद करता हूँ तो स्वप्न जैसा लगता है। आज वैसे घनघोर जंगल रहे नहीं। जंगल काटकर चमकदार रास्ते बन गये हैं। नेटिव चीफ़ का झोंपड़ा वैसा रहा नहीं, छोटे कस्बे बन गये हैं। लोग वैसे भोले निर्दोष रहे नहीं, आधुनिक दुनियाँ की हवा से अपटू-डेट बन गये हैं। कोट, पतलून, हैट, मोटर साइकल, मोटरकार आदि वाहन हो गये हैं। कितने तो खेत में भी साइकिल से जाते हैं। आज तो पैरों के बल पर चलकर और मज़दूरों के सिर पर लादकर मरुँगा का कोई भी व्यक्ति कपड़ा, मोती अथवा पीतल के तार बेंचने को निकलता नहीं। आज तो साइकिल, मोटर साइकिल, मोटर बस, रेलवे, स्टीमर आदि सवारियों में बैठकर नेटिव स्त्री-पुरुष नज़दीक के कस्बे में बाज़ार करने जाते हैं। मन-मानी वस्तुयें खरीद लाते हैं। आज व्यापारी और ग्राहक के मध्य प्रेम जैसी कोई वस्तु रही नहीं। एक प्रकार का मतलबी जीवन हो गया है। उसमे स्वाभाविक जीवन की सुवास रही नहीं।

मेरी यात्रा लगभग चार मास के चली। हाथी दांत का थोड़ा टुकड़ा हमें मिला। उससे हज़ार एक रूपया पैदा किया। कपड़ा,

मोती, तार आदि सभी माल को समाप्त किया। दस हज़ार के माल में से पन्द्रह हज़ार का तिल ख़रीदा। इस काल में वाहन की कोई सुविधा नहीं थी, इस लिए सारे माल को छोटी सौ टन की स्टीमर के आने पर उसमें लाने का ठहराया।

सफ़र में मै थोड़ी दवायें साथ रखता था। भीखा कल्याण का मलहम, एप्समसाल्ट, बाटलीवाले के लाल मिक्श्चर की दवा, पेन-किलर, क्विनाइन की गोलियाँ – ऐसी थोड़ी सी दवायें साथ मे थीं। मज़दूरों अथवा हममें से किसी को आवश्यकता पड़ती तो इनका उपयोग करते थे। ये लोग जंगली दवायें जानते थे। ओझा-सोखा के समान इनका डाक्टर वेश बदल कर मरीज़ के पास आता है। सींग बजाकर, नाच करके मंत्रतंत्र करता है। इस प्रकार के डाक्टर को ये लोग देव जैसा मानते हैं। धीरे धीरे मिशनरी पादरियों ने यह वहम दूर किया।

हमारे पास अनाज कम हो गया था। जिंजा पैदल रास्ते से डेढ़ सौ मील दूर पड़ता है। मैंने मज़दूरों को जिंजा अनाज लेने भेजा। परन्तु वे पीछे नहीं आये, मार्ग से ही भग गये। इस लिये दूसरे मज़दूरों को भेजा। मेरे पास आँटा अथवा चावल कुछ भी नहीं था। उबाले हुये मूँग खाकर दिन बिताया। केला, शकरकन्द और दूध पर्याप्त मिलता था। इस लिए कठिनाई नहीं पड़ी। दूध देश जैसा नहीं था – इस लिए बहुत पसन्द नहीं पड़ता था। दो सेर दूध गरम होने को रखता इसमें से एक सेर रह जाने पर पीता था। दूध जमाकर दही बनाता था। रोज दो सेर दही खाने में लेता था। भूख खूब लगती थी। चढ़ता हुआ खून था। मेहनत भी खूब करता था। कलाकी से बन्दर बारह मील दूर पड़ता था। बन्दर पर मैं सप्ताह में एक समय चलकर जाता था। तीन घण्टे में बारह मील पूरा कर लेता था। कलाकी से बहुत सबेरे निकलकर आठ बजे बन्दर पर पहुँच जाता था। कामकाज करके सरोवर के एक किनारे शान्त, स्वच्छ जगह देखकर पड़ाव डालता था। साथ मे पूरी-शाक, केला, जमाये दूध का डब्बा, चाय, खांड आदि ले जाता था। वृक्ष की घनी छाया में दोपहर में खाने में बहुत आनन्द आता था। सामने सागर जैसा सरोवर हिलोरें ले रहा हो, वृक्ष पर पक्षी-गण कलरव करते हों, ऐसे वातावरण में भोजन में जो आनन्द आता है वह आज बड़े जंकशनो के रेस्टारेण्ट अथवा शहर के "अप्टू-डेट" होटल मे कहाँ से आ सके।

सायंकाल आठ बजे पैदल चलकर पीछे वापस आता था। इस आनन्द के संस्मरण में एक प्रकार का रस मिलता है। राजकवि कलापिने एक कविता कही है "माण्यु तेनु स्मरण करवुँ, एय छे एक ल्हाणु" अर्थात् जिसका अनुभव किया उसका स्मरण करना एक आनन्द है।

इस यात्रा में जैसा आनन्द किया वैसा ही दुःख भी भोगना पड़ा। कलाकी मे मुझे ज्वर चढ़ गया। आठ दस दिन तक बुख़ार रहा। पैर में सूजन चढ़ गई। मेरा जमादार और दूसरे लोग देख-भाल करते थे परन्तु इन्हे दूसरी ख़बर नहीं पड़ती थी।

इसी समय कलाकी मे डिस्ट्रिक्ट कमिश्नर का पड़ाव पड़ा। इन्हे ख़बर पड़ते ही ये मिलने आये। मैं तो ज्वर की बेहोशी में पड़ा था। इन्हो ने पूछताछ की। पैर में सोजिश चढ़ गयी थी और ज्वर भी बहुत चढ़ा। कमिश्नर ने उपचार प्रारंभ किया। पेट मे मल अवरुद्ध होगया था। जुलाब दिया, कोई असर न हुआ। बाद में गरम पानी के टब में बैठाने लगे। धीरे धीरे मल निकलने लगा। एस्पीरीन जैसी गोलियाँ देते। ज्वर हटा। चाय के साथ ब्रेड बटर देना शुरू किया। क्विनाइन मिक्श्चर दिया। दूसरे आठ दिन मे चलना फिरना होने लगा। कमिश्नर ने अपने पास से थोड़ा चावल दिया। उसकी खिचड़ी बनाकर खाने लगा। तबियत अच्छी होने लगी। अनाज तथा दवा लेने को दूसरे मज़दूरों को ज़िंजा भेजा। वे १६ दिन में अनाज आदि लेकर पीछे आये।

कमिश्नर आठ दिवस ठहर कर चला गया। जाते समय प्रेम से मिलता गया। आराम लेने की सलाह दी, दवा भी देता गया और वहाँ के चीफ़ को ताक़ीद करता गया। हमारा २५ वर्ष पर्यन्त इससे ऐसा ही सम्बन्ध रहा। वह जिंजा में डिस्ट्रिक्ट कमिश्नर थे। उसके बाद मशिण्डी प्रान्त में प्रोविंश्यल कमिश्नर बने। वहाँ पर ही उनका शरीरान्त हुआ। आगे चलकर मशिण्डी पोर्ट मे मैने 'साइसल' (केतकी) प्लाण्टेशन किया, उससे खूब सम्बन्ध बढ़ा। मशिण्डी मे उनकी क़बर के ऊपर स्मृति की पाटी लगी हुई है। अभी भी हमे मशिण्डी जाना होता है तो यह दयालु और भला मनुष्य स्मरण आता है।

चार मास बीतने के बाद रिसाले के साथ मैने कलाकी से अपना डेरा उठाया। डेढ़ सौ मील की मंज़िल बिना किसी विघ्न के पूरी कर कमली सुख से वापस आ पहुँचा।

इस प्रकार सन् १९०७ का वर्ष पूरा हुआ।

रूई का व्यापार

सन् १९०८ में कमली से बारह मील दूर जंगल में मैंने दूसरी दूकान की। भाई जीवन शामजी को इस दूकान पर छोड़ा।

एक बार दूकान पर मै बैठा था। उस समय मन में अकस्मात् विचार आया कि सरकार इस देश में कपास बोने का उद्योग कर रही है। तो फिर अपने क्यों न करें? यह विचार आते ही देश से दश सेर कपास का बीज मँगाया। अफ्रीका में शाक भाजी मिलती नहीं थी अतः इसका बीज भी देश से मँगाया।

देश में पत्र लिखा और साथ ही पिताजी को चारसौ रूपये भेजे। कागज मे मैंने प्रकट किया कि– "घर से जो मैं लाया था वह ब्याज के साथ वापस लौटा रहा हूं। अब से कुछ नहीं भेजूँगा। जो लाभ होगा वह यहाँ के व्यापार को बढ़ाने में रोकूँगा। हाथ-खर्च के लिए आपको हर वर्ष सौ - दो सौ रूपये भेजता रहूँगा।"

देश से कपास और शाक भाजी का जो बीज आया उसे मैंने कमली के मकान के पिछले भाग में बो दिया। मास मास के अन्तर से चार समय कपास के बीज को बोया। पड़ोस के मित्रों को भी दिया। रूई अच्छी हुई। नेटिवों के द्वारा हाथ से कपास निकलवाया। इस रूईमें से गद्दा और सिरहाने भराये। आसपास के खेतों में पुनः कपास का बीज बोया। कपास की खेती में कुछ सफलता मिली।

सरकार का प्रयोग चालू था। डिस्ट्रिक्ट कमिश्नर मेरे यहाँ आया। हर तीन मास में वह घूमने निकलता था। वह स्वाहिली (अफ्रीकी) भाषा जानता था। अपने देश मे जैसे आई. सी. एस. हो कर आनेवाले को हिन्दी भाषा सीखनी पड़ती है वैसे ही वहाँ पर स्वाहिली भाषा सीख कर ही आना पड़ता है। उसको मैंने अपनी कपास के प्रयोग की हक़ीकत बतायी। उसमे से बनी रूई, रूई से बने गद्दे और सिरहाने को बताया। यह सब

देख कर कमिश्नर बहुत खुश हुआ। उसने कहा कि- "सरकार हाल मे कम्पाला तथा इण्टेबे में प्रयोग कर रही है। हम मिश्र की रूई का प्रयोग कर रहे हैं।"

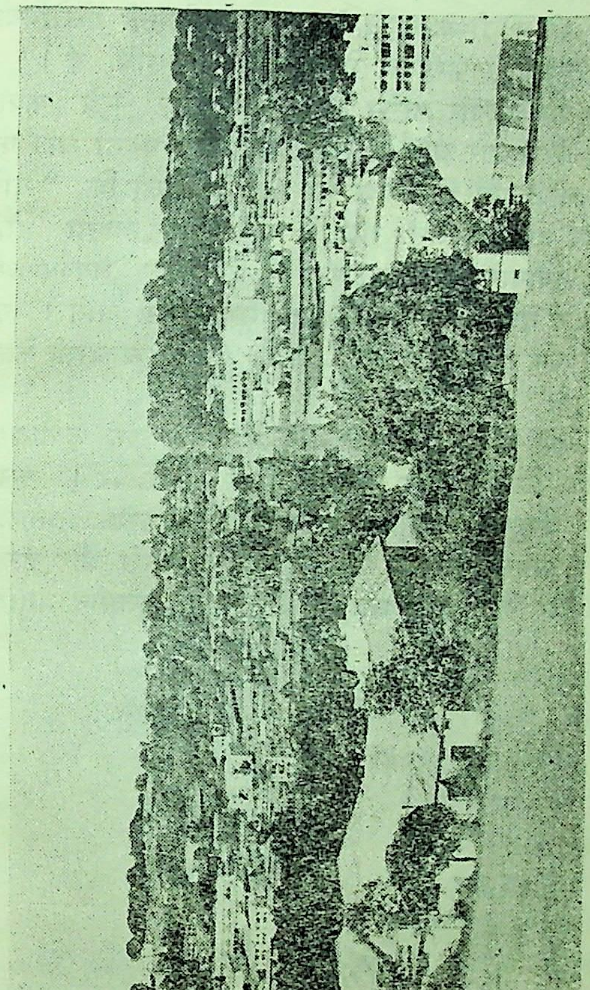
मैने कहा- "मुझे मिश्र की कपास का बीज भेजिए, मै भी प्रयोग करूँगा। सरकारी प्रयोगों का परिणाम देर से आवेगा जब कि व्यक्तिगत प्रयोग शीघ्र सफल हो सकेगा।"

उसने सच्चाई से उत्तर दिया "यह आप की बात सच्ची है, परन्तु जब तक सरकार स्वयं प्रयोग कर रही तब तक आप को बीज नहीं दे सकती।"

ऐसा होने पर भी हिन्दी कपास का हमारा प्रयोग चलता रहा। सन् १९०८ पर्यन्त युगण्डा में एक भी जीनेरी नहीं थी। जो थोड़ा बहुत कपास होता था वह हाथ के चरखे पर साफ करने में आता था। सन् १९०९ में "युगण्डा कॉ. लि०" नाम की फर्म की जीनियरी हुई। उसमे योरोपियन, भारतीय और नेटिव सभी ने भागीदारी भरी। कम्पनी के मैनेजिंग डाइरेक्टर के रूप में योरोपियन था। इस कम्पनी ने कपास की खेती प्रारंभ करायी। कपास की खरीदी शुरू की। कपास को साफ कर और बंडल बाँध कर इंगलैण्ड भेजने में आता था। यह कम्पनी अभी चालू है।

बुसोगा डिस्ट्रिक्ट में कपास की खेती भारी मात्रा में करने में आयी। यह प्रदेश नाइल नदी के किनारे पर होने से बहुत उपजाऊ है। कपास की खेती के अनुकूल जैसी भूमि चाहिए वैसे ही अस्तरों वाली यह ज़मीन थी। कपास की खेती होने से यह प्रान्त अच्छी तरह से विकसित हुआ। वस्ती भी बढ़ी। आज युगण्डा में लगभग चार से पाँच लाख गाँठ रूई की होती है। मैने भी कपास खरीदने का प्रारंभ किया। कपास जिंजा होकर कम्पाला जाती थी। इस समय कम्पाला बिल्कुल छोटा शहर था। जब कि इस समय भी कम्पाला नेटिव राजा की राजधानी थी। युगण्डा का राजा कम्पाला में रहता था। उसने अंग्रेजों के साथ लड़ाई की। अंग्रेजों ने उसे हरा कर क़ैद कर लिया और काले पानी में भेज दिया। सन् १९०४ मे पहली बार मैं कम्पाला गया उस समय वहाँ पर कोई व्यापारी नहीं था। थोड़े मिशनरी थे और छोटा पत्थर का क़िला था।

आज कम्पाला एक लाख की वस्ती वाला युगण्डा का पाटनगर बन गया है। नवीन से नवीन ढंग के बड़े मकान, बंगले, सरकारी



युगाण्डा का पाटनगर कम्पाला

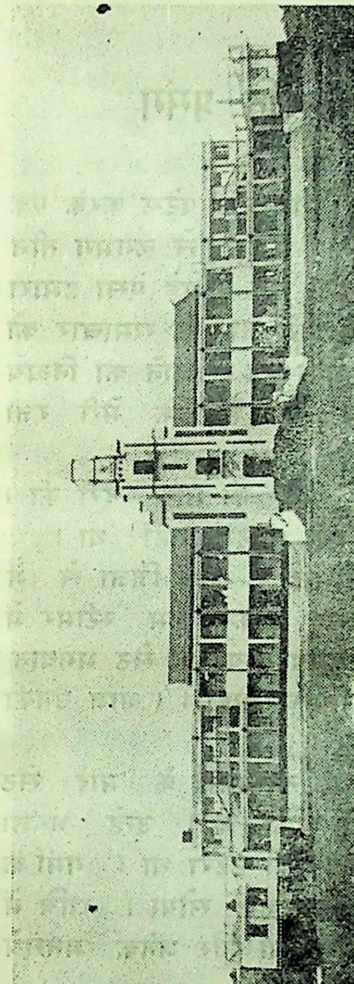
कचहरियाँ, अस्पताल, स्कूल, कालेज, भिन्न भिन्न पहाड़ियों पर सुन्दर मकान बने हैं। चारों तरफ़ सुन्दर बगीचे हैं। विस्तृत रौनकदार राजमार्गों से कम्पाला सुशोभित शहर बन गया है। युगण्डा के व्यापार का यह मुख्य केन्द्र है।

कपास की खेती के बढ़ने के साथ ही कितनी योरोपियन फर्में और भारतीय व्यापारी कम्पाला में आकर बस गये हैं।

कपास का व्यापार प्रारंभ किया इस लिए मुझे कपास की खरीद करनेके लिए वार वार डिस्ट्रिक्ट में जाना पड़ता था। काम की खींच बढ़ने लगी - इस लिए देश को कागज़ लिखा कि "यदि इस समय यहाँ पर दो तीन जन आजावें तो बहुत अच्छा हो, देश खिल रहा है, व्यापार बढ़ता जा रहा है, इस लिए अवश्य आवें।" मेरा पत्र पढ़कर देश से मेरे छोटे भाई मथुरादास आये। साथ में रसोई के लिए एक आदमी लेते आये। मेरे चाचाजी के लड़के प्रभुदास आये।

उनके आने के बाद कमली गाँव में दूसरी एक दूकान प्रारंभ की। एक इस किनारे और दूसरी दूसरे सिरे पर। उस समय यहाँ पर चार वस्तुवों की मुख्य पैदावार थी - मक्खन, तिल, मिर्च और कपास। मक्खन से घी बना लेते, डब्बा भरते और हर सप्ताह जिंजा रवाना कर देते थे। जिंजा से चाहिये वह सामान मँगाता था।

रास्ता अभी जितना चाहिए सुधरा नहीं था। धीरे धीरे सुधरता जा रहा था। सन् १८८५ के एग्रीमेण्ट के अनुसार नेटिव चीफों को मार्ग सुधारना था। डिस्ट्रिक्ट कमिश्नर की सूचना के अनुसार रास्ता सुधारने का कार्य नेटिव चीफ़ लोग करते थे। आवश्यकता पड़े वहाँ पुल बाँधना पड़ता था। उसमें चीफ़ यदि ग़फ़-लत करें तो सरकार प्रजा के खर्च से रास्ता ठीक करा लेती थी। इसके परिणाम-स्वरूप आज युगण्डा का हज़ारों मील का मार्ग अमेरिका को छोड़कर दुनियाँ के किसी देश की अपेक्षा सुन्दर बना है।



श्रीमती सन्तोकबेन नानजीभाई मेहता आर्य कन्याशाला, कम्पाला। उद्घाटन लेडी हेलेन कोहेन के हाथों से ता. ४-९-'५४

धीरे धीरे काम बढ़ता जाता था। बम्बई से हम सामान मंगाते थे। ज्यों ज्यों कमाते जाते त्यों त्यों कमाई दूकान में डालते जाते थे। इस समय जिंजा मे एक, कमली मे दो और जंगल मे दो – इस प्रकार पाँच दूकाने थीं। कामकाज बढ़ने लगा।

अपने चाचा के लड़के प्रभुदास को काम सोंपकर मैं देश आने को तैयार हुआ।

मिल का विचार और स्मृति-प्रसंग

इस समय जिंजा के स्टेशन-मास्टर सोमाभाई पटेल करके एक व्यक्ति थे (जो सम्प्रति जीवित नहीं हैं)। वे मुझ से लगभग तीन वर्ष बड़े थे। हमे एक दूसरे को देखे विना चैन न पड़े ऐसा हमारा सम्बन्ध था। वे खूब दयालु थे। मेरे देश में जाने के समाचार को सुनकर उन्हो ने मुझे कहा "यदि आप थोड़ी देर से जाने का निश्चय करें तो हम साथ देश में चलें। कारण यह है कि मेरी रजा अभी पूरी नहीं हुई है।"

भाई सोमाभाई के साथ के लिए मैने दो मास देरी की। इस मे कोई ईश्वरी संकेत होगा - वह मुझे मालूम नहीं था।

सन् १९१० के साल में भाई सोमाभाई के साथ जिंजा से मैं देश में आने को रवाना हुआ। मोम्बासा आकर हम स्टीमर में चढ़े। बम्बई हीराबाग में उतरे। इस समय बम्बई के सेठ भगवान दास मावजी के साथ मैने व्यापार का सम्बन्ध जोड़ा। (आज उनकी उम्र ९० वर्ष से ऊपर है)

बम्बई से हम अहमदाबाद गये। सोमाभाई के भाई सेठ मनसुखभाई भगूभाई की तेलिया मिल में नौकर थे। उन्हे अच्छा वेतन मिलता था। मै उनके घर पर साथ ही ठहरा था। गर्मी के दिन थे इस लिये आँगण मे चारपाई डालकर सोया। रात्रि में आकाश की ओर देखकर अनेक बातें करता था और अनेक मनसूबे मन में आते थे।

दूसरे दिन हम मिल देखने गये। मैने कभी मिल देखी नहीं थी। बड़ी दिलचस्पी से सब देखा। मशीनरी चले, सांचा चले, मज़दूर दौड़ दौड़ कर काम करें - यह देखकर मन में उल्लास आता था। समझ नहीं पड़ता था परन्तु हृदय में कोई गहरा भाव दबाव डाल रहा था - ऐसा लगता था। दो तीन घण्टे घूम घूमकर मिल देखी। उस समय की छोटी मिलें भी बहुत बड़ी लगती थीं। मिल मे खूब घूमा। घबराया इस लिये बाहर निकला।

मिल के प्रांगण में एक पीपल का सुन्दर वृक्ष था। इसके चारों तरफ चबूतरा बंधा था। इस चबूतरे के ऊपर मैं बैठा। श्री सोमाभाई अपने भाई के साथ रुक गये थे।

बारह बजे की सीटी बजी। मैं चबूतरे पर बैठा था। मज़दूर वहां से जाने लगे। चिमनी के सामने देखकर इस समय हृदय से उद्गार निकल पड़ा : "भगवान् यदि पैसा दे तो ऐसी ही एक मिल खड़ी करूँ।" दस-पन्द्रह हज़ार की पूँजी पास नहीं थी फिर भी मन मे बहुत भारी मनसूबा बांधा। इस समय तो उसे मन में ही समेट लिया। सोमाभाई ने बुलाया तब मैं विचार से जगा।

अहमदाबाद में तीन दिन ठहर कर पोरबन्दर आया। वहाँ से गोराणा पहुँचा। परिवार से मिला। सब को आनन्द हुआ। बड़े भाई देश में थे। माता जी और पिता जी को अब अकेला नहीं रखना है - ऐसा हमने निश्चय किया। मेरी पत्नी भी घर पर थी। आस पास के सगे सम्बन्धी मिलने आये। सभी प्रसन्न हुये।

थोड़े दिन गोराणा में रुक कर मामा को मिलने मैं वीसावाडा गया। वीसावाडा से आते हुये एक स्मृति-प्रसंग उपस्थित हुआ।

मैं घोड़े पर आ रहा था। सफेद कपड़ा और आभूषण पहने हुये था। घोड़े का मुझे बचपन से शौक था और आदत भी थी। रास्ते में एक नाला पड़ा। नाले में घोड़ा उतरा तो ढेलबाँस मे से पत्थर के ढेले आने लगे। दो चोर मुझे मार्ग में मिले। ढेलबाँस की भांति सनसनाहट करते हुये पत्थर आ रहे थे। घोड़े के ऊपर मैं चिपट गया। एक पत्थर घोड़े को लगा। घोड़ा गरम होकर भग खड़ा हुआ। पीछे चोर ढेलबाँस से प्रहार करते हुये दौड़े आ रहे थे।

एक मील दूर गया कि इतने में हमारे गाँव की दो मेहर बाइयें सामने से आयीं। इन्हो ने मुझे पहचान लिया। खड़ा करके पूछा "ऐसी उतावल के साथ क्यों भागे जा रहे हो बेटा!?"

मैंने पीछे आते हुये चोरों की बात की। इसलिए ये बहादुर बाइयाँ बोल उठीं "हमारे साथ चलो। इन की हिम्मत क्या कि तुम्हारा बाल बाँका कर सकें" ऐसा कहती हुई ये आगे बढीं। हम सब नाले में आये। बाइयों ने चोरों को धमकाया। चोर नाले की झाड़ी में छिप गये थे।

मै घर आया। माताजी को अपने को सौंप दिया। ईश्वर को बँचाव करना होता है तो कोई न कोई मदद आ मिलती है।

इन दोनो मेहर वहनोमें से एक वाई का लड़का गुज़र जाने से वह ग़रीव स्थिति में आ गयी। पन्द्रह वर्ष जीवित रही तव तक इस को मैंने अनाज और कपड़ा भेजा।

दूसरी वाई ने ओखा में एक वाघेर के साथ विवाह किया। मेहर जाति मे यूरोप की भांति यदि परस्पर न वैठे तो छूट - छाट करने का रिवाज़ है। सन् १९१४ मे (इस घटना के चार वर्ष वाद) मैं द्वारका गया। उस समय वाघेरों का लूट - पाट चल रहा था। द्वारका से वापसी में मैं एक मेहर साथी के साथ घोड़े पर आ रहा था। हम भ्रेवाड गाँव की सीमा से निकले। वहाँ इस वाई ने वावड़ी के किनारे से मुझे देखा। देखते ही पहचान लिया। वोली- वेटा! कहाँ गया था?

मैने कहा- "फुई! द्वारका नहाने गया था।"

मैंने घोड़े को खड़ा रखा। वाइयों ने हमारा स्वागत करते हुये शुभ भावना प्रकट की। ११ वजे का समय था। इन्हो ने मुझे भोजन करने के लिए बड़ा आग्रह किया। हम खा कर निकले थे अतः उनका आभार माना। दो घण्टे तक वृक्ष की छाया में वैठा। पानी पिया। हमारे पास मिठाई थी। उसे हमने इनके वच्चों के लिये दी। इतने मे इसका पति अजो माणिक आ गया। वाई ने उसको मेरा परिचय कराया। अजा माणिक ने कहा- "इस तरफ लूट - पाट मारकाट का भय है। अभी ही मै उनसे मिलकर आ रहा हूँ। यह लड़का अकेला जावे - यह ठीक नहीं। मै इसे पाँच छ मील तक छोड़ आता हूँ।"

अजा माणिक मेरे साथ आया। विद्रोही मारकाट करने वाले फैले हुये थे। वहाँ से तीन चार मील छोड़ गया। मुझे कहा "तेज़ हाँकना।"

मैने राम राम करके घोड़े को मारकर ज़ोर से भगाया। इतनी माया ममता इस ज़माने में थी। आज तो पांच दस रूपये के लिए खून होता है। कितना पतन है! भारत कहाँ जाकर खड़ा होगा?

कच्छ के सन्तकवि देवायत पण्डित की कही भविष्य वाणी याद आती है - जिसका अर्थ यह है -

"हे देवलदे नारि, सुनो! अपने गुरुवों ने सत्य कहा है। उनकी वात झूँठी नहीं ठहरेगी। जो लिखा कहा वही दिन आवेगा। सूने शहर में धरती पर हाथी घूमेगा। लोगों की लक्ष्मी लूटी

जावेगी और उसकी राजा के यहाँ फ़रियाद भी नहीं होगी। हे सन्तो! पाप का समय, धरती अपना भोग माँग रही है। कई का तलवार से संहार होगा और कई रोग से मरेंगे। पुस्तकों के पृष्ठ और पुस्तकें झूंठी होंगी और काज़ी का कुरान भी झूंठा पड़ेगा। असत्य शाहज़ादी के कंकड़ को धारण करेगा (अर्थात् प्रबल होगा) यह प्रमाणमय भविष्य का कथन है। देवायत पंडित यह भविष्य कह रहे हैं – हे देवलदे नारि सुनो! अपने गुरुवों ने सत्य कहा है।"

यह भविष्य कथन आज सच्चा पड़ता दिखाई दे रहा है। थोड़े दिन गोराणा में शान्ति से व्यतीत करने के बाद मैं यात्रा पर निकला। पहले आबू गया। पहले देखे हुये सुन्दर स्थलों को फिर से देखा। आबू से सिन्ध की ज़मीन देखने की इच्छा हुई। वहाँ से पैदल सूई गाम गया। सूई गाम से थरपारकर पहुँचा। रेत के प्रदेश में ऊँट की सवारी का आनन्द मिला। थरपारकर से मीठी होकर मैं हैदराबाद गया।

रेगिस्तान का प्रदेश समाप्त होते ही भूमि में परिवर्तन दिखाई पड़ा। उपजवाली हरीभरी भूमि आयी। सिंधु नदी से निकाली गई बड़ी नहरें देखीं। नहरों में छोटी नदी जैसा प्रवाह चल रहा था। नहरों मे से छोटी नालियाँ निकाल कर ज़मीन में खेती की जाती है। नहर के किनारे पर सुन्दर रास्ता, दोनो तटों पर सुन्दर वृक्ष बीच में छोटे गाँव आते हैं। दोनो तरफ़ दूकानें और दूकानों के खम्भे में नौका बाँधकर नाविक बैठे रहते हैं। नहर में किश्ती चलती हैं। उस समय फस्ल का मौसम था। खेतों में मीलों तक फसल खड़ी थी। कहाँ थरपारकर का रेगिस्तान और कहाँ हरा भरा प्रदेश। मनुष्य चाहे तो क्या नहीं कर सकता? मरुभूमि को नन्दन वन बनाने की शक्ति मनुष्य को ईश्वर ने दी है। इस बुद्धि शक्ति का उपयोग हो तो मनुष्य जाति कितनी सुखी हो जावे।

सिंध हैदराबाद होकर मैं कराँची गया। छ वर्ष में कराँची का कलेवर बदल गया था। विस्तृत और स्वच्छ सड़कें, सुन्दर बगीचे, रौनकदार बाज़ार – इन सब को देखकर आनन्द हुआ। छ वर्ष पहले मैं कराँची गया था तो मेरा विचार वहाँपर व्यापार करने का था। भाग्य मुझे पूर्व अफ्रीका लेगया। ईश्वर की लीला अपार है।

आज दूसरे विचार भी आते हैं। सिन्धु का यह रम्य तट, यह उपजाऊ प्रदेश, पंजाब की पांच नदियों का धनधान्य से भरा

हुआ देश जो भारतमाता का मस्तक गिना जाता था आज धड़ से पृथक् हो गया है। भारतमाता के दो पुत्र हिन्दू मुसल्मानो ने माता के दो टुकड़े किये। एक भारत है और दूसरा पाकिस्तान। जो भारतीय अखंड भारत की पूजा करते थे वे आज खण्डित भारतमाता को पूजते हैं। सिन्ध और पंजाब की यह उपजाऊ भूमि जिसने देखी हो उसको इस वस्तु का सच्चा ख्याल आ सकता है। पुनः भारत अखण्ड बनेगा तो भारतमाता का आशीर्वाद अपने ऊपर बरसेगा।

सिन्ध से मुल्तान हो कर मै लाहौर गया। वहाँ से रावलपिण्डी गया। उस समय सन् १९२६ में वहाँ पर हिन्दू-मुस्लिम दंगा हुआ था। वहाँ हिन्दुवों की अपेक्षा मुसल्मानो की बस्ती अधिक थी। वहाँ के कपड़ा बाजार में उस समग लगभग चार करोड़ का सामान था। उसमे उस समय आग लगा दी गई थी। हिन्दुवों के साथ ही साथ मुसल्मानो की भी इससे हानि हुई थी - क्यों कि एक दूसरे की दूकाने साथ थीं। इस लिये मुझे शहर में जाने की आज्ञा नहीं मिली। नैरोबी वाले सेठ अलीभाई मूसा जीवनजी के सगे-सम्बन्धी लुकमानजी सेठ वहाँ रावलपिण्डी में जे. पी. थे। वे एक समय नैरोबी आ चुके थे। उस समय उनके साथ मेरी भेंट हुई थी। इससे उनके घर फोन कर के खबर दी कि मै यहाँ पर आया हूँ। यह खबर मिलते ही सेठ का लड़का मेरे पास मोटर लेकर आया। मुझे सारा गाँव घुमा कर दिखाया, क्यों कि जे. पी. होने से मनाही होने पर भी सभी जगहों पर वे जा सकते थे।

रावलपिण्डी से मैं तक्षशिला गया और वहाँ पर पुराने काल की सुप्रसिद्ध विद्यापीठ देख कर मुझे भारी दुःख हुआ। पहले काल में वहाँ दश हज़ार विद्यार्थी दूर दूर से विद्याभ्यास करते थे। मानव की ही भांति भूमि की भी अच्छी बुरी दशातियाँ आती हैं। कालचक्र की गति से कोई भी मुक्त नहीं है - यह यहाँ पर अनुभव करते हुये मालाबारी कवि का कथन याद आया -

कालचक्र की बलिहारी ये, ऊँचे से नीचे पड़ता।
चढे तो थककर द्विगुण वेग से, पृथ्वी पर पटकी पड़ता॥

एकाध मास मैं इस तरफ फिरा। वहाँ का व्यापार देखा। वहाँ से मुम्बई आया।

बम्बई से रेशमी कपड़े की खरीद करने के लिये मुझे मद्रास जाना पड़ा। स्टेशन से उतर कर बाहर निकला। इस समय वहाँ पर हिन्दी भाषा कोई जानता नहीं था। लोग तामील और अंग्रेज़ी समझते थे। एक टर्की टोपी पहने हुये मुसलमान टाँगेवाले के पास मैं गया और उससे कहा- "हिन्दू होटेल में ले चलो।" यह थोड़ी बहुत हिन्दी समझता था। मेरे पास सामान में एक पेटी, बिस्तरा और बटुआ था। खरीदी के लिए तीन-चार हज़ार रूपये साथ में लिया था। इस समय मेरे पास बड़ी पूंजी नहीं थी।

मद्रास की मुख्य बाज़ार मे होकर टाँगा जा रहा था। इतने में बालबोध लिपि में "उपाहार गृह" ऐसा एक साइनबोर्ड पढ़ा। मुझे हुआ कि यह कोई भोजनालय है। टाँगे को खड़ा कराया। भाड़ा देकर, सामान लेकर मैं उपाहार गृह में गया। वहाँ कोई हिन्दी का समझने वाला नहीं था। मै ने संकेत से समझाया कि मुझे नहाना है और भोजन करना है।

मुझे उसने नहाने की सुविधा कर दी। नहाकर भोजन करने आया। उसने मुझे बैठने को एक पीढ़ा डाल दिया। बग़ल में पानी का लोटा रख दिया। मै भोजन करने बैठ गया। पहले भात परसा, पीछे दाल परसी परन्तु शाक की मै राह देखता रहा। इतने मे एक मोटा काला ऊँचा रसोइया जल्दी से आया और पतीलीमे से मछली परस दी। मैं चोंक पड़ा और हाथ उठाकर कहा कि- "मैं मछली नहीं खाता" ऐसा करते हुये मेरा हाथ इसकी थाली से लग गया। मेरे कहने को इसने कुछ समझा नहीं। मै मछली नहीं खाता हूँ इककी उसे कल्पना भी कहाँ से आवे? परन्तु मै इसकी थाली से लग गया। इससे वह चिढ़ गया और अपनी भाषा मे कुछ "गुड गुड" बोलने लगा। मुझे हुआ कि यह मुझे गाली दे रहा है। इस लिए मै खड़ा हुआ और चुप रहने को कहा। इसने मुझे छूकर भ्रष्ट किया और तिसपर भी स्वयं भ्रष्ट होगया हो ऐसा "छू गया" करके अण्ड-बण्ड बोल रहा था। मुझे क्रोध चढ़ा और पीढा उठाकर मैं उठ खड़ा हुआ। इसने मुझे कल्छी मारी। कल्छी मैंने पाटले से रोंक ली। हमारी बोल-चाल सुनकर दूसरे दो चार आदमी दौड़ आये। एक के हाथ में मोटी लकड़ी थी। ये लोग मज़बूत और तगड़े थे। मेरा शरीर भी ऐसा ही था। आवेश बढ़ते बढ़ते बात मारामारी तक पहुँच गयी।

पहले परसने वाले के मत्थे से पाटला लगने से रक्त की धारा निकल पड़ी। दूसरे दो तीन को पाटले का घाव लगा। मेरे सिर में और पीठ में कल्छी और मोटी लकड़ी का घाव पड़ गया। हमारा कोलाहल चल ही रहा था कि उसी बीच मे एक आदमी पुलीस को बुला लाया। एक कान्स्टेबिल दौड़कर आ गया। इसने सब को शान्त किया। मुझ से पूंछा "क्या है?"

मैंने सारी बातें कहीं -"मै मांसाहारी नहीं हूँ। मुझे मछली परसने आया तो मैंने हाथ फैलाया। एक दूसरे की भाषा न समझने से यह तूफान हो गया है। मैं व्यापारी गृहस्थ हूँ, बम्बई से माल खरीदने आया हूँ। आप जैसा कहें वैसे प्रतिष्ठित व्यापारी की पहचान दे सकता हूँ।"

पहले आदमियों ने कहा कि "हमे यह छू गया। मेरी मछली छूत से भ्रष्ट हो गई। दो रूपये की मछली हमें फेंक देनी पड़ेगी"।

दोनो की बात सुनकर कान्स्टेबिल हँस पड़ा। इसने समझ लिया कि यह सब भाषा का फेर अथवा भ्रम पड़ा है। मुझे कहा कि "सेठ इसे दो रूपये दे दो।"

मैंने दो रूपया दे दिया। कान्स्टेबिल के साथ गाड़ी में बैठकर मैं शाहूकारों के मुहल्ले की तरफ गया। वहाँ काठियावाड़ी ब्राह्मण के होटेल मे उतरा और वहाँ पर दवा कराई।

अपने देश मे एक ही राष्ट्रभाषा सर्वत्र चलनी चाहिए। नहीं तो अन्तरप्रान्तीय व्यवहार में कितनी असुविधा पड़ेगी - उसका यह उदाहरण है।

मद्रास से कपड़े की खरीदी करके मैं पीछे बम्बई आया।

इस समय बम्बई में दूसरी स्मरण रहने वाली घटना घटी। अपने अढ़तिया भाई भगवानदास के साथ मै अपना माल चढ़ाने के लिए बन्दरगाह के गोदाम पर गया। माल का उतार-चतार और मज़दूरों की दौड़ धूप चल रही थी। इसमें एक स्टीमर चावल उतार रही थी। मुझे अन्दर जाकर देखने को मन हुआ। कुतूहल-प्रिय स्वभाववश मै अन्दर गया। बोरों के ढेर लगे थे। मै उनके ढेर पर चढ़ा। इतने मे एकाएक बोरे सरके। ४५ बोरों का ढेर गिरा। मै बोरों के नीचे दब गया। मेरे मित्र भगवानदास ने शोर मचा दिया। जमादार लोग दौड़े आये। इकट्ठे आदमियों ने मिलकर

झटपट बोरों को उठा लिया। मै नीचे आराम से बैठा था। कोई कष्ट नहीं हुआ। कुम्हार के भट्ठे में से पगरहित बिल्ली के बच्चों को प्रभु ने जैसे बँचाया वैसे ही यहां पर भी हुआ। प्रभु कैसे बँचाता है इसका प्रत्यक्ष अनुभव हुआ।

बम्बई से नासिक-त्र्यम्बक जाकर देवदर्शन किया। हमारी जाति का अलिखित नियम था कि अफ्रीका जाकर आवे तो उसे गोमती जी मे स्नान करके देहशुद्धि करनी चाहिए। उसके बाद वह जातिभोजन में बैठकर भोजन कर सकता है। यह विधि मैंने नासिक में करायी। आज यह कुछ रह नहीं गया। ज़माने के साथ यह रूढ़ि चली गई।

नासिक से देश में आया। अफ्रीका जाने की तैयारी की। इस समय के सफर में तीन-चार भाइयों को तैयार किया। वे सभी मेरे कुटुम्बी थे।

हम बम्बई से स्टीमर में रवाना होकर मोम्बासा गये। इस समय देश से अफ्रीका जाना पोरबन्दर से बम्बई जाने जैसा सरल बन गया है।

मोम्बासा से हम सुखपूर्वक जिंजा पहुँचे।

१७

भारतीय व्यापारियों के अधिकार की लड़ाई

(सन् १९१२-१९१४)

जिंजा व्यापार का केन्द्र था। अच्छी अच्छी मातिबर दूकानें वहाँ थीं। इस लिए मैंने भी एक दूकान जिंजा में डाली। ऊँचे भाग मे भी दूसरी पाँच दूकानें प्रारंभ कीं। इस समय जंगल में रास्ते और गाड़ी आदि का व्यवहार बढ़ता जा रहा था। सवारियों में साइकिल और मनुष्य खींच सके ऐसी रिक्शा आयीं। रिक्शा में एक गाँव से दूसरे गाँव तक जाया जाता था। वहाँ के बलिष्ट नेटिव एक दिन मे पच्चीस से तीस मील तक रिक्शा खींचकर ले जाते थे। मार्ग ख़राब आजावे तो नीचे उतरना पड़ता था। बैल-गाड़ियाँ भी चलती थीं।

जिंजा, कमली और ऊपरी प्रदेश में चलाई गयी दूकानें धीरे धीरे जमने लगीं। व्यापार बढ़ने लगा। देश से गये हुये भाइयों ने अपनी जवाबदारी संभाल ली। मुझे सभी दूकानो की देखरेख, माल का देना, अर्थ का हिसाब रखना और नये काम-काज संभालने पड़ते थे।

योरोपियन फर्में आयीं। उन्होने स्थायी रूप से रहने का बन्दोबस्त किया। कपास का उत्पादन बढ़ा। लगभग वीस हज़ार गाँठ रूई तैयार होने लगी। आठ दस जीनियरियें भी शुरू हुईं जिस में एक अलीदीना विश्राम, ज़र्मन और फ्रेञ्चफर्मों की एक एक और शेष ब्रिटिश कॉटन ग्रोइंग असोसियेशन की थीं। भारतीयों के हाथ में अधिकांश में नेटिवों के पास से कपास खरीदकर जीनियरियों में पहुंचाने का ही काम था और उसका हिसाब भी रखना पड़ता था। जीनर्स की एजेन्सियाँ छोटे व्यापारियों ने ली थीं।

उस समय हम देश से पन्द्रह लाख पौण्ड पर्यन्त कपास नेटिवों के पास से ख़रीदकर उसके बोरे भरकर मज़दूरों के सिर पर चढ़ाकर अथवा गाड़ी भरकर जीनियरी मे भेज देते थे। जिस प्रकार पुराने समय में अपने देश में व्यापारियों का सामान लादकर

काफ़ला चला करता था वैसे नेटिव सैकड़ों की संख्या में सिर पर कपास की बोरियाँ उठाकर ले जाते थे। एक मज़दूर के ऊपर सरकारी नियम के अनुसार दो मन भार भेजा जा सकता था। इस समय में मज़दूरी बहुत सस्ती थी। वस्तुयें भी सस्ती मिलती थीं। इस लिये दोनो को ठीक परता पड़ जाता था।

पहले नेटिव लोग मज़दूरी करने को तैयार नहीं होते थे। उन्हे खाने पीने की कोई चिन्ता नहीं थी। पहनने ओढ़ने के लिए वृक्ष की छाल और चमड़ा मिलता रहता था। परन्तु भारतीयों ने आकर उन्हे कपड़ा पहनने वाला बनाया और सरकार ने उनके ऊपर महसूलधारायें लागू की। इस लिए महसूल भरने और कपड़ा खरीदने के लिए उन्हे मज़दूरी करनी पड़ती थी। सरकारी महसूल पहले केवल आठ आना था। उसे बढ़ाकर छ रूपये कर दिया गया। हाल मे वह प्रति मनुष्य ४० रूपये हो गया है।

इस ज़माने में इतना सस्तापन था कि तीन रूपये मासिक वेतन पूरा पड़ जाता था। इस समय कौड़ी का प्रचलन था। एक रूपये की हज़ार कौड़ी मिलती थी।

दस कौड़ी में केले की पूरी गुच्छक मिल जाती थी। केला नीचे पड़ जाता था परन्तु कोई काटता नहीं था। सरकार ने मकान और मार्गों का कार्य प्रारंभ कर रखा था। जो नेटिव नक़द रक़म मे महसूल भर नहीं सकता था उसे ऐसे सरकारी काम में लगना पड़ता था। सरकार इस काम के बदले में एक सुथना, एक कमीज़, ओढ़ने का एक कम्बल, पेट भर खाने को और मासिक तीन रूपये वेतन देती थी। सरकार ने सन् १९१२ मे कौड़ी का प्रचलन बन्द कर सेण्ट का प्रचलन प्रारंभ किया।

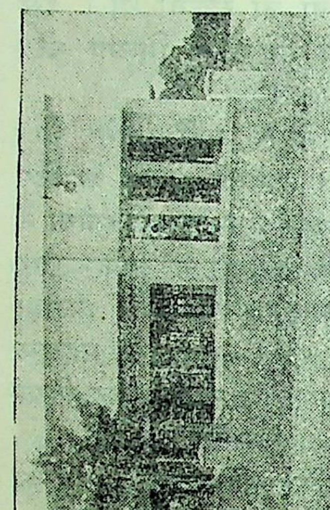
ऐसा करते हुये १९१३ का वर्ष आया।

कपास की खेती झटिति बढ़ने लगी। दूर दूर प्रदेश में खेती होने लगी। कपास की खरीद करने के लिए इंगलैण्ड मे भी एक कम्पनी खड़ी हुई। सरकार ने उसे उत्तेजना दी। सरकार की ही फर्म थी – ऐसा कहा जावे तो चल सकता है। इस फर्म के द्वारा युगण्डा के भिन्न भिन्न भागों में जीनियरियाँ खड़ी करने में आयीं।

सन् १९१२-१३-१४ पर्यन्त काल में जिंजा, कम्पाला, एण्टेबे पर्यन्त रास्ता पक्का करने में आगया। नदी नालों के ऊपर पुल बंध गये। रिक्शा, बाइसिकिल के उपरान्त थोड़ी मोटर-साइकिलें भी

चलने फिरने लगीं।

भारत से इस समय अनेक मनुष्य वहाँ जाते थे। अंग्रेज़ों को इस प्रदेश का विकास करना था। इस लिए अपनी तरफ मान की दृष्टि से देखते थे। अपने को उत्तेजना देते थे।



अ. सौ. सन्तोक बेन द्वारा बनाया गया वीमेन्स असोसियेशन हाल, जिंजा

हेंसिंग एण्ड कं. नाम की जर्मन फर्म ने एक बार मुझे ईस्ट अफ्रीका में व्यापार करने का आग्रह किया। विक्टोरिया सरोवर के किनारे जर्मन ईस्ट अफ्रीका का मुआंज़ा बन्दर आया है। वहाँ जाकर व्यापार करने का मेरा विचार हुआ। परन्तु जर्मनो की कठिन राजपद्धति के कारण वहाँ के व्यापारियों को गुलाम की तरह रहना पड़ता था। इससे विचार में पड़ना पड़ा।

युगण्डा का हमारा व्यापार बढ़ता जाता था। हर वर्ष १० से बीस हज़ार रूपये पैदा होने लगे। व्यापार मे लाभ दिखाई पड़ता गया – इससे उमंग बढ़ता गया। देश से दूसरे चार पाँच भाइयों को बुलाया। उसमे मेरे भतीजे के साले भाई श्री चूनीलाल हीरजी थे। वे समझदार और उत्साही नौयुवक थे। उनको दो दूकानो का काम सौंपा। सन् १९१४ मे मेरे साले, श्री दामोदर झीणाभाई आये। हमने युगण्डा में सरोटी प्रान्त में भी दूकाने खोलीं। दूकानो का निरीक्षण करने के लिए मैं वार वार साइकिल पर जाता था। साइकिल का एक प्रसंग मुझे अभी याद आता है। मुझे इगांगा में थोड़ा काम था। वहाँ से मबाला जाना था। यह मार्ग चढ़ाई का है। लाखों वर्ष पूर्व भूकम्प के कारण

भूमि ऊँची-नीची-असमान बन गई होगी। एक फर्लांग चलें तो चढ़ाई उतराई आती है। बुकोड़ी, बुगोसा, मवाले आदि हरएक प्रदेश पहाड़ों वाले मार्ग से युक्त है। अपने देश जैसी समतल भूमि कहीं पर नहीं है। जहाँ पर ग्राम बसा है वहाँ पर भी ऐसी ही भूमि के ऊपर है। आगे दो फ़ीट की चुनाई हो तो पीछे छ फ़ीट की लेनी पड़ती है।

ऐसे रास्ते पर मैं वेग से साइकिल चला रहा था। बारह मील की रफ्तार से साइकिल दौड़ी जा रही थी। इतने में जंगल के अन्दर से एक बछड़ा आया और ज़ोर से साइकिल के साथ भिड़ गया। साइकिल पड़ गई। मैं नीचे गिर गया। हाथ, पैर, केहुनी सख़्त तरीके छोल उठे। लोहुआलोहान हो गया। साइकिल के पीछे के हिस्से में कपड़ा बंधा था। उसमें से रात्रि मे पहनने की छोटी धोती निकाली, फाड़कर पट्टी बाँधी - इतनी दूर में कहीं पर दवाखाना नहीं था। इगांगा गया। एक दूकान पर बैठा। वहाँ पर पट्टी खोलकर मिट्टी के तेल से घावों को साफ किया। जहाँ पर घाव गहरा था वहां पर मिट्टी के तेल का फ़ाहा डाला। एक हाथ पर सूजन चढ़ गयी थी। शरीर खूब मज़बूत था। एक हाथ से साइकिल पकड़ कर चलाते हुये ४० मील कमली आया। कमली मे मिशन के पादरी के पास गया। हाथ के अधिकांश भाग मे चमड़ी फट गई थी। इसे पोटास से धोया, दवा लगाई और पट्टी आदि बांधी। लगभग एक मास में हाथ ठीक हुआ।

उस समय मलेरिया का वहाँ पर खूब ज़ोर था। यात्रा मे भी मच्छरदानी साथ रखनी पड़ती थी; तिस पर भी हर साल एकाध मास मलेरिया में गुजरता था। ज्वर न हो तो काम करने लगता और ज्वर हो तो चारपायी पर पड़ जाता। इतनी उम्र में मलेरिया के लगभग पांच सौ इंजेक्शन मैने लिये होंगे।

मलेरिया के अन्दर से बहुत वार "ब्लेक वाटर" नाम का विषैला ज्वर बहुत से लोगों को हो जाता है। यह काला ज्वर कहा जाता है। युगण्डा में यह रोग विशेष रूप में होता है। जहाँ ज्यादा वर्षा होती है वहाँ पर यह ज्वर आता है। "ब्लेक वाटर" मे रक्त पतला हो जाता है और पेशाब के रास्ते से काला होकर बाहर निकलता है। १२ घण्टे मे मनुष्य समाप्त हो जाता है। इस ज्वर से भारतीय बहुत डरते थे। बहुत से भारतीय इसके

शिकार बन जाते थे। मेरे शरीर में बचपन मे घी दूध खाया था अतः शक्ति थी। मलेरिया ज्वर की पीड़ा खूब भोगी परन्तु इस प्राणहर ज्वर से बँच गया।

इस समय मे दवाखाना नहीं था। समीप का कोई सगा नहीं था। उस समय साथीदारों ने खूब प्रेम से सेवा की। उसी प्रकार बहुत से भाइयों की सेवा करने का सौभाग्य मुझे मिला था। बीमारी मे व्यक्तिगत सेवा करने वाले के उपकार को मनुष्य जीवन-भर भूल सकता नहीं।

ऐसा करके सन् १९१३ का साल पूरा होने को आया।

ज्यों ज्यों दूकाने बढ़ती गयीं, व्यापार बढ़ता गया त्यों त्यों देश से आदमियों को मंगाता गया।

उस ज़माने मे कुटुम्ब के साथ वहाँ रहना कठिन था। मकानों की पूरी सुविधा नहीं थी। आने जाने का रास्ता अच्छा नहीं था। हवा पानी खराब था। दवाखाने की सुविधा नहीं थी। स्त्रियों के साथ बातचीत करने वाली बहने नहीं थीं। अधिकतया लोग अकेले थे। इस लिये मै अपनी पत्नी को आज पर्यन्त वहाँ ले नहीं गया था।

परन्तु मार्ग ठीक हुआ। मिशन का दवाखाना बना। किन्ही किन्ही व्यापारियों ने अपनी अपनी पत्नियाँ बुलाईं। इस प्रकार वातावरण सुधरा। इससे सन् १९१३ में अपनी पत्नी को देश से मंगाया। खाने की सुविधा हो गई। घर के विषय की कोई चिन्ता नहीं रही।

मैं तो रात-दिन बढ़ते जाते व्यापार में फँसा रहता था। अधिकतया बाहर गावों में फिरना पड़ता था। कमली में घर पर मैं सप्ताह मे शायद ही एक दो दिवस रह सकता था। आज पर्यन्त मेरा पारिवारिक जीवन ऐसा ही चला है। कुटुम्ब के साथ स्थायी-रूप से १२ मास बिताया हो - ऐसा मुझे याद नहीं।

युगण्डा में कपास का उत्पादन ज्यों ज्यों बढ़ता गया त्यों त्यों यह व्यापार भी भारतीय अपने हाथ में करते गये। सरकार को भय हुआ कि दूसरे व्यापार की भांति कपास का व्यापार भी भारतीयों के हाथ में चला जावेगा। इस लिये सरकार ने क़ायदा बनाया कि "जीनरों के अतिरिक्त कोई कपास खरीद सकता नहीं।"

यह क़ानून हिन्दी व्यापारियों के लिए भयंकर था। इस

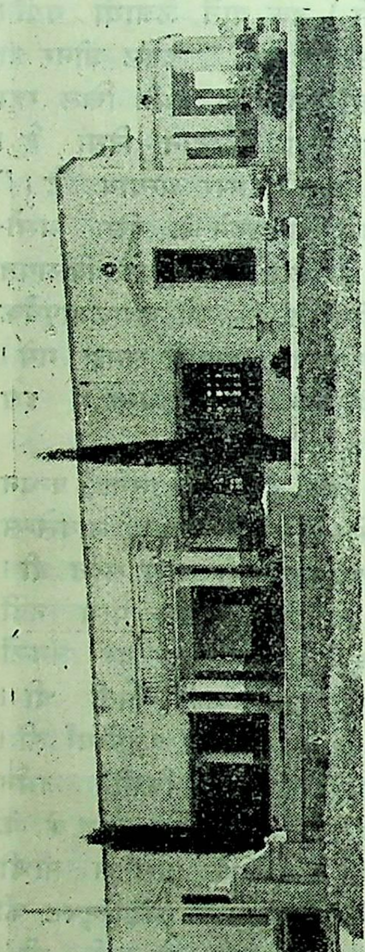
क़ानून के सामने चाहे जो कुछ भोगना पड़े लड़ना ज़रूरी था। नहीं तो युगण्डा से हिन्दियों का पैर उखड़ जावे ऐसा हो गया था।

हम कितने ही कपास के भारतीय व्यापारी एक साथ एकत्र हुये। विचारविमर्श किया। इस क़ानून की गंभीरता सभी समझ रहे थे। हमने कपास के भारतीय व्यापारियों का मण्डल स्थापित किया। इस मण्डल के द्वारा लगभग विलायत तक आवाज़ पहुँचायी। सांस्थानिक प्रधान (कॉलोनियल सेक्रेटरी) तक बातें लेजायी गयीं। भारतीय व्यापारियों ने यह पुकार उठायी कि "केवल जीनर ही कपास खरीद सकें यह बन्धन ठीक नहीं, यह देश अभी खिल रहा है। इस देश के खिलने में भारतीयों ने बड़ा बलिदान दिया है। इस प्रकार उनके हाथ से व्यापार छीन लेना सरासर अन्याय है।" भारतीय व्यापारियों ने इस समूचे मुक़दमे को लड़ने के लिए असोसियेशन की ओर से एक वकील किया। इस वकील को विलायत भेजा। वहाँ जाकर उसने हिन्दी व्यापारियों के केस को कुशलतापूर्वक उपस्थित किया। भारी लड़ाई की। योरोपियन व्यापारी समझ गये। सरकार भी मन मे समझकर चिन्ता में पड़ गई। अन्त में इस मामले मे भारतीय व्यापारियों की विजय हुई।

सरकार ने इस क़ानून को रद्द किया परन्तु इतना बन्धन रखा कि कपास खरीदने वाले को लायसेन्स लेना पड़ेगा। लायसेन्स की फीस १०० रूपये रखी गई थी। इसमे तीसरी धारा सख़्त थी। छोटे व्यापारियों के पास बाहर दूकान चलाने के लिए पैसा नहीं होता था। साथ ही कपास खरीदना, बोरे भरवाना. दूर दूर जंगलों से गोदाम पर्यन्त पहुँचाने जितने पैसे की छूट नहीं होती थी। इससे बहुत से छोटे व्यापारियों ने बड़े व्यापारियों की एजेंसियाँ लीं। किसीने ब्रिटिश कॉटन ग्रोइंग असोसियेशन की तो किसीने जर्मन और फ्रेञ्च कम्पनी की एजेंसियाँ लीं। हम हेंसिंग एण्ड कं. के एजेण्ट के रूप में काम करते थे। तथा नेटिवों के पास से सीधी खरीद भी करते थे। सबसे बड़ी खरीदारी बुसोगा डिस्ट्रिक्ट की थी। इस समय हमारे पास दो लाख की पूँजी हो गयी थी। कपास में लगभग लाख डेढ़ लाख की रोक हमे करनी पड़ती थी।

युगण्डा में कपास की पैदावार और व्यापार किस प्रकार खिलता गया उसकी फुटकर हकीकत इस प्रकरण में दी। अब इसका पूरा विवरण देकर इस प्रकरण को पूरा करूँगा।

अपने देश की अपेक्षा वहाँ की रीति थोड़ी भिन्न है। अपने यहाँ कपास के खेतों में एक साथ ही कपास की डोंडी फटकर तैयार हो जाती है। उसके बाद मज़दूरों द्वारा कपास बिनाई जाती है। युगण्डा में कपास की डोंडी फटकर सूखती जाय तो वे स्वयं ही कपास बीन लेते हैं और घर मे रख देते हैं। वर्षा बार बार पड़ती होने से खेत में रखें तो कपास बिगड़ जावे।



नानजीभाई कालिदास मेहता लायब्रेरी, जिंजा

नेटिव लोग खेत से कपास बीनते हैं और बाद मे नंबर वार अलग अलग करके व्यापारियों के पास ले आते हैं। कपास खरीदने वाले माल की जाँच करने के लिए खास आदमी रखते हैं। वज़न होजाने के बाद हरएक बोरी की जाँच करके ढेर में डाली जाती है। कपास की जाति में बिगाड़ न हो, माल उत्तम आवे, इस लिए सरकार ने विशेष नियम बनाये हैं। इस क़ानून के क़ारण माल गन्दगी के बिना और अच्छा आता है।

दो प्रकार का माल आता है। पहले नम्बर का कपास बिल्कुल सफेद और दूसरे नम्बर का स्वाभाविक पीलापन लिये हुये होता है। प्रारंभ मे पहले नम्बर का माल खरीदा जाता है। उसके समाप्त होने के बाद दूसरे नम्बर के माल की खरीद शुरू होती है। कपास खरीदने वाले का लायसेन्स देखने में आता है। उसके बाद काँटे की देख-भाल होती है। तोल मे धोखा न हो, नियत किये गये भाव के अनुसार नेटिवों को पैसा मिले इसकी जाँच करने में आती है।

खरीद करने वाले को अपनी ख़रीद की मासिक रिपोर्ट सरकार को देनी पड़ती है।

कपास के व्यापार-विषय में भिन्न भिन्न समयों मे भिन्न भिन्न क़ायदे बने। जीनेरियाँ बढ़ती गईं, व्यापारी बढ़ते गये, व्यापार मे स्पर्धा होने लगी, नये नियम और नये क़ानून बनाये गये, सिण्डीकेट बनी – आदि का जो इतिहास है वह समय के अनुसार आगे के प्रकरणों में देने में आवेगा। यहाँ इतना जताना ही पर्याप्त होगा कि युगण्डा के कपास के व्यापार से भारतीय व्यापारियों के पग निकालने की योरोपियन व्यापारियों की मुराद पूरी नहीं हुई। भारतीय व्यापारियों के संघटन के कारण अपना पग वहाँ पर स्थिर हुआ।

१८

अस्वस्थता और स्वदेश मे आराम

दूकानो और कपास के व्यापार का काम-काज बढ़ने लगा। उसको पहुँच कर निपटाने के लिए बहुत दौड़ धूप करनी पड़ती थी। परिणाम-स्वरूप मेरा शरीर ढीला पड़ गया। अस्वस्थता ने बिस्तर पर पटक दिया। मेरी पत्नी को भी वहाँ का हवा-पानी अनुकूल नहीं पड़ता था। वह भी बीमार पड़ गई। उनको सूजन चढ़ जाती थी। इस परिस्थिति मे थोड़े समय तक आराम के लिए स्वदेश लौटने का विचार किया। भाई चूनीलाल हीरजी, मेरे छोटे भाई तथा भाई दामोदर झीणाभाई तथा दूसरे साथियों को काम-काज सौंपकर मै देश जाने को रवाना हुआ। सफर में कोई अड़चन नहीं आयी। अस्वस्थता के कारण मार्ग मे कहीं पर न रुक कर सीधा गोराणा पहुँचा।

इस समय देश में चार-छ मास शांति से रहने का विचार था इससे कुटुम्ब में सभी खुश हुये। गाँव मे चाहिए उतनी शांति नहीं मिल सकती थी इस लिए गोराणा से दो मील दूर पर बंधाई हुई ऊँचे स्थानवाली वावड़ी पर रहने का हमने निश्चय किया। वहाँ पर सूखे ज्वार के डंठों की झोंपड़ी बनायी। मेरे चाचाजी के लड़के भाई नारणदास को (वे जब डेल-गोआ-बे मे थे वहाँ से) क्षय हो गया था। (जो पीछे से क्षय से सन् १९१५ में गुज़र गये) वे भी वहाँ रहते थे। सोने-बैठने और आनन्द करने के लिए दूसरे मित्र भी आते थे। प्रारंभ में दोपहर और रात्रि में घर से तैयार भोजन आता था। बाद मे झोंपड़ी पर ही महराज रसोई करता था। धारवाली वावड़ी पर पाँच गाँव के पशु पानी पीने आते थे। डाँगरवड, वीरसरा, अडवाण, भेटकडी और गोराणा - इन पाँच गाँवों को पूरा पड़े इस प्रकार एक गहरा तालाब खोदाना था। वावड़ी नई शुरू की गई थी, इस काम के लिए वहाँ पर निवास रखा। मज़दूर आये - इससे बड़ी वस्ती हो गई। रात्रि में भोजन करके झोंपड़ी के आंगन में अनाज की गाड़ी मे फैलाने वाले जाज़िम को

बिछाकर हम बैठते थे। कभी कभी उजाली रात्रि में भजन-मण्डली जमती थी। लगातार मजीरा, तबला, झांझ आदि साजों के साथ भजन चलता था। बीतती रात्रि मे मधुर कण्ठ से गाया जाता हुआ भजन हृदय के आरपार उतर जाता था। कभी कभी सारंगी वाला भी वहाँ आता था।

एक के बाद दूसरे भजन बोले जाते थे। मध्यरात्रि बीतने के बाद अच्छा रंग जमता था। उषाकाल तक भजनों की धुन चलती थी।

देश की सूखी हवा, जन्मभूमि का अमृत जैसा जल, माताजी के हाथ की रोटियाँ, घर की वाड़ी का अन्न, ताज़े घी, दूध, दही आदि से मेरी तबियत सुधरी। नया रक्त भर आया। रोग तो मानो नाड़ी मे भी नहीं रह गया। ताज़ापन आया। बहुत वर्षों बाद इस प्रकार के शान्त प्रदेश में रहने को मिला - इससे सारी थकावट उतर गई।

× × ×

सन् १९१४ का वर्ष चल रहा था। इस समय योरोप में (१९१४ के अगस्त में) महायुद्ध फूट निकला। ब्रिटिश ईस्ट अफ्रीका और जर्मन ईस्ट अफ्रीका के मध्य लड़ाई सुलग उठी। मुझे स्वदेश मे आये हुये पूरे चार मास भी नहीं हुये थे कि इतने में इस युद्ध का समाचार मिला।

इस वस्तु का स्वप्न में भी ख़्याल नहीं था। एक लाख रूपया देश में लाये थे - उसमे से माल खरीद कर अफ्रीका भेजने का विचार था, परन्तु युद्ध के कारण माल लदता नहीं था।

भारत से सेना जाती थी। जर्मन ईस्ट अफ्रीका की सीमा पर घमासान युद्ध मचा था। ऐसे समय पर घर पर निकम्मे बैठे रहने में मुझे कायरता लगी। व्यापार भी एक साहस है। ऐसे समय मे साहसिक व्यापारियों की कसौटी थी।

सन् १९१४ के नवम्बर मास से पासपोर्ट की प्रथा प्रारंभ हुई। मै बम्बई गया। पासपोर्ट के लिए विचार किया। युगण्डा से तार पर तार आता -"माल भेजो। हम सब सलामत से हैं. फिक्र न करियेगा।" माल का भाव खूब चढ़ गया। फिर भी दो लाख का माल ख़रीदा। स्टीमर नहीं मिलती थी। स्टीमर का रास्ता देखते बैठे रहें ऐसा ठीक नहीं पड़ता था। नौकावों मे माल लादा। नौकावों का बीमा कराया। डेढ़ मास मे माल अफ्रीका पहुँचा।

इतना साहस करके माल भेजा तो उसका प्रतिफल भी पूरा मिला। शतप्रतिशत लाभ रहा। दो के चार लाख हुये। तार से चार लाख रूपया पीछे आया। इस लिए हमने छ लाख का माल खरीद लिया। थोड़ा स्टीमर से रवाना किया और बाक़ी माल नौकावों में भरा। माल का वीमा करा लिया था।

इस बीच मे मुझे पासपोर्ट मिल गया। लड़ाई पूरे ज़ोर में चालू थी। घर के आदमी ऐसे समय में परदेश जाने में इन्कार करने लगे परन्तु इनकी बात सुनने को समय नहीं था। युद्ध का बिगुल बजते ही साहसी व्यापारी लोग रंग मे आ गये थे। ज्यों ज्यों लड़ाई बढ़ती गई त्यों त्यों व्यापार बढ़ता गया।

सन् १९१४ के दिसम्बर मास में मै मोम्बासा पहुँचा। रास्ते मे मुझे सीसल्स के टापुवों को राडर के द्वारा देखने का सद्भाग्य प्राप्त हुआ था। मोम्बासा से ९०० मील दूर समुद्र में सीसल्स नाम के टापू आये हैं। वे बहुत ही सुन्दर हैं। बहुत से योरोपियन लोग यहाँ आते हैं। ये ५० से ६० तक छोटे छोटे टापुवों के समूह हैं। इनमें एक टापू सब से बड़ा है। आबादी ३०,००० मनुष्यों की है। इसमे पाँच सौ भारतीय बसते हैं। शेष मिश्रित प्रजा है। रंग उनका सफेद है।

वहाँ की पैदावार मे मनिला की फली है। वह तीस से चालीस रूपया तोला बिकती है! उसका अर्क निकालने में आता है। वह बहुत सुगन्धदार और गरम होती है। वह चाय में डाली जाती है। ज़हरीला नारियल भी यहाँ खूब होता है। उसमे से अपने साधु लोगों के पास रखाजाने वाला कमण्डलु बनता है। जायफल और जावित्री की पैदाइश भी खूब होती है। इसके अतिरिक्त गोबर की खाद भी पुष्कल होती है वहाँ लाखों सफेद पक्षी होते हैं। समुद्र में मछलियाँ भी बहुत होती हैं। इन मछलियों को पकड़ कर डिब्बे मे भरकर परदेश भेजा जाता है। पानी भी निर्मल है। २० फ़ीट की गहराई में रहने वाली मछलियाँ भी स्पष्ट दिखलायी पड़ती है। वहाँ के सफेद पक्षी इन मछलियों को खाते हैं।

मछलियों मे फास्फोरस अधिक मात्रा मे होता है। मछली खाकर ये पक्षी इस टापू पर बैठते हैं और वहाँ पर टट्टी करते हैं। वर्षों से इस टट्टी का वहाँ पर ढेर का ढेर पड़ा है। टापू की अपेक्षा दूना ऊँचा टट्टी का ढेर हो गया था। कितने ही खोज

करने वालों ने इस पक्षियों की टट्टी के विषय में खोज की। इसमें मालूम पड़ा कि यह टट्टी बहुत उपयोगी खाद है। उसके बाद सरकार ने इसका ठीका दिया और बाद में रायल्टी दी। इस समय १५ से २० लाख रूपये की इस खाद से आय होती है। पहले यह टापू फ्रेञ्च लोगों का था। सन् १८७० मे वहाँ पर जहाज़ी बेड़े न रखे जावें इस लिए अंग्रेज़ लोगों ने उसे ले लिया।

स्टीमर के कप्तान ने मुझे जब यह टापू दूर था तभी से केबिन में रखे हुये राडर यंत्र द्वारा इसे दिखलाया था। ज्यों ज्यों हम टापुवों के समीप पहुँचते गये त्यों त्यों पक्षियों की टट्टी का ढेर, नारियल आदि सभी स्पष्ट होते जाते थे। तथा कप्तान मुझे सभी विवरण बतलाता जाता था। इस प्रकार बहुत दूर होते हुये भी मैं राडर द्वारा इन टापुवों को देख सका था।

१९

जर्मन ईस्ट अफ्रीका में महायुद्ध

मेरा माल जनवरी में आया। छ लाख रूपये का माल सीधे आठ लाख रूपये मे दे दिया। भाव खूब बढ़ गया था। बम्बई पैसा भेजा और अधिक माल मंगाया। इस समय मुख्यतः भारत का माल आता था। पौने सौ प्रतिशत व्यापार भारतीय व्यापारियों के हाथ में था।

युद्ध वेग से चल रहा था। फौज़ की स्टीमरें भरी हुई आती थीं। बन्दर से, रेलमार्ग से फौज़ ऊपरी स्थानो को जाती थी। युगण्डा, केनिया और टाँगानिका की सीमायें फूल के गूथण के समान मिल गई थीं। विक्टोरिया न्यांज़ा के एक किनारे ब्रिटिश ईस्ट अफ्रीका के किसुमू, जिंजा और एण्टेबे बन्दर आये थे तो सामने जर्मन ईस्ट अफ्रीका के बुकोबो और गंजा बन्दर थे। वहाँ पर जर्मन फौज़ें पड़ी थीं। समुद्र के किनारे दार-ए-सलाम और टाँगा में भी जर्मन फौज़ी बेडा पड़ा था। सीमा के ऊपर लड़ाई चलती थी। मोम्बासा और जंज़ीबार में ब्रिटिश युद्धपोत रखे गये थे। कभी कभी तोपखाने की आवाज़ से मोर्चा गूँज उठता था। समुद्र मे सबमैरीने फिरती थीं। वे अचानक ही दुश्मन की स्टीमर को डुबा देती थीं। रेलवे की पटरियों के नीचे डायनामाइट की सुरंगें लगायी गई थीं। योरोप की तरह अफ्रीका में भी जीवन-मरण का संग्राम चल रहा था। समुद्री मार्ग अथवा रेलवे में यात्रा करने मे भारी जोखिम का काम था।

मोम्बासा तो पहुँच गया परन्तु ऊपर किस प्रकार जाया जावे। युगण्डा और टाँगानिका की सरहद पर लेजाये जाने के लिये भारतीयों की तीन हज़ार फौज़ें उतारी गई थीं। उन्हे लेकर ट्रेने युगण्डा जा रही थीं। इस फौज़ के साथ किसी प्रकार जिंजा पहुँच जाऊँ - ऐसा मैने निश्चय किया।

युगण्डा मे दूकानो का कार्य व्यवस्थित रूप से चल रहा था। जिनको उत्तरदायित्व सौंपा गया था वे भी कुटुम्बी जैसे रहते थे

और काम करते थे। काम की मुझे कोई चिन्ता नहीं थी। परन्तु ऐसे नाजुक समय में मेरा इनसे दूर रहना – यह मेरे स्वभाव मे नहीं था। उनके पास पहुँच जाने के लिए मेरा मन अधीर हो गया था। तिसपर भी लड़ाई के कारण संयोग के कारण मुझे मोम्बासा मे रुका रहना पड़ा।

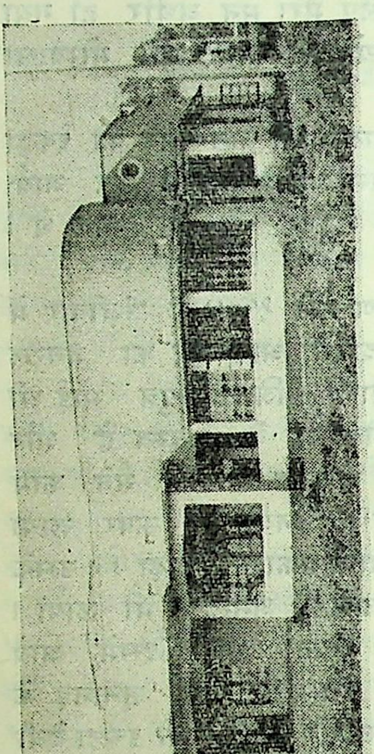
मोम्बासा में इस समय लड़ाई चलती थी अतः सब को इकट्ठा होना हो तो कठिन पड़ता था। मोम्बासा में प्रार्थना के लिए आर्यसमाज मन्दिर और हिन्दू यूनियन का मन्दिर – ये दो स्थल थे। उसीमें सब इकट्ठा होते थे।

आर्यसमाज की ओर मेरा आकर्षण सन् १९०४ मे जंज़ीबार में हुआ था और तब से ही था। सेठ केशवजी आनन्दजी का जनरल मैनेजर श्री प्रागजीभाई रामजी नथवाणी – जिनके पुत्र भाई श्री नरेन्द्रभाई नथवाणी, जो भारतीय लोकसभा के सदस्य हैं और निर्भय विधानशास्त्री हैं – उनके पिताजी के हाथ के नीचे मैंने काम किया था। वे आर्यसमाज के प्रमुख थे। उनकी मेरे ऊपर छाया पड़ी। उसके बाद सन् १९११ मे "सत्यार्थ प्रकाश" पढ़ा। उसके बहुत से सिद्धान्त मुझे पसन्द आये। उन्हे मै अमल में भी लाया। जहाँ होम-हवन होता हो वहाँ पर मैं जाता था। इसमें आर्य संस्कृति के रक्षण की भावना थी। सन् १९१२ में जूनागढ़ के निवासी श्री महाराणीशंकर शर्मा और उनकी पत्नी श्री इच्छा देवी आर्यसमाज का मिशन लेकर अफ्रीका आये। दोनो ही जनो के खूब विद्वान् और उत्तम वक्ता होने से उनकी छाप लोगों पर बहुत पड़ती थी। इस समय आर्यसमाज पर मेरी श्रद्धा बहुत दृढ़ हुई।

सन् १९१४ में मोम्बासा मे थोड़े दिवस बिताये। उस समय लड़ाई के कारण आर्यसमाज में सब को वार वार मिलना होता था। मेरी आढ़त प्रथम सेठ केशवजी आनन्दजी की फर्म के साथ थी। उसके बाद केशोद के निवासी सेठ भगवानजी सुंदरजी की कम्पनी की आढ़त मैने शुरू की। उन्हो ने सेठ केशवजी आनन्दजी से पृथक् होकर अपनी अलग दूकान की। उनके चिरंजीवि सेठ लीलाधरभाई, शिवजीभाई, मोहनभाई, भगवानजीभाई और मैं कुटुम्ब के समान रहते थे।

एक समय आर्यसमाज मन्दिर मे बैठक हुई। छोटे बड़े पचास साठ सभ्य उपस्थित थे। दूसरे भी मनुष्य आते जाते थे। मैं भी

जाने को तैयार हुआ। इतने मे लीलाधरभाई ने कहा–"बैठो तो! ऐसे जाया जाता है। शुक्रवार है तो फिर दलिया खाकर जाना।"



आर्यसमाज मन्दिर, फिजी

इस ज़माने में मोम्बासा देश जैसा लगता था। धार्मिक स्थलों को देखना, देव-दर्शन करना, दूकान के ओटे पर बैठना, आराम से वार्तालाप करना, नाश्तापानी करना – सब अपने देश जैसा ही था। दलिया आई। हम दलिया खाने बैठ गये।

इस वक्त मि. भिसे नाम का एक दक्षिणी गृहस्थ वहाँ सी. आई. डी. विभाग में काम करता था। उसने कितने ही बड़े व्यापारियों से लाँच मागा। उसे इस प्रकार लाँच मिला नहीं। इस लिए उसने सरकार में ऐसी झूँठी रिपोर्ट की कि ये लोग निजी बैठक करते हैं और सरकार के विरूद्ध षड्यन्त्र करते हैं। मि. भिसे की रिपोर्ट के आधार पर सरकार ने फौज़ भेजी। आर्यसमाज मन्दिर मे घेरा डाल लिया। कितने मुख्य अगुवा जैसे भाइयों को पकड़ा। उन्हे हथकड़ी डालकर पुलीस के पहरे के अन्दर जेल में ले जाया गया।

हम दलिया खाने बैठे इस लिए बँच गये। नहीं तो हमे भी जेल का आनन्द भोगना पड़ता। जिन्हे पकड़ कर सरकार ले गयी थी उन्हे ऐसे का ऐसा ही तीन वर्ष पर्यन्त रखा। पीछे काम चला। उन्हे देशनिकाले की सज़ा हुई। जिस समय वे हवालात मे थे और मुक़द्दमा नहीं चलाया था तब तक खूब तंग किया। कितनो को

सन् १९१८ मे देशपार निकाला। उनमें सेठ प्रागजीभाई रामजी नथवाणी थे। वे फिर से अफ्रीका नहीं आये। उन्हो ने देश में ही निवास किया और यहाँ भी सार्वजनिक हित के कार्य किये।

अब मुझे जिंजा जाने की अधीरता बढ़ गई। लड़ाई पूरे जोश के साथ चालू थी। मिलीटरी की गाड़ियाँ युगण्डा जाती थीं। पैसेंजर ट्रेने बन्द थीं। इंजिन अथवा डिब्बे की सुविधा नहीं थी। मार्ग मे गाड़ियों को ख़तरा था। मैने आगे जाने का निश्चय किया।

युगण्डा के एक डाक्टर और एक पोस्ट मास्टर युगण्डा जा रहे थे। वे सरकारी आदमी थे। उनके साथ खाकी पोशाक पहन कर मै भी ट्रेन में बैठ गया। रास्ते में किसीने पूछताछ नहीं की। युगण्डा रेलवे के स्टेशन मास्टर अधिकतर गुजरात के पटेल और पंजाबी थे। वे बहुधा परिचित थे। इससे मुझे रास्ते में कोई बाधा नहीं पड़ी।

रास्ते मे एक समूची ट्रेन को जर्मनो ने चार घण्टे पहले डायनामाइट से उड़ा दी थी – उसको हमने देखा। सभी बिखरे हुये घायल होकर भयंकर स्थिति में पड़े थे। ईश्वर कृपा से हम बँच गये।

हमारे साथ जो फौज़ी मनुष्य थे वे डोंगरा राजपूत थे। वे बड़े ही धर्मपरायण थे – वे अपने हाथ से पकाकर ही खाते थे। वे यज्ञोपवीत भी पहनते थे। मार्ग मे पकायी हुई कोई वस्तु खाते नहीं थे। जो मिले तो मिठाई अथवा मक्की का सेंका हुआ भुट्टा लेकर खा लेते थे। हम सुख से किसुमू पहुँचे (मोम्बासा से किसुमू ५८५ मील है)।

किसुमू से फौज़ के आदमियों के साथ स्टीमर मे चढ़ गया। विक्टोरिया सरोवर मे भी युद्ध चल रहा था। मेरे लिए यह एक आनन्द की यात्रा थी। समुद्री तूफानो में जैसा मज़ा आता था वैसा ही इसमें भी मज़ा आ रहा था। सामान्यतया ऐसे समय में कदाचित् ही कोई यात्री यात्रार्थ निकलता था। फौज़ की दौड़धूप और युद्ध के खतरे के मध्य कौन निकले?

स्टीमर विक्टोरिया सरोवर मे चली। इतने में एक आकस्मिक आपत्ति आ खड़ी हुई। पहले जैसा लिखा जा चुका है डोंगरा राजपूत बहुत ही धर्मभीरु थे। जनेऊ कान पर चढ़ाय विना टट्टी-पेशाब नहीं जाते थे। उन्हो ने मार्ग मे कच्चा-पक्का खाया। सारे दिन के

भूखे थे। स्टीमर के कप्तान ने उन्हे रसोई करने के लिए खास चूल्हा साफ करा दिया। इन लोगों ने नहाधोकर रसोई प्रारंभ की। हलुवा और पूरी बनाने लगे।

इतने में एक अफ्रीकी बाय बींड़ी जलाने के लिए चूल्हे के पास गया। चालू रसोई मे घर के मनुष्य को भी चूल्हे के पास जाने को नहीं होता वहाँ यह विधर्मी हबसी चूल्हे के पास गया, चौका भ्रष्ट हो गया। यह देखते ही फौज़वालों का पित्त उछल पड़ा। जलते हुये लकड़े (उल्मुक) को उठाकर इसने पहले ही बाय के मत्थे में मारा। सर फूट गया और खून की धार निकल पड़ी। यह दौड़ कर जाकर स्टीमर के खलासी नेटिव आदमियों को बुला लाया। स्टीमर के नेटिव खलासी क्रोधभरे अपने देशभाई की सहायता के लिये दौड़े आये। वे चौके में आये। रसोई भ्रष्ट हुई, इससे फौज़ी आदमियों का मग़ज़ गर्म हो गया। उन्हो ने बन्दूकें उठाकर नेटिवों को संगीने भोंक दी। स्टीमर मे बहुत बड़ी घबराहट फैल गयी। कैप्टेन और स्टीमर के कर्मचारी दौड़े आये। वे मध्य मे पड़े। देर के बाद मामला शान्त हुआ।

अफ्रीका के लोग धोती पहनने वालों को "बनियानी" कहते हैं। ये डोंगरा राजपूत रसोई बनाते समय स्नान करके धोतियाँ पहने थे। ये "बनियानी" किसी भिन्न जाति के हैं - ऐसा उन्हे अनुभव हुआ। ऐसी यह करुण घटना रास्ते में बन गयी।

स्टीमर मे रात्रि पड़ गई। बत्तियाँ बुझा दी गई। अन्धेरे में किनारे पहुँच कर फौज़ को उतरने देने की ताक़ीद थी। सीमापर से जर्मन हद में उसे घुस जाना था। स्टीमर वेग के साथ चली जा रही थी। अन्धेरे में अचानक कहीं से बम्ब पड़ जावे - ऐसा भय था। रातोरात स्टीमर किनारे पहुँची। फौज़ उतरने लगी। इतने मे अचानक मशीनगन छूटी। रात्रि के अन्धकार में आवाज़ गरज उठी। दुश्मन कहीं दिखाई नहीं पड़ता था। गोलियाँ सरोवर में से आती हैं अथवा भूमि पर से इसकी कोई ख़बर नहीं पड़ती थी।

फौज़ी सिपाही जैसे उतरे थे वैसे ही झटपट स्टीमर में चढ़ गये। स्टीमर पीछे फिरी। जल्दी से पीछे भगकर ब्रिटिश पोर्ट में पहुँच गयी। वहाँ पर ठहरी। फौज़ बुकाकाटा उतारी गई।

हम चौथे दिन जिंजा पहुंचे।

इतने समय में मै इस तरह जिंजा पहुँचूँगा - ऐसा किसीने

सोचा नहीं था। मुझे अचानक आया हुआ देखकर सब को नवीनता एवं आश्चर्य मालूम हुआ। मेरे सफ़र की बातें सुनकर मेरे निर्विघ्न पहुँचने के लिए प्रभु का आभार माना। दूसरी बातें करने का समय नहीं था। व्यापार की बातों में मन लग गया। इस समय व्यापार में भी ख़तरा था।

युगण्डा मे पुष्कल कपास पकी थी। कोई खरीदने वाला नहीं था। जर्मन कब आजावेंगे – इसकी कोई ख़बर नहीं थी। जिंजा मे जर्मन की एक जीनियरी थी। सरकार ने उसका कब्ज़ा ले लिया था। मैने सरकार को कहा "आप कपास ख़रीदो। जर्मन जीनियरी भाड़े पर रखो। उसमें कपास की धुनाई और बँधाई करो। पूँजी कपास में रोंको। पैसा इकट्ठा करोगे तो जर्मन ले जावेंगे। कपास पड़ी रहेगी तो कोई लेजाने को नहीं।"

जीनियरी लेने का मेरा मन हुआ। हेंसिंग कम्पनी की जीनियरी को नीलाम करने की सरकार ने घोषणा की। हम हर-एक नीलामी मे खड़े रहते थे। इस समय कम्पाला में नये आये हुये सेठ नारणदास राजाराम की फर्म का मैनेजर मि० दस्तूर करके एक पारसी था। वह मेरा मित्र था। जर्मन जीनियरी के नीलाम मे वह हमारे मुक़ाबले में खड़ा था। उसने मुझे कहा कि "मि. मेहता आप नीलामी की स्पर्धा मे से बैठ जावो तो आप का उपकार मानूँगा।"

"मैने उत्तर दिया "मुझे जीनेरी खरीदनी है।"

मि० दस्तूर ने कहा "हम परस्पर मित्र हैं। अन्दर अन्दर स्पर्धा करके फजूल पैसा किस लिये उड़ाना है? आप कमीशन से हमारी रूई खरीदियेगा। हम पाँच प्रतिशत कमीशन देंगें। इसके अतिरिक्त आप की सारी रूई कम भाव में धुनकर साफ़ कर देंगें।"

उनकी अर्ज़ मैने स्वीकार करली। जीनेरी नीलाम हुई। एक लाख पैंतालीस हज़ार मे मि० दस्तूर ने जीनेरी ली।

हमने कपास खरीदकर उनकी जिनेरी में साफ कराना प्रारंभ किया परन्तु इनके आदमियों ने उतारा न्यून देकर विश्वास-घात किया। वर्ष के अन्त मे हिसाब करने पर मुझे काफी नुकसान हुआ।

मेरे साथीदारों ने मुझे पहले से सुझाया था कि "काका! आप को जीनियरी जाने नहीं देनी चाहिए।" परन्तु मैने उन्हे समझाया था कि "मि० दस्तूर अपना मित्र है। साथ ही सारी

पूंजी जिनेरी और रूई मे फँस जावे तो दूसरे व्यापार करने के लिए धन खुला नहीं रहेगा। ऐसा समझकर जिनेरी खरीदी नहीं थी।

सन् १९१४ के वर्ष का एक प्रसंग मुझे सदा के लिये याद रह गया है। लड़ाई के समय में व्यापार के साथ साथ एक मित्र की सेवा का लाभ मुझे मिला था।

चरोतर के पाटीदार श्री नरसिंहभाई ईश्वरभाई पटेल का नाम गुजरात मे प्रसिद्ध है। उनका हमें परिचय नहीं था। उनकी सेवा करने का आकस्मिक लाभ मुझे मिला। इस समय उनके विषय से मैं कुछ जानता नहीं था। उनका परिचय हो जाने के बाद मुझे मालूम पड़ा कि वे एक क्रान्तिकारी थे। बड़ोदा मे साहित्य छपाया था। सरकार को उलट देने के षड्यन्त्र में उनका नाम दाखिल हो गया था। गुप्त पुलीस को इस वस्तु की गंध मिलते ही वे पाण्डीचेरी भाग गये थे। उन्हे फ्रेञ्च भाषा का ज्ञान था। वहाँ से एक फ्रेञ्च स्टीमर में वे योरोप जाने को रवाना हुये। इन्होने गोवनीज़ का वेष धारण किया। डीसोज़ा अपना नाम रखा। दाढ़ी रखी। फ्रेञ्च स्टीमर में वे योरोप जा रहे थे उस समय गुप्त पुलीस उनके पीछे पड़ी। कुछ संदेह पड़ा इस लिये इन लोगों को खबर न पड़े उस प्रकार से फ्रेंच बन्दर से मोम्बासा जाने के लिए रवाना होती हुई एक जर्मन स्टीमर में टिकिट बदलकर चढ़ गये। मोम्बासा में उतरे। मोम्बासा से मेरे मित्र की सिफारिश लेकर मेरे पास जिंजा आये। मैने उन्हे जर्मन ईस्ट अफ्रीका मे हेंसिंग कं. में सिफारिश करके भेज दिया। वहाँ पर वे नौकरी में लग गये।

जर्मनी की हार होने के बाद फिर वे जिंजा आये। सन् १९२० में सन्त एण्ड्रूज साहेब अफ्रीका पधारे। उस समय उन्होने नरसिंहभाई के लिए भारत सरकार को सिफारिश की। भारत सरकार के साथ उनका पत्रव्यवहार चला। वे स्वयं ज़ामिन बने। अन्त में प्रो० एण्ड्रूज साहेब के साथ श्री नरसिंह भाई स्वदेश आये।

फिर उनकी भेंट मुझे कविवर टागोर के शान्ति-निकेतन आश्रम में हुई। वह बात आगे आवेगी।

२०

मौत के मुख से बँचा

लड़ाई के कारण रूई का भाव बढ़ता जा रहा था। इनकम टैक्स नहीं था। इस लिए नफा अच्छा हुआ। सरकार ने हमें कपास खरीदने का आग्रह किया। ट्रान्सपोर्ट की सुविधा नहीं थी। कपास के बीज को जला देना पड़ता था। युगण्डा मे ३५ से ४० हज़ार गाँठों तक रूई पैदा हुई। टेसो ज़िले मे सन् १९१५ के फरवरी मास मे सरकार ने सूचना बाहर निकाली कि अमुक स्थानों पर मार्केट लगेगी। उस समय मे मार्केट का मतलब था एक छप्पर तथा चारों तरफ लकड़ी गाड़कर सीमा बाँध ली गई हो। बरसात से कपास खराब हो रही थी। कपास को सुरक्षित रखने का दूसरा साधन नहीं था। रूपये मन कपास मिलती थी।

हमने माल खरीदने के लिए अपने आदमी भेजे। दूसरे स्थानों पर कमीशन एजेण्टों को भेजा। एक बाज़ार लेक क्योगा के उत्तर किनारे पर था और एक दक्षिण किनारे पर था। बीच मे क्योगा सरोवर में छोटी किश्तियाँ चलती थीं। उस समय में सरोवर के किनारे दस दस मील के अन्तर पर दो-पाँच भारतीयों की दूकाने थीं। वे फुटकर कपड़े आदि माल रखते थे।

बन्दर के किनारे मार्केट मे माल खरीदना प्रारंभ हुआ। इस लिए डिस्ट्रिक्ट कमिश्नर वहाँ पर आये। मैं भी साइकिल से वहाँ पर गया। मैने डिस्ट्रिक्ट कमिश्नर से प्रार्थना की कि "मेरी सामने के किनारे पर कपास खरीदी जा रही है, उसकी किस्म देखने जाना है। मुझे मेरे आदमियों को माल उतारने के लिए किश्ती की सुविधा देने के लिए नेटिव चीफ़ को आप आदेश कर दें।" कमिश्नर ने फौरन नेटिव चीफ़ को बुलाया। उसे आदेश किया कि "इन सेठ जी, इनके आदमियों तथा माल को सामने किनारे पर लेजाने के लिए तुम किश्ती का प्रबन्ध कर देना। इसमे कोई भूल न होवे - इसका ध्यान रखना। खबरदार!"

नेटिव चीफ़ ने नमस्कार करके साहेब के हुक्म को शिरोधार्य

किया। कमिश्नर आदेश देकर चला गया।

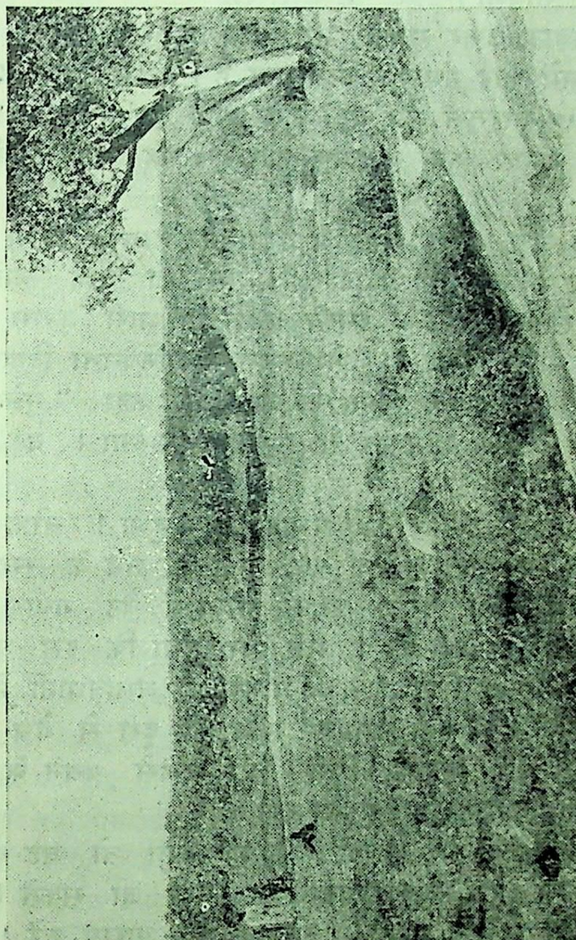
सरोवर के किनारे से लगभग ८ मील दूरी पर हमारी जाति के एक गृहस्थ की दूकान थी। इस दूकान मे हम उतरे थे। कमली से ९० मील मै साइकिल पर आया था। मेरे साथ मेरा खिदमतगार भी था। मैने अपने नौकर को साइकिल पर पहले ही भेज दिया था। अपना कपड़ा, फाइलें, तीन सौ रूपये आदि वस्तुयें उसके साथ भेजीं, जिससे मुझे अधिक बोझा न हो। मैने बाय (नौकर) को कहा कि "पहले जाकर तुम किश्तियाँ तैयार रखवावो। चीफ़ को कमिश्नर ने आदेश दिया है इस लिए वह फौरन किश्ती देगा। मैं अभी भोजन करके आता हूँ।" मेरा नौकर गया। मै भोजन करने बैठा।

इस देश में जो चाहे जहाँ अच्छा लगे उसके घर जावे। खाने को मांग लेना पड़ता है। यह मुंसाफिरों का देश है। हरएक को भोजन मिल ही जाता है। ये दूकानदार भाई हमारे पुराने नौकर थे। प्रातः दस बजे दही, परांठा (ठेपला) शाक आदि खाकर मै साइकिल पर रवाना हुआ।

मार्ग कच्चा था। मुश्किल से चार फ़ीट चौड़ा होगा। दोनो तरफ़ दस दस फ़ीट ऊँची घास उगी थी। इसे एलिफेण्टा (हाथी समाजावे - ऐसी) घास कहा जाता है। मेरे बाय (नौकर) के निकलने के बाद एक आधे घण्टे बाद मैं निकला। वह चला गया। उसकी साइकिल की लकीर दिखाई पड़ती थी। उसीके पीछे पीछे मैने साइकिल चला दी। लगभग ११ बजे मैं चीफ़ के झोंपड़े के पास पहुँचा।

सख्त गर्मी पड़ रही थी। ऊँची घास हवा रोक कर खड़ी थी। घास के दो चार झोंपड़े वहाँ पर थे। ठीक दोपहर मे भी यह जगह बहुत भयंकर लगती थी। जगह देखते ही दहशत लगती थी। मुझे दो तीन पंजाबी मित्रों ने बतलाया था कि "इस जगह सावचेत रहना। वहाँ पर नरमांसभक्षी नेटिव रहते हैं। मनुष्य का मांस इनके मुँह लगा हुआ है। विशेष कर भारतीयों का मांस इन्हे बहुत अच्छा लगता है।"

मैने चारों तरफ दृष्टि डाली। अपने बाय (नौकर) को कहीं नहीं देखा। मुझे धोखा की गंध मालूम पड़ी। इतने मे मुझे देखकर चीफ़ मेरे पास आया। इसको मैने पूछा "क्या? किश्ती तैयार है



नरभक्षी अफ्रीकनो का भीषण प्रदेश

क्या ? मेरा बाय कहाँ है ?"

उत्तर में गंभीर मुद्रा में यह बोला "महाशय ! आपका नौकर (बाय) यहाँ नहीं आया। किश्ती सामने किनारे गई है, दोपहर को दो तीन बजे आवेगी।"

ऐसा उड़ाऊ उत्तर सुनकर मेरी शंका दृढ़ हुई। मेरे मन मे हुआ कि "इसमें कोई गंभीर कपटयोजना है।" मेरे पास हथियार में रिवाल्वर, ५० कारतूस और बड़ी छुरी थी। इस प्रदेश मे जानवर अथवा जंगली मनुष्य कब आक्रमण कर दें - यह कहा नहीं जा सकता है।

ये लोग ऊँचे, काले, कमर मे छुरा और हाथ मे भाला रखने वाले एव बहुत भयंकर थे। पशुवों को मारने को सिंह आवे तो उसे ये भाले से मार डालें। इनकी आँखों मे भारी क्रूरता थी। मैंने समय को समझ लिया। ऐसे अवसर पर निर्बलता दिखलाने में जान का ख़तरा था। मैंने दृढ़ता से चीफ़ को कहा "मुझे शीघ्र किश्ती मगादो नहीं तो कमिश्नर से फरियाद करूँगा। वह तुम्हे सेवा से निकाल देगा।"

मेरे कहने का उसपर कोई प्रभाव नहीं हुआ। चीफ़ ठण्डे कलेजे के साथ खड़ा रहा। मैंने एक वृक्ष के तने के सहारे से साइकिल खड़ी करदी। दूसरे वृक्ष की छाया में बैठ गया। मेरी दृष्टि चारों ओर फिर रही थी। मुझे ऐसा लगा कि इस घास में दूसरे मार डालने वाले छिपे होंगे, मै तनिक भी असावधानी मे रहा तो वे मुझे बींध डालेंगे। ये लोग सौ फ़ीट की दूरी से बेध देवें- ऐसी उनके भालों की बनावट होती है। इससे बचने के लिए ईश्वर का स्मरण कर मै मार्ग ढूँढ़ने लगा।

मैंने पुनः चीफ़ को किश्ती देने को कहा तो वह बोला : "महाशय ! आज आप सामने किनारे पर नहीं जा सकते। धूप तेज़ है। शान्ति से मेरे झोंपड़े में सोजावें और आराम करें।"

धूप सख़्त थी। मुझे चीफ़ की बात पर तनिक भी विश्वास नहीं हुआ। आस-पास कोई भी आदमी दिखाई नहीं पड़ता था। सामने ही घास का छाया हुआ सुन्दर झोंपड़ा था। ठंढक थी, इसमे जाकर आराम करने का मन नहीं हुआ। उल्टे मेरा सन्देह पक्का ठहरा। पंजाबी की चेतावनी मुझे सत्य लगी। मुझे हुआ कि इन लोगों ने हमारे बाय को मार डाला होगा और मेरा भी यही

हाल होनेवाला है। अगर मै साइकिल लेकर अन्दर गया होता तो निश्चय ऐसा ही बनता। मेरा नौकर झोंपड़े मे मरा पड़ा होगा। मेरे मारने के लिए अन्दर आदमी छिपे बैठे होंगे। मेरे मन में इस वस्तु की चिन्ता हुई। मुझे लगा कि पूर्णरूप से फँस गया हूँ। इसने मेरी बाइसिकिल लेने का प्रयत्न किया इस लिए फौरन मै खड़ा होगया। साइकिल ले ली और जेब से रिवाल्वर निकाल कर इसके झोंपड़े के ऊपर वार किया। गोली झोंपड़े के पार चली गई। चीफ़ बहुत ही चालाक था। इसने दुभाषिया के रूप में काम किया था। वह चार-पाँच बोलियाँ जानता था। गोलीबार होते ही यह चमक उठा। इसने संकेत दिया। गोली झोंपड़े मे से गई थी त्योंही झोंपड़ा जलने लगा। दूसरा फायर किया तो दो भाले वाले अन्दर से निकले। चीफ़ ने इन्हें कोई निशानी बताई। मैंने रिवाल्वर का बार चालू ही रखा। तीसरा फायर किया इतने में तीनो जन घास में घुस कर भाग गये। मै साइकिल दौड़ाकर चलता हुआ। एक हाथ में साइकिल और दूसरे हाथ से रिवाल्वर का बार चालू था। एकाध मील जाकर मै साइकिल पर बैठा। साइकिल को झटपट तेज़ी से चला दिया। लेक क्योगा के बन्दर पर पहुँचा। लेक क्योगा के इस किनारे पर सरकार ने छोटा अस्थायी बन्दर बँधाया हुआ था। छोटी स्टीमरें वहाँ पर आया जाया करती थीं। कपास, तिल, चमड़ा आदि माल लेजाती थीं। इस बन्दर पर एक गोवानीज़ क्लर्क, चार-पाँच हथियार-बन्द पुलीस और माल चढ़ाने-उतारने के लिए पचास-साठ नेटिव मज़दूर - बस इतनी बस्ती थी। उन्होने फँस जाने की इस बात को जब सुना तो कहा -" इन लोगों ने बहुत से मनुष्यों को मार खाया है। आप बँच गये अतः भाग्यशाली हैं।"

गोवानीज़ क्लर्क से मैने प्रार्थना की कि "सामने के किनारे पर जाने के लिए मुझे एक किश्ती दें।" इसने किश्ती का प्रबन्ध कर दिया। किश्ती में बैठकर मै रवाना हुआ।

सायंकाल लगभग चार बजे एकाएक तूफान आगया। सरोवर मे छोटे छोटे द्वीप तैरते थे, वे चारों तरफ फिरने लगे। इन द्वीपों के मध्य हमारी किश्ती फंसी। ऐसा करते रात्रि पड़ गई। मच्छर भुनभुनाने लगे। सरोवर के बड़े मच्छरों ने हाथ काट खाया। बड़ी कठिनाई से मल्लाहों ने किश्ती को तूफान से बाहर निकाला। रात्रि मे एक बजे बन्दर पर पीछे लौट आये।



बुसोगा नरमांसभक्षी अफ्रीकनों का प्रदेश जहाँ से लेखक ई. सन् १९१६ में मौत के मुख से बँचा

रात्रि में आफ़िस का दरवाज़ा खटखटाया। मिस्टर टेलिस को इस समय जगाया। ऐसे समय मे भी उन्होने प्रेम से स्वागत किया। उनसे तूफ़ान की बात की। सुनकर वे बहुत दुःखी हुये। मुझे अपने घर पर ले गये। हाथ मुँह धोकर, कपड़ा बदल कर मै चारपाई पर पड़ा। टेलिस ने मेरा हाथ देखा तो शरीर मे ज्वर भरा था। तूफान में भीग जाना, मच्छरों ने काटा, सख़्त धूप मे बैठे रहना–आदि के कारण परिणामतः बुखार चढ़ गया। मि. टेलिस ने सोडा और दूध दिया। खूब देखभाल की और दवा दी। शरीर मे कुछ आराम जान पड़ने से मैं सो गया।

प्रातःकाल उठकर दातन आदि क्रिया करने के बाद मि. टेलिस को मैंने कहा –" मुझे एक मनुष्य दो। मुझे सारा सन्देशा भेज देना है।" मि. टेलिस ने आदमी दिया। मैंने प्रत्येक जगह जहाँ जहाँ पर हमारे मनुष्य कपास खरीद रहे थे कागज़ लिखकर सूचना भेज दी " अब से इस रास्ते पर कोई आवे नहीं। यह जगह ख़तरे से भरी हुई है।"

मेरी इस प्रकार की चेतावनी के होते हुये भी इस ज़िले मे कपास खरीदने के लिए केशव और विठ्ठल नाम के दो नौजवान मेरे निकलने के दूसरे दिन इस रास्ते से निकले। उन्हे हमारे क्लर्कों ने चेतावनी दी " भाई गलत साहस मत करो। इस रास्ते से जाने मे जोखम है। मेहता सेठ कठिनाई से बचे। आप लोग अच्छा होगा कि न जावें।"

परन्तु इन चढ़ते लोहू वाले नौजवानों ने बात नहीं मानी। इन्होंने कहा " जहाँ तक जाया जा सके वहाँ तक जावेंगे – पीछे भय जैसी बात मालूम होगी तो पीछे वापस आवेंगे " ऐसा उत्तर देकर वे आगे बढ़े। दोनो ही नवयुवकों के पास साइकिलें थीं। सरोवर का किनारा अभी दूर था। वहाँ पर पहले वाला नेटिव चीफ़ उन्हे मिला। इन युवकों ने चीफ़ से पूँछा " सामने के किनारे पर जाने के लिए किश्ती कब मिलेगी ?"

चीफ़ ने बनावटी जवाब दिया " किश्ती तैयार है – महाशय ! अभी ही मिलेगी। आप दोनो हमारे साथ चलो।" इस प्रकार फ़ुसलाकर दोनो को ले गया। दूसरे किश्ती चलाने वाले को साथ लिया। दोनो युवकों को किश्ती में बैठाया। बीच मे ले जाकर काट डाला।

ये दोनो ही नवयुवक समय से वापस नहीं आये तो इससे इनके भाइयों को चिन्ता हुई। उन्होने पुलीस को सूचना दी। बीच में मै कमली वापस आया तो इन लोगों ने मुझ से पूछा। मैंने उन्हे कहा "इस रास्ते से जाने मे पूरा खतरा था।" ऐसा कहकर मैंने अपनी आपबीती सुना दी। मेरी हक़ीकत सुनकर उन्हे अधिक चिन्ता हुई। उन्होने दौड़-धूप प्रारंभ की। डिस्ट्रिक्ट कमिश्नर को यह सम्पूर्ण विवरण मिलने पर उसने इस विभाग के चीफ़ को बुलाया। इसने छोटे चीफ़ को हुक्म दिया कि "इन लोगों को पकड़ कर हाज़िर करो।"

इस झोंपड़े मे रहने वाले सभी लोग पकड़े गये। उन्होने जवाब दिया कि –"हम कुछ जानते नहीं।" ऐसे उड़ते पड़ते जवाब को सुनकर इन लोगों को उल्टा लेटाकर कोड़े की मार की गई– तिसपर भी उन्होने स्वीकार नहीं किया।

डिस्ट्रिक्ट कमिश्नर पुलीस विभाग का बड़ा गिना जाता है। वह व्यक्तिगत रूप से वहाँ गया। उसने खूब जाँच पड़ताल की परन्तु किसीने माना नहीं। सरकार ने इस घटना की गंभीरता को देखते हुये विशेष पुलीस कमिश्नर की नियुक्ति की। उसने जाँच-पड़ताल को हाथ मे लिया।

एकाध मास के बाद ऐसा हुआ कि लूट का माल बेंचनें में झगड़ा हुआ। जिन लोगों को मारकर खा लिया था उनके पैसे एकत्र कर रखे थे। उनके बेंचने मे बाधा पड़ी। एक आदमी के दो स्त्रियाँ थीं। उसने एक स्त्री को कपड़ा बनवा दिया और दूसरी को कुछ नहीं दिया। इसमें से झगड़ा खड़ा हुआ। इस स्त्री ने जाकर बड़े नेटिव चीफ़ को सारी बात जता दी।

इस चीफ़ ने इस विशेष कार्य के लिए नियुक्त हुये कमिश्नर को जानकारी दी। इन लोगों को फिर पकड़ा गया। पकड़ कर इन्हे खूब मारा। इस समय इन्होने सब स्वीकार कर लिया। पैसा उन्होने निकाल कर दे दिया। बाइसिकिलें और मनुष्यों की हड्डियाँ दरिया मे डाल दी – ऐसा उन्होने न्यायाधीश के समक्ष स्वीकार किया। विस्तार मे उन्होने कहा कि "हमने सत्तर मनुष्यों को खाया है। उसमे भारतीय, अरब और नेटिव थे। एक भी मुजुंगु (गोरा) हमने खाया नहीं।"

जस्टिस मि. कार्टरे ने यह सुनकर हंसकर पूछा "मैं मुजुंगु

(गोरा) हूं। मुझे तो नहीं खा जावोगे न? न्यायाधीश का कटाक्ष सुनकर सब हँस पड़े।

इसमे जो पाँच मुख्य अपराधी थे उन्हे दस हज़ार मनुष्यों के बीच खुली फाँसी देने मे आयी। उनकी गायें और माल-सम्पत्ति ज़ब्त करने में आयीं। दूसरों को न्यूनाधिक सज़ा दी। इस प्रदेश के छोटे बड़े समस्त चीफों को खबर दी कि "अब से कोई ऐसा काम करेगा तो उसे फाँसी पर लटका देने में आवेगा।"

उसके बाद सरकार ने इस मार्ग को बन्द कर दिया और जगह को उजाड़ कर दिया।

× × ×

जंगल में व्यापार करते जाते हुये हमें अनेक प्रकार के अनुभव मिलते थे। उनमे से कुछ को उदाहरण के रूप में यहाँ उद्धृत करूँगा।

अपने देश मे रबारी लोग आज तक भी दवा और डाक्टरों में विश्वास नहीं रखते हैं। अपने ओझों पर विश्वास रखते हैं। किसीको सर्पदंश हुआ हो तो उसे फौरन गाड़े मे रखकर ओझा-सोखा के पास माता के मठ में ले जाते हैं। वहाँ पर ओझा उसके ऊपर मोर की पूंछ का चामर फेरता है। माता की स्तुति करता है, पानी छिड़कता है और घी पिलाता है। बहुत से मामलों मे सर्प का ज़हर उतर भी जाता है। मोर की पूंछ मे सर्प का ज़हर उतारने की शक्ति होती है ऐसा संभव है। क्योंकि सर्प मोर की खूराक है।

इसी प्रकार हाथी को ज्वर आवे तो शेर के चमड़े का धुंवा देते हैं। उससे वह अच्छा हो जाता है।

गीर के जंगलो मे जब शेरों का उपद्रव बहुत बढ़ आता है तो वहाँ के मालधारी लोग सिंह के आने के मार्ग पर मरा हुआ सर्प अथवा काले कपड़े का लम्बा सर्पाकार टुकड़ा डाल देते हैं। सिंह इसे देखकर दूसरे रास्ते से चला जाता है। तथा दिनों तक इस रास्ते पर आता नहीं।

अफ्रीका मे सर्प बहुत भयंकर और विषैले होते हैं। वे अपनी फूंक से मनुष्य को मार देवें – इतना विष उनमें होता है। नांगोमो नाम के ग्राम में हमारे जाति-भाई श्री खेराजभाई की एक दूकान थी। दूकान में चार-पाँच दर्ज़ी सीने की मशीनें चला रहे थे।

एक बार दूकान मे वे पेटी हटाने गये। उसमे से पीछे से सांप ने फुफकार मारी। इसकी फूंक से खेराजभाई की आँख से खून बहने लगा। नेटिव दर्ज़ी लकड़ी लेकर दौड़े आये। सर्प ने पुनः फूंक मारी। परन्तु उसमें पहली बार जितना विष नहीं था। इससे नेटिवों पर प्रभाव नहीं हुआ। तथा लकड़ियों से सर्प को समाप्त किया। श्री खेराजभाई को एक मोटर-लारी से मवाले अस्पताल में लेजाया गया। दवा कराई गई और दो मास में ठीक हुये।

नेटिव लोग सर्प का विष उतारने के लिए केले के पत्ते के रस का प्रयोग करते हैं। आँखो में रस डालते हैं और पिलाते हैं। इससे कई बार आराम भी हो जाता है। अफ्रीका के सर्प भारत के कोब्रा जितने विषैले नहीं होते हैं।

सुख-दुःख का आधार बाहर की वस्तुवों पर नहीं है अपितु मन पर है। ऐसा गीता और दूसरे धर्मशास्त्र कहते हैं। इस लिए मन को दृढ़ रखना – यह सुखी होने का उत्तम उपाय है। मेरे जीवन में ऐसे अनुभव मुझे बहुत हुये हैं।

अफ्रीका में प्रारंभ के वर्षों में घटे हुये ये दिलचस्प और रोमांचकारी वृत्तान्त हैं। अपनी गुजराती की कहावत के अनुसार "मंशा भूत अने शंका डाकण" (अर्थात् मनशा भूत और शंका डाकिनी है।) यह बात सर्वथा सच्ची है। अपने दश-पन्द्रह जन घर मे आनन्द करते बैठे हों और ऐसे समय में अचानक सर्प निकले तो अपनी ये बातें और आनन्द सभी हवा में उड़ जावें। सर्प तो छोटा प्राणी है। बैठे पन्द्रह आदमी हैं परन्तु सभी की हिम्मत और शक्ति कहीं ही चली जाती है – ऐसा ही यह उदाहरण है।

× × ×

जिंजा और कमली मे हमारी दूकाने थीं। सन् १९०९-१० में रास्ते अच्छे नहीं थे। आने जाने के लिए सवारियों की सुविधा नहीं थी। जिंजा से कमली ५० मील दूर है। सवेरे साढे चार बजे जिंजा से निकल कर १४ घण्टे में सायंकाल ५० मील चलकर कमली पहुँच जाता था। वर्ष में ऐसे ४ से छ तक सफर होते थे।

एक बार ऐसी यात्रा में यह घटना घटी। जिंजा से मै प्रातः साढ़े चार बजे निकला। पहले दिन दोपहर को तीन बजे अपने नौकर को सामान – जिसमें कपड़ों की छोटी पेटी, बिस्तर और फोल्डिंग चारपायी मिलकर ६० पौण्ड का भार था – के साथ रवाना

कर दिया था। मेरा नौकर आगे जाकर २५ मील पर रुके ऐसा निश्चय किया। सवेरे ११ बजे मैं वहाँ पहुंच जाऊं और हम दोनो वहाँ साथ होजावें – ऐसा प्रबन्धं किया। नौकर मेरे लिए गरम पानी तैयार रखता था। मै गरम पूड़ी बाँध लेता। वहाँ दूध तो प्रत्येक जंगल में पर्याप्त मात्रा में मिल जाता था। इस लिए भोजन लेकर आराम करके पीछे आगे बढ़ता था और रात्रि मे घर पहुंच जाता था। ऐसा ही प्रत्येक सफर में होता था।

पहले से निश्चय किये अनुसार मैं ११ बजे पहुंचा। नौकर ने पानी गरम कर रखा था। बूट उतार कर गरम पानी से हाथ पैर धोया। गरम दूध के साथ लगभग बीस पूड़ियाँ खाकर आधा घण्टा आराम लिया और बाद में रवाना हुआ।

दो बजे के लगभग धुवाँधार वर्षा प्रारंभ हुई। इस प्रदेश के विषुववृत्त के ऊपर होने से बारह मास वहाँ वर्षा पड़ती है। ५० से ६० इंच की मात्रा में औसत वर्षा पड़ती है। मार्ग मे खूब कीचड़ जम गया था। हम बरसती वर्षा मे चले जा रहे थे। कमली आठ मील दूर रह गई थी। संध्या हो गई थी।

वहाँ जंगलों मे ज़रा भी सूखापन हो जावे कि फौरन वहाँ के रहने वाले जंगलों में आग लगा देते हैं। घास जले तो उसमे सूखे वृक्ष भी जलने लगते हैं। चारों तरफ घास और वृक्ष जलते दिखाई देते हैं।

हम चले जा रहे थे। दोनो के हाथ में भाला, लकड़ी और छुरी थे। जंगली जानवरों से बँचने के लिए ऐसा हथियार सफर में रखना पड़ता था।

हम उत्तर की ओर जा रहे थे। इस दिशा मे एक सूखा वृक्ष सुलग रहा था। उत्तर की ओर वाले भाग में आग लगी थी, उससे हमे वृक्ष का जलता हुआ भाग दिखाई नहीं पड़ता था, केवल उसका पिछला भाग दिखाई पड़ता था। वृक्ष जलकर खाक होने की तैयारी में था। इतने मे वेग से हवा चली और वृक्ष गिर पड़ा। आग का बड़ा धड़ाका हुआ। वृक्ष अन्दर से पोला था – इस लिए गिरने के साथ ही आग का धड़ाका दिखाई पड़ा। उस धड़ाके को देखते ही हमारा नौकर चीख मारकर सामान के साथ गिर पड़ा। गिरते ही बेहोश हो गया। डर मे वह बोल पड़ा– "भूत ने मुझे खाया।" अकस्मात् ऐसा घटित होने से इस भयंकर

दृश्य को देखकर क्षणमात्र के लिए चिन्ता हुई - परन्तु तत्काल ही मै स्वस्थ बन गया। बाय को खड़ा करने लगा। इसको सुध नहीं थी। वृक्ष को देखा तो अन्दर से खाया हुआ ठूँठा था।

घड़ी भर मैं विचार में पड़ गया। अब क्या किया जावे? बाय के हाथ से गिर पड़ी हुई लालटेन को ठीक करके बाद मे बत्ती की। बाय बेसुध अवस्था में पड़ा था। लैण्टर्न लेकर मैं आधा एक मील दूर नेटिवों का झोंपड़ा था वहाँ पर गया। इनको सारी बातें कहीं। वे सहायता के लिए तैयार हुये। आठ दस जन मेरे साथ आये। एक बड़े वृक्ष को काट कर उसके साथ वल्कल बाँधकर डोली बनायी, उसमे बाय को सुलाया। आठ दस नेटिवों को साथ मे लिया। उन्हो ने डोली तथा सामान उठाया। रात्रि मे १२ बजे घर पहुँचे। बाय को सेंक दिया।

प्रातः उसको बुखार चढ़ गया। मिशनरी पादरी के दवाखाने से साथ जाकर दवा लाया। चेतना आयी तो बाय को जल गये हुये लकड़ी का ठूँठा बताया। इसको देखने के बाद उसका वहम दूर हुआ। स्वयं जीवित रहा इस लिए प्रभु का धन्यवाद माना। इसको १५ दिन अस्पताल में रखकर दवा कराई। इस बाय ने ३० वर्ष हमारे साथ निभाया। इसे मैने ३० बीघा ज़मीन बिकती हुई लेकर दे दी। आज इसके बालक हमारी जीनियरी में काम करते हैं।

भारत में केवल वहम से हज़ारों मृत्युयें होती होंगी। वहम केवल अज्ञान के कारण है। उसका यह दृष्टान्त है।

× × ×

सन् १९१५ की यह बात है। इस समय जंगलों में जाने के लिए रास्ता पूरा सुधरा नहीं था। मोटर-साइकिलें आयी थीं। पहले पैदल चलते थे - बाद मे हम डोलियों मे बैठकर जंगलों में जाते थे। बाद में साइकिलें और मोटर-साइकिलें आयीं। उस समय स्वर्ग मिलने जितना आनन्द हुआ। बाद मे मोटरें आयीं। उस समय वैकुण्ठ मिला हो - ऐसा माना जाता था।

एक बार अपने मित्र श्री· मूलजीभाई प्रभुदास के साथ मैं मोटर साइकिल पर जंगल में गावों मे गया।

बरसात के कारण रास्ता बहुत खराब था। कीचड़ के कारण मोटर-साइकिल चलाने मे बहुत मुसीबत पड़ती थी। मार्ग मे बार बार नीचे उतरना पड़ता था। इस समय में मोटर-साइकिल

सेल्फ-स्टार्टर न होने से थोड़ी दूर तक पीछे दौड़कर बाद में स्टार्ट होती थी। श्री. मूलजीभाई की अपेक्षा मोटर-साइकिल अधिक भारी थी। इस लिए प्रथम मैं उनकी साइकिल को पीछे से धक्का देकर स्टार्ट करा दिया करता था, पीछे अपनी मोटर-साइकिल के साथ दौड़कर स्टार्ट होता था - कूदकर मै चढ़ बैठता था। इस तरह हम ४५ मील दूर गये। इतने में एक नाला आया। उसमें पानी वेग से बहता जा रहा था। मोटर-साइकिलें पार • जा सकें- ऐसा नहीं था। हमने बगल के जंगलों मे से नेटिवों को बुलाया। उनसे वृक्ष की दो मोटी डालियाँ कटवायीं। केले के रेसे की मज़बूत रस्सियाँ बनवाईं और इन डालों के साथ मोटर-साइकिलें बांधीं। खम्भे उठवा कर हम सामने के किनारे पर पहुँचे।

वहाँ से हम आगे चले। बरसात चालू थी। एक नदी आयी। उसमे किश्ती में बैठकर हम पार गये। संध्या हो गई। एक अरब की दूकान पर रात्रि में रहे। भूख खूब लगी थी। केला मँगाया। भूनकर आठ केला खाया। मार्कीन का जाज़िम निकाल कर बिछाया। एक एक सिरहाना लिया और सो गये। परन्तु नींद नहीं आयी। केला बहुत खाया था - इससे पेट मे अफारा चढ़ने लगा। बेचैनी बढ़ने लगी। उठकर एक घण्टे के लगभग चक्कर लगाया तब जाकर कुछ ठीक हुआ। पीछे सो गया।

प्रातःकाल बिना दूध की चाय पीकर आगे बढ़ा। धीमी धीमी बरसात चालू होने से मार्ग खराब हो गया था। इससे साइकिल फिसल जाती थी। हम थोड़ी देर मोटर-साइकिल पर, तो थोड़ी देर पैदल चलते हुये आगे बढे। दोपहर को १२ बजे नांगोंग्रा पहुँचे। वहाँ श्री. खेराजभाई के पास हमने पहले से ही एक नेटिव के साथ भोजन करने के लिए पत्र भेज दिया था। परन्तु जाकर पता लगाया तो मालूम हुआ कि वे घर में ताला लगाकर १५ मील दूर टरोरो गये हुये हैं। हमे और मोटर-साइकिलों को देखकर दो ग्रामसिंह हमारा स्वागत करने को दौड़कर आ गये। वे हमारे चरणस्पर्श करने को जा रहे थे परंतु हमने उन्हे रोंका। भोजन के बदले ऐसा स्वागत मिलेगा - ऐसी कल्पना नहीं थी। गाँव मे एक खोजाभाई की दूकान थी। इन्होने भोजन करने का आग्रह किया। इस समय दूसरे किसीके हाथ का पकाया खाते नहीं थे। वहाँ से हमने बिस्कुट और कन्डेंस्ड दूध का डिब्बा लिया। भूख

खूब लगी थी। जैसा तैसा करके पेट भरा।

श्री. मूलजीभाई की मोटर-साइकिल में थोड़ी खराबी थी। इस लिए वे रास्ते में ठीक करने बैठ गये। मैंने कहा "इसमें समय बहुत खराब होगा। अपनी मोटर साइकिल यहाँ पर नेटिव के यहाँ छोड़ दो। आप मेरी मोटर साइकिल पर पीछे आजावें।"

परंतु उन्हो ने न माना। साइकिल खोलकर बैठ गये। हमें ऐसा हुआ कि बरसात बन्द हो जावे, धूप निकल आवे तो मार्ग कुछ सूख जावेगा। तीन घण्टे वहाँ पर बीत गये।

नांगोग्रा से टरोरो १५ मील दूर है। हम चल पड़े। मार्ग पहले जैसा ही था। सायंकाल पाँच बजे टरोरो पहुँचे। हम अपने एक परिचित गृहस्थ के घर गये। वे श्री. खेराजभाई के साथ भोजन करने की तैयारी में थे। थालियाँ परसी जा चुकी थीं। उन्हो ने सामने आकर हमारा स्वागत किया "यह अचानक कहाँ से?"

हमने कहा "दूसरी सब बातें बाद में। हमे भूख लगी है- उसके लिए करो" ऐसा कहकर कपड़ा उतार कर, हाथ पैर धोकर, हम तैयार थालियों पर भोजन करने बैठ गये। इन्होने दस परौठे बनाये थे। उसमें से पाँच पाँच परौठे हम मूँग की दाल के साथ खा गये। इन भाइयों ने नई रसोई बनायी। दो घण्टे बाद भोजन किया। अन्न-जल के एक एक कण पर खाने वाले का नाम होता है - इसका यह प्रत्यक्ष उदाहरण है।

भोजन करके बैठने पर अपने सफर की बातें सुनाई। खूब आनन्द किया।

हम शान्ति से रात्रिभर रहे। दूसरे दिन यात्रा प्रारंभ की। आठ सौ मील की यात्रा करके ८ वें दिवस पीछे फिरे। बरसात, भीनी हवा और खाने पीने की अनियमितता के कारण घर जाकर बीमार पड़ा।

जीनेरियाँ डालीं

सन् १९१८ मे जर्मन ईस्ट अफ्रीका को अंग्रेज़ो ने जीत लिया। इससे व्यापार मे स्थिरता आयी। व्यापार खिलने लगा। कमाई बढ़ती गई। भारतीय युगण्डा में आने लगे। हमने दूकानों के लिए और रहने के लिए अच्छी सुविधा की।

इस साल मे देश से मैने अपनी पत्नी को बुला लिया। सन् १९१७ में मेरे बड़े पुत्र का जन्म देश में हुआ था। उसके साथ मेरी पत्नी अफ्रीका आ पहुँची। इस वक्त रहने के मकानो का पूरा प्रबन्ध था। भारतीय व्यापारियों ने अपने कुटुम्ब को देश से बुला लिया था – इस लिए स्त्रियों का आवश्यक पड़ोस भी था।

अब व्यापार मे एक पग आगे बढ़ने का अवसर आ पहुँचा हम बड़ी मात्रा में कपास खरीदते थे, परन्तु जीनेरियाँ सफाई धुनाई का भाव अधिक लेती थीं, इससे अपनी मालिकी की जीनेरियाँ करने का विचार किया।

इस समय हमारे पास कपड़े का व्यापार, रूई और कपास की खरीदी आदि का काम-काज था। अधिक अर्थ की सुविधा नहीं थी – फिर भी जीनेरी बाँधने का साहस किया।

इस समय योरोप मे अभी लड़ाई चालू थी। बहुत सी चीज़ों पर कण्ट्रोल था, इससे माल मिलने में कठिनाई थी – हमने बुसोगा ज़िले में कमली और बुसंभाटिया इन दो जगहों में जीनेरी बाँधने का निश्चय किया। सरकार से लीज़ पर भूमि ली। उस पर मकान बनाना शुरू किया। वहाँ मकान बनाने के लिए टिम्बर की इमारती लकड़ी पर्याप्त मिलती है, परन्तु मशीनरी की कठिनाई थी। हमने पता लगाना प्रारंभ किया। केनियाँ से एक पुराना स्टीम इंजिन लाया। एक पन्द्रह हार्सपावर का छोटा आइल इंजन भी वहाँ से प्राप्त किया। ओपनर एक मिला। हमने मशीनरी के लिए मुम्बई लिखा। वहाँ से बारह जीन तथा एक ओपनर खरीदा। परन्तु देश में कण्ट्रोल होने से माल रवाना करने की कठिनाई थी।

युगण्डा गवर्नमेण्ट ने इण्डिया गवर्नमेण्ट को प्रायोरिटी के लिए तार दियिा "यहाँ हमे व्यापार को खिलाने के लिए जीनेरियों की खास ज़रूरत है - इस लिए माल की परवानगी दें। हमारे व्यापारियों को प्राथमिकता देने की विनती है।"

इन तमाम प्रकार के प्रयत्नों के करने पर भी मशीनरी के आने मे निश्चय किये समय से विलम्ब हुआ। इस लिये मैं स्वयं बम्बई गया। बड़ी मेहनत से माल खरीदा। मुँह मागा दाम देकर स्टीमर में चढ़ाया इन सब मशीनरियों के साथ में वापस युगण्डा आया।

पहले कमली में बारह यंत्र डालकर जीनेरी तैयार की। बुसंभाटिया के लिए ब्रिटिश काटन ग्रोइंग कम्पनी के पास से जीन उधार ली और जीनेरी तैयार की।

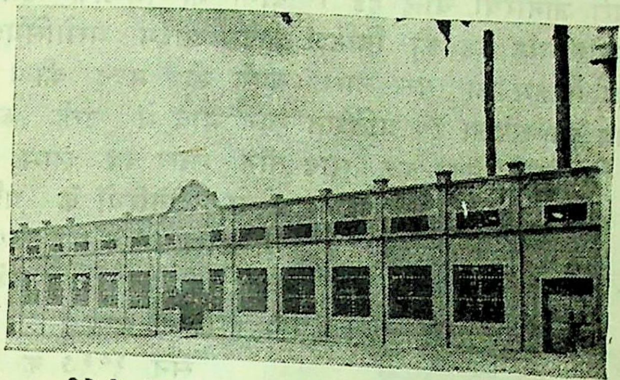
इस प्रकार अनेक कठिनाइयों के बाद जीनेरियाँ तैयार कीं। परन्तु इनके चालू करने में एक नई अड़चन खड़ी हो गई। युगण्डा मे नई जीनेरी चालू करने के लिए डिस्ट्रिक्ट कमिश्नर आज्ञा देवे इतना ही पर्याप्त नहीं है। उसके लिए कृषि-विभाग के कमिश्नर की आज्ञा मिलनी चाहिए, ऐसा नियम था। कोई भी भारतीय व्यापारी जीनेरी चलावे इसमें खेती-वारी के ऊपरी अधिकारी प्रसन्न नहीं थे। इस लिये इन्हों ने आपत्ति उठायी। मामूली से बहाने बताकर आज्ञा देने मे ढील करते थे। गवर्नर तक बातें पहुँचायीं।

हमने बड़े परिश्रम से वस्तुयें इकट्ठा कीं, जीनेरियाँ बाँधी और अब सरकारी आपत्ति उठी। योरोपियन लोग जीनेरी खड़ी कर सकें, व्यापार खिला सकें, तो फिर भारतीय क्यों न जीनेरी डाल सकें? इस विषय पर लड़ाई की।

इसमें हक़ीकत यह है कि जिस समय हमारी बुसंभाटिया जीनेरी बनाई जा रही थी उस समय एग्रीकल्चर कमिश्नर फिरने निकला। जीनियरी का काम चलता देखकर यह चिढ़ गया। हमारे आदमियों को इसने धमकाया "रजा विना जीनेरी क्यों बाँधते हो- क्या यह तुम्हारा मुल्क है?" ऐसा कह कर वहाँ के चीफ़ को बुलाया और काम बन्द कराया।

मुझे इस विषय का समाचार दूसरे दिन मिला। हमे नियम की पूरी जानकारी नहीं थी। ऐसे तैसे बाँधना शुरू कर दिया। विचार करके एक मार्ग ढूँढ़ निकाला। डिस्ट्रिक्ट कमिश्नर का

क्लर्क गोवानीज़ था। यह हमारा मित्र था। मै इससे मिला। उसके पास से परवानगी-फार्म लिया और दरख़्वास्त लिख कर क्लर्क को दे दी।



जीनेरी के साथ बुसंभाटिया आइल मिल

कमिश्नर ज़िले से पीछे वापस आया। मै उससे मिलने गया। बात की -"आप को अर्ज़ी दी थी। मौसम समीप होने से जीनियरी बाँधने का काम शुरू कर दिया।"

"मुझे पूँछा क्यों नहीं? सामने क्यों नहीं आये?" कमिश्नर ने प्रश्न किया। मैने शान्ति से उत्तर दिया, "मै यात्रा मे था। इस जीनेरी को बाँधने मे हमारा उद्देश्य इस देश में व्यापार को उत्तेजना मिले - यह है। आप नहीं कहें तो बन्द कर दूँ।"

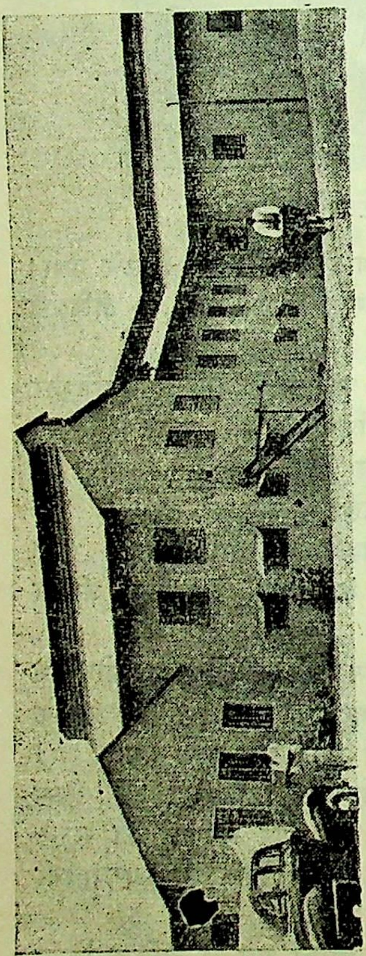
डिस्ट्रिक्ट कमिश्नर का ख्याल पहले से हमारे ऊपर था। इन्हो ने कागज़ एग्रीकल्चर कमिश्नर के पास भेज कर जीनेरी बाँधने का काम चालू कराया।

ब्रिटिश काटन ग्रोइंग असोसियेशन जो ब्रिटिश कालोनी मे समस्त दुनिया में कपास का व्यापार करता है, उस कम्पनी के युगण्डा खाते के मैनेजर मि. उसली मेरे ऊपर खूब प्रेम रखते थे। उन्हे तथा डिस्ट्रिक्ट कमिश्नर को गवर्नर का सिफारिश पत्र लिख भेजा -"लड़ाई के कठिनाई के समय में देश और सरकार को मूल्य-वान् सहायता करने वाले मि. मेहता को जीनेरी की परवानगी मिलनी चाहिए।"

गवर्नर ने परवानगी दी। उसमे विशेष रूप से अंकित किया कि "युगण्डा प्रान्त की आबादी करने के लिए परवानगी देने में

आती है।" ऐसा होने पर भी एग्रीकल्चर कमिश्नर ने एक मास तक कागज़ रख रखे। आखीर दो मास बाद जीनेरियाँ चलाने का सरकारी लायसेन्स मुझे मिला।

हमारी जीनेरियाँ चालू हुईं। दोनो की मिलाकर हमने लगभग दो हज़ार गाँठ रूई की ब्रिटिश काटन ग्रोइंग असोसियेशन को दीं। उन्हो ने हम को दस लाख रूपये की मदद की। इससे बाज़ार भाव की अपेक्षा १० प्रतिशत न्यून भाव में उन्हे रूई दी। हमे दोनो जिनेरियाँ मिला कर साढ़े तीन लाख का लाभ हुआ। दोनो जीनेरियों के बाँधने में दो लाख रूपये का व्यय हुआ था। एक वर्ष मे ही हमे प्रतिफल मिल गया।



कमली जीनेरी (नई)

सन् १९१७ के साल में जीनेरियों में साढ़े तीन लाख और कपड़े में दो लाख रूपये पैदा किये।

दूसरे वर्ष सन् १९१८ में दूसरी दो जीनेरियाँ खड़ी कीं। पहली दो के बाँधने में जो मुश्किलाहटें आयीं, वे अब नहीं पड़ीं। हमे अनुभव मिलता गया, त्यों त्यों कार्यकुशलता बढ़ती गई।

अपने छोटे भाई मथुरादास को देश में भेजा और देश से बड़े भाई को बुलाया। अपने चाचा के लड़के भाई विष्णुदास तथा भाई वल्लभदास को मंगाया। सब को दो दो आने भाग कर दिया।

काम-काज मे सहायता करने वाले कुटुम्बी आ गये, इस लिए काम-काज बढ़ाने का मन हुआ परन्तु ऊपर के प्रदेश में

बहुत सी दूकानें हमने डालीं। दूर दूर के जंगल में पहुँचना नहीं होता था - इस लिए छोटी दूकाने नौकरों को सौंप दी।

प्रारंभ में उत्साह में आकर हम काम का विस्तार कर लेते हैं परन्तु बाद में पहुच नहीं पाते। इसकी अपेक्षा जहाँ पर्यन्त दृष्टि पहुँचे और देखभाल हो सके वहीं तक अपनी शक्ति के अनुसार काम का विस्तार करने से अन्त मे अच्छा लाभ होता है।

सन् १९१८ में योरोप का महायुद्ध बन्द पड़ा। जर्मनी हारा, अंग्रेज़ों की जीत हुई। सारा पूर्व-अफ्रीका अंग्रेज़ों के हाथ में आया। हमारा काम-काज आगे बढ़ता जाता था। लड़ाई के कारण उठ खड़ी हुयी अड़चने दूर हुईं।

परन्तु विधि का यह खेल कुछ भिन्न है। जीवन में सुख-दुःख, धूप-छाया - ये जोड़े में रहते हैं।

युगण्डा में इन्फ्लुयेंज़ा बुखार आया। इस ज्वर में हमारे तीन स्वजन समाप्त हुये - २३ वर्ष का मेरे मामा का पुत्र, तथा २५ वर्ष के हमारे चाचाजी के पुत्र विष्णुदास और मेरी पत्नी। हमने सेवा करने मे कोई कोर कसर नहीं रखी परन्तु इस विषैले ज्वर से तीनो के कर्मों ने भोग प्राप्त किया।

इन अपने प्यारे कुटुम्बी जनो के अकाल अवसान से मुझे भारी आघात लगा। इनकी बीमारी की देखभाल मे बहुत दौड़धूप की, मानसिक दुःख भोगा, उससे मेरे शरीर पर प्रभाव पड़ा। बड़े भाई को भी इन्फ्लुयेंज़ा हुआ। ऐसे प्रसंग पर परदेश में अपने माँ-बाप, बड़े लोग सब याद आते हैं। मेरे पुत्र चि० खीमजीभाई की उम्र सिर्फ तीन वर्ष की थी। उनकी परदेश में संभाल हो सके ऐसा नहीं था इस लिए उन्हे छोड़ने और आराम लेने के लिए मैं देश मे गया।

देशे में बुजुर्गों को मिल कर मनोदुःख को हल्का किया। इस समय मेरा शरीर खूब दुबला हो गया था। इससे शांति से देश में दो चार मास रहने का विचार किया।

जिस समय तक परदेश मे गया नहीं था, व्यापार किया नहीं था, कमाई की नहीं थी-तब तक मन भारी उमंग मारता था। परन्तु अब देश मे जाते हुये दूसरे विचार आ रहे थे। देश मे रहना, परदेश का काम-काज करना, देश में थोड़ा व्यापार करना, माँ-बाप की सेवा करनी, शान्त सादा जीवन बिताना, देश मे स्थिर होना आदि ऐसे अनेकों विचार आते थे।

अफ्रीका के काम-काज को भागीदार संभालते थे। जीनेरियों, दूकानों, जिंजा की एजेन्सी, माल की दूकानों आदि के कार्य में हरकत नहीं पड़ती थी परन्तु इन प्रत्येक का आर्थिक बोझा मेरे ही सिर पर था। युगण्डा से मुझे बुलाने के लिए तार और पत्र आया करते थे। इस लिए ज्यों ही तन्दुरस्ती सुधरी त्यों ही विचार बदला और परदेश जाने की तैयारी की। बम्बई आया। वहाँ से बारह दिन में स्टीमर में मोम्बासा पहुँचा। मोम्बासा से जिंजा सुखरूप पहुँच गया। जिंजा से मुझे खानगी समाचार मिला कि अब भारतीयों को जीनेरी के लिए आज्ञापत्र नहीं मिलेगा।

युगण्डा मे मेरे उपरान्त हिन्दी व्यापारियों की दूसरी पाँच-सात जीनेरियाँ थीं। कुल दस-बारह अपनी और २५ योरोपियनो की थीं। इससे स्पर्धा चलती थी। योरोपियनों को भय लगा कि भारतीय स्पर्धा में पहुँचने नहीं देंगे। अपना व्यापार खतम हो जावेगा।

ऐसी अवस्था मे नई जीनेरियों के डालने का काम कठिन था। मेरा ज़िला के कमिश्नर के साथ अच्छा सम्बन्ध था। वह भी स्नेहभाव रखते थे। वहाँ के नेटिव भी सरकार से कहते थे कि "महाशय मेहता को हमारे प्रदेश मे जीनेरियाँ डालने की स्वीकृति दो। वे हमारी बड़ी मदद करते हैं।"

लड़ाई के ज़माने में माल की हेर-फेर के लिए रेलवे के वैगन नहीं मिलते थे – स्टीमरें भी नहीं मिलती थीं – इससे कपास पड़ा रहता था। उसमे चोरी होती थी और पड़ा पड़ा सड़ता रहता था। कपास अधिक समय तक पड़ा रहे तो सड़ता है और उसमें चूहे लगने लगते हैं और प्लेग पैदा होती है। इस लिए कपास के ढेर को जला दिया जाता था। कपास की खेती से जीनेरियों के दूर दूर होने से जीनींग हो नहीं सकती थी परन्तु लड़ाई बन्द होते ही मौका फिर गया। वैगनों की छूट हुई, स्टीमरें चालू हुईं – सारा वाहन-व्यवहार शुरू हो गया। इस लिए नई जीनेरियाँ बाँधने को हमने कमर कसी।

ऐसे प्रसंग पर मुझे ईश्वरी मदद मिल जाती थी। उन्नति-अवनति मे भी हमारी श्रद्धा अचल रहती थी। मुझे जो कोई फल मिला है, उसे परम कृपालु परमेश्वर की दया का फल मानता हूँ। इस लिए जो पैदा हो उसका १० से २५ प्रतिशत धर्मादा निकालने की

प्रथा पहले से ही रखी है। छोटे मोटे धर्मादे तो स्थायी रूप से चालू थे। जिस हाथ मे आवे उसी हाथ से खर्च भी करता था। यह भी प्रभु की कृपा का ही फल है।

सन् १९१९ में मैने जीनेरियों के लिए ११ प्लाटें सरकार के पास से लीज़ पर लीं। इतनी ज़्यादा जीनेरियाँ हमें खड़ी नहीं करनी थीं - परन्तु कुछ मै बाधूँगा, दूसरे भारतीय भाइयों को बाँधने के लिए दूँगा - ऐसा मान कर लीज़ पर प्लाटों को लिया। कारण यह था कि सरकार बाद में बन्द करने वाली थी।

अच्छी अच्छी फर्मों को अफ्रीका में व्यापार करने को कागज़ लिखा और बम्बई जाकर सामने आमंत्रण भी दिया। कई बड़े व्यापारी वहाँ आने को तैयार हुये। उनमे सर होमी मेहता, सर पुरुषोत्तमदास ठाकोरदास (सेठ नारायणदास राजाराम), अहमदाबाद के सेठ अम्बालाल साराभाई, सेठ मोफ़तलाल गगलभाई आदि ने सन् १९२० मे भागीदारी में जीनेरियाँ डालीं। परिणामतः हिन्दी व्यापारियों ने जीनेरियों में करोड़ों रूपये कमाये।

कपास की खेती मई मास से अगस्त मास तक थी। फसल पकने पर जनवरी से ख़रीदी का कार्य चलता था। खरीद और विक्री का लायसेन्स लेना पड़ता था। इस बाबत मे सरकारी क़ायदा सख़्त था। आज भी सख़्त है। विशेष करके कपास की किस्म उतर न जावे - इसकी विशेष ताक़ीद रखी जाती है। सरकार ने इतना कड़कपना रखा है - इससे रूई की किस्म टिकी रहती है। कपास के विनने मे खूब सख़्ती रखी जाती है। ऊँचे से ऊँचा बीज संग्रह करने में आता है। अपने देश मे भी क़ायदा सख़्त है परन्तु उसका अच्छी प्रकार पालन नहीं होता - इससे कपास की किस्म खराब होती जाती है।

सन् १९१८ तक नेटिव लोग कपास की बोरी भर कर सिर पर रख कर अथवा बैलगाड़ी में ले आते थे - आज मोटर-लारी में लाते हैं। आजकल युगण्डा में साढ़े चार लाख गाँठ रूई पैदा होती है।

भारतीय व्यापारियों की जीनेरियाँ बढ़ने लगीं - इससे वे सरकार की आँख में चढ़ गये। सरकार योरोपियन जीनरों को सहायता करती थी। एक बैंक के मैनेजर ने मुझे व्यक्तिगत रूप में कहा "मि० मेहता अभी तक हमने आप को दस लाख तक का

ओवरड्रा दिया परन्तु अब नहीं दे सकते - विलायत से मनाही आयी है।

इस समाचार से हमें मन में भय पैठ गया - क्यों कि पूँजी की वार-वार आवश्यकता पड़ती थी। एक नयी जीनेरी खड़ी करने में डेढ़-दो लाख का खर्च होता था। चालू खरीद के लिए ४० से ५० लाख चाहिए। दो मास माल की ख़रीदी चलती है, छ महीना कपास साफ़ की जाती है। इस प्रकार आठ मास तक काम-काज चलता था। उसमें एक जीनेरी सात आठ लाख रूपये रोंकती है। सभी जीनेरियों को चालू रखने के लिए लगभग आधा करोड़ की पूँजी चाहिए। लड़ाई के कारण भाव ऊँचा था। बैंक से ओवरड्रा मिलने की आशा नहीं थी। हम विचार में पड़ गये। एकदम इतनी बड़ी रक़म का प्रबन्ध किस प्रकार करना है?। ब्रिटिश काटन ग्रोइंग असोसियेशन का मैनेजर स्वयं बहुत भला था। हमारे साथ उसका गाढ़ सम्बन्ध था। फिर भी ऊपर के दिखावे से उसने इन्कार किया।

हमारी फर्म बड़ी-मात्रा मे कपास खरीदती थी। हम १० से १५ हज़ार गाँठें लेते थे। माँग बढ़ती जा रही थी। भाव ऊँचा था। पूंजी की विशेष आवश्यकता थी। अन्त मे हमने निश्चय किया कि "हिन्दुस्तान जाकर किसी बड़ी फर्म को भागीदार के रूप में ढूँढ़ निकालूँ।"

सर पी. टी. के मैनेजर मि. मंगलदास खांड वाले वहाँ पर थे। उनके पास मैंने बात की -"योरोपियन व्यापारियों की मनशा हिन्दुस्तानी व्यापारियों के हाथ से व्यापार ले लेने की है। अब भारतीय फर्मों की रूई कोई योरोपियन कम्पनी खरीदेगी नहीं और बैंक अग्रिम देगा नहीं। आप मदद करो तो अपना व्यापार टिका रहे।"

इन्होने कहा "आप की बात सची है। चाहे किसी भी जोखिम में बैठ कर अपने को टिका रहना चाहिए। आप जैसे पुराने, अनुभवी तथा विश्वासपात्र व्यापारी को मदद देनी चाहिए- परन्तु हमे इतना अधिकार नहीं। आप भारत जावो, वहाँ आप को मदद मिल कर ही रहेगी।"

मै भारत आया। मन में एक विश्वास था कि प्रभु चाहे जहाँ से सहायता करेगा। बम्बई मे सेठ नरोत्तम गोकलदास को मै पहचानता था। इस लिये पहले उनके पास गया। उन्हे

युगण्डा के भारतीय व्यापारियों की परिस्थिति का ख्याल कराया। हमारी पैदायश अच्छी है। परन्तु योरोपियन लोग संघटित हो गये हैं। इनके दवाव से बैंकों ने उधार देना बन्द कर दिया है। हमारे पास छः जीनेरियाँ हैं। कपड़े की दूकान में कुछ पूंजी रुकी हुई है। हमारा व्यापार विस्तृत है। परन्तु हाथ में पैसा बहुत नहीं है। योरोपियन लोग हम लोगों के व्यापार को हथियाना चाहते हैं। हमे उनके सामने किसी भी तरीके से टिके रहना है। इस लिए चलकर सामने भाग देने आया हूँ। आप के साथ परिचय है इस लिए बात कर रहा हूँ।

मेरी बात को उन्हो ने शान्तिपूर्वक सुना और बाद मे कहा "आप को बने वहाँ तक मदद करनी चाहिए - ऐसा मुझे लगता है। परन्तु हमारे पास इस समय पैसे की बहुत छूट नहीं है। आप सेठ मथुरादास गोकलदास को मिलो। मै उनसे बात करूँगा।"

मै सेठ मथुरादास गोकलदास को मिलने गया। उनके मैनेजर सेठ द्वारकादास धर्मशी के पुत्र सेठ देवजीभाई दामोदर की मारफत मैने सेठ से भेंट की। सेठ को सारी बातें और विवरण समझाया।

सेठ ने पूछा - कितनी पूंजी है?

मैंने बैलेंस शीट बताया।

सेठ ने फिर पूछा - आप का बैंक मे खाता है?

"नेशनल बैंक आफ़ इण्डिया में खाता है।"

थोड़ा विचार करके सेठ बोले "देखो! हमारी मिलें आपकी रूई खरीदेगीं। मिलें एक करोड़ रूपया छ प्रतिशत पर उधार देंगी। आप को बाज़ार भाव से रूई उन्हे देनी होगी।"

हम भागीदारी करेंगे। इसमे दस लाख रूपया रोंक सकते हैं, दस लाख आप डालें: व्यापार में आधा हिस्सा। जीनेरी का भाड़ा नहीं - हमारा वेतन नहीं। उसी प्रकार देश में "मथुरादास नानजी" की फर्म का वेतन नहीं। ये शर्त्तें तय हुईं। शर्त्तें कबूल करके एग्रीमेण्ट करने में आया। पन्द्रह दिवस बाद सेठ ने फिर मिलने को कहा।

इन्होने नेशनल बैंक आफ़ इण्डिया की शाखा को तार से पुछवाया। उत्तर आते थोड़ा समय लगेगा - ऐसा था। इस दरमियान में मै देश में घरवालों को सब को मिलने गया।

नयी भागीदारी

हमारे कुटुम्ब में भाणवड के श्री. झीणाभाई वकील थे। उन्हो ने मुझे विना पूछे ही उनके लड़के की जहाँ पर शादी हुई थी, उसकी शाली के साथ मेरी सगाई कर डाली। इस वस्तु का मुझे स्वप्न में भी ख्याल नहीं था। उम्र में अन्तर था। मेरी ३२ वर्ष और उनकी सोलह वर्ष की। दोनो ही लगभग अनपढ़ जैसे, परंतु वैवाहिक-जीवन स्वीकार करने को उस समय मेरी बिल्कुल तैयारी नहीं थी। मेरा मन भिन्न दिशा मे ही कार्य कर रहा था।

जो मनुष्य किसी भी कार्य मे एकाग्रता से तल्लीन हो जाता है उसे दूसरी किसी चीज़ में आनन्द आता नहीं। तेरहवें वर्ष से मैंने घूमते हुये जीवन बिताया। व्यापार तथा साहस में मुझे अटूट आनन्द आता था। गृहस्थाश्रम बंधनरूप लगता था। व्यापार में कमाई होवे तो धर्मादा करना और शान्ति से निवृत्त जीवन बिताना। दूसरी कोई इच्छा नहीं थी। उन दिनों जो विचार आते थे वे आज सच्चे लगते हैं।

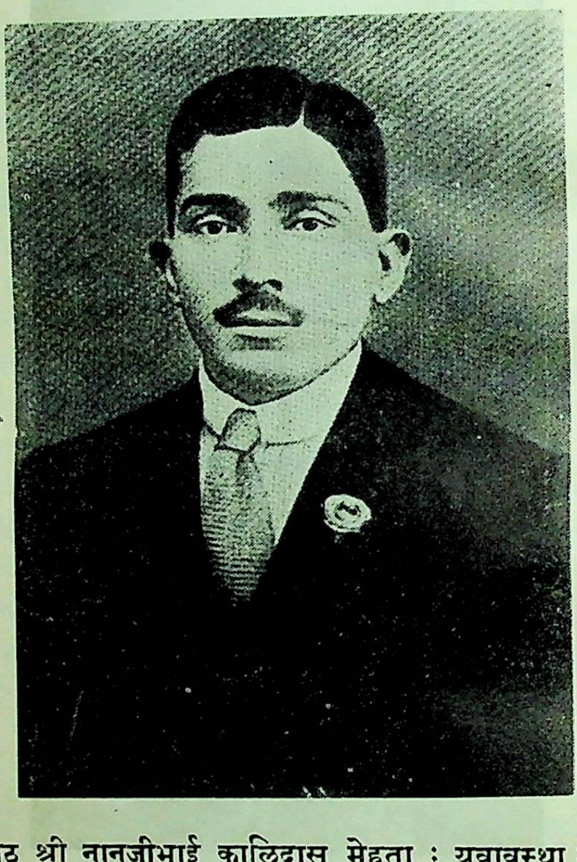
सगाई की बात सुनकर मुझे भारी आघात लगा। पन्द्रह दिवस तक चक-चक चलती रही। आखीर में पिता जी के दबाव से बुज़ुर्गों की इच्छा को मान देना पड़ा। अफ्रीका जाने की जल्दी थी-इस लिए १५ दिवस में विवाह हो गया। जो कल्पना मे नहीं थी-ऐसी बात मुझे स्वीकार करनी पड़ी।

मनुष्य चाहे जितनी कोशिश करे। परन्तु पूर्व का ऋणानुबन्ध छूटता नहीं। ईश्वर की लीला अपार है। वह किसको कहाँ जोड़ दे, उसकी मानव को स्वयं खबर नहीं है। विधि का लेख कैसा है? इसको कौन खोल सकता है?।

विवाह करके तत्काल मैं बम्बई गया। बम्बई के सेठ मथुरा-दास गोकलदास को मिला। उन्होने बैंक में तार से पुछवा कर खातिर कर ली। धन लगाने में हरकत नहीं, ऐसा विश्वास दिलाया। तिसपर भी भागीदारी का कार्य देखने के लिए एक आदमी को



अ. सौ. श्री. सन्तोकबेन नानजीभाई मेहता



सेठ श्री नानजीभाई कालिदास मेहता : युवावस्था में

भेजने का निश्चय किया। सेठ मथुरादास नानजी कं. को एक करोड़ पर्यन्त लेन-देन करने का नेशनल बैंक आफ़ इण्डिया में क्रेडिट खोलवा दिया। पैंतीस लाख रूपये का पहला सप्ताह भेज दिया।

पहली स्टीमर में मै अपनी पत्नी के साथ मोम्बासा गया। युगण्डा से बम्बई आने को निकला था तो मन में गाढ़ अन्धकार छाया हुआ था। प्रभु के विश्वास के बल पर मैं भारत आया था। पीछे लौटा तो नवीन आशा के सूर्योदय का प्रकाश छाया था। नयी भागीदारी से मुझे नया उत्साह प्रकट हुआ। महासागर मे स्टीमर सड़सड़ाहट के साथ चली जाती थी। समुद्र की लहरें उछल रही थीं। मेरे मन में व्यापार खिलाने की उर्मियाँ उछल रही थीं। जीनेरियों के लिए मैंने ११ प्लोट ले रखा था। उसमे जितनी बनें उतनी जीनेरियाँ बाँधने का निर्णय किया। बम्बई मे एक सौ चरखा लिया था। दस ओपनरों का आर्डर दिया। साफ्टिंग पूली, पटा आदि खरीद लिये थे। अफ्रीका जाकर वहाँ के भारतीय व्यापारियों के साथ मिल कर कपास खरीदना है और जीनेरियाँ खड़ी करनी हैं। युगण्डा के व्यापारियों को बता देना है कि भारतीय व्यापार करना जानते हैं।

ऐसा विचार करते हुये मैं मोम्बासा उतरा। वहाँ की नेशनल बैंक की शाखा से ३५ लाख रूपया ट्रेन में रवाना किया। युगण्डा में इस समय इतना नक़द रूपया बैंक रखते नहीं थे। मोम्बासा से जिंजा जाते हुये मैं नैरोबी उतरा और मेसर्स गेली एण्ड रोवर्ट के द्वारा आठ इंजनों का आर्डर दिया। दूसरे दिवस मैं जिंजा पहुँचा।

जिंजा में मेरी नयी भागीदारी सब को मालूम हो गई। मुझे इतनी बड़ी रक़म के साथ आया हुआ देख कर सभी को दहशत हुई कि यह आदमी अब क्या करेगा! किसी को कपास खरीदने नहीं देगा। परन्तु मुझे किसीके सामने स्पर्धा करनी नहीं थी। मुझे तो अपनी मर्यादा में रह कर काम करना था। व्यापार कैसे बढ़े, भारतीय व्यापारी कैसे मज़बूत बने - यह हमारा ध्येय था।

मैने कपास खरीदना प्रारंभ किया। रूई का भाव बहुत ऊँचा था। (खण्डी २० मन) का १,२०० रूपये तक था। ब्रिटिश काटन ग्रोइंग असोसियेशन के मैनेजर मि. उसली ने मुझे कहा "आप की जीनेरी बग़ल मे है। नेटिव अधिकतर आपके परिचित हैं। हमारे यहाँ कोई नहीं आवेगा, सब आप के यहाँ कपास बेंचने जावेंगे।

अपना कैसा सम्बन्ध है ?। मेरे लिए आप को कुछ विचार करना चाहिए। ''

मि. उसली की बात ठीक थी ! योरोपियन फर्मों की अपेक्षा नेटिव हमारे यहाँ अधिक आते थे। हमारा उनके साथ प्रेम-सम्बन्ध था। थोड़ा-बहुत लेन-देन भी था। एक दूसरे का मन मिल गया था। हम साथ बैठ कर गप-शप करते थे - जब कि योरोपियन लोग अल-विलग रहा करते थे - इस लिए उनसे नेटिव लोग डरते थे। मि. उसली को मैने कहा "आप बेफ़िक्र रहें। आप के यहाँ कपास आवेगी। इसके लिए मै प्रबन्ध करूँगा। इन्होने हमारा बहुत आभार माना। इनकी जीनेरी पर मैने अपना आदमी भेजा। हमारे आदमी को देख कर नेटिव लोग कपास लेकर वहाँ जाने लगे। नेटिवों के चीफ़ ने सूचना दी कि " महाशय मेहता ने यह जीनेरी भाड़े पर रखी है - इस लिए अपने लोग वहाँ कपास ले जावें। ''

इस प्रकार मि. उसली नें पहले हमारी जो मदद की थी उसका बदला देने का अवसर मिला।

हमने बड़े पैमाने पर खरीद शुरू कर दी। १,२०० रूपये खाँडी के भाव से १२,००० गाँठे रूई की मथुरादास गोकुलदास मिल को दिया। दूसरी भी गाँठे बेंचीं। चार हज़ार गाँठे बाक़ी रहीं। हम बम्बई रोज़ तार देते थे कि, " रूई बेंचो, भाव नीचे गिरेगा। ''

मथुरादास सेठ ने युगण्डा काटन के मुकाबले में अमेरिकन काटन को पसन्द किया। इससे हमे वे कोई जवाब नहीं देते थे, ऐसा हमे लगा। मथुरादास सेठ के बम्बई कार्यालय में हमने अपने प्रतिनिधि के रूप में अपने बड़े भाई को बैठाया। हमारे यहाँ उनका एक आदमी रहता था। ऐसा प्रबन्ध किया था परन्तु बड़े भाई सरल स्वभाव के थे। वे पेचीदगी की बातें समझते नहीं थे। इसके अतिरिक्त वे थोड़े समय पोरबन्दर रहते थे और थोड़े समय बम्बई। उनकी भलमनसाहत का लाभ उठाया गया हो - ऐसा मुझे लगा। मै बम्बई आया।

बम्बई से पोरबन्दर गया। कुटुम्बियों को मिला। बड़े भाई सभी बातें मन में समझ गये। बाक़ी किसी से बात की जावे ऐसा नहीं था।

दो मास देश में व्यतीत कर पीछे अफ्रीका पहुंचा। हमारा

सारा मौसम मारा गया। दोनो ही पलड़े कठिनाई से सरीखे हुये। १९२१ के सीज़न में काटन खरीदी के लिए ४० लाख रूपया बम्बई से खींचा। सन् १९१८ मे लड़ाई बन्द हुई। सन् १९२० पर्यन्त तीन वर्ष सख्त तेज़ी रही। बाद में हरएक वस्तु का भाव बैठ गया, उसी प्रकार रूई का भाव भी सन् १९२१ के साल बैठ गया। युगण्डा में कोई खरीदनार नहीं मिलता था।

सरकार ने हमे बल देकर कहा "मि. मेहता आप बड़ी मात्रा में कपास खरीदें।"

हमने कपास की खरीदी प्रारंभ की। सन् १९२१ के जनवरी मास में सीज़न खुला। भाव नीचा था। सेठ मथुरादास गोकलदास के मैनेजर भाई ईश्वरलाल हमारे साथ रहते थे। बम्बई से मिल वालों की माँग आती थी, तार आते थे कि "रूई जल्दी भेजो।" परन्तु हमने उन्हें कोई जवाब नहीं दिया। फर्म से तार आता था कि "कितनी रूई खरीदी" उन्हे भी जवाब नहीं दिया। उनका पत्र आया। तार मे धमकियाँ आयीं। हमने उनकी परवाह नहीं की। भाई ईश्वरलाल रोज कहा करें कि "यह क्या करते हो?"

मैने स्थिरता से उत्तर दिया "आप बैठ कर देखा करो। मै अनीति नहीं करता हूँ परन्तु रूई तुम्हारे हाथ में सौंपूँगा नहीं।"

"तो हम कोर्ट में जावेंगे।"

"बहुत अच्छा।"

वे समझ गये कि इसमें अपना वश चले ऐसा नहीं। भाई ईश्वरलाल ने बम्बई लिखा कि "ऐसे ईमानदार आदमी से द्रोह करना - यह उचित नहीं। इनके साथ बना रखने में लाभ है। भागी छोड़ोगे तो पछतवोगे।"

सेठिया लोग समझ गये। भागीदारी चालू रही। किसी भी व्यापार में एक की नियत फिरे तो ऋद्धि-सिद्धि चली जाती है।

× × ×

जिंजा से कम्पाला ५० मील दूर है। रास्ते में सुन्दर पहाड़ियाँ आती हैं। इस रास्ते से जाते हुये मेरे मन मे हुआ कि यहाँ पर एक मकान बनाय जावे तो शनि-रवि की छुट्टी में आराम से रहा जावे। जगह इतनी रमणीय थी, कि उड़कर आँखें पहुँच जाती थीं। स्वाभाविक रीति से मेरा मन वहाँ खींच उठता था। वहाँ लेन-देन भी होगा ?।

इस समय मे भारतीय ज़मीन खरीदते नहीं थे। सब को ऐसा होता था कि अपने को चले जाना है। यह अपना देश नहीं है। किसीने ज़मीन केनियाँ अथवा युगण्डा में ली नहीं। किसी किसी मुसल्मान भाई ने थोड़ी ली थी।

मेरा विचार इस विषय में पहले से ही जुदा था। जहाँ जाकर वसति करना है वहाँ पर अपना घर मान कर रहना चाहिए। स्टेशन मास्टर लोग घर में उसके सामने सुन्दर वग़ीचा बनाते हैं। वे जानते है कि बदली होनी है। परन्तु बाद में आने वाले को वग़ीचा शान्ति और आराम देता है। इसी प्रकार जहाँ हम स्वयं बसें वहाँ सुन्दर, सुविधा वाला मकान, वग़ीचा - इतना तो चाहिए ही। इन विचारों से मैने वहाँ ज़मीन लेकर मकान खड़ा करने का विचार किया।

ज़मीन के लिये पता चलाया। एक नेटिव चीफ़ की मिल्कियत की दो हज़ार एकड़ जितनी ज़मीन वहाँ पर थी। भारतीयों को यह ज़मीन लेने की छूट थी। इस समय ज़मीन बहुत सस्ती थी। (इस समय दस गुनी क़ीमत है) सन् १९२० में हमने दो हज़ार फ्री होल ज़मीन ३६,००० रूपये मे बिकती हुई खरीदी थी। एक ऊँची पहाड़ी पर घास का सुन्दर मकान बनवाया। सन् १९२१ मे नीचे भाग मे एक जीनेरी डाली। भूमि हमारी व्यक्तिगत मिल्कियत थी।

पहले जो ११ प्लाट लिये थे, उसमें से पाँच मित्रों को दे दिया। उसमे से एक अपने परम स्नेही, हृदय-मित्र श्री पोपटभाई कालिदास को दिया। उनकी फर्म आज भी युगण्डा में है। अच्छी अवस्था मे है। (वे स्वयं आज दिवंगत हो गये हैं।) वे उस समय कोई मशीनरी में परिज्ञान नहीं रखते थे। मैंने आग्रह करके एक प्लोट दिया। जीनेरी करा दी। वे किसी चीज़ का नाम जानते नहीं थे। एक बार उन्हो ने मुझे काग़ज़ लिखा कि "नानजीभाई! एक जीन का दाँया कान टूट गया है, सो भेजना।" मैंने लिखा कि "जीन के कान नहीं होता, मनुष्य अथवा पशु के होता है।" मिलना हुआ तो यह बात याद करके खूब हँसे। इस समय मे इस प्रकार समझ थोड़ी थी। परन्तु मानवता अधिक थी। परस्पर भाव और प्रेम-भावना थी। ये उत्तम वस्तुयें आज कहीं पर देखने को मिलती नहीं। पश्चिम के शिक्षण से मानवता बिल्कुल न्यून हो गई है।

हमने जिन मित्रों को प्लाट दिया, उन्हे इञ्जिन, ओपनर, जीन आदि मशीनरी भी दी। तथा कपास खरीदने के लिए पैसा भी दिया।

चाहे जो भोगे अपने भारतीय भाई व्यापार में आगे बढ़ें, उनकी कमाई और आनन्द बढ़े, अपना दल जमे, यही हमारी प्रबल इच्छा थी। योरोपियनो ने परस्पर सहकार से संस्थानों को जमाया है। अपने भारतीय भाइयों के समूह के बढ़ने से अपनी प्रतिष्ठा और व्यापार जमे, ऐसी दीर्घदृष्टि से मैने सदा मित्रों को मांगी मदद दी है। इसी दृष्टि से हम अपने महान् देश की प्रतिष्ठा भी बढ़ा सकते हैं।

योरोपियन लोग इसी प्रकार दुनियाँ में कालोनियाँ जमा सके हैं। हम भी अपनी वस्तियाँ मजबूत कर सकते हैं।

टाँगानिका मे साहस

अपरैल-मई मास में कपास का मौसम समाप्त हुआ। हमने सस्ते भाव की १७,००० गाँठ रूई रखी थी। इस समय मुझे अपने एक मित्र से खबर मिली कि "टाँगानिका जर्मन कम्पनियों की, जर्मन सरकार की तथा प्रजा की बहुत सी सम्पत्ति नीलाम होनेवाली है। पानी के भाव पर जा रही है।

मैंने ईश्वरलाल भाई से बात की, 'चलो चलें'।

उन्हो ने फौरन ही हाँ कहा। हमने जाने का निर्णय किया। दो दिन मे तैयार हुवे। मोटर साथ में ली। इस समय वहाँ मोटर की बड़ी क़ीमत थी। कम्पाला होकर इण्टेबे गया। इण्टेबे बन्दरगाह से स्टीमर में मोटर भी साथ चढ़ाई। मांज़ा बन्दर पर उतरा।

मांज़ा जर्मन ईस्ट अफ्रीका का विक्टोरिया सरोवर के किनारे आया हुआ सुन्दर बन्दर है। उसके ब्रिटिश के हाथ में आते ही वहाँ पर युगण्डा के कितने ही अनुभवी आफिसर रखे गये थे। माँज़ा के डिस्ट्रिक्ट कमिश्नर मेरे परिचित थे। वे पहले युगण्डा में रह चुके थे। हम उन्हे मिलने गये। हमें देखते ही सामने आये और "हलो मि० मेहता - आप कहाँ से?" ऐसा कह कर हाथ मिलाया। मैंने बहुत बातें कीं - "आप यदि मदद करें तो मेरा विचार आप के प्रान्त में जीनेरियाँ डालने का है।"

उन्हो ने हँस कर पूछा -"कितनी जीनेरी डालनी है?"

"आप कहें उतनी।"

"कल देखने जाऊँगा।"

उनके पास मोटर नहीं थी। हम प्रातः मोटर लेकर सब के साथ निकले।

टाँगानिका की कपास की फस्ल युगण्डा जितनी नहीं थी। युगण्डा में प्रति जीनेरी हज़ार से पन्द्रह सौ गाँठ की फस्ल होती थी। (आज कल तीन हज़ार गाँठें होती हैं) टाँगानिका मे प्रति जीनेरी आठ सौ से हज़ार गाँठ की फस्ल उतरती थी। कारण यह

था कि केवल मांज़ा डिस्ट्रिक्ट में कपास की खेती थी। इस समय वहाँ पर एक जीनेरी पर दस हज़ार गाँठों की औसत पड़ती है। युगण्डा मे १२५ जीनेरियाँ हो गई हैं और टाँगानिका में १५ हैं। चावल की फस्ल भी अधिक है। यह युगण्डा में भी चावल की पूर्त्ति करती है। घी, मधु, मोम और गोंद भी वहाँ पर होते हैं। सोने और हीरे की बड़ी खाने हैं।

हमने कपास की खेती वाले अनेकों स्थलों को देखा। सोने की खाने देखीं। घोर जंगल, पहाड़, नदी और ऊँची-नीची ज़मीन वाला रास्ता था। मोटर कठिनाई से चल सकती थी। वहाँ पर बड़ी मक्खियाँ होती हैं – उनके काटने से सूजन चढ़ जाती है। प्रदेश वीरान-उजाड़ पड़ा है। हमने मोटर से दो दिवस में चार सौ मील का प्रवास किया। जीनेरी के लिये चार जगहें पसन्द कीं और मांज़ा वापस आये।

टाँगानिका टेरीटरी मेण्डेट है। जर्मनी के द्वारा ब्रिटिश को सौंपा गया है। उसका मुख्य नगर दार-ए-सलाम (शांति का द्वार) सलामत बन्दर माना जाता है। मुख्य कचहरियाँ हैं और गवर्नर का कार्यालय भी वहां पर ही रहता है। सभी नागरिकों को समान अधिकार है। आजकल भारतीयों को वहाँ पर प्रविष्ट होने देते नहीं। हमें जीनेरियाँ डालने के विषय की परवानगी के लिए दार-ए-सलाम जाना चाहिए था। हमे और दूसरे कार्यों से भी वहां जाना था। जंगल की यात्रा से थक कर मांज़ा आये थे। दो दिन आराम लिया।

इतने मे सूचना मिली कि "जो सम्पत्ति नीलाम होने वाली थी उसमे से दो नीलाम हो गई। अब जून मास मे तीसरी बड़ी नीलामी होगी। इस सम्पत्ति में मकान, जीनेरियाँ, रबर तथा साइसल (केतकी) के प्लाण्टेशन आदि हैं। नीलाम में बिकी सम्पत्ति का २५ प्रतिशत पैसा नक़द और ७५ प्रतिशत चार वर्ष के हफ़्ते वार चढ़ते व्याज पर देना होगा।"

यह समाचार पाते ही दूसरे दिन हम मांज़ा से रवाना हुये। टबोरा पर्यन्त अढ़ाई सौ मील मोटर में गये। टबोरा से आगे मोटर का रास्ता नहीं था। इस लिये मोटर वहाँ पर छोड़ दी। वहाँ से रेलगाड़ी में दार-ए-सलाम पहुँचे। टबोरा मे चार दिवस ज्वर में पटका गया।

इस समय दार-ए-सलाम में कोई अच्छा हिन्दू होटेल नहीं

था। हिन्दुवों के पास रहने जैसा अच्छा मकान नहीं था। वहाँ गुजरात के एक पोस्ट-मास्टर थे। उनका भाई हमारे यहाँ काम करता था। हमने उसके घर उतारा किया। वह अकेले थे। वहाँ पर भोजन किया। गाँव में भोजनालय नहीं मिलता था। हिन्दू रसोइया नहीं मिलता था। आज तो स्वर्ग जैसी सुविधायें हो गई हैं।

उसके बाद हमने सेठ मूलजीभाई वालजीभाई के यहाँ भोजन करने का रखा। दार-ए-सलाम पहुँच कर हमने मिल्कियत के विषय में पता लगाया। हमे सूचना मिली कि "सेठ करीमजी जीवणजी और दूसरे खोजा गृहस्थों तथा योरोपियन व्यापारियों ने बड़ी संपत्तियाँ खरीद ली हैं।" हमे लगा कि "हम अन्धेरे में रहे, विलम्ब से आये, ये संपत्तियाँ खरीदने योग्य थीं।" जागे तभी से सवेरा! अभी जो बाक़ी है उसे देख लें और नीलाम में खड़े रहना है।

इस समय दार-ए-सलाम में हिन्दू व्यापारी बहुत थोड़े थे। बड़े श्रीमानों में खोजे और बोरे लोग थे। (आज भी हैं)। इन लोगों ने बड़े प्लाण्टेशनों को रख लिया - जिसमे से करोड़ों कमाते हैं।

इस प्रदेश में साइसल (केतकी) बहुत होती है। उसके पत्तों को मशीन से कुचल कर रेशा निकाला जाता है। बहुत अधिक मात्रा में वहाँ पर केतकी की खेती लाखों एकड़ मे होती है। प्रत्येक वर्ष दो लाख टन रेशा होता है। चाय-काफ़ी की खेती लाखों एकड़ों मे होती है। बहुत उपजाऊ भूमि है। सोना हीरा आदि खनिज निकलते हैं।

संपत्ति का नीलाम करने वाले कस्टोडियन आफिसर मि० हेग और मि० मोईनाक करके व्यक्ति थे। वे मेरे मित्र थे। जून मे बड़ा भारी संपत्ति-समूह बेंचने को था। जून की छठीं तारीख़ से अट्ठावीस पर्यन्त नीलाम होने को था। हम कस्टोडियन आफिसर को मिले। उन्हो ने सारी हक़ीकत बतायी और कहा कि "लिण्डी की ओर उत्तम प्लाण्टेशन है। आप जाकर देखो।

हमने लिण्डी जाने का विचार किया। दार-ए-सलाम से लिण्डी २४० मील है। वहाँ से दो महीने में एक स्टीमर जाती है। छोटी तीन सौ टन की खिलौना जैसी स्टीमर - इसकी अपेक्षा बड़ी पालवाली नौका अधिक अच्छी है। हम चार जने चल पड़े, हमारे इञ्जिनियर, रामजीभाई लोहाणा, हमारे नौकर और मैने दार-ए-सलाम

से चार वापसी टिकेट लिया। स्टीमर में बैठे और स्टीमर चल निकली।

दार-ए- सलाम से लिण्डी तक स्टीमर किनारे किनारे चलती है। आखिरी मौसम था। समुद्र मे हवा का ज़ोर था। छोटी स्टीमर होने से तूफान लगा। तीन दिवस में सुरक्षित पहुँचा ही दिया।

हम किनारे पर उतरे। स्टीमर के कप्तान को हमने कहा कि "हमारी रिटर्न टिकटें हैं। हमे इसी स्टीमर मे वापस जाना है। आप कब वापस जाने वाले हैं - पक्का समय बतावें - जिससे उसी के अनुसार हम हाज़िर हों।"

कप्तान ने कहा "हम यहाँ माल उतार कर, यहाँ से ६० मील दूर मिकिण्डानी बन्दर पर माल भरने जावेंगे। वहाँ पर तीन दिन लगेंगे। यहाँ वापस आकर दो दिन रुकना होगा। उसके बाद दार-ए-सलाम जावेंगे। आप लोग समय से आ जावें।"

कप्तान के जवाब से हमे सन्तोष हुआ। हमे मिकिंडानी जाना था, परन्तु मार्ग मे दूसरे प्लांटेशनों को देखना था - पैदल मार्ग से जाने का विचार किया। साथ ही स्टीमर मिल जावेगी- यह जान कर निश्चिन्त हुआ। स्टीमर के कप्तान और एजेंट ने हमे विश्वास दिया कि "हम लिंडी से आप लोगों को लेते जावेंगे। आप लोग बेफिक्र रहें।"

हम बन्दरगाह से लिंडी कस्बे में गये। छोटा कस्बा जैसा शहर था। लगभग साठ दूकानें होंगी, उनमे चालीस अरबों की, पन्द्रह के लगभग खोजों और वोरों की तथा चार हिन्दुवों की थीं। मूल निवासियों के कुछ झोंपड़े थे। जंगल के प्रदेश से ज्वार, मोम, मधु आदि माल आते थे और वे नौका तथा स्टीमर के रास्ते देशान्तर में जाते थे। बन्दरगाह छोटा था परन्तु व्यापार मात्रा में ठीक था।

हम कस्बे मे गये, वहाँ भाटिया तथा बनियों की दूकानो पर जाकर उनकी पहचान किया। प्लांटेशन के सम्बन्ध मे पूछ-ताछ की। उन लोगों ने विवरण दिया। समीप में तीन चार प्लांटेशन हैं। लिंडी से २५ मील के फासले पर आये हैं। हम उनको देखने गये। मीलों तक केतकी की खेती आँख टकटकी बाँधे - ऐसी थी।

लिंडी से मिकिंडानी समुद्र के किनारे किनारे जाने को था। पाँव के रास्ते ६० मील के क़रीब पड़ता है। हमने डोलियाँ कर लीं।

जंगल जैसा वीरान रास्ता था। हम सब देखते हुये चले। मिकिंडानी पहुँचे। वहाँ का प्लांटेशन भी हमें खूब पसन्द आया। मन मे हुआ कि "यहाँ आते हुये हैरान तो हुये, परन्तु यह वस्तु विशेष लेने जैसी है।"

मार्ग मे और प्लांटेशन देखने मे हमे तीन चार दिन लगे। कप्तान के द्वारा दिये गये समय के अनुसार हम मिकिंडानी बन्दर पर पहुँच गये। जाकर पता लगाया। मालूम पड़ा कि "स्टीमर माल भर कर यहाँ से सीधी दार-ए-सलाम चली गयी। लिंडी जाना बन्द रहा।

हमे भारी धक्का लगा, दुःख भी हुआ। हमे लिये विना इस प्रकार स्टीमर चली जावेगी – यह हमे स्वप्न मे भी ख्याल नहीं था। हमारी वापसी टिकिटें थीं। साथ ही हमे वापस लेजाने लिए उसने बचन भी दिया था। उसने जानबूझ कर यह किया होगा – ऐसी खबर मिली।

मिकिंडानी में तार फोन कुछ भी नहीं था। अनजाने स्थान पर किसी साधन के विना हम अकेले पड़ गये। परन्तु इस प्रकार दुःखी होकर बैठे रहने का समय नहीं था। हम पैदल मार्ग से पीछे लिंडी जाने को रवाना हो गये। जिस रास्ते से आये थे उसी रास्ते से। दो दिन में साठ मील पीछे लिंडी पहुँचे।

लिंडी तो पहुँचे, परन्तु वहाँ से दार-ए-सलाम किस प्रकार जावें? लिंडी से फौरन स्टीमर मिले ऐसा नहीं था। पैदल रास्ते से दार-ए-सलाम तीन सौ मील होता है। मार्ग बिल्कुल निर्जन, हिंसक जानवरों से भरा हुआ जंगल, लड़ाई से भग कर आये हुये नेटिवों की टुकड़ियाँ जंगल मे फिरा करती हैं। ऐसे मार्ग से जाना सुरक्षित नहीं था। हम मानो अण्डमान टापू की भांति देशनिकाले हुये अथवा नज़रबन्द कर दिये गये थे। इस प्रकार यदि पैदल जाने की हिम्मत भी की तो नीलाम समाप्त हो जावेगा। हमारी सारी मेहनत सिर पर पड़ेगी। इस समय तार, टेलीफोन थे परन्तु निकम्मे जैसे।

हम लिंडी में एक भाटिया व्यापारी के मकान पर उतरे थे। साधारण झोंपड़ा जैसा घर था। इस सफ़र मे, जंगल में और ऐसे झोंपड़े मे रात्रि व्यतीत की। बहुत झंझट भोगना पड़ता था तिसपर भी इस में एक प्रकार का आनन्द था। हमारे साथ मोड़दार

चारपाइयाँ और मच्छरदानियाँ थीं। फुटकर काम-काज के लिए वाय था। चाहे जिस हिसाब से अथवा किसी भी ख़तरे से दार-ए-सलाम पहुचना चाहिए। मेरा मस्तिष्क मार्ग खोजने लगा।

हम रात्रि में भाटिया सेठ की दूकान पर बैठे थे। उनसे मैंने पूछा -" यहाँ से दार-ए-सलाम नौका जाती है या नहीं ? "

उन्हो ने कहा-" जाती तो है सही-परन्तु इस मास मे नहीं। "

मैंने पूछा " पहले जून मास में जाती थी कि नहीं ? स्टीमरें तो अब चली हैं। "

भाटिया गृहस्थ ने एक नाखुदा (मल्लाह) को बुलाया। उसको सारी बातें समझायीं। मल्लाह नेटिव और अरब की मिश्रित जाति का था। इसने एकदम धड़ाके के साथ कहा "अरे मेरे साहेब, जून मास तो क्या, जुलाई मे भी ले जाऊँ। मैंने हैंसिंग कम्पनी, सगारा कम्पनी आदि बड़ी फर्मों की बहुत सी यात्रायें की हैं। आप महाशय को जाना हो तो ले जाऊँ। खुशी से चलो। तीन दिन में दार-ए-सलाम बन्दर पर न पहुँचाऊँ तो मेरा नाम मल्लाह नहीं।"

मल्लाह की बात सुन कर हमें हिम्मत आयी। सब की सम्मति पूछी " बोलो क्या करूँ ? "

मेरे साथी तैयार थे परन्तु मल्लाह के पास नौका नहीं थी। इस लिए भाटिया गृहस्थ बोले -" मेरे पास सौ बोरों की नौका है, परतु तूफान मे डूब जावे तो मुझ ग़रीब का गुज़ारा खत्म हो जावे। दूसरी कोई बाधा नहीं।

किसी भी समय मे दार-ए-सलाम पहुँचने का मेरा निश्चय था। पाँच सौ रूपये की हुण्डी भाटिया गृहस्थ के हाथ में रख कर मैंने कहा " यदि आप की नौका सहीसलामत दार-ए-सलाम पहुँच जावे तो एक सौ रूपये किराया दूँगा। यदि नौका डूब जावेगी तो यह ५००) की हुण्डी देता हूँ। दूसरी खरीद लेना।

भाटिया व्यापारी मेरे सामने देख रहा था। उसे कुछ कहने को रह नहीं गया था। उसने मल्लाह को तैयार किया। भार के लिये नौका मे पच्चीस तीस बोरी कपास का बीज भर लिया। दूसरे दो चार आदमी, मेरा नौकर आदि साथ मे थे। भाई रामजीभाई को लिंडी में रखा। जिससे कि यदि प्लांटेशन खरीद कर लिया जावे तो उसका कब्ज़ा वे ले लेवें।

इस सम्बम्ध में अपने एक पुराने स्नेही से भी मैंने सलाह ली।

लिंडी के कस्टम आफ़िसर श्री० कासम सचू करके व्यक्ति थे। वे पहले जिंजा मे थे। वे हम से उम्र में बड़े थे, हम उन्हें सचू काका कहते थे। उन्हो ने हमे उत्साह दिया। हम नौका मे दार-ए-सलाम जाने को निकल पड़े।

बुधवार रात्रि में एक बजे हम नौका में चढ़े। बन्दरगाह से बाहर निकलते नौका को दो घण्टे लगे। जून मास और तीव्र समुद्र। लहरें उछल रही थीं। सौ बोरों की नौका इधर से उधर डोलती थी। हम मन मे निश्चय करके बैठे कि यदि किश्ती टूट जावे तब भी डरना नहीं है। साथ मे चार चार गैलन के आठ पीपे ले लिये थे। उनमे पाटी बाँध कर त्रापा (फलक) बनाया। पीपे का मुँह भर कर बन्द कर दिया। दोनो तरफ दो दो पीपे रख दिये। परमात्मा न करे कि नौका डूबे, यदि कोई बात हुई तो इस "त्रापा" (फलक) से किनारे पहुँचा जा सकता है। हम समुद्री तूफान के आदी हो गये थे। जिस प्रकार युद्ध मे घूमने वाले लड़ाकू को तोप-गोला के मध्य आनन्द आता है, उसी प्रकार लहरों के उछाल के साथ ऊँचा होकर पछाड़ा जाता वाहन हमें आनन्द दे रहा था।

नौका आगे बढ़ी। दोपहर के ग्यारह बारह बजे। किश्ती चलती हुई कुछ ढीली पड़ी। हमारे साथ रसोई का सामान था। हाथ-मुँह धोकर प्राइमस जलाया। गोवानीज़ इञ्जिनियर ने संड़सी से पतीली पकड़ रखी और मैने चाय बनाई। बाय को चक्कर चढ़ने से उल्टी आ रही थी। वह आँख मूद कर एक तरफ़ पड़ा था। पाथेय में पूड़ी थी। हमने पूड़ी के साथ चाय पी ली।

नहाने की पोशाक पहनी थी। कहीं नौका डूबने को हो तो डुबकी मार कर समुद्र में पड़ सका जावे।

लिण्डी से समुद्र के रास्ते दार-ए-सलाम २४० मील है। नौका अपनी झड़प मे आगे बढ़ रही थी। सायंकाल हुआ तो एक टापू आया। टापू के ऊपर लाइट हाउस (प्रकाश-स्तम्भ) था। यह जगह छिछले पानी की होने से सरकार ने यहाँ पर प्रकाश रखा है। मल्लाह ने कहा "यहाँ अपने को रात्रि में रुकना है। इसमें छिछला पानी बहुत आता है। रात्रि मे नहीं चला जा सकता है" ऐसा कह कर उसने लंगर डाल दिया। हमने सायंकाल के भोजन की तैयारी की। हमारे साथ दूध का डिब्बा था। चाय और पूड़ी बनायी। चाय खूब पिया और भोजन किया। इन लोगों

ने अपना भोजन लिया और थोड़ी देर टापू का प्राकृतिक सौन्दर्य देखा। वहीं पर रात्रि हुई। हमारे साथ मोड़ने वाली चारपायी थी। उसके ऊपर चटाई की छाया करके विस्तर लगाया। थके-थकाये हुये आराम से सो गये ज़ोर की नींद आगई।

पिछले पहर के चार बजे के लगभग मल्लाह ने नौका हाँकी। हम सब ताज़े होकर जग उठे। आकाश स्वच्छ था। तारायें चमक रही थीं। वायु ठण्ढी और प्रसन्नता देने वाली थी। नौका वेग से चली। नौका मे लहरें टकरातीं और पानी भर जाता था।

नौका से पानी निकालने के लिए विशेष चार आदमी साथ लिये थे। वे फौरन पानी उलचने लगे।

मेरे नौकर ने किसी दिन समुद्र देखा नहीं था, तथा नौका भी नहीं देखी थी। जंगल का निवासी समुद्र में घबरा गया। उल्टी करता जावे और बोलता जावे : 'बाना मीमी कुफ़ा' (मै मर जाने को हूँ, साहेब) ऐसा कह कर पीछे सो जावे। हमने चाय पानी दिया परन्तु उसने कुछ लिया नहीं। दूसरे दिन खिचड़ी और आलू का शाक बना कर हमने खाया।

नौका दो दिन और दो रात चली। तीसरे दिन सायंकाल पाँच बजे दूर से दार-ए-सलाम का लाइट हाउस दिखलायी पड़ा। लगभग ३० मील की दूरी पर होगा। वहाँ पर नौका खड़ी की। रात्रि वहीं पर बितानी थी। किनारा बगल में दिखाई पड़ता था। मैने मल्लाह को कहा "यदि कल दोपहर के १२ बजे से पूर्व हमें बन्दर में दाखिल कर दोगे, तभी पोर्ट आफ़िसर मिल सकेगा और हम किनारे पर उतर सकेंगे। नहीं तो दो दिन समुद्र में पड़ा रहना पड़ेगा" ऐसा कह कर हमने इसे शाबाशी दी। वह प्रसन्न होकर बोला 'हेवला बाना, हापाना फिकिरी ; (मै तैयार हूँ, साहेब! अब पहुँच ही गया समझें, फिक्र मत करें)।

रात्रि मे खा-पीकर हम आनन्द से नौका मे सो गये।

पिछलहरी रात्रि मे चार बजे नौका ने लंगर उठाया। हम जग गये। सामने दृष्टि की तो अद्‌भुत दृश्य नज़र में आया। प्रातःकाल के समुद्र का, आकाश का, चन्द्रमा का और किनारे का दृश्य रमणीय था। कवि हो तो सुन्दर कविता बना दे। मे तो रहा अनपढ़ ग्रामीण व्यापारी, इस लिए यह कुदरत आँख भर कर देख रहा था और सिरजनहार की ऐसी अनुपम रचना से मुग्ध

बन कर विचार करने लगा।

प्रातःकाल हुआ सूर्य उदित हुआ। दार-ए-सलाम का बन्दर दिखाई पड़ा। पवन अनुकूल होने से नौका झपाटे के साथ चली जा रही थी। मल्लाह तरंग में था। ज्यों ज्यों सूर्य चढ़ता गया त्यों त्यों इसकी मस्ती बढ़ती गई। पानी का वेग सामने को था। १२ के घण्टे के बजने को थोड़ी देर थी – उस समय हमारी नौका बन्दर की खाड़ी मे प्रविष्ट हुई।

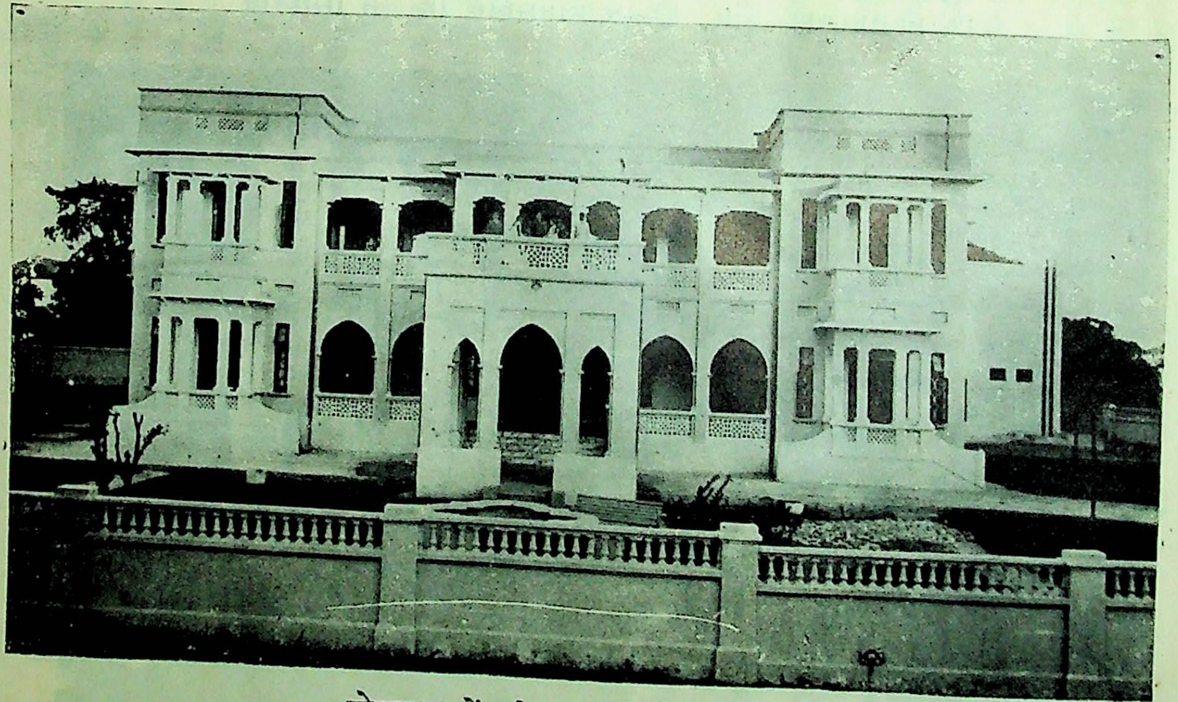
दार-ए-सलाम की खाड़ी बहुत संकरी है। मन मे हुआ कि आज नौका मे से बाहर नहीं उतरना हो सकेगा। पोर्ट आफिसर मिल नहीं सकेगा। उस दिन शनिवार था। साढ़े बारह बजे आफिस बन्द हो जाते हैं। रविवार को छुट्टी होती है, सोमवार को सबेरे साढ़े नव बजे नीलाम था। प्रयत्न किया परन्तु परिणाम कुछ न निकला।

मैने प्रभुप्रार्थना की "तू सहायता करे तो हो सकता है।" ऐसे प्रसंगों पर शुद्ध अन्तःकरण से की गई हमारी प्रार्थना को सदा ईश्वर ने सुना है। आँख मूद कर खोला, सामने देखा तो एक मोटर दौड़ी जा रही थी। इस मोटर में जंज़ीबार के पुराने मित्र मोहम्मद पीरभाई दिखाई पड़े। ये सहकुटुम्ब कहीं महफिल उड़ाने जा रहे थे। मैने पहचाना।

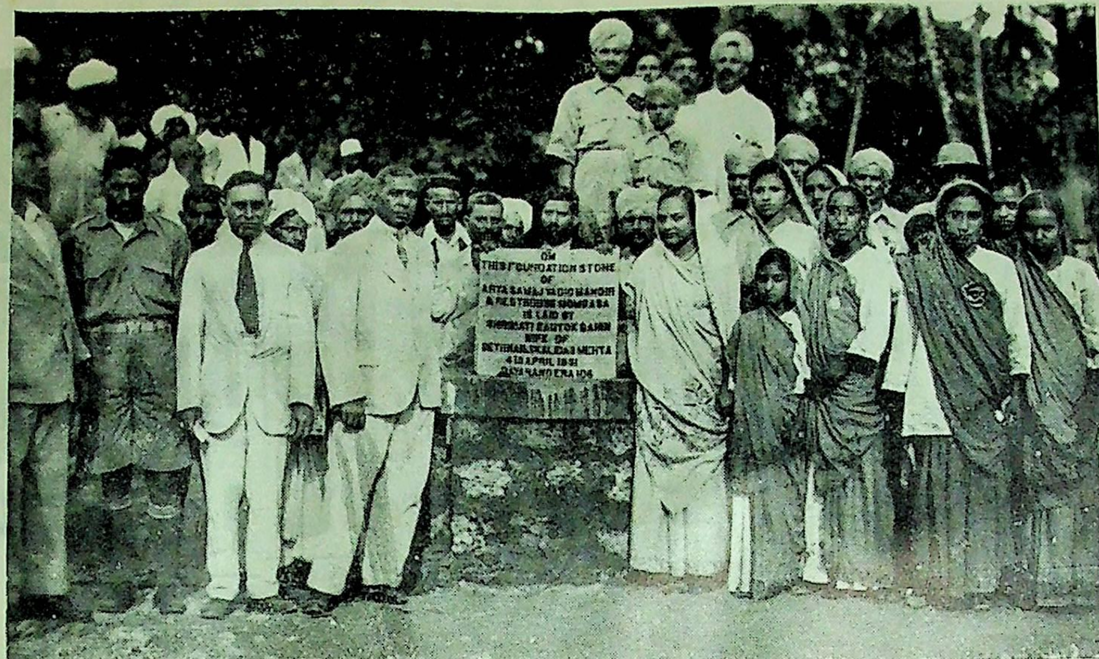
मैने किश्ती मे खड़े होकर हाथ ऊँचा किया, और आवाज़ देना प्रारंभ किया। इन्होने आवाज़ सुनी, किश्ती मे से कोई आवाज़ देता है, ऐसा मान कर मोटर खड़ी की। मोटर खड़ी हुई इस लिए हमने किश्ती किनारे के समीप ली। इन्होने हमे पहचान लिया।

मेरी हालत देख कर घड़ी भर ये आश्चर्य में रहे। तीन दिवस से हज़ामत नहीं हुई थी, स्नान नहीं किया था, कपड़े मैले थे। हमने सामने सामने हँस कर सलामी ली। मैने कहा– 'चाहे जो करो, हमे जल्दी किनारे उतारो। पोर्ट आफिसर को बुला लावो। बाद मे सारी बातें करूँगा। हम तीन दिन से लिण्डी से निकले हैं। मै खूब थक गया हूँ।'

इन्हो ने फौरन मोटर पीछे फेरी। सीधे पोर्ट आफिस गये। आफिस बन्द होने की तैयारी थी। आफिसर से बात की। मोटर-बोट लेकर तत्काल हमारे पास आये। मोटर बोट बिल्कुल समीप लाये, मुझे इसमें ले लिया। मेरा वेष देख कर सब हँस पड़े।



मोम्बासा में श्री नानजीभाई का आवास



मोम्बासा में श्री आर्यसमाज मन्दिर और विश्रामभवन का
अ. सौ. श्री. सन्तोकबेन नानजीभाई के हस्ते शिलारोपणविधि

'यह क्या किया' कह कर प्रेम से भेंट पड़े।

वीराणी ने कहा 'यह तो आप ने मरने का काम किया। ऐसा पागलपने का साहस कोई करता है? तार दिया होता तो कोई प्रवन्ध करता।'

मैंने कहा 'बेरा से मोम्बासा जाती बी. आई. की स्टीमर को हमने तार किया 'एक सवारी को दार-ए-सलाम ले जावो, दस हज़ार रूपया देंगे।' स्टीमर कम्पनी वाले ने जवाब दिया कि 'सरकार की आज्ञा के विना हम फालतू बन्दर से सवारी ले नहीं सकते।' सेठ कावसजी की स्टीमर को हमने जंज़ीबार से दस हज़ार तक देने को कहा परन्तु 'स्टीमर किसमायु गई है' ऐसा इन्हो ने जवाव दिया। चाहे जैसे भी खुदा ने दया की जीते पहुँच गये। कल अपने दोस्त मित्रों को विशेष आमंत्रण दें। महफ़िल करूंगा।"

हम सुरक्षित समय से किनारे उतरे। मल्लाह को शाबाशी और इनाम देकर खुश किया। ठहरने की जगह पर आकर स्नान किया। भाई ईश्वरलाल मिले। उनसे सारी बातें कीं। खाया पीया और आराम किया। संध्या समय तक ताज़ा हुआ।

दूसरे दिन रविवार था। मित्रों को मिलने निकला। भाई महम्मद पीरभाई के साथ पुरानी बातें नयी कीं, महफ़िल मे अनेक दोस्तों से मिला। सायंकाल तक मजलिस चली। खान-पान के पीछे रात्रि में गानतान चला। रात्रि के एक बजे तक आनन्द किया। पार्टी में अनेक मित्रजन थे। सभी मिलनसार और आनन्दी थे।

सोमवार सबेरे नव बजे असेम्बली हाल मे उपस्थित हुआ। हमे देख कर सब अचम्भे मे पड़ गये। एक दूसरे से पूछने लगे, 'ये कहाँ से?'

कुछ निकट के स्नेहियों को नौका का वृत्तान्त कह सुनाया। सुन कर सब आश्चर्यचकित हुये। "इसमे आप सब जीवित आ गये यही अचम्भा मालूम पड़ता है।"

मैने कहा "इसमें आश्चर्य नहीं। जिसमे आत्मवल होता है उसकी ईश्वर सहायता करता है और वह अवश्य जीवित आ सकता है।"

ठीक साढ़े नव बजे समय से नीलाम प्रारंभ हुआ। थोड़ी वहुत स्पर्धा के बाद हमने चार प्लाण्टेशन लिया। एक दार-ए-सलाम में और तीन लिण्डी में। इसके उपरान्त लिण्डी में एक जीनेरी,

दो मकान तथा टाँगा मे प्लाण्टेशन खरीदा। फैक्टरियों के साथ २० हज़ार एकड़ ज़मीन ली। सब मिला कर लगभग दस लाख की सम्पत्ति रखी।

मंगलवार को नीलाम बन्दर रहा। बुधवार को दूसरे दो प्लाण्टेशन लिये। सेठ मथुरादास की फर्म को तार किया 'हमने इतनी मिल्क़ियत ली है।' इनका उल्टा तार आया "हमे ऐसी मिल्क़ियत चाहिये नहीं।" भाई ईश्वरलाल ने उन्हे लिखा कि : "ज़मीन पैदायश वाली है। रखने मे लाभ है।"

मुझे ऐसा वहम पड़ा कि फर्म अन्दर से कमज़ोर पड़ती मालूम पड़ती है। इतने में उनका दूसरा तार आया "हमे मिल्क़ियत चाहिये नहीं। रूई भेजो, आप जल्दी आवो।"

मैंने इन्हे फौरन जवाब नहीं दिया। काग़ज़ लिख दिया कि "यहाँ के कामकाज से अवकाश मिलेगा तो आजाऊंगा।"

हमने जिंजा से पैसा मगाया। प्लाण्टेशन की व्यवस्था की। भाई रामजी गोकुलदास को मैनेजर के रूप में लिंडी में रखा। धीरे धीरे दो प्लाण्टेशन चालू कराया। शेष का कब्ज़ा ले लिया। मिकिंडानी के जो दो लिये थे उन्हे वैसा का वैसा ही रखा। टाँगा का बेच डालने का विचार किया।

सेठ मूलजी वालजी को अपने एजेण्ट के रूप मे रखा। सब ठीक करके हम स्टीमर के रास्ते से मोम्बासा आये।

मोम्बासा में रहने का मकान है, थोड़े समय वहाँ आराम लिया। मनुष्य जिस समय काम पर होता है उस समय शरीर थकावट को गिनता नहीं। मनोबल से इच्छाशक्ति से थकावट मालूम नहीं पड़ती; परन्तु काम पूरा हुआ, शरीर को चाहिए वह आराम माँग लेता है। तथा ज्वर जैसा सामान्य रोग उसके लिए सहायता करता है। थोड़े समय में मैं ताज़ा हुआ।

इस प्रकार टाँगानिका का हमारा सुखमय प्रवास पूरा हुआ। हमारे सफ़र की बातें सुन कर सब को खूब आनन्द आया।

टाँगानिका मे सन् १९२१ से १९३४ पर्यन्त्र में प्रत्येक वर्ष मुझे प्लांटेशन देखना पड़ता था। साथ ही वायु-परिवर्तन भी होता था। मुझे इस शान्त एकान्त स्थल पर बहुत आराम मिलता था। मेरे भतीजों ने लिंडी के प्लांटेशन को सन् १९४९ में साठ लाख शिलिंग मे वेंचा तो मेरा हृदय भर आया।

२४

काँग्रेस और शान्तिनिकेतन

मोम्बासा में आवश्यकता के अनुसार आराम लेकर मैं युगण्डा गया। वहाँ की दूकानों, जीनेरियों आदि का कामकाज देखा। हमारे भागीदार इस काम को व्यवस्थित रूप से चला रहे थे। टाँगानिका के काम और अर्थ का प्रबन्ध हो चुका था। उसके पश्चात् मेरे मन मे बहुत काल से घुला करता हुआ खाँड के कारखाने का विचार जागृत हुआ। खाँड का कारखाना खड़ा करने के लिए चाही पूंजी, मशीनरी, ज़मीन आदि वस्तुयें समय आने पर मिल जावेंगी – ऐसा मुझे विश्वास था। परन्तु उसके पूर्व खाँड का कारखाना देखना चाहिए। इनके अनुभवी संचालकों के साथ बात-चीत करके इस विषय में विवरण प्राप्त करना चाहिए। इस सम्बन्ध में सन् १९२१ के अगस्त में मैं भारत आया। खाँड का कारखाना देखने पहले कानपूर गया।

कानपूर में खाँड का कारखाना देखा। गुड़ से खाँड बन रही थी। नैपाल की सीमा पर बर्ड एण्ड कम्पनी ने एक खाँड का कारखाना डाला था – उसको देखने मै गया। इस कारखाने मे गन्ने से सीधे शकर बनती थी। हम मशीनरी के विशेष जानकार नहीं थे। ऊपरी दृष्टि से सब देख लिया, उनके संचालकों के साथ कुछ बातें कीं।

युगण्डा मे शक्कर के कारखाने को चलाने की सामर्थ्य पर्याप्त थी। वहाँ वर्षा पर्याप्त पड़ती है। गन्ने के लिए भूमि और पानी का अच्छा मेल है।

मेरे मन मे दो विचार एक साथ घुल रहे थे। बम्बई में सेठ मथुरादास गोकुलदास की मिलें देखता तो देश मे कपड़े की ऐसी ही मिल खड़ी करने का विचार ज़ोर पकड़ता और युगण्डा में चीनी के कारख़ाने की संभावना और आवश्यकता का ख्याल करते हुये इन विचारों का वेग बढ़ता था। दोनो मे कौन पहले होगा इसकी ख़बर नहीं थी। ईश्वर की जैसी इच्छा होगी वैसा होगा

ऐसा मान कर वह जैसा दौड़ावे वैसा दौड़ा जाता था। मेरे साथ मेरा मैनेजर भाई पुरुषोत्तमदास मेहता थे। उन्हो ने चीनी के कारखाने का अनुमोदन किया।

विहार से वापस आते हुये हम गया आये। भगवान् बुद्ध को जिस स्थल पर ज्ञान हुआ था उस पवित्र स्थान का दर्शन किया। कपिल वस्तु के महाराज के राजकुमार सिद्धार्थ, मानव के चार दुखों– जन्म, मृत्यु, जरा व्याधि के निवारण के लिए राजपाट, स्त्री-पुत्र, माता-पिता सर्वस्व को छोड़ कर निकल जाते हैं और जिस वटवृक्ष के नीचे ४९ दिन अन्न-जल का परित्याग कर तप करते हैं – उस स्थल का दर्शन किया। बोधि गया यह एशिया के आधे खंड का तीर्थ है।

गया जी में श्राद्ध किया। परम्परागत रूढ़ि के अनुसार अधिकांश में गया में श्राद्ध होता है, परन्तु मैने वहाँ एक वस्तु का अनुभव किया। यह स्थल इतना पवित्र है कि अपने स्वर्गवासी स्वजन-आत्मा की शान्ति और अपने मन का समाधान दोनो ही वहाँ प्राप्त होते हैं। श्रद्धापूर्वक जो संकल्प होता है उसे शास्त्रकारों ने श्राद्ध कहा है।

हम जब गया मे थे तो हमे समाचार पत्र द्वारा समाचार मिला कि कलकत्ता में पंजाब केसरी लाला श्री लाजपतराय जी की अध्यक्षता में काँग्रेस का अधिवेशन होने वाला है। पूज्य बापूजी पधारने वाले हैं। यह समाचार पढ़ कर हमने कलकत्ता जाने का निर्णय किया।

सन् १९१५ में हमने बम्बई काँग्रेस देखी थी, वह स्मरण आ गया। उस समय पू० बापूजी काठियावाड़ी पोशाक में पधारे थे। सिर पर पेंठवाली पगड़ी, चौबन्दी, कन्धे पर अंगोछा और हाथ मे छड़ी थी। इस समय से काँग्रेस देश की स्वतंत्रता के लिए लड़ने वाली एक महान् संस्था है – ऐसा मुझे ख्याल आया। अफ्रीका मे समाचार पत्र पढ़ कर लड़ाई में दिलचस्पी लेता रहता था।

कलकत्ता काँग्रेस मे जाने का निर्णय होते ही मैने अफ्रीका मे प्रकट रूप से कार्य मे भाग लेने वाले मुख्य कार्यकर्त्ता भाइयों पर तार किया "हम कलकत्ता मे डेलीगेट के रूप में जा रहे हैं। काँग्रेस के मंत्री पर आप तार कर दें।"

इस प्रकार तार करके हम कलकत्ता जाने के लिए रवाना हुये। आसनसोल जंकशन पर समाचार मिला कि "काँग्रेस प्रमुख श्री.

लाला जी स्पेशल ट्रेन में जा रहे हैं।" हमने श्री. लाला जी महानुभाव के साथ ही जाने का निश्चय किया। स्पेशल ट्रेन प्लेट-फार्म पर खड़ी थी। छूटने को थोड़ी देर थी। हम उतावलपने मे एक प्रथम वर्ग के डिब्बे में चढ़ने लगे - इस लिये दरवाज़े पर खड़े स्वयंसेवकों ने हमें रोका -"भाई साहब! क्या करते हो? लाला जी सोये हैं।" हम बग़ल के दूसरे वर्ग के डिब्बे मे गये। हमारे पास सामान खूब था। भाई पुरुषोत्तम ने डिब्बे में सामान चढ़ाया। भीड़ खूब थी। रात्रि के दो बजे थे। अन्दर यात्री सोये थे। दूसरी गाड़ी में जावें तो देर होवे - वहाँ से स्पेशल ट्रेन में जाने का निश्चय था। हम सामान डालने के बाद कठिनाई से डिब्बे में घुसे। कुछ सामान संडास मे डाला। दरवाज़े के सामने बिस्तर डाला। ऊपर गद्दा डाल कर दोनो सोये। एक दरवाज़े पर सिर और दूसरे दरवाज़े पर पग इस प्रकार सामने सामने लम्बे पड़े। वर्षा के दिन थे। गाड़ी चल पड़ी। हमने आँख मूद कर सोने का प्रयत्न किया।

पन्द्रह मिनिट हुये होंगे, इतने में हमे गद्दा नीचे से भीगा हुआ लगा। उठ कर देखा तो एक यात्री के पानी की सुराही ढल गयी थी, यह पानी गद्दे के नीचे आ गया। लगभग एक घण्टे हम चुपचाप पड़े रहे। बाद में हँसने लगे। हमारे हँसने की आवाज़ सुन कर पहले वाले मुसाफिर जाग उठे। वे सिंध के प्रतिनिधि थे। 'क्या हुआ?' इसकी वे खोज करने लगे। हमे इस प्रकार सोया और हँसता देख कर वे आश्चर्य मे हुये।

हमने उन्हे कहा "आप नाराज़ न हों। हम अफ्रीका के डेलीगेट हैं। लाला जी का दर्शन करने के लाभ से हम इस ट्रेन में चढे। आप को तक़लीफ हुई तो माफ़ करना।"

हम अफ्रीका से आकर काँग्रेस में भाग लेने जा रहे हैं - यह सुन कर इन भाइयों का क्रोध उतर गया। उन्हो ने विनय से कहा "कोई तक़लीफ नहीं हुई। आप वहाँ से बिस्तर उठा लो। आप को तक़लीफ हुई होगी। यहाँ हमारे पास सीट पर आजावें" ऐसा कह कर उन्हो ने हमे जगह कर दी।

हमने उनका आभार माना। बिस्तर लपेट कर सीट पर बैठे और आराम से कलकत्ता पहुँचे।

कलकत्ता स्टेशन पर प्रमुख श्री लाला जी का भव्य स्वागत

करने में आया। हार-तोरण से लाला जी ढँक गये। जयघोष से प्लेटफार्म गूँज उठा। श्रृंगारित मोटर मे उन्हे जुलूस के रूप में ले गये।

हम दूसरे मार्ग से होकर शहर मे गये। कलकत्ता में सेठ जगजीवनदास हंसराज के यहाँ हम उतरे। सेठ मावजी गोविंदजी भी हमारे साथ थे।

काँग्रेस की खुली बैठक के लिए एक भव्य मंडप बना था। इस समय से मंडप में जा पहुँचे। अफ्रीका से हम प्रतिनिधि के रूप में आये हैं - ऐसा काँग्रेस के मंत्री के पास तार आ चुका था। स्वागताध्यक्ष लार्ड सिनहा थे। व्यवस्था बहुत अच्छी थी। हमे अफ्रीका के प्रतिनिधि के रूप में अध्यक्ष के समीप कुर्सी मिली। हमने टिकिट का सौ सौ रूपया पृथक् भर दिया था।

काँग्रेस की कार्यवाही प्रारंभ हुई। मुख्य प्रस्ताव असहयोग का था। पूज्य बापूजी ने यह प्रस्ताव उपस्थित किया था। मौलाना मुहम्मद अली और शौक़त अली ने इसका समर्थन किया था। मिसेस एनी बेसेण्ट ने प्रस्ताव का विरोध किया था। गर्मागरम बहस चली। पं० मोतीलाल जी प्रस्ताव के पक्ष में थे। तीन तीन दिवस तक विचारविनिमय और वादविवाद चलता रहा। देश के लिये यह जीवन-मरण का प्रश्न था। देश की नौका समुद्र के मध्य में डोल रही थी। अन्त मे पूज्य बापूजी का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। तालियों की गड़गड़ाहट से प्रतिनिधियों ने इस प्रस्ताव को स्वीकार किया।

इस समय भाद्रपद मास चल रहा था। सभा के लिए बँधे पंडाल मे वर्षा टूट पड़ी। चालू सभा में गड़बड़ होती थी, छतरियाँ खोली जावें। लड़ा लड़ी हुई, व्यासपीठ से 'शान्त शान्त' की आवाज़ आती थी - इस प्रकार तीन दिवस बाद काँग्रेस अधिवेशन की पूर्णाहुति हुई।

हमने कलकत्ता मे छ दिवस व्यतीत किया। "वढ़ई के मन वबूल का वृक्ष" इस प्रकार जहाँ जावें वहाँ व्यापार तो लगा ही रहता था, तिस पर भी कलकत्ता में कितने ही दर्शनीय स्थानों को देखा।

गंगा के किनारे पर भगवान् श्री कृष्ण का आश्रम देखा। पूज्य शरदामणिदेवी और स्वामी विवेकानन्द जी की समाधियों का दर्शन किया। यह चित्त को शान्ति देने वाला सुन्दर, मनोरम स्थल है।

देखते ही मन तृप्त होता है। गंगा के किनारे हम थोड़ी देर तक शान्ति से बैठे। श्री रामकृष्ण मिशन के त्यागी और विद्वान साधु लोग भारी सेवायें कर रहे हैं। उनके आश्रम सारे देश में फैले हुये हैं। हमने मिशन की अनेक वार मदद की और उसके लोक-हित के कार्यों को देखा।

कलकत्ता मे मुझे सूचना मिली कि श्री नरसिंहभाई पटेल शान्ति-निकेतन मे हैं। श्री एण्ड्रूज साहब भी वहीं पर हैं। यह शुभ समाचार मिलते ही हम शान्ति-निकेतन गये।

कलकत्ता से लगभग सौ मील की दूरी पर बोलपुर स्टेशन के शान्त, मनोरम स्थान पर गुरुदेव टागोर का आश्रम आया है। बेठा घाट के घास से छाये हुये सुन्दर मकान हैं। चिनार जैसे छायादार वृक्ष, प्राचीन समय के गुरुकुलों की याद ताज़ी करावे-ऐसा कविश्री का आश्रम था।

हमे अचानक आया देख कर नरसिंहभाई खूब खुश हुये। उत्साह से भेंट पड़े। वे एक छोटी झोंपड़ी में रहते थे। हमने उनके साथ ही उतारा किया। सुख-दुःख की बातें कीं। श्री एण्ड्रूज साहब को मिले। वे भी हमें देख कर बहुत प्रसन्न हुये।

दीनबन्धु एण्ड्रूज दो वार अफ्रीका आये थे। भारतीय और योरोपियनो के मध्य समाधान कराने को आये थे। उन्हो ने प्रकट रूप से भारतीयों का पक्ष लिया। इससे गोरे सेटलरों ने उनका अपमान किया था। इस विषय में उनके साथ हमारी बातचीत हुई थी। उनका दयालु स्वभाव और ग़रीबों के प्रति सहानुभूति आज भी याद आती है।

हमे शान्ति-निकेतन में दूसरा अमूल्य लाभ मिला। काँग्रेस में आये हुये नेता शान्ति-निकेतन मे आ रहे हैं - ऐसा हमें समाचार मिला। उनमें पूज्य बापूजी भी थे। पूज्य लालाजी, प्रो० कृपलानीजी आदि नेता लोग आये थे। काँग्रेस मे भाषण सुना, यहाँ समीप से दर्शन का लाभ मिला।

गुरुदेव बाहर गये हुये थे। वे भी सम्माननीय अतिथियों का स्वागत करने आ पहुँचे।

गुरुदेव के कुटुम्बियों तथा आश्रमवासियों ने दो सुन्दर नाट्य-प्रयोग कर दिखाया। महाकवि कालिदास का 'शाकुंतल' और

'कुमारसंभव' ये दोनो ही नाटक आश्रम की रंगभूमि पर मेहमानो के समक्ष प्रस्तुत किये गये। इनका संगीत, पहिनने का वेष, नाट्य-कला इतने तदनुरूप थे कि अपने को प्राचीन भारत का स्मरण हो आवे। हमारे ऊपर इसका गहरा प्रभाव पड़ा। चार सौ मनुष्य बैठ सकें - ऐसी रंगभूमि आवाल वृद्ध प्रेक्षकों से भरी हुई थी। एक सूई भी पड़े तो आवाज़ सुनाई दे - ऐसी अपूर्व शान्ति छायी हुई थी। यह दृश्य आज इन पंक्तियों के लिखते समय मेरी दृष्टि के समक्ष तैर रहे हैं।

संस्था की आर्थिक स्थिति उस समय अच्छी नहीं थी। गुरुदेव स्वयं संस्था के लिए चन्दा एकत्र करने को निकलते थे। वे व्याख्यान और नाट्यप्रयोगों को करके संस्था की आर्थिक कठिनाई को हल करते थे। कविवर के पिताजी श्री महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर बड़े भारी ज़मींदार थे। ये जागीर की समस्त पैदावार को संस्था को दे देते थे। एक वार शुल्क बढ़ाने का प्रश्न उठा। यदि शुल्क मे वृद्धि हो तो संस्था को अमुक राशि की वृद्धि अधिक हो जावे। इस सम्बन्ध मे कविश्री ने स्पष्ट कहा "ग़रीबों के ऊपर बोझा बढ़ा कर हमे संस्था नहीं चलाना है। इसकी अपेक्षा संस्था के लिए भीख मांगना मैं अधिक पसन्द करता हूँ।"

संस्था की स्थिति अच्छी न होने से पैसे की जहाँ तक बनी मदद की। हमेशा सेवाभावी संस्थावों और भारत के महान् कवियों की स्थिति का वर्णन हम पढ़ते हैं। इनकी पूँजी के वारसे में वे सुगन्धों को छोड़ जाते हैं और सैकड़ो वर्षों तक इनकी खुशबू आया ही करती है।

जगत् का महान् कवि अपने प्राचीन ऋषियों की भांति सादा जीवन व्यतीत करता था। घास के सादे झोंपड़े में वह रहता था। उसके लिखने की मेज़ बिल्कुल सादी पत्थर की थी। एक कोने में पियानो पड़ा था। कविवर को संगीत, चित्र और कला का खूब शौक था। सारे आश्रम में चित्रकला का नमूना दृष्टिगोचर होता था। बड़े वृक्षों के नीचे कुमार और कुमारियों को पढ़ता देख कर मुझे ऐसा ही गुरुकुल करने का मन हो आता था। कविवर के आश्रम में जगत् भर के विद्यार्थी पढ़ते थे। पूज्य गुरुदेव और पूज्य बापूजी का ऐसे पवित्र स्थल पर दर्शन हुआ - यह हमारे जीवन का अमूल्य अवसर था।

पूज्य बापूजी की तबियत नरम थी। वे आराम के लिए थोड़े समय तक शान्ति-निकेतन मे रुके। उनके लिये बकरी लेने श्री. नरसिंहभाई के साथ हम भी गाँव में गये। लार्ड सिनहा की जन्म-भूमि का ग्राम था। वहाँ से दो बकरियाँ लीं। बकरियों को गाड़ी मे लाये। पूज्य बापूजी की देखभाल के लिये कितने ही डाक्टर आ पहुँचे। उनको मिलने के लिए अनेक नेता भी पधारे। लगभग दो सौ के क़रीब अतिथियों से आश्रम भर गया। कलकत्ता से विशेष तम्बू मगा कर व्यवस्था की गई। हमको पूज्य बापूजी के अतिरिक्त बहुत से देश नेतावों के दर्शन का लाभ मिला। ऐसे स्थलों की यात्रा से जीवन मे पवित्रता, उल्लास, देशभक्ति आदि की भावनायें बढ़ती हैं-इसका प्रत्यक्ष अनुभव मिला।

शान्ति-निकेतन से हमने १७ दिन बिताये। श्री. नरसिंहभाई आदि की रज़ा लेकर हम वहाँ से काशी गये।

काशी में गंगा-स्नान किया। दर्शनीय स्थलों को देखा। उनमें पूज्य पं. मालवीय जी द्वारा स्थापित की गई 'बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी' देखी। भारत-भूषण पूज्य पंडित जी की आत्मा को इस महान् संस्था मे मूर्त्तिमान् हुआ देखा। उनके दर्शन का लाभ मिला। चार दिन काशी मे रहे।

काशी से हम बम्बई गये।

२५

बड़ी फर्म बैठ गई

बम्बई पहुँचने के बाद मै व्यापार के कार्य मे गुथ गया। श्री मथुरादास सेठ को मिलने गया। वे मेरे ऊपर क्रोध से भरे हुये थे। सहज गरम होकर वे बात करने लगे। इस लिये मैंने उन्हे स्पष्ट जताया : मुझे क्षमा करना सेठ! आप के साथ हमने बहुत प्रेम और विश्वास से प्रेम बाँधा था। आप की फर्म ने अविश्वासिता की है - ऐसा मुझे दुःख के साथ कहना पड़ता है। हमने बहुत सहन किया, अब बुरे तरीके से सहन नहीं करूँगा, हमे आप का पैसा खा जाना नहीं है। सतरह हज़ार गाँठ रूई खरीदी है। आप कहें तो साढ़े आठ साढ़े आठ हम दोनो बँच लेवें। यदि आप चाहें तो भाव निश्चय करके सब खरीद लें।

हमारी दृढ़ता का उनके ऊपर भारी प्रभाव पड़ा। उन्हो ने सवा छः सौ के भाव से सारी रूई खरीद ली। वकील के साथ मैने पक्का करार लिखा कर सेटिलमेण्ट कर लिया। उसके बाद जिंजा तार दिया : "सारी रूई सेठ मथुरादास गोकुलदास की मिलों ने खरीद ली है - रवाना करो।"

श्री सेठ मथुरादास के फर्म के साथ व्यवहार चालू रहा। उससे छूटने जैसे अफ्रीका के संयोग नहीं थे।

इस समय मै देश में दो मास रुका। इस मध्य सेठ मथुरादास की फर्म के साथ बड़े भाई का सम्बन्ध पहले जैसा चालू कराया। दो मास बाद मै युगण्डा गया।

सन् १९२२ की सीज़न लगभग निष्फल गई। कमली और बुसोगा ज़िलों में फसल मारी गई। केवल १८०० गाँठ रूई हुई। एक तरफ बहुत सी जीनेरियाँ, टाँगानिका का साइसल का व्यापार, तदुपरान्त लुगाज़ी में गन्ने की खेती प्रारंभ करायी। इतने समय तक फस्ल के मारे जाने से आर्थिक कठिनाई आयी।

शक्कर का कारखाना करने का विचार भारत में दृढ़ हुआ था। युगण्डा में जाकर यह वस्तु हाथ में लेना है - यह मनो-विचार गढ़

लिया था; परन्तु जीवन में विचार और आचार के मध्य सदा अन्तर बना ही रहता है। इन दो वस्तुवों के संघर्ष में पुरुषार्थ रहता है। मानव की शक्ति कसौटी पर चढ़ने से बढ़ती है और मानव में विद्यमान गुण खिलते हैं। ऐसी कसौटी में मानव गढ़ा जाता है। ऐसा मुझे बार-बार अनुभव हुआ है।

ऐसी परिस्थिति मे हमने सन् १९२२ के साल में दो लाख का घाटा उठाया। अर्थ की कठिनाई मालूम हुई परन्तु खरी कसौटी अभी बाक़ी थी। यह बड़े तूफ़ान की चेतावनी मात्र थी।

एक बार मैं अपने साथीदारों के मध्य बैठ कर कामकाज़ के विषय में बात-चीत कर रहा था। इतने में बम्बई से तार मिला "सेठ मथुरादास गोकुलदास की कम्पनी फेल। सर करीमभाई इब्राहिम के नाम ट्रान्सफर हुई मिल की एजेन्सियाँ।"

तार पढ़ कर सब घड़ी भर विचार में पड़ गये। कोई ज़बर्दस्त स्टीमर एका-एक समुद्र के मध्य में डूब जावे और धक्का लगे वैसा ही आघात लगा। मैं स्वयं बम्बई जाऊँ - ऐसा हमने निर्णय किया। रातोरात तैयारी करके रवाना हुआ।

रात्रि में दस बजे मोटर में निकल कर (१७५ मील) किसुमू पहुँचा। किसुमू से गाड़ी पकड़ कर मोम्बासा से दूसरे दिन स्टीमर पकड़नी थी। हमारी गाड़ी सबेरे ९ बजे मोम्बासा पहुँची। आफिस में चक्कर देकर आवश्यक सूचनायें देकर मैं स्टीमर पर ११ बजें पहुँच गया। नहाना, चाय-पानी आदि सब स्टीमर पर ही किया। इतनी जल्दी स्टीमर पकड़ी जा सकी इससे मेरे मन को सन्तोष हुआ।

स्टीमर चल पड़ी। हर एक यात्रा मे आनन्द करता जाता था। इस समय भी परिचित प्रवासियों के साथ सबेरे शाम विनोद चलता था। परन्तु मन में अनेक विचार आते थे। ऐसी बड़ी फर्म अचानक बैठ गई ! इसके भरोसे पर बहुत साहस किया, उसको क्या करना है ? जीनेरियाँ, टाँगानिका का रोज़गार, लुगाज़ी की गन्ने की खेती, इसके अतिरिक्त सुगर फैक्टरी के लिए आर्डर दिया गया है, इन सब पर कैसे पहुँच सकेंगे ? हमने बम्बई को जो हुण्डियाँ लिखी हैं, वे यदि पीछे वापस आवें तो प्रतिष्ठा जावे, इससे इन्हे स्वीकार करने के लिए बड़े भाई को तार दिया।

दसवें दिन मैं बम्बई पहुँचा। नहा-धोकर, स्वस्थ होकर सेठ मथुरादास गोकुलदास के कार्यालय मे गया। जिस कार्यालय मे

तीन सौ आदमी कार्य कर रहे थे – वहाँ पर सूनापन छाया हुआ था। देखते ही हमें भारी दुःख हुआ। सेठ मथुरादास से तात्पर्य होता था – शेयर का राजा, रूई का राजा, मिलों का राजा, रेस का राजा! सौ वर्ष की पुरानी फर्म थी। सेठ मथुरादास गोकुलदास तीन खण्ड में प्रख्यात थे – बड़ा भारी परिवार था।

हमने फर्म के साथ अपना हिसाब किया। निश्चय किये अनुसार हमने उनकी मिलों को रूई भेज दिया। उनका ११ लाख रूपया हमारे पास लेने को निकलता था। इतना प्रबन्ध तत्काल करना था। एक भागीदार और मित्र के रूप में हमारा यह कर्तव्य था।

अपने बड़े भाई को मैंने अफ्रीका से दस लाख रूपया भेजा था। उसमे से यह रक़म भरपाई करके ऋणमुक्त होने का मैंने निश्चय किया। बड़े भाई के पास मैंने पैसा मांगा परन्तु उन्होंने रूई का व्यापार किया था और उसमें पाँच लाख का घाटा उठाया था। मुझे इस बात की कोई खबर नहीं थी। दस लाख में से पाँच लाख बाक़ी था। उसको कर्ज के मद मे भर दिया। छ लाख रूपया अफ्रीका से मंगाकर कर्ज़ की भरपाई कर दी। वकील के मार्फत भरपाई लिखा लिया। हमने तीन वर्ष भागीदारी मे कामकाज किया। इनके मुनीम के द्वारा जो बाँधी गई थीं उन दो जीनेरियों को उन्हें दे दिया। शेष सारी संपत्ति और उधार हमारे भाग में आये। इस प्रकार निकाल करके हम हल्के हुये।

इस अनिश्चित आपत्ति में से कुदरत ने किस प्रकार मार्ग निकाल दिया, इसका विचार करता हूँ तो ऐसा लगता है कि यह केवल ईश्वर की दया का फल था।

अब युगण्डा में चालू कामकाज के लिए अर्थ की व्यवस्था किस प्रकार हुई – यह आगे के प्रकरण में दूँगा।

जापान के साथ एजेन्सियाँ

जापान के साथ हमारा व्यापारिक सम्बन्ध था। हम जापान मे रूई भेजते थे। 'जापान काटन कंपनी' के एजेण्ट लोग अफ्रीका आकर हमारा कामकाज देख गये थे। जापानी फर्मों—'टाप मेंका कीशा' 'मेई टु वीशान,' गोरो का बुसी केशा' आदि को हम रूई भेजते थे। हमारे नाम और काम से वे परिचित थे।

बम्बई मे मैंने उनसे भेंट की। उनको मैंने कहाः 'सेठ मथुरादास गोकलदास की फर्मके साथ हमारी भागीदारी थी। संयोगवशात् उनकी फर्म फेल हो गई है। हमारे पास मिल्कियत है— जीनेरी, दूकान, साइसल प्लाण्टेशन आदि व्यापार मे हमारी पूँजी फँसी हुई है। आप लोगों को रूई का व्यापार खिलाना हो, बड़ी मात्रा में रूई की खरीद करनी हो, तो युगण्डा आवें। हम आपको तैयार रूई पूरी मात्रा में देंगे। पूँजी आपकी जोखमदारी हमारी। अपने को ऐसा प्रबन्ध करना चाहिए कि जिससे आपकी पूँजी सुरक्षित रहे और अपने दोनो का व्यापार ठीक तरीके पर चलता रहे'।

इन लोगों ने पूरी गम्भीरता से हमारी बात सुनी। उनकी भी अफ्रीका में व्यापार बढ़ाने की इच्छा थी। मेरी प्रार्थना से उन्हे अच्छा सुअवस्तर मिला। 'जो रोगी को भावे वही वैद्य बतावे'। वे खूब खुश हुये। हमारे संयुक्त कामकाज के विषय में हमने आवश्यक विवरण की चर्चा करली। उन्हो ने मेरे साथ एक जापानी और दो भारतीय भाइयों को अफ्रीका भेजने का निश्चय किया। उनका पासपोर्ट निकलवाया। इस प्रकार भविष्य के लिये आर्थिक चिन्ता दूर हुई।

लगभग तीन मास देश में व्यतीत कर मै नवम्बर मासमे उपर्युक्त तीनो व्यक्तियों के साथ अफ्रीका जाने को रवाना हुआ।

देशमे घटित घटनावों से अपने भाइयों को मैंने परिचित किया। सारी हकीक़त सुनकर उन्हे सन्तोष हुआ। जिन मित्रों को हमने

जीनेरियाँ करा दीथीं - उन्हे भी अर्थ की कठिनाई पड़ी। जापान के साथ एजेन्सी की बात सुनकर वे प्रसन्न हुये।

जापानी फर्म के मुनीमोंने आकर हमारे रीति-रिवाज को देखा। हमारे कामकाज को देखा। वहाँ के व्यापार की परिस्थिति देखी, तदुपरान्त विवरण सहित रिपोर्ट भेजी। यहाँ व्यापार करनेकी अच्छी स्थिति है। मिस्टर मेहता बड़ी पतिष्ठा वाले व्यक्ति हैं। यहाँ प्रति वीस मन पीछे पचास से सौ रुपये तक लाभ मिलता है— जब की वम्बई में दश रुपया मिलता है। हर एक पहलू पर विचार करने से रूई के व्यापार के लिए यहाँ का क्षेत्र अधिक अनुकूल है। यहाँ पर अपने कामका विस्तार शीघ्रही बढ़ेगा— इस लिये दूसरे दो व्यक्तियों को भेजने का प्रवन्ध करें"

ऐसी रिपोर्ट भेजी। इन लोगोंने हमारी क्रेडिट के लिए बैंक की तथा दूसरी जानकारियाँ करलीं। एक मास में उन्हे पूरा विश्वास जम गया। 'टॉय मेंकां कीशा काटन कम्पनी' के साथ व्यापारी करार किया। रूई की खरीदी के लिए वे अग्रिम रक़म देवें, काम-काज पर उनकी देखरेख रहे। हमारे और इनके दूसरे के पाससे खरीदी रूई के पैसे आदि की जोखमदारी मेरे सिर पर रखी। उस पर एक प्रतिशत कमीशन निश्चय किया। तीन वर्ष के लिए शर्त हुई।

सन् १९२३-२४ की फ़स्ल आयी। उन्हो ने कपास खरीदने के लिए पर्याप्त धनराशि मंगा दी। उन्होने उन्मुक्त मनसे पैसा दिया। उनके दूसरे दो आदमी भी आ पहुँचे। अपना कार्यालय खोला मोटरें रखीं। रूई की किस्म देखने को हर एक जीनेरी पर वे स्वयं जाते थे। उनके साथ आवश्यकता पड़ती तो अपने आदमी भी भेजता था। अपने दूसरे मित्रों को भी जापानी कंपनी के पास से अपनी जिम्मेदारी पर पैसा दिलाया। हम सब की गाड़ी चल पड़ी।

सन् १९२१ में दूसरें कितने ही भारतीय व्यापारियों ने जीनेरियाँ डालीं, उन्हों ने भी जापानी कम्पनी के साथ व्यापार प्रारंभ किया। इस प्रकार जापानी कंपनी के कामकाज बढ़ने से योरोपियन फर्म खरीद में ढीली पड़ीं। जापानी लोग थोडे नफे पर व्यापार करने वाले थे— इससे वे जल्दी जम गये। इस समय तक युगाण्डा में रूई की दलाली की पद्धति प्रविष्ट हुई। इस समय तक युगाण्डा में दलाल नहीं थे।

फस्ल की सारी पैदावार के लगभग तीसरे भाग की रूई

जापानी फर्मोंने खरीदी— इसमें इनको अच्छा लाभ मिला। हमने जीनेरियों में १९२३ में दश लाख शीलिंग का नफ़ा किया। सन् १९२४-२५ में ऊपर के अनुसार दश लाख पैदा किया। १९२६-२७ के मध्यमें भारतीय व्यापारियों ने बहुतसी जीनेरियाँ डालीं। इस कारण घोर स्पर्धा चली। हमारी जीनेरियाँ मौके की थीं इस लिए कठिन स्पर्धा होने पर भी हमे कोई हानि नहीं हुई। सारी सन् १९२६ की फ़स्ल में स्पर्धा के कारण कोई खास नफ़ा नहीं किया।

भारतीय और यूरोपियन व्यापारियों के मध्य स्पर्धा चालू थी। जापानी फर्म के आने से योरोपियनो के रूई के व्यापार में अच्छी तरह से धक्का लगा।

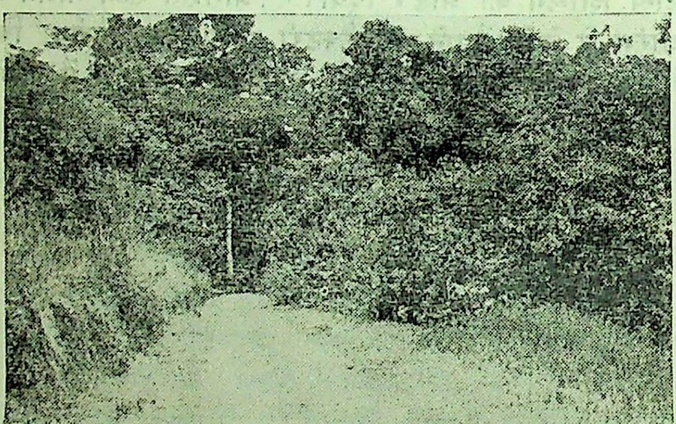
आर्थिक स्थिति सुधरते ही मै ने सुगर फैक्टरी की ओर ध्यान दिया। अपने छोटे भाई मथुरादास को मैने टाँगानिका का काम सौंपा था। वहाँ का प्लाण्टेशन अच्छा था। तिस पर भी इस कार्य को खिलाने के लिए पैसे के रोंकने की ज़रूरत पड़ती थी। ऐसा होने पर भी लुगाज़ी में सुगर फैक्टरी डालने का विचार किया।

फैक्टरी की मशीनरी के लिये सन् १९२३ के दिसम्बर मास मे बीस लाख शिलिंग का आर्डर दिया। २५ प्रतिशत रक़म अग्रिम भेजदी थी। प्रारंभ मे छोटे पैमाने पर फैक्टरी करने का निर्णय किया। लुगाज़ी सुगर फैक्टरी का इतिहास आप पृथक् प्रकरण में पढ़ेंगे।

२७

लुगाज़ी सुगर-फैक्टरी

जिंजा और कम्पाला के मध्य मे लुगाज़ी नाम का एक छोटा सा ग्राम आया है। जिंजा से कम्पाला जाते हुये इस स्थल का आकर्षण मुझे स्वाभाविक रूप से था, इस बात को पूर्व में बतला चुका हूँ। शनि-रवि की छुट्टियाँ व्यतीत करने के लिए सुन्दर पहाड़ी पर मैने एक मकान बाँधा था। पर्याप्त भूमि ली थी और एक जीनेरी डाली थी। थोड़ी बहुत गन्ने की खेती की। यह भूमि बहुत उपजाऊ है। हज़ारों एकड़ भूमि बिल्कुल परती पड़ी थी। वर्षा खूब पड़ती थी, इसमें मैंने गन्ने बोये। पहाड़ी से दृष्टि डालने पर चारों ओर मानो शुकरंग का महासागर हिलोरें ले रहा हो, ऐसा भव्य दृश्य लगता है।



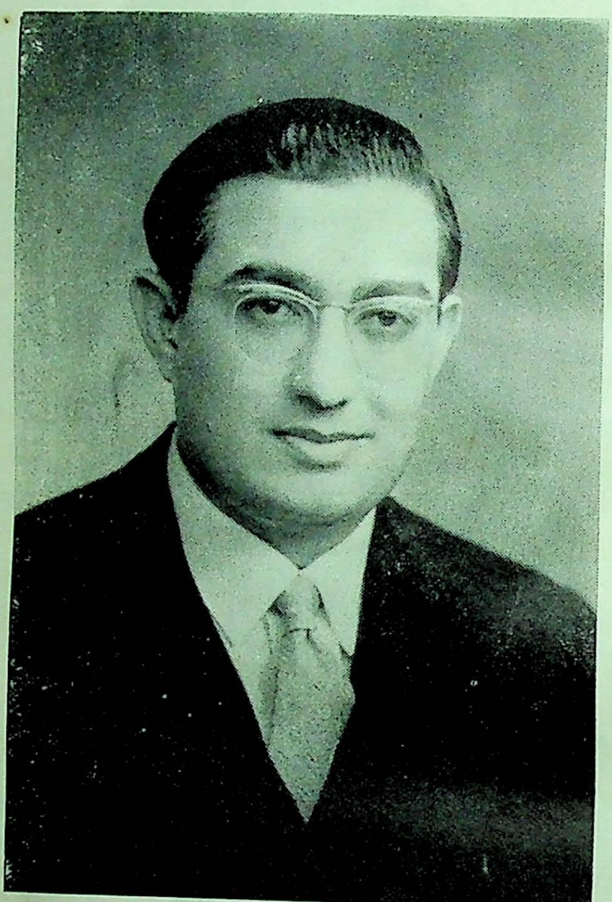
लुगाज़ी के समीप जंगलों का दृश्य

इस जगह पर मैने चीनी का कारखाना खोलने का निर्णय किया था।

यह भूमि बीस रूपये एकड़ के हिसाब से खरीदी थी, और इस समय इस ज़मीन की क़ीमत प्रति एकड़ एक हज़ार की गिनी



अ. सौ. श्री. मेधाविनीबेन धीरेन्द्र मेहता



श्री. धीरेन्द्रभाई नानजीभाई मेहता

जाती है।

अफ्रीका में ज़मीन जब पानी के मूल्य में मिलती थी तब मैंने यहाँ के बहुत से राजा-महाराजावों एवं श्रीमानों को आग्रहपूर्वक लिखा था कि इस बेंची जाती हुई ज़मीन को लेकर उसमे सुधार-बढ़ावा आदि करके कमाने का समय है। उस समय दस रूपये से लेकर मुश्किल से सौ रूपये प्रति एकड़ का सामान्य भाव था। तथा एक ही साथ यदि एक लाख एकड़ ज़मीन की आवश्यकता हो तो भी सरलता से मिल सके - ऐसी स्थिति थी। आज के दिन अब रूपये देने पर भी एक एकड़ ज़मीन मिल सके - ऐसी स्थिति नहीं। क्योंकि कोई बाहरी को भूमि बेंच नहीं सकता ऐसा क़ानून बन गया है।

लुगाज़ी में जब जमीन ली तो उसमे एक पहाड़ी का नाम 'कावलो' था। आज इस नाम का स्टेशन है। उस पहाड़ी पर चौरस आकार का घास का सुन्दर मकान बाँधा। चार कक्ष और मध्य मे बैठक का खण्ड। शनिवार-रविवार को मित्र-मण्डल के साथ हम वहाँ पर आनन्द-मण्डली लगाते थे। लुगाज़ी जिंजा और कम्पाला के मध्य भाग में आया है। ३० मिनट का रास्ता है। रात्रि मे साथी-मित्रजन मिल कर आनन्द करते थे। भिन्न किस्म के भोजन की बानगी बनती थी और गायन-वादन चलता था। इस प्रकार सप्ताह भर की थकावट उतार कर हल्के हो जाते थे।

एक दिन हमने वहाँ पर हरि-कथा करने का विचार किया। देश से हरि-कथाकार आये। पचीस-तीस जनो ने शनि-रवि की रात्रि वहाँ-पर बिताने का निश्चय किया। जिंजा के प्रतिष्ठित गृहस्थ, वकील, बैरिस्टर, व्यापारी और डाक्टरों आदि ने आने का कार्यक्रम बनाया। महाराज-रसोइया, सीधा-सामान सब पहुँच गया। हमने सायंकाल लगभग चार बजे निकलने का निश्चय किया।

इतने मे अचानक ही दोपहर में मुझे ज्वर चढ़ गया। मित्र लोग मिलने आये। उनसे मैंने कहा -"आप लोग जावें - वहाँ सब तैयारी है। मैंने इंजेक्शन लिया है। ज्वर उतर जावेगा त्यों ही मै आजाऊँगा।"

इन्होने कहा -"आप के साथ ही चलेंगे। ज्वर अभी उतर जावेगा।"

साँझ हुई ज्वर उतरने के बदले ज्यादा चढ़ गया। १, २, ३, ४, डिग्री तक चढ़ गया।

वहाँ पर महाराज ने तीस आदमियों की रसोई तैयार कर रखी थी। इस समय तार-टेलीफोन की कोई सुविधा नहीं थी।

सायंकाल को मित्रजन मुझे घेर कर बैठे। उनसे मैने कहा- "अब आप लोग जावें। वहाँ पर रसोई तैयार है। मुझे सबेरे ज्वर उतर जावेगा अतः मै आ पहुँचूँगा तथा आप लोगों के साथ आनन्द में भाग लूँगा।"

मित्रों ने नहीं माना। उन्होने कहा : "हमें आप के विना आनन्द नहीं आता। कल प्रातः सभी साथ चलेंगे।"

इस प्रकार रंग मे भंग पड़ा। रात्रि व्यतीत हुई प्रातःकाल हुआ।

प्रातःकाल ज्वर मापा तो १०२ डिग्री था। दोपहर को भोजन करके लुगाज़ी जाऊँगा - ऐसा विचार किया।

इस समय अफ्रीका मे मलेरिये का वहुत ज़ोर था। गृह में चार मनुष्यों के पीछे एक व्यक्ति बीमारी के लिए सुरक्षित रखा रहना चाहिए अन्यथा कार्य रुक जावे - ऐसी स्थिति थी।

इस समय नाइल नदी पर पुल नहीं था। रेलवे नहीं थी। मोटर-बोट छोटी किश्ती चलती थी। उसमे आदमी और वाहन सामने किनारे पर उतरते थे।

प्रातः मै डाक्टर के साथ चाय पीने बैठा-सामने डाक्टर बैठा। इसी समय नाइल को पार कर मेरा नौकर लुगाज़ी से आया। इसके चेहरे पर उदासीनता थी। आते ही उसने खबर दी : 'शेवो! एवेढ्योना मझांके वोक्या' (महाशय! सभी जलकर राख हो गया)। मेरे मन मे घबराहट हुई - पूछा 'क्या हुआ?'

उसने कहा 'रात्रि मे मकान पर बिजली पड़ी। सभी कुछ जलकर खाक हो गया।'

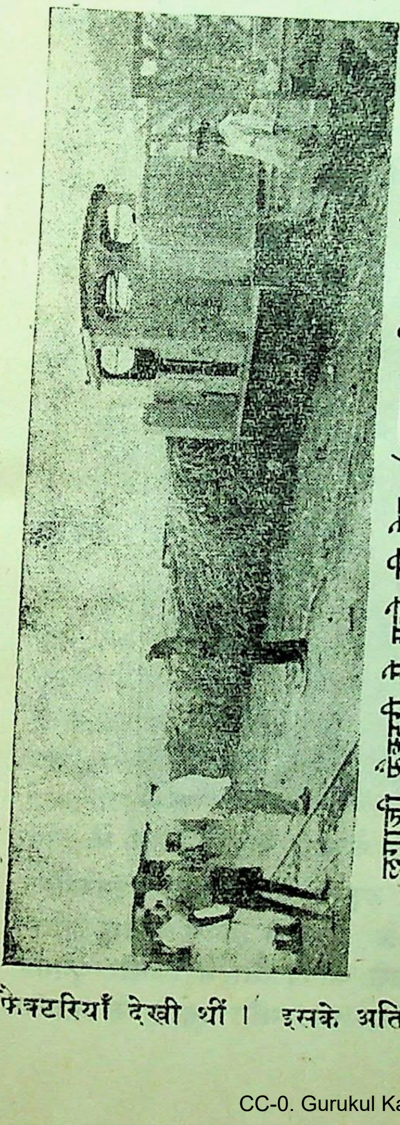
मैने पूछा : 'आदमियों का क्या हुआ?'

'आदमी भोजनागार में सोये थे - इस लिये बँच गये।'

मैने शान्ति का श्वास लिया। प्रभु किस प्रकार बँचाता है! मुझे ज्वर आया, सभी रुक गये। रंग मे भंग पड़ने का सब के मन मे दुःख था। इस बात को सुनते हुये ईश्वर की लीला का भान हुआ। यदि हम गये होते तो सभी साथ ही यात्राधाम कर चुके होते।

सुगर फैक्टरी खड़ी करने में अनेक कठिनाइयाँ थीं। हमारे पास ज़मीन के सिवा कुछ नहीं था। युगण्डा की सरकार से आदेश

प्राप्त करने मे भी कितनी ही कठिनाइयाँ आयीं। फैक्टरी की मशीनरी प्राप्त करने, मशीनरी खरीदने में अर्थ का प्रवन्ध करने, फैक्टरी का मकान बाँधने और साधन-सामग्री तथा कारीगरों के प्राप्त करने आदि तमाम छोटी बड़ी कठिनाइयों मे से हम गुज़रे। उनका अधिक वर्णन न करते हुये इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि हर एक कठिनाई प्रभु-कृपा और पुरुषार्थ से दूर हुई।

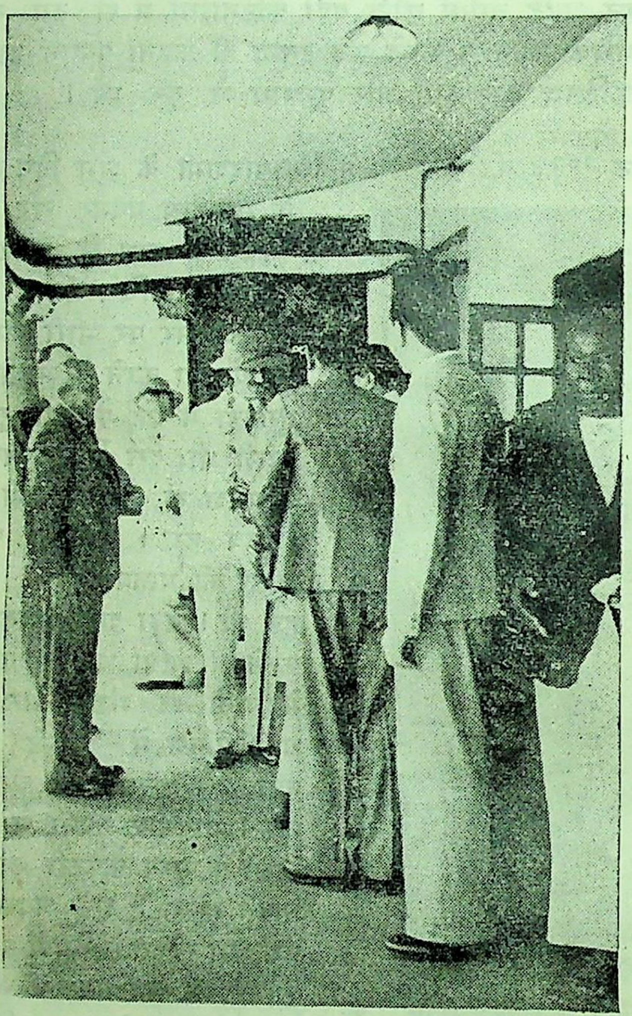


लुगाज़ी फैक्टरी मे गन्ने की ट्रेन (युगण्डा की शुगर फैक्टरी)

सन् १९२४ की अक्टूबर मे विजयादशमी के शुभ दिन युगण्डा के माननीय गवर्नर सर जोफरी आर्थर के हाथ से फैक्टरी की उद्घाटन विधि सम्पन्न हुई। उस अवसर पर भारी समारम्भ की योजना करने में आयी थी। युगण्डा मे यह फैक्टरी सब से पहली थी; इस लिए आसपास के प्रदेश से हज़ारों स्त्री-पुरुष एकत्र हुये। लगभग पचास हज़ार की मानव-मेदिनी इकट्ठी हुई थी। बड़ा शाहमियाना खड़ा करने में आया था। आमंत्रित मेहमानो से मंडप भर गया था। प्रांगण में आदमी समाते नहीं थे। उत्साह-भरे व्याख्यान हुये। माननीय गवर्नर ने भारी खुशी के मध्य फैक्टरी का उद्घाटन किया। इसी अवसर पर एक शुभ संकेत के रूप में आज के फैक्टरी के चेयरमैन चि. धीरेन्द्र के जन्म का मुझे तार मिला।

फैक्टरी चालू हुई। कारखाने के कार्य का मुझे अनुभव नहीं था। थोड़ी सी फैक्टरियाँ देखी थीं। इसके अतिरिक्त प्रत्यक्ष अनुभव नहीं था।

मेरे चाचा जी के लड़के भाई वल्लभदास रूई का कामकाज संभालते थे। मेरे छोटे भाई मथुरादास टाँगानिका का कामकाज संभालते थे। लुगाज़ी फैक्टरी का कार्य मैंने स्वयं अपने हाथ मे लिया।



युगण्डा के गवर्नर लुगाज़ी सुगर फैक्टरी के निरीक्षण में

प्रथम वर्ष कारखाने में पचास हज़ार बोरे खांड उतरेगी–ऐसा हमारा अनुमान था, परन्तु वर्ष के अन्त मे तीस हज़ार बोरे खांड उतरी। मशीनरी मे अथवा हमारी कार्यदक्षता में किसी न्यूनता के कारण खांड नीली निकली। शकर की माँग होने से सारी

शकर वहीं पर खप जाती थी। इस समय केनिया, युगण्डा, टाँगानिका इन तीनो प्रान्तों को मिलाकर समस्त पूर्व अफ्रीका में चालीस से पचास हज़ार बोरी खांड की खपत थी। आज कल १५ से २० लाख बोरी खांड की आवश्यकता है। अन्तिम तीस वर्षों में खांड की खपत तीस गुना बढ़ गई है। हाल में पूर्व अफ्रीका में पाँच बड़ी फैक्टरियाँ चल रही हैं, तिसपर भी पूरा नहीं पड़ता। पाश्चात्य विकास का खांड की खपत के साथ कोई सम्बन्ध हो ऐसा लगता है। हिन्दुस्तान में सन् १९२० के वर्ष में तीन लाख टन की खपत थी। आज सन् १९५४ में १९, २० लाख टन खांड खपती है।



लुगाज़ी यार्ड में गन्ने की ट्रेन (युगाण्डा सुगर फैक्टरी लुगाज़ी)

शुगर फैक्टरी मे वारवार अनेक वस्तुवों की आवश्यकता पड़ती है। उन चीजों को लाकर फैक्टरी को अच्छे पाये पर रखने का प्रयास मैं करता था। मुझे पूरा अनुभव नहीं था, परन्तु "काम काम को सिखाता है" इस न्याय से मुझे अनुभव होता जाता था। इसके लिए बड़े धनकी आवश्यकता रहती थी। बैंकों ने पैसा उधार देना बन्द कर दिया था। जापानी मित्र लोग काटन को पूरा करने भर की लेन-देन करते थे। ऐसे संयोगों में मेरा साहस सबको चिन्ता पैदा करता था।

वड़े भाई कहते थे 'तुम्हारे इस नये साहस में मुझे लगन नही। मुझे देश जाना है'। इस लिए उन्हे देशमें रहने का प्रबन्ध कर दिया। अपने हिस्से का पैसा लेकर ये पृथक् हुये।

छोटे भाई मथुरादास ने कहा 'आप नया काम प्रारंभ करते हो। उसके सफल होने में मुझे शंका रहती है। आपको ऐसा साहस करते रहना हो तो मुझे पृथक् करें।'

'अच्छे घर सब आते हैं कमज़ोर के सभी दूर हो जाते हैं।'

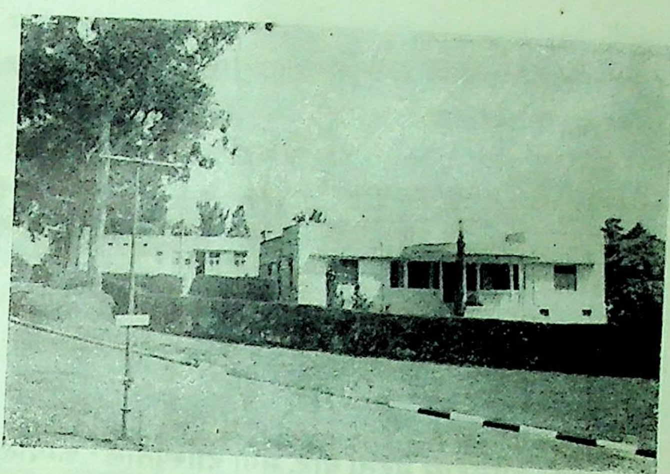
उनकी बात एक प्रकार से सही थी। ऐसे साहसों में हानि-लाभ दोनो ही रहते हैं। जो ऐसे जोखम उठाने को तैयारी हो तभी कोई इस मे साथ रह सकता है। ऐसे विचार करके भाई मथुरादास को टाँगानिका की जीनेरियाँ, पन्द्रह एकड़ मे आये हुये वहाँ के साइसल के प्लाण्टेशन आदि को देकर राज़ी-खुशी से पृथक् किया।

मेरा परिवार मोम्बासा में रहता था। मेरे बच्चे वहाँ पर पढ़ते थे। मेरा बड़ा लड़का चि० खीमजीभाई, मेरे चाचाजी तथा बड़े भाई के पुत्र, मेरे भानजे आदि सभी के पढ़ने की सुविधा अच्छे गृहपति के हाथ के नीचे करदी थी। मोम्बासा का हवा-पानी अच्छा है।

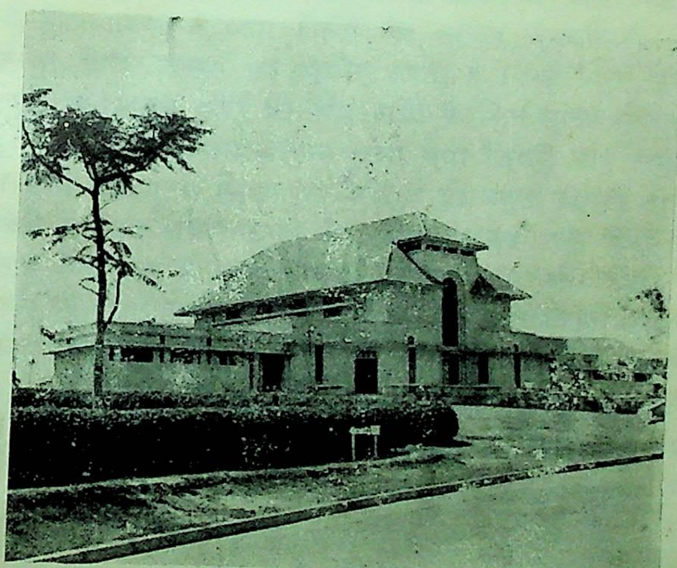
सुगर फैक्टरी सम्बन्धी मेरे विचार भाइयों को शेखचिल्ली-पना जैसे लगते थे। परन्तु प्रत्येक धुनी मनुष्यको अपनी धुन में मज़ा आता है। उसी प्रकार मुझे भी एक प्रकार का आनन्द आता था। हमने प्रारंभ मे बड़ा आँकडा डाला। वर्ष के अन्त में हिसाब करने पर घाटा मालूम पड़ा। इस को पूरा करने के लिए दूसरे कामकाज को कम कर दिया।

मेरे हाथ से सब मिलकर २९ जीनेरियाँ बांधी गईं। ११ जीनेरियाँ रखीं— शेष को धीरे धीरे बेंच डाला। मैंने किसी भी जीनेरी में घाटा नहीं उठाया। घर के आदमियों की सुबिधा न होने से बेंचनी पड़ीं। उनके पीछे मैंने बहुत परिश्रम किया। आज पर्यन्त यदि ये जीनेरियाँ हमारे हाथ में होतीं तो दशगुना लाभ हुआ होता। उस समय जिनकी क़ीमत डेढ़ दो लाख थी वह आज १५ लाखकी हो गई है। इस प्रकार जीनेरी के काम-काज को न्यून करते हुये मुझे दुःख हुआ, परन्तु सुगर फैक्टरी के कार्य को किसी भी क़ीमत पर सफल करने का मेरा दृढ़ निश्चय था।

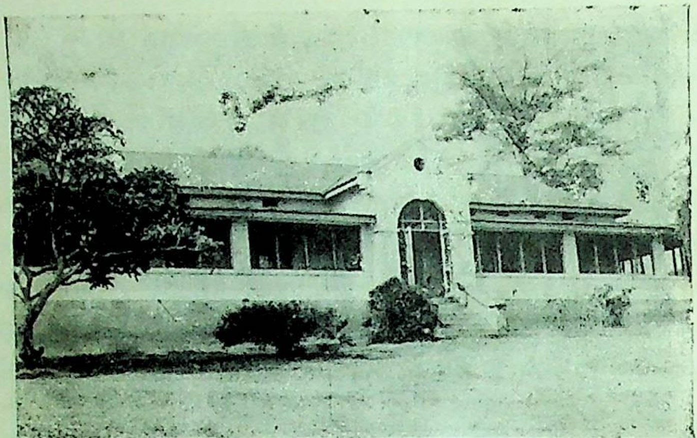
सुगर फैक्टरी मे इतना व्यस्त हो गया कि और कोई वस्तुका ख्याल नही रहा। भूमि, मशीनरी, रेल्वे, मकान, काम-काज के लिए आदमियों आदि प्रत्येक वस्तु में पैसा पानी की तरह डालना पड़ा।



स्वस्तिक भवन, कम्पाला



श्री नानजी कालिदास मेहता म्युनिसिपल टाउन-हाल, कम्पाला



श्री नानजी कालिदास मेहता वार्ड, मेंगो हास्पिताल - कम्पाला



मोसाम्बिया हास्पिताल में 'नर्सेज क्वार्टर'

उसके लिये जीनेरी के ग्रूप वेंचने शुरू किये। जीनेरियाँ बेंचता गया और उस धन के सुगर फैक्टरी में डालता गया। जीनेरी का केवल एक ग्रूप रखा। ऐसा करते हुये १९२७ का वर्ण आया।

हमे विचार हुआ कि हम स्वयं फैक्टरी के विषय में पूरा समझते नहीं— इस लिए जहाँ अच्छी से अच्छी फैक्टरियाँ चलती हों उन्हे देखना चाहिए। मारिशस टापू में गन्ना पर्याप्त होता है और वहाँ पर बड़ें बड़े खाँड़ के कारखाने हैं। इन्हे देखने के लिए मैने मारिशस जाने का निश्चय किया।

सन् १९२७ के जुलाई मास में 'मेसेज़ीज़ मेरी' नाम की फ्रेञ्च स्टीमर में मै मारिशस जाने के लिए मोम्बासा वन्दर से रवाना हुआ। मेरे साथ मेरे मैनेजर मि. रतीलाल देशी थे।

फ्रेंच स्टीमर में खाने पीने की सुन्दर व्यवस्था होती है। इंगलिश स्टीमर की भांति वार-वार पोशाक वदलने की ज़रूरत नहीं पड़ती। स्वच्छ और सादी पोशाक चलती है। फ्रेञ्च लोग खूब मिलनसार होते हैं। उनके मन में काले गोरे का भेद नहीं। खुले हृदय से वे सबके साथ हिलते-मिलते हैं। इस से मुझे स्टीमर मे खूब आनन्द आया।

एक दिलचस्प किस्सा— स्टीमर में कैप्टेन ने हमें कहा कि खाने के लिए प्रबन्ध में आप लोगों के सुन्दर शाकाहारी भोजन बनाकर दे- ऐसी 'परसर' को ताक़ीद करता हूँ। एक दिन शनिवार का दिवस था, डान्स पार्टी थी और सभी के लिए सुन्दर भोजन रखा गया। मेरे लिए भी उत्तम भोजन परसा गया जिसमे था समुद्र से निकला हुआ एक उच्च फिस्म का केंकड़ा जो बहुत क़ीमती होता है और जिसे ये लोग सब्जी मानते हैं। खाते समय तले हुए आलू, मटर तथा ब्रेड बटर के साथ केंकडा भी रखा था और उसे रेक (कांटे) से पकड़ पकड़ कर मेरे और मेरे सेक्रेटरी की रक़ाबी मे डाला। हमने ऊँचा नीचा करके देखा कि यह क्या बला आगई है? बाद मे परसर को बुलाकर पूंछा कि 'यह क्या चीज़ है। इन्होंने कहा कि केंकड़ा है। हमारे सेक्रेटरीने समझा नहीं और दे। एक इंगलिशदानो को वह पूछने गया। इन लोगोंने कहाकि 'यह केंकड़ा है और बहुत ऊँचा खाना है और आप लोग नसीबदार हो कि आज ऐसा उत्तम खाना मिला'। सेक्रेटरी भाई देशी घबरा कर आये और मुझे बोले कि अपनी मेजपर यह नयी आपत्ति खड़ी हो गई है। हमने विनयपूर्वक

उसको लेने से इनकार किया और वापस लेजाने को कहा, इतने मे कैप्टेन आया और हमे कहने लगा— कि "आज खास आनन्द का दिन होने से और आपके हमारे मेहमान होने से आज यह अति उत्तम बानगी आप को देने में आयी है और यह बहुत क़ीमती शाकाहारी भोजन है"। आधे घण्टे तक झक-झक चलने के पश्चात् कैप्टेन ने लाचारी से उन रक़ाबियों को उठवाकर अपनी मेज़ पर रखवाया और बहुत दुःखी होकर कहा कि "महाशय मेहता! आज अवकाश का दिन है। आप लोग कमनसीब हो कि आज अच्छा खाने को आप लोगों को मिला नहीं'। इसके उपरान्त उसने लज्जित होकर माफी मागी। दूसरे दिन उसने कहा कि तुम्हारे देशसे भुखमरी कैसे जावे। आप लोग खाने को जानते ही नहीं। वह स्वयं फ्रेञ्च था इस लिए अंग्रेजी पूर्णरूप से समझ नहीं सकता था। भाई देशी ने उसे भारतीय दर्शन खूब समझाया परन्तु उसकी युक्तियाँ खाने के सम्बन्ध मे और मि. देशी की धर्म के सम्बन्ध में। इस लिये दोनों ही पक्ष एक दूसरे को समझाने में विवश थे। यात्रा मे ऐसी घटनाओं के बनजाने से बहुधा बहुत विनोद होता है।

हमारी स्टीमर जंजीबार, दार-ए-सलाम होकर चौथे दिन मजंगा पहुँची। मजंगा मे हमारे बहुत से पुराने मित्र थे। सन् १९०१ से १९०३ तक हम साथ में खेले कूदे, आनन्द किया— आज उनको मिलने का समय आया। पचीस वर्ष के पुराने अनुभव नवीन हुये। तीन दिन मजंगा में रुके। मित्रोंने भोजन और मिलन-सम्मेलन का प्रबन्ध किया। पुराने स्थलों को फिरसे घूम कर देखा। खूब आनन्द किया।

मजंगा से हम 'नुस्बे' दूसरे दिन पहुँचे। नुस्बे मेडागास्कर का बड़े से बड़ा बन्दर है। वहाँ पर खांड और फलियाँ बहुत होती हैं। वहाँ पर भाटिया गृहस्थ श्री मूलजीभाई जेठा हमारे परिचित थे। उनके घर पर हम भोजन करने गये। सुगर फैक्टरी देखी। दूसरा एक वोरा गृहस्थ स्टीमर पर मिला। वह युगण्डा में जाकर थोड़े समय में जम गया। अफ़सरो में उसका प्रभाव अच्छा था।

नुस्बे का 'चीफ आफ़ कस्टम' फ्रेञ्च सनेगाल का निवासी एक नेटिव था। वह फ्रेञ्च औरत से विवाह किये हुये था। वह बहुत खानदानी और अच्छे स्वभाव का था। उससे परिचय हुआ। उसने हमे अपने घर पर भोजन के लिये आमंत्रण किया। उसकी

भाषा समझ मे नहीं आती थी – इस लिये एक फ्रेञ्च दुभाषिया दोनो को समझाता था। देर तक हम वहाँ पर ठहरे। दूसरे दिन हमने स्टीमर पर दोपहर का भोजन लेने का निमंत्रण दिया।

नुस्वे से चल कर हम टोमेटोई पहुँचे। वहाँ से मेडागास्कर की राजधानी तानानारीव तक रेलवे जाती है। वहाँ पर लौंग, मिर्च, दालचीनी और जायफल की पर्याप्त फसल होती है। हम टोमेटोई में एक दिन रुके। रावल के निवासी एक जातिभाई के घर उसके आग्रह से भोजन करने के लिए गये।

दूसरे दिन टोमेटोई से 'दिगोस' गया। दिगोस का वर्णन आगे मैने दिया है। दिगोस से चल कर दो दिन मे हम 'मारिशस पहुँच गये।

मारिशस ८४० वर्गमील में आया हुआ सुन्दर टापू है। वहाँ ४० से १०० इंच वर्षा पड़ती है। मारिशस टापू मे ९५ प्रतिशत गन्ने की खेती होती है। शेष पाँच प्रतिशत दूसरी चीज़ें बोयी जाती हैं। प्रत्येक वर्ष पाँच लाख टन शकर का उत्पादन होता है। अठारह सुगर फैक्टरियाँ हैं। छोटी फैक्टरियों को तोड़ कर बड़ी बनाते जा रहे हैं। खांड के भाव की दृष्टि से गन्ने का भाव सरकार ने बांध रखा है – इससे कोई झंझट पड़ता नहीं था।

लगभग पाँच लाख की बस्ती है, जिसमे साढे तीन लाख भारतीय, एक लाख नेटिव (पोर्टुगीज़ ईस्ट अफ्रीका से आकर बसे हुये), पचीस हज़ार फ्रेंच अंग्रेज़ा आदि योरोपियन, पन्द्रह से २० हज़ार चीनी आदि विविध प्रजा वहाँ बसती है।

भारतीय भाइयों की अपनी मिल्कियत की ज़मीने हैं – सुखी हैं। फ्रेंच प्रदेश में जातिभेद धर्मभेद जैसी कोई वस्तु मिलती नहीं। हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई – प्रत्येक धर्म के भाई हिल-मिल कर रहते हैं। एक दूसरे के धर्म-मंदिर मे, पर्वों के दिन और सम्मेलन में सभी उपस्थिति देते हैं। हरएक धर्म के मन्दिर हैं।

हिन्दुवों के होली आदि पर्वों को हिन्दू-मुसल्मान मिल कर मनाते हैं। मुस्लिम त्यौहारों में हिन्दू लोग साथ देते हैं। ताजिया मुसल्मान भाई खड़ा करते हैं और छाती हिन्दू लोग पीटते हैं। ऐसी हिन्दू-मुस्लिम एकता मारिशस जैसे दूरवर्ती टापू में हमे देखने को मिली

ऐसी ही एकता का सुन्दर प्रमाण आज से तीस वर्ष पहले

मुझे देश में देखने को मिला था :-

गोराणा के पास पाँच हज़ार की बस्ती वाला रावल गाँव है। वह जामनगर के राज्य के अन्दर था। उसमे अपने माता-पिता के स्मरण में एक कन्याशाला और एक अंग्रेज़ी स्कूल बनवाने का मैंने विचार किया। उसके लिए सन् १९२४ मे स्व. महाराजा रणजीतसिंह जी बापू को मिलने मैं जामनगर गया। इस समय जामनगर के शिक्षाधिकारी श्री भगवानजीभाई दोशी थे। श्री भगवानजीभाई के साथ महाराजा साहेब को मैं मिला। वार्तालाप किया, वे प्रसन्न हुये। उन्हो ने कहा : 'अच्छा स्कूल बनाना। कालावड मे झरिया के कोयले के व्यापारी नन्दवाणा ब्राह्मण की बनवाथी कन्या-पाठशाला को देख आना।'

दूसरे दिन श्री भगवानजीभाई के साथ राज्य की मोटर में मैं कालावड जाने को निकला। श्री भगवानजीभाई की पत्नी ने चलते समय दो नारियल शीतला माता को भेंट करने के लिए दिया। मैंने दोनो नारियल ले लिये। शीतला माता का यह स्थान प्रसिद्ध है। यह शीतला माता का कालावड कहा जाता है। हम कालावड पहुँचे।

नदी के किनारे शीतला का मन्दिर, विशाल प्रांगण, प्रांगण मे छायादार वृक्ष। अन्दर जाते ही गढ़ जैसा दरवाज़ा आया। पुलीस चौकी पर बैठी थी। पुलीस हिन्दू-मुसल्मान दोनो ही थी। हम दरवाज़ा लांघ कर अन्दर गये। रास्ते मे हमें दो-चार मुस्लिमभाई मिले। इस समय महाराजा जामसाहेब बापू का बहुत भय लगता था। घूस के लिये कोई चायी-चुगली कर दे तो पकड़ कर जेल में भेज देते थे। जामनगर मे जीवा सेता का डेला २५० वर्ष से प्रख्यात है। मुझे वातावरण देख कर भय लगा। मन मे आया "कोई षड्यन्त्र तो नहीं है!"

थोड़ा आगे चला। मन्दिर लगभग पचास क़दम दूर था। वहाँ पर मुसल्मान बैठे थे। बड़ी मालायें पहने थे। दो बन्दूकधारी, दो फकीर - इन सब को देख कर मेरी शंका और बढ़ी। मैं खड़ा हो गया। श्री भगवानजी भाई को पूछा -"यह क्या? हिन्दू के मन्दिर मे मुसल्मान चक्कर दे रहे हैं। कोई धोखा तो नहीं?"

श्री भगवानजीभाई ने कहा "यहाँ पर सब भाइयों की तरह रहते हैं। विश्वासघात नहीं करते। आप शंका न लावें।"

"परन्तु इसमें शंका जैसी वस्तु खड़ी हो गई है। सच्ची बात क्या है - यह मुझे बताइये।"

उन्होने पूर्व की सारी हक़ीकत सुनाई: "अपने ऊपर अलाउद्दीन खूनी के समय से बहुत से हमले हो चुके हैं। कितने ही हिन्दू-मन्दिर तोड़ देने में आये। उस समय कालावड के ऊपर भी आक्रमण हुआ। कालावड मे रहने वाले मुसल्मान भाई सेनापति के पास गये। उससे उन्होने कहा कि - शीतला माता को हिन्दू लोग और हम दोनो ही मानते हैं। शीतला सभी को निकलती है इस लिए आप कृपा कर मन्दिर को न तोड़ें।"

सेनापति ने कहा 'इस मन्दिर में दोनो पूजा करो तो न तोड़ूँ।'

गाँव के हिन्दू-मुसल्मान अगुवे एक साथ मिले। उन्होने राय-बात की, निश्चय किया कि - छः छः मास दोनो पूजा करें।

सेनापति ने मन्दिर नहीं तोड़ा। इस प्रकार कालावड का शीतला मन्दिर दोनो के लिए समान पूजा का स्थान बना। आज भी दोनो ही पूजा करते हैं। आय हो तो दोनो समान-भाग से बाँट लेते हैं। हजारों यात्री वहाँ आते हैं। चान्दी का छत्र धरते हैं। भोजन देते हैं। बहुत से अनाथों को सहायता दी जाती है। वहाँ हिन्दु-मुसल्मान एक पंक्ति में बैठकर भोजन करते हैं। दोनो ही साथ बैठकर मनौती करते हैं। फ़क़ीर के हाथ का प्रसाद हिन्दू लोग लेते हैं। हिन्दू पुजारी के हाथ से मुसल्मान लोग लेते हैं। ऐसी एकता देखकर मैं आश्चर्य में पड़ गया।

समस्त भारत में इसी प्रकार से ऐक्य की भावना हो गयी होती तो आजकी स्थिति नहीं आती। भारतमाता के टुकड़े न होते! परस्पर संमान की भावना बढ़ती हुई होती।

कालावड मे सन् १९२४ में देखी हुई धार्मिक ऐक्य की भावना मुझे मारिशस में देखने को मिली। हर एक धर्म के मन्दिर वहाँ पर हैं और एक दूसरे के त्यौहारों के प्रसंग पर प्रार्थना और मिलन में सभी भाग लेते हैं।

मारिशस मे हमारा ठहरना डा. रामा के यहाँ था वे फ्रेञ्च उपाधि धारी वहाँ की धारासभा के सभ्य हैं। सुगर फैक्टरी के मालिक हैं। उनके पिता डा० लक्ष्मण रामा ने १९५७ के ग़दर मे भाग लिया था। डाक्टर रामा को एक सज्जन और संस्कारी भारतीय गृहस्थ के रूप मे प्रतिष्ठा प्राप्त है।

मारिशस में सेठ आर. गजदर, सेठ करीमजी जीवनजी आदि भारतीय व्यापारियों की बड़ी फर्म हैं। हिन्दुस्तान से गये हुये लोगोंने वहाँ पर स्कूल खोले हैं। सरकार उन्हे ग्राण्ट देती है। उनका रहन-सहन भारत जैसा है। कितनों की तीन तीन पीढियाँ हो गई हैं।

मारिशस मे भारत और दूसरे देशों से अनाज आता है। चावल बर्मा से मगाया जाता है। इस टापू को सन् १८१५ में फ्राँस के पास से अंग्रेजोने लिया। इसके बदले में फ्राँस को मारिशस और मेडागास्कर के मध्य में आयी हुअी 'री' यूनियन जिसे 'भुरभें' कहा जाता है— यह टापू ब्रिटिशने दिया। सन् १४९० में वास्को-डी-गामा सर्व प्रथम वहाँ गया था। उसका क्रांस वहाँ है। 'री यूनियन' में एक लाख की बस्ती है, जिस मे ४० से ५० हजार तक भारतीय हैं। फ्राँसीसियों के सुगर प्लाण्टेशन वहाँ पर हैं।

दक्षिण भागमें आये टापुवों मे पर्याप्त वर्षा पड़ती है। साइक्लोन और तूफान बार बार आया करते हैं। मारिशस, री यूनियन, आस्ट्रेलिया, जावा, फार्मोसा, फीलीपाइन्स आदि टापू एक दिशामे आये हैं।

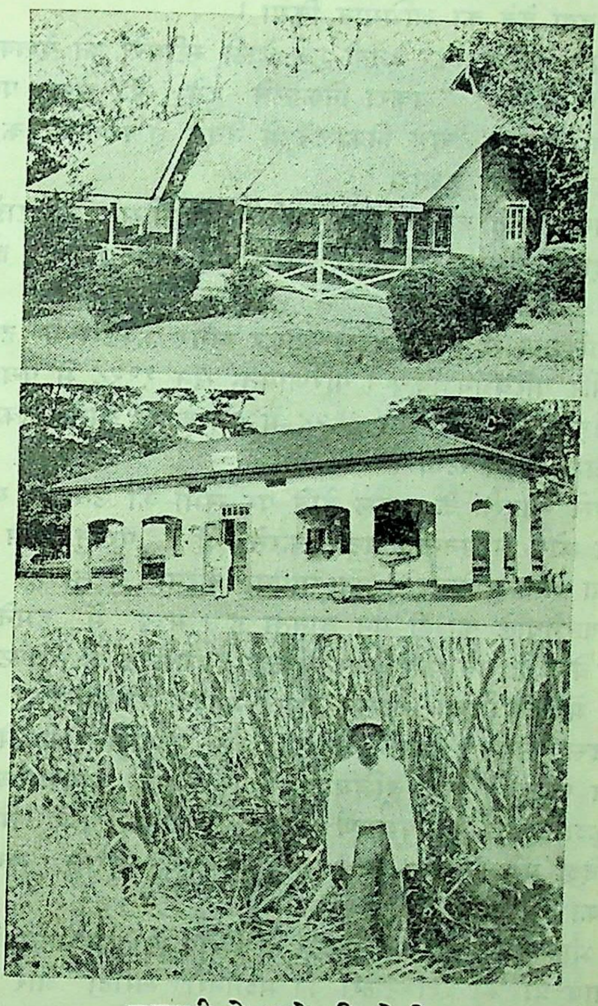
मोरिशस टापू अत्यन्त रमणीय और उपजाऊ पने से भरा हुआ है। नन्दन-वन जैसा टापू है। तारकोल के सुन्दर मार्ग हैं। गत महा युद्ध मे जापान उतरा - इस लिए इस टापू को अन्न के लिए बहुत सहन करना पड़ा। जापान ब्रिटिश स्टीमरोंको तोड़ देता था— इस लिए अन्न की बड़ी कठिनाई उठानी पड़ी।

मोरिशस मे अंग्रेज गवर्नर रहता है। धारा-सभा के सभ्यों मे अधिकाधिक संख्या भारतीयों की है। बहुमत से विधान बनाया जाता है। शिक्षण का परिमाण ७५ प्रतिशत है। हम मोरिशस मे एक मास तक रुके। गन्ने की खेती देखी। हमें उसमें से बहुत कुछ जानने को मिला। खाँड बनाने के लिए पेन बॉइलर लिये। हम जिस स्टीमर में गये थे वही स्टीमर ३५ दिवस योरोप जाकर पीछे आयी। इस स्टीमर में हम मित्रों से शुभ विदाय लेकर अफ्रीका लौटने को रवाना हुये।

हम पीछे फिर रहे थे कि उस समय हमे कितनी ही छोटी स्टीमरें सामने मिलीं। इस विषय मे पूछताछ करते हुये हमे एक विनोदात्मक बात जानने को मिली।

मोरीशस टापू जब फ्राँसीसियों के हाथ में था तो वहां चूहों की

भरमार थी। खेती की फस्ल को चूहे उस समय हानि पहुँचाते थे। अंग्रेजों के हाथ में इस टापू के आने के बाद उन्हो ने चूहों का विनाश करने की एक युक्ति ढूँढ़ निकाली।



लुगाज़ी मे गन्ने की खेती

हिन्दुस्तान से २५ हजार नेवले पिंजरे मे भर कर लाये गये। गन्नेकी खेती में उन्हे खुला छोड़ दिया।

नेवलों ने चूहों का नाश कर दिया। परन्तु इन नेवलों का परिवार द्रुतगति से बढ़ गया। लाखों की संख्या में नेवले बढ़ गये

और ये गन्ने को खाने लगे। इतना ही नहीं बल्कि पाले हुये मुर्गे और कुकड़ों को भी खाने लगे। सरकार चिन्ता मे पड़ी। उसने नेवलों को पकड़ डर पिंजरे मे भर कर छोटी स्टीमर से लेजाकर समुद्र में डुबा देने का अभियान किया।

नेवलों को डुबाकर आती हुई छोटी स्टीमरों को देखकर हमने यह विवरण सुना। "बकरा निकालते हुये ऊँट घुस पड़ा" इस कहावत के अनुसार "चूहे निकालने में नेवले घुस आये" का किस्सा सुनकर हमें कुतूहल हुआ।

वापस आते हुये हमारी स्टीमर दिगोस, टामेटाई, बुम्बे, मजंगा, दार-ए-सलाम, जंजीबार आदि बन्दरगाहों से होती हुई मोम्बासा पहुँची।

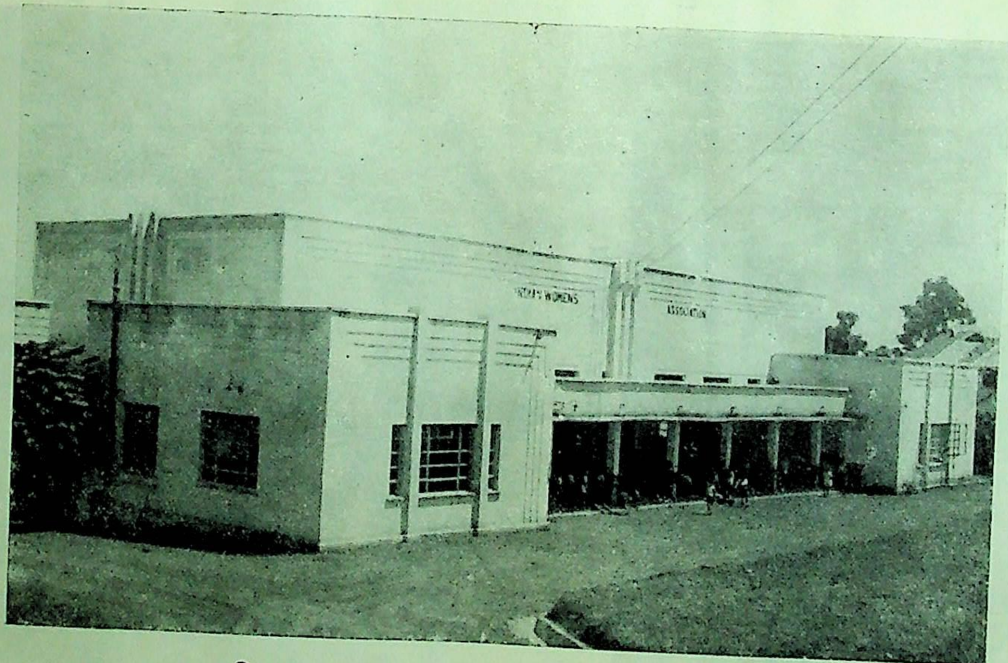
मोरिशस से पीछे वापस आकर सुगर फेक्टरी मे हमने बहुत सुधार और परिवर्धन किये। परिणामतः सन् १९२८ मे पचास हज़ार बोरी खाँड उतरी और सन् १९२८ मे ७५ हजार बोरी तक पहुँची। हमारी श्रद्धा बढ़ने लगी।

ऐसे साहसों के सफल होने पर सभी का उत्साह बढ़ता है। बहुत से लोग अभिनन्दन प्रदान करते हैं। परन्तु इस में जिस मनोव्यथा और कठिनाइयोँ का सामना करना पड़ता है वह ऐसे साहस करनेवाले का ही मन जानता है। मध्य में हमने थक कर फैक्टरी बेंच डालने का विचार किया। इंगलैण्ड के एजेण्ट को इस सम्बन्ध में पत्र लिखा। उसने हमारे मैनेजर को इंगलैण्ड बुलाया।

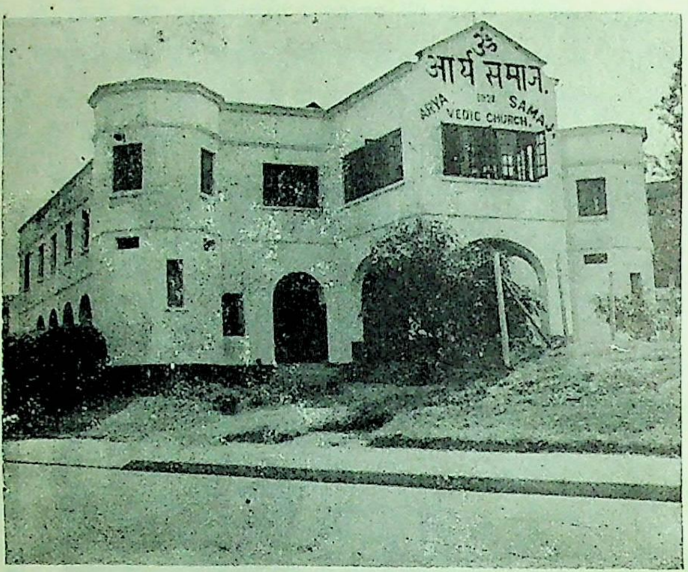
इस समय हमारे मैनेजर श्री. पुरुषोत्तम डी. मेहता थे। वे बहुत परिश्रमी और बुद्धिमान् थे। हमारे कार्यकर्त्तावर्ग में उन जैसा कुशल और कार्यपरायण मैनेजर आजतक हमें मिला नहीं। वह विदेश गये। तीन मास वहाँ पर रुके परन्तु सुगर फैक्टरी बेंचने का सौदा नहीं हो सका।

भाई श्री पुरुषोत्तम मेहता ने योरोप से आल्कोहल निकालने के लिए बाय-प्रोडक्ट डिस्टिलरी की मशीनरी खरीदी और युगण्डा में वापस आकर उसे चालू किया। माननीय गवर्नर गावर्स के हाथों से उसका उद्घाटन कराया।

ऊपर बताये अनुसार सन् १९२८-२९ के दो वर्ष ठीक गये। खांड का उत्पादन धीरे धीरे बढ़ने लगा। हमे कुछ राहत मिली। रूई के कामकाज में घोर स्पर्धा चल रही थी। जीनेरी वाले स्पर्धा



इण्डियन वीमेन्स एसोसियेशन हाल, कम्पाला



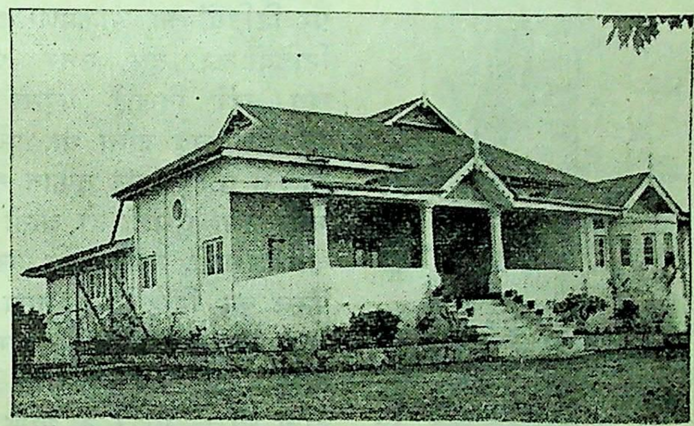
आर्यसमाज, कम्पाला



अ. सौ. सन्तोकबेन मेहता आर्यकन्याशाला, कम्पाला

करके थक गये। सिण्डीकेट बने तो अच्छा ऐसा सभी चाहते थे। उसके लिए प्रयास प्रारंभ हुआ।

इन दिनो मेरे ऊपर काम का भार अधिक था। लगभग १८ घण्टे फैक्टरी में काम करता था। निद्रा और आराम के लिए बहुत थोड़ा समय मिलता था। परिणामस्वरूप मेरी अंतड़ी बिगड़ गई, अन्दर में सोजिश चढ़ गई है - ऐसा डाक्टरों का अभिप्राय मिला। शरीर को आवश्यक आराम मिलना चाहिए ऐसी स्थिति आयी, खूराक पूरी ली नहीं जाती थी, लेवें तो उल्टी होकर बाहर निकल जाती थी। देश मे अथवा अफ्रीका मे आराम मिल सके ऐसा नहीं था - इस लिये योरोप जाने का विचार किया। जर्मनी की राजधानी बर्लिन मे डाक्टरी उपचार और आराम लिया। तदनन्तर मैंने प्रवास किया और देखने योग्य स्थानों को देखा। इसका विस्तृत वर्णन मैंने अपनी 'योरोप का प्रवास' नाम की



पुराना लुगाज़ी का बंगला

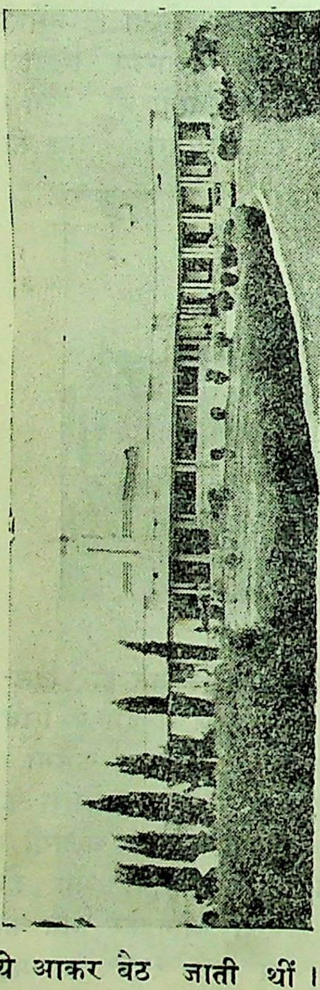
पुस्तक में दिया है। उसमे से नमूने के रूप में कितने ही दिलचस्प वर्णन - उपयोगी प्रसंगों को पृथक् प्रकरण में देने के लिये रख कर यहां पर लुगाज़ी सुगर फैक्टरी का इतिहास पूरा करूँगा।

सुगर फैक्टरी के कार्य के सिलसिले में मुझे डेढ़-एक मास के लगभग लंडन मे रुकना पड़ा। फैक्टरी बेंचने की बात चलायी। इतने मे मज़दूर सरकार सत्ता मे आयी। हमारी योजना भंग हो गई, इसमे भी कोई ईश्वरी संकेत होगा - ऐसा मान कर मन को सन्तोष दे हटा लिया। हम पीछे फिरे। मै सन् १९२९ के मई

मास मे योरोप गया था और उसी वर्ष नवम्बर मास में वापस आया।

योरोप का सुन्दर वायुजल, निष्णात डाक्टरों का उपचार, आनन्दमय वातावरण, मस्तिष्क पर किसी भार का न होना, नवीन वस्तुवों का देखना और जानकारी प्राप्त करना, नये परिचय करना– आदि से इस प्रकार मेरा शरीर पहले की अपेक्षा अच्छा हो गया। १५ पौण्ड वज़न भी बढ़ गया।

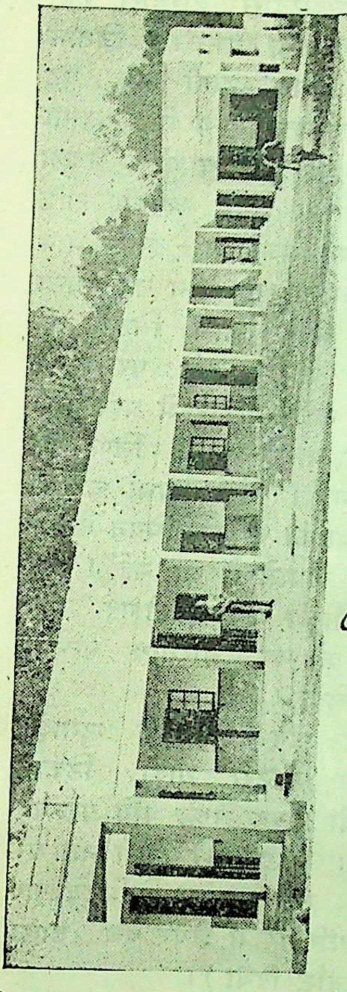
युगण्डा आकर सुगर फैक्टरी में मन लगाया। हमे बहुत काफी अनुभव मिला था। साधन भी बढ़ गये थे। कुशल आदमी भी मिलने लगे। इस लिए फैक्टरी को अच्छे पाये पर लाने की संपूर्ण आशा थी – परन्तु इतने में एक कुदरती आफ़त आयी।



लुगाज़ी का नया बंगला

सन् १९३० से १९३२ पर्यन्त केनिया, युगण्डा और टाँगानिका पर टिड्डियों का आक्रमण हुआ। टिड्डियों का दल उतर पड़ा। सूर्य नहीं दिखाई पड़ता था, अन्धकार चढ़ जाता था, सौ सौ मील मे टिड्डियों का तूफान चढ़ता था, आभा धुंधली हो जाती थी, काफी, मक्की, गन्ने आदि समस्त फस्ल का टिड्डियों ने नाश कर दिया। जहां भी देखें मार्ग पर टिड्डियों की चटाई जैसी बिछी होती थी। मोटर के नीचे एक एक फ़ीट का पर्त जम जाता था। रेलवे की लाइन पर भी टिड्डियों की चटाई सी बनी हुई थी। रेलवे बन्द कर दी जाती थी। किसी किसी समय ज़मीन न दिखाई पड़ती और एक्सीडेण्ट हो जाता था – ऐसी टिड्डियाँ छायी हुई थीं। मीलों पर्यन्त वृक्ष पर ये आकर बैठ जाती थीं। इनके भार से वृक्ष टूट पड़ते थे।

फस्ल का तो विनाश हुआ ही परन्तु घास का एक तिनका भी नहीं रह गया। जानवर मरने लगे। टिड्डियों का ऐसा उपद्रव मैने प्रथम वार देखा।



इण्डियन स्कूल, लुगाज़ी

टिड्डियों की उत्पत्ति दीमक से होती है। ये टिड्डियाँ अबिसीनियाँ, ट्रान्सकमोरिन की तरफ़ से आयी थीं – अपने यहाँ बलूचिस्तान से आती हैं। कपास की फस्ल को कुछ थोड़ी हानि हुई। गन्ने के विना फैक्टरी कैसे चले? एक साधे–तेरह टूटे–ऐसी स्थिति हुई। मशीनरी तैयार हुई तो ईख न मिले। मेरे पास प्रारंभ मे चार हज़ार एकड़ भूमि थी। उसे बढ़ाकर बारह हज़ार एकड़ कर दी। आठ रोलर की मिल थी–चौदह रोलर की कर दी।

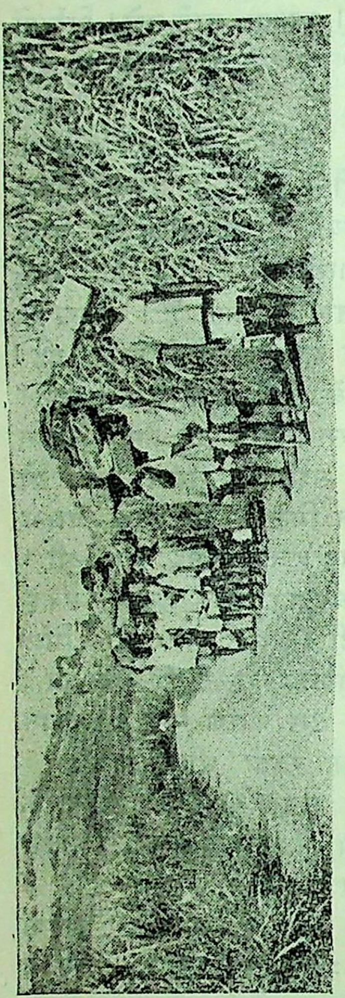
इस कारण गन्ने की खपत अधिक रहती थी।

सन् १९३० में टिड्डियों के कारण पहले वर्ष की अपेक्षा आधा उत्पादन हुआ।

बीच में युगण्डा, केनिया और टाँगानिका हरएक प्रान्त में एक एक इस प्रकार तीन सुगर फैक्टरियाँ डालने में आयीं। सेठ विट्ठलदास हरिदास ने छोटे पाये पर फैक्टरी शुरू की। उसमे भी स्पर्धा चली। खांड अधिक रहने लगी, इस लिए विलायत भेजना प्रारंभ किया।

खांड में स्पर्धा न हो इस लिए सिण्डीकेट करने का विचार किया। सभी फैक्टरियों के मालिक इकट्ठे मिले, विचार–विनिमय किया। जितनी खांड उत्पन्न हो – उसीके अनुसार सब का भाग हो। भाग मे स्पर्धा नहीं करनी चाहिए। तीन योरोपियन कम्पनी के

साथ सिण्डीकेट में मैं मिला। परन्तु ककीरा सुगर फैक्टरी वाले सेठ विठ्ठलदास हरिदास नहीं मिले। उनकी फैक्टरी में जितनी खांड उत्पन्न होती थी, वह स्थानीय बाज़ारों मे बिक जाती थी। उन्हे भाव भी अच्छा मिलता था। हम अपनी खांड विलायत भेजते थे – इससे भाव कम आता था। तीन वर्ष पर्यन्त उन्हे अपने साथ मिलाने की हमने कोशिश की, परन्तु वे मिले नहीं। ककीरा मे बड़ी मिल डाली और अन्त मे सिण्डीकेट टूट गई। भारी स्पर्धा चली। केनिया की दो योरोपियन फैक्टरियाँ दीवाले में आ गईं। एक स्थायीरूप मे वन्द होगई और एक को एक भारतीय बन्धु ने ले लिया।

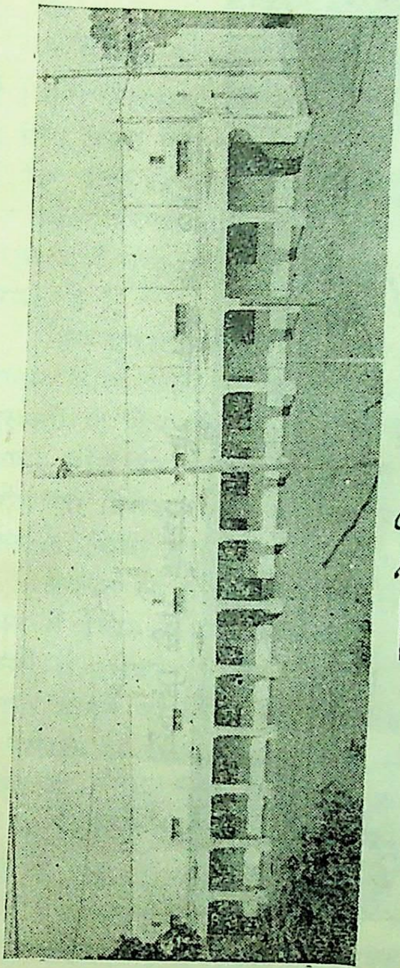


लुगाज़ी फैक्टरी : गन्ने के खेत में काम करते हुए मजदूर

सन् १९३३ मे लुगाज़ी सुगर फैक्टरी थोड़ी ठिकाने आयी। यह अच्छे पाये पर पड़ गई। फैक्टरी मेरे निजी नाम पर थी। उसे प्राइवेट लिमिटेड कर के परिवार मे शेयर बेंच डाला (बाँट दिया)।

किसी भी काम अथवा व्यापार सम्बन्धी साहस को एक बार चलाया तो फिर उसे किनारे पर लेजाने के लिए रक्त की अन्तिम बूँद तक लगा देना – यह मेरे स्वभाव की विशेषता है। सुगर फैक्टरी को इतने विस्तार के साथ इसी लिये लिखा है। जिंजा से कम्पाला जाते हुये मार्ग में इन पहाड़ियों को जब देखता था तो सुन्दर लगती थीं। वहाँ मकान करके रहने मे बहुत पसन्द था। गन्ने की खेती की। मशीन खरीदी। फैक्टरी बाँधकर बड़ा सम्मेलन

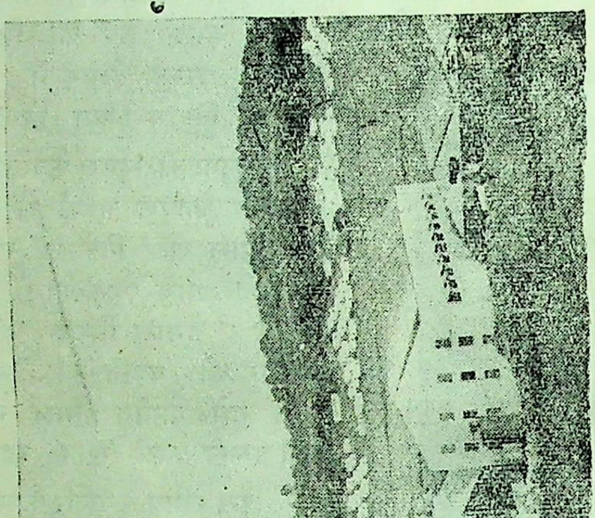
किया, उसे खुली किया, इतना काम सरल था। 'आरंभे शूराः' की कहावत के अनुसार इतने आरंभिक कार्य पर्यन्त सभी को उत्साह रहा। परन्तु ज्यों ज्यों कठिनाइयाँ आती गईं त्यों त्यों सब भागने लगे। बड़े भाई और छोटेभाई सब भाग गये। दूसरे साथीदार लोग ऊब गये और अन्त में थक कर फैक्टरी बेंच डालने तक का विचार किया। परन्तु ईश्वर ने कुछ और ही निश्चय किया होगा।



स्टाफ के लिए क्लब, लुगाज़ी

लुगाज़ी सुगर फैक्टरी को बढ़ा कर वार्षिक अढ़ाई से तीन लाख बोरी खांड निकाल सकें—ऐसे बड़े पाये पर आज चल रही है। हमारा विचार इसके विस्तार को बढ़ाने का था। परन्तु हमें ज़मीन मिल नहीं सकी इससे कार्य रुका रहा।

इस समय लुगाज़ी फैक्टरी के पास १५ हज़ार एकड़ ज़मीन है। सवा सौ मील की रेलवे है। सात सौ आठ सौ ट्रक हैं। १५ लोकोमोटिव हैं, तीस ट्रैक्टर, तीन चार अंग्रेज़, साढ़े तीन सौ भारतीय और लगभग हज़ार नेटिव वहाँ काम करते हैं। कारखाना के कर्मचारी वर्ग तथा मज़दूरों के लिये पक्के मकान हैं। एक सौ चारपाइयों वाला अस्पताल है, सुन्दर स्कूल है। स्कूल में तीन सौ बालक पढ़ते हैं। क्रीकेट ग्राउण्ड, क्लब, पुलिस चौकी, तार-पोस्ट आफिस आदि का सारा प्रवन्ध लुगाज़ी कस्बे में है। स्टेशन का नाम कावडो है। जिंजा और कम्पाला (५० मील) के मध्यभाग में मुख्य मार्ग के ऊपर लुगाज़ी सुगर फैक्टरी आयी हुई है।



हुगाज़ी शुगर फैक्टरी और फैक्टरी का लेबर कैम्प

योरोप की यात्रा

योरोप के हरएक प्रवासी के प्रवास का हेतु निराला होता है। कोई विद्याभ्यास करने के लिए जाता है, कोई स्वास्थ्य सुधारने के लिये जाता है, कितने ही लोग परिषदों और कमीशनो में जाते हैं और बहुत से तो योरोप की भौतिक मौज-शौक उड़ाने जाते हैं। इस प्रकार हरएक यात्री भिन्न भिन्न कारणों से योरोप का प्रवास करता है। तथा अपने हेतु के अनुरूप दृष्टि से वहाँ का निरीक्षण करता है।

इस प्रकार योरोप का प्रवास करने मे मेरा प्रधान हेतु वहाँ के व्यापार और हुन्नर-उद्योगों को आँख से देखने और अपने निजी कारखाने के लिए कितनी भारी मशीनरी चाहिए इसे स्वयं दृष्टि से देखकर जाँच कर खरीदने का था। इस लिए अपनी यात्रा में मैने योरोप का निरीक्षण केवल एक व्यापारी और एक कारखाने वाले की दृष्टि से किया है।

बचपन से ही देशाटन का मुझे भारी चाव था और मेरे जीवन में ईश्वर ने मुझे बहुत से देशों के देखने का लाभ दिया है जिससे मै उसका उपकार मानता हूँ। देशाटन करने से मुझे जितना जानने को मिला है उतना जानने को मुझे किसी कालेज की परीक्षा को देकर डिग्री लेने से भी नहीं मिल सकता था - ऐसा मानता हूँ। मैने जिन जिन देशों को देखा है उन्हे केवल देखने मात्र के लिए ही नहीं देखा है अपितु विशेष कर व्यापारी दृष्टि-बिन्दु से देखा है और यह यात्रा भी मुख्यतः इसी हेतु से की है।

मेरे जीवन का भारी हिस्सा लोहा-लकड़ी, सीमेण्ट-कंकरीट, इञ्जिन, बाइलर, पम्प, रेलवे की सड़क, कपास-रूई, केतकी, तेल, गुड़, खांड, गन्ने आदि में बीता है। मेरे जीवन का यह मुख्य व्यवसाय है। इस लिए योरोप के प्रवास में मेरी दृष्टि हमेशा मेरे इस व्यवसाय से सम्बद्ध क्षेत्रों की ओर आकृष्ट हुई हो तो यह बिल्कुल स्वाभाविक ही है। जिन जिन देशों में मैं घूमा हूँ, छोटे

मोटे शहरों को मैंने देखा है - वहाँ सर्वत्र उन उन स्थलों के व्यापार, गृहोद्योग, वहाँ की कृषि और कारखाने आदि सब ने मेरे प्रथम लक्ष्य को खींचा है।

इसके उपरान्त मेरा दूसरा उद्देश्य योरोप के लोगों के रहन-सहन, रीति-रिवाज़, व्यवहार की कुशलता, शौर्य, संस्कृति और सौजन्य को अपनी दृष्टि से देखने का था। योरोपीय राष्ट्रों की जनता अपने स्वातंत्र्य और स्वमान को संभाल कर निरन्तर प्रगति करती रही है। इन सब विशेष गुणों के परिचय करने और अभ्यास करने की वृत्ति भी इस यात्रा का एक हेतु था। इस दृष्टि से योरोप के जिन जिन राष्टों को मैंने देखा है उनकी समस्त प्रवृत्तियों, उनके इतिहास और उनकी उच्च संस्कृति और सौजन्य को, उनके मौज-शौक, विलास और उनकी न्यूनतावों का यथाशक्ति वर्णन मैंने यहाँ संक्षेप में देने का प्रयास किया है।

भारतवर्ष की प्राचीन और अर्वाचीन संस्कृति में बेशक अनेक ऐसे तत्त्व हैं कि जो संभाल रखने जैसे और खिला हुआ करने जैसे हैं परन्तु उनके साथ-साथ योरोप की संस्कृति से भी ऐसे ही सुन्दर और उच्च तत्त्व योरोप प्रजावों के पास से अपने लिए सीखने जैसे हैं। इन प्रजावों में एकता, स्वाभिमान, सौजन्य, व्यवहार-कौशल, शौर्य, साहस, देश-प्रेम, सचेतता, प्रस्तुतपना, नियमितता, प्रमाद अथवा आलस्य का अभाव, स्वाथ्रय आदि अनेक उच्च लक्षण हैं कि जिन्हे उनके पास से हम सीख कर आचरण करें तो इसमे अपनी कोई हानि नहीं बल्कि अत्यन्त लाभ ही है।

ईश्वर की कृपा से बहुत समय से निर्धारित की हुई योरोप के यात्रा की यह मुराद अन्त में पूरी हुई। १९२९ मे पहली तारीख के दिन दोपहर को साढ़े बारह बजे अपने कुटुम्ब तथा मित्रमंडल के आशीर्वाद को लेकर इटैलियन स्टीमर 'मेजीना' मे मोम्बासा के किनारे से हम रवाना हुये। भाई पुरुषोत्तम जी दासाणी मेरे साथ थे। वे मिल-उद्योग के अभ्यास के लिए पहले भी इंगलैण्ड में रह आये थे। इस लिये योरोप के प्रवास की आवश्यक तथा ज्ञातव्य कितनी ही बातें उनके पास से जान लीं थी।

सायंकाल चार बजे चाय पिया। रात्रि मे खाने का समय साढ़े सात बजे था। खाने की मेज़ के ऊपर डिनर-सूट पहन कर उपस्थित होना चाहिए। वस्तुतः पश्चिम के रहन-सहन समय-समय

के अनुसार पोशाक बदलना, यह मुख्य तत्त्व है। इसके अनुसार मेरा दिवस में पाँच-छ समय सिर का बाल संवारने और घूमने-घामने में बहुत सा समय निकल जाता था। हमारे साथ के यात्री मुख्यरूप से योरोपियन थे इस लिए विशेष करके हम भारतीयों को योरोपियन रीति-रिवाजों और पोशाक का ज्ञान नहीं - ऐसा ख़्याल उनके मग़ज़ मे न बैठ जावें इसके लिए विशेष सचेत रहना पड़ता था। डिनर सूट मे कड़कदार स्त्री की हुई लकड़ी जैसी कमीज़ और वैसा ही कालर पहनने को था। इस कपड़े को पेटी मे से पहनने को निकाला तो प्रथम उसे देखकर ही अनिच्छा पैदा हुई परन्तु पहनने के विना छूट नहीं थी। कालर मे बटन आती नहीं। बटन आवे तो टाई ठीक पहनी नहीं जा सके। आधा घण्टा सिरफोड़ करने के बाद जैसे तैसे पोशाक पहन कर खिन्न मन से मैं मेज़ पर गया।

मेरे सेक्रेटरी मि० दासाणी मेरे साथ थे- उनसे मैंने पूछा कि 'सेकण्ड क्लास के भोजन कक्ष में आकर भोजन करने में अधिक सिर फोड़ न करनी पड़े तो भोजन करने वहीं पर चलें'। उन्हो ने मुझे बतलाया कि— प्रथम श्रेणी के यात्रियों को द्वितीय श्रेणी के भोजनागारमे भोजन मिल नहीं सकता। स्वयं नक़्काल अथवा रट्टू वेदपाठी जैसे रहे। गले मे कड़कदार कालर डाला था इससे मालूम पड़ता था कि किसी ने गला सख़्ती से बाँध लिया हो ऐसा लगे। मुझे मन में ऐसा हुआ कि जल्दी खाने को मिल जावे यह स्वांग उतार कर मुक्त हुआ जावे। साथ ही ऐसा भी विचार हुआ कि पोशाक के विषय में टीपटाप और कठिनाइयाँ इस गोरी प्रजाने जानबूझकर क्यों पैदा की है ?

हमारे वास्ते खाने के लिए एक अलग मेज़ का दो मनुष्य भर के लिए ही प्रबन्ध किया गया था। स्टीमर के मनुष्यों को अपनी आवश्यकता के विषय में संकेत से जितना समझा सकें समझाने को था क्यों कि सारे कर्मचारी वर्ग में एक दो के सिवा किसी को अंग्रेज़ी आती नहीं थी। खूराक मे हमारे अपने साथ मे लिये हुये दाल-चावल को रसोइया पका लाता था। भात मे आधा-आधा पानी रह जाता था और दाल की 'करी' बन जाती थी। उसमे आधा पौण्ड मसाला डाल दिया गया होता था। ब्रेड और मक्खन के साथ दो चमचा चावल खाकर सायंकाल का भोजन समाप्त किया और साथ मे लिये हुये फलों से शेष भूख को तृप्त किया।

दूसरे दिन प्रातःकाल के नाश्ते के समय रात्रि की ही भाँति चला। १२ बजे कीसमायु बन्दर पहुँचा। इस बन्दरगाह पर स्टीमर तीन ही घण्टे खड़ी होने वाली थी जिससे क़स्बे में जाने का समय नहीं था। तीन बजे स्टीमर रवाना हुई। रात्रि के समय नाटक के पात्रों की भाँति 'डिनर' के लिए पोशाक बदलने का हमारा कर्यक्रम शुरू हुआ। नवीन रहन-सहन सीखने मे इतनी कठिनाई तो पड़ती ही है, परन्तु आज यूरोपियन पोशाक का पूरा-पूरा अनुकरण करके मैं समय से मेज़ पर उपस्थित हो सका, केवल चमड़ी के गेहुँवे रंग के बदल कर गोरा नहीं कर सका। आज रात्रि की खूराक में 'वेटर' को हमने सिखाया था इस लिये सूखी दाल और भात, तले हुये आलू, आदि थे। समुद्र की प्रसन्नता देने वाली हवा से आज भोजन कुछ ठीक भी लगा। रात्रि मे स्टीमर पर सिनेमा चालू था उसका आनन्द थोड़े समय तक लेकर सो गया।

स्टीमर पर सारा प्रबन्ध बहुत ही सुन्दर था, सरस डॅक, म्यूज़िक सैलून, स्मोकिंग सैलून, खेलकूद, बाथ वगैरह बहुत अच्छे थे। परन्तु अंग्रेज़ी भाषा कोई समझता नहीं था। यह कठिनाई बहुत खलती थी। केनियाँ के अंग्रेज़ सेटलर थे, उन्हे हमारे साथ बोलने मे छूत लगती थी।

तारीख़ ११ वीं को हम लाल समुद्र में पहुँचे। तीसरे दिन स्वेज़ नहर मे दाखिल हुये। स्वेज़ से विशेष मोटर लेकर हम मिश्र की राजधानी कैरो देखने गये।

कैरो यह संसार का अति प्राचीन और ऐतिहासिक नगर है। जिस जमाने मे यूरोप जंगली देश गिना जाता था उस समय मे भारत, मिश्र, बेबीलोनियाँ, असीरिया आदि संस्कृति की चरम सीमा पर पहुँचे हुये थे। तथा मिश्र की राजधानी कैरो की पूरी समृद्धि थी। आज भी यह प्राचीन नगर अपने गर्भ में छिपाये शताब्दियों के इतिहास के साथ वैसा ही खूबसूरत खड़ा है और पश्चिम के हाल के वातावरण और प्रबन्ध-सामग्रियों से भरपूर बन रहा है। कैरोकी बस्ती इस समय २५ लाख मनुष्यों की है। विस्तृत पक्के मार्ग, चाकचक्य मय बाज़ार, मोटर और ट्रामकी भरमार आदि बम्बई फोर्ट के रास्तों को भुलवा दें वैसे देखे। मिश्र की रंग-बिरंगी मिश्रित प्रजा के सुन्दर और बलवान् पुरुषों, स्त्रियों और पाठशालावों में पढ़ते बालकों को मार्ग में उत्साह भरे हुये इधर-उधर आते जाते देखा। साढ़े ११

बजे कैरो के विश्वविख्यात म्यूज़ियम को देखने गया। मिश्र के पुरातन बादशाह तुतन खामन के पिरामिड से निकाली असंख्य पुरातन वस्तुवों से यह म्यूज़ियम तीस विशाल कक्षों जितना भरा है और अभी तो भण्डार में से बहुत थोड़ा सामान हाथ में आ सका है-ऐसा माना जाता है। स्वर्ण के असंख्य आभूषण, भिन्न भिन्न प्रकार के शस्त्र, मूर्त्तियाँ और ऐसी दूसरी अनेक वस्तुवों का वर्णन करने से उनका खरा ख़्याल दिया जा सके - वैसा नहीं।

एक होटेल मे भोजन करके डेढ़ मील ऊँट पर यात्रा किया। दो बजे विश्व के सात महान् आश्चर्यों में एक आश्चर्य मिश्र के पिरामिड को देखने गया। यहाँ पर हमारी टुकड़ी के सभी व्यक्ति एकत्र हो गये और सब ने एक साथ एक ग्रूप फोटोग्राफ लेवाया। उसमे से केनिया के 'सेटलर' महाशय अपनी औरतों के साथ पृथक् हो गये। भारतीयों के साथ एक पंक्ति मे खड़े रहने मे भी उन्हे बाधा आजावे खरी बात है न?

विश्व के गौरवरूप माने जाते हुये मिश्र के पिरामिड का वर्णन अनेक यात्रियों के वृत्तान्तों, उपन्यास की पुस्तकों और इतिहास की पोथियों में लिखा हुआ है उसकी इस जगह पर पुनरुक्ति करना आवश्यक नहीं। यह मीनार ४०० फ़ीट ऊँची और ८०० फ़ीट चौड़ी बांधी गई है। इस पिरामिड की चुनवायी मे ३० वर्ष का समय लगा, उसकी चुनवाई के काम में लाखों गुलामों को लगाया गया जिनकी जान इस काम को करते हुये ही गई। असल रिवाज़ यह था कि जिस बादशाह के लिये पिरामिड बनाया जा रहा हो उसके मर जाने पर इन चिनाई के काम करने वालों को नाइल नदी मे डाल देने मे आता था। यह पिरामिड नाइल नदी से एक मील के अन्तर पर आया है। वहाँ से नाइल नदी के ऊपर दो सुन्दर पुलों को देखा। पुल के ऊपर ब्रिटिश सोल्जरों का मज़बूत चौकी पहरा रहता है। कैरो शहर की जनता स्वभावतः जोशीली होने से बात बात में मारा-मारी पर उतर पड़े ऐसा भय रहने से चारों तरफ़ शहर में सदा घोड़सवार हथियारबन्द पुलीस फिरती रहती है और योरोपीय पोशाक पर सिर के ऊपर तुर्की टोपी लगाये हुये यह पुलीस दिखावे में बहुत सुन्दर लगती है। जहाँ विशेष भय जैसी कोई बात लगे उस स्थल पर सोल्जरों की चौकी रखने में आती है।

नाइल के किनारे आयी हुई विख्यात मस्जिद, राजा का महल,

स्कूल, विश्वविद्यालय और बड़े बाज़ारों को देखा। छोटे गली-कूँचो मे भी मोटर फिराया।

मिश्र मे प्रतिवर्ष १५ से २० लाख गाँठ रूई पैदा होती है और वह समस्त दुनियाँ में प्रथम पंक्ति की ऊँची से ऊँची रूई गिनी जाती है। सुडान में भी रूई की पैदावार एकाध दशक में अच्छी हो जावेगी ऐसा अनुमान करने में आता है। मिश्र में मील के मील पर्यन्त नहरों के पानी से खेती करने में आती है और हरएक स्थान पर रेलवे का प्रबन्ध हो चुका है।

इजिप्त अथवा मिश्र यह नाइल के पानी से सोना उत्पन्न करने वाला नन्दन-वन ही है। नाइल नदी का उद्गम युगण्डा में प्रारंभ होता है परन्तु वहाँ उसका कोई उपयोग होता नहीं – कोई मूल्य नहीं – जब कि मिश्र के लिए नाइल नदी अमृत दुहने को कामधेनु के समान हो गई है। इस नाइल के पानी के प्रताप से ही मिश्र मे करोड़ों रूपयों की रूई पैदा होती है। उस पर भी उसकी नहरों के ऊपर सुन्दर वृक्ष और रमणीय बगीचों के हारावलि की सुन्दरता आँख और हृदय को भी आनन्द मे मग्न कर देती है। युगण्डा की प्रकृति इससे भी अधिक मनोहर है, परन्तु मिश्र जैसी स्वास्थ्यप्रद हवा अभागे युगण्डा के नसीब में लिखी नहीं है। मिश्र की जनता तन्दुरस्त, खूबसूरत और बहुत स्वच्छता से रहने वाली है। स्त्रियाँ मुँह पर जाली का बुर्क़ा डालती हैं, केवल आँखे खुली रखती हैं और सोना अधिक पहनती हैं।

मिश्र देख कर बाद में स्टीमर में चढ़ा। तीन दिन की यात्रा करके नेपल्स बन्दर पर पहुँचा। नेपल्स के सुन्दर दृश्य और विसुवियस ज्वालामुखी आदि स्थलों को देखा।

नेपल्स मे विशेष देखने लायक विसुवियस नाम की ज्वालामुखी है। यह ज्वालामुखी समुद्र से चार मील की दूरी पर आयी है तथा पाँच हज़ार फ़ीट ऊँची है। उसके ऊपर चढ़ने के लिए तार की रस्सियों से इलेक्ट्रिक रेलवे बनाई हुई है। उसमे बैठ कर जावें तो उस समय मानो नीचे सिर किये हुये ऊपर जा रहे हों – ऐसा भासित होता है। आज से दो हज़ार वर्ष पूर्व यह पहाड़ फटा तो इसमें पोम्पीयाई नाम का प्राचीन और अति समृद्ध नगर नष्ट हो गया था। आज दो वर्ष हुये पोम्पीयाई के खोदाई का काम चल रहा है और उसमे से अनेक पुरानी वस्तुयें, मूर्त्तियाँ और धन-

जवाहरात निकल रहे हैं। ये सब वस्तुयें नेपल्स के एक बड़े म्यूज़ियम में लाकर व्यवस्थित रूप में रखी गई हैं। ये मूर्त्तियाँ प्राचीन शिल्पकला की उत्तम कारीगरी के नमूने हैं। नेपल्स में एक कहावत प्रचलित है कि "See Naples and die", अर्थात् नेपल्स देख कर यदि बाद मे मृत्यु हो जावे तो भी फिर कोई वस्तु ज़िन्दगी में देखने को बाक़ी नहीं रह जाती। इससे इस शहर की सुन्दरता का ख़्याल आ सकेगा। वहाँ से रेलवे के रास्ते इटली की प्रसिद्ध राजधानी रोम मे हम जा पहुँचे।

स्थापत्य और शिल्पकला में रोम समस्त विश्व का मुकुटमणि है। उसका वर्णन करने के लिए तो किसी कवि की लेखनी चाहिए। दिनो दिन देखा करें तब भी घबरायें नहीं। मानव में परमेश्वर ने कैसी अनुपम शक्ति दी है उसका विचार रोम को देखते हुये आ सकता है। रोम के एक प्रख्यात चित्रकार राफेल के चित्र की प्रतिलिपि की एक अमेरिकन ने पचहत्तर हज़ार पौण्ड देकर खरीद किया। कला, कारीगरी और संगीत में रोम विश्वभर में सर्वश्रेष्ठ गिना जाता है। प्राचीनकाल में वहां बहुत से चित्रकार हो गये हैं। सौ फ़ीट लम्बे और पचास फ़ीट चौड़े खास बनाये वस्त्र पर मोम चढ़ा कर उसके ऊपर चित्रकार चित्र करते थे। दो से दस वर्ष तक एक चित्र के पीछे वे लगाते थे। उस समय के बनाये हुये चित्र आज आठ सौ वर्ष व्यतीत होने पर भी ज्यों के त्यों मौजूद हैं। उन चित्रों का रंग तनिक भी उड़ा नहीं है।

रोम का प्रख्यात "एम्फी-थियेटर" इस समय तो खंडहर की अवस्था में पड़ा है परन्तु उसमें साठ हज़ार मनुष्य समा सकें ऐसी सुविधा है। दस मिनिट में साठ हज़ार मनुष्य प्रविष्ट हो सकें और इतने ही समय में बाहर निकल सकें ऐसी इसकी रचना है। इस स्थान पर पुराने समय में जानवरों का युद्ध होता था और रोमन लोगों की हाथी और सिंह के साथ कुश्तियाँ होती थीं।

इटली वीरपूजा का धाम है। किसी मनुष्य ने देश अथवा धर्म के लिए बलिदान दिया हो तो उसका स्मारक कायम रखने के लिए उसकी बड़ी संगमरमर की प्रतिमा खुले रास्ते पर रखने में आती है। ऐसे वीर पुरुषों के पुतले रोम में जहाँ-तहाँ नज़र मे आते हैं। इन की कारीगरी इतनी अच्छी और सुन्दर है कि मानो सजीव मनुष्य सामने खड़ा हो ऐसा भासित होता है।

यह देख कर भारतवर्ष की वीरपूजा का मुझे विचार आया। अपने यहाँ गाँव-गाँव में वीर नरों की पालियाँ और सती स्त्रियों के स्तम्भ थे।

रोम का 'सेण्ट पीटर' का देवालय यह एक भव्य इमारत है। मन्दिर २४० फ़ीट लम्बा, १८० फ़ीट चौड़ा और ९० फ़ीट ऊँचा है। उसमे विपुल समृद्धि भरी है। उसके गुम्बज में सीलिंग जड़ी हुई है। उसमे स्वर्ग और नरक का दृश्य खुदा हुआ है। इस गिरजे में ईसू ख्रीस्त के पट्ट शिष्य सेण्ट पीटर की साढ़े सात फ़ीट की लौह-प्रतिमा रखी गई है।

यहाँ आकर यात्री लोग इस मूर्त्ति के दाहिने पग को स्पर्श कर अपनी आँखो में लगाते हैं और चुम्बन करते हैं। इस प्रकार के चरणस्पर्श से इस मूर्त्ति के पैर का अंगूठा घिस गया है। ऐसी फौलाद की मूर्त्ति का इतना घिसाव देखकर कितने अधिक मनुष्यों ने हस्तस्पर्श किया होगा इसकी कल्पना नहीं हो सकती। इस भव्य गिरजे के आँगण तो केवल संग्रह-स्थान ही हैं जिनकी क़ीमत लगावें तो अरबों पौण्ड होगी और उसकी सुन्दरता की तो बात ही क्या करनी? गिरजे में प्रवेश करने के साथ ही एक ऐसा वातावरण छाया हुआ लगता है कि हृदय मे भव्यता और शांति का भाव गूँज उठता है। समस्त गिरजे मे संगमरमर के सिवा दूसरा पत्थर वर्ता नहीं गया है। संगमरमर के अनेक पुतले भी यहाँ पर रखने में आये हैं। वहाँ एक दूसरे सेण्टपाल के गिरजे में संगमरमर का ७५ फीट का एक ऊँचा स्तम्भ है, जो एक पत्थर में से ही काट कर निकाला गया है। इस गिरजे मे दर्शनार्थ हर वर्ष लाखों यात्री आते हैं, उसके कारण देश की रेलवे, स्टीमरें, होटलों और व्यापार मे पर्याप्त कमाई होती है। सरकार और प्रजा को काफ़ी लाभ होता है।

सम्पूर्ण इटली देश में जनता की सुविधा के लिए राज्य की तरफ से भारी खर्च करने में आया है। वैसे ही परदेश से आनेवाले यात्रियों को भी कोई तक़लीफ उठानी न पड़े इस लिए पर्याप्त साधन रखने मे आये हैं। सम्पूर्ण देश के सभी रास्ते पक्के हैं। शहर-शहर में बिजली की बत्ती और ट्राम गाडियाँ हैं। शहरों में नीलाभ उपवन हैं और उन में बैठने के लिए कुर्सियाँ रखी गई। तथा अन्दर कारीगरी के नमूना रूप में अनेक मूर्त्तियाँ रखी हैं जिनकी सुन्दरता रात्रि मे

बिजली के प्रकाश में और भी चमक निकलती है। बग़ीचे और रेस्टेरेण्ट भी होते हैं। स्कूल, कालेज और विश्वविद्यालय की गिनती नहीं। देश के युवक-युवतियों को सैनिक शिक्षा दी जाती है। उसी प्रकार गावों मे भी कृषकों के बालकों को भी पढ़ने की सुविधा मिल सके इस लिए योग्य दूरी पर खुली हवा में छोटी-छोटी पहाड़ियों पर स्कूल के मकान बाँध कर सुविधा की गई हुई है।

देश की जनता अतिशय परिश्रमी और अपने कार्य में संलग्न रहने वाली है, स्त्री और पुरुष लोग, छोटे और बड़े सभी काम करते हैं। किसी आदमी को मैंने काम के समय गप्प मारते देखा नहीं। अपने देश के लोगों की अपेक्षा यहाँ के लोग कई गुना काम करते हैं और वक्त की कीमत समझने वाले हैं। क्षण भर भी निकम्मा नहीं गँवाते। रास्तेपर चलते हुये लोग भी दौड़ते से हों ऐसा लगता है। एक दूसरे की निन्दा अथवा चुगली करने का लोगों को अवकाश नहीं। स्त्रियाँ और छोटी बालिकायें भी साइकिल पर लम्बी-लम्बी यात्रायें करती हैं और दिल में किसी का भय नहीं रखतीं। चाहे जो भी काम करना हो वे थोड़ से थोड़े समय मे अच्छी प्रकार कर सकें— वैसा कर डालती हैं।

इटली देश की बस्ती साढ़े चार करोड़ आदमियों की है। देशमे मुख्य व्यापार रेयन सिल्क, गंधक, संगमरमर गरम कपड़ा और बिजली के सामान का है। सम्पूर्ण यूरोप में काफ़ी का व्यवहार बड़ी स्वतंत्रता के साथ होता है। इस के अतिरिक्त देश में चमड़ा, तेल, काच के कारखाने तथा ऊन और सूत की मिलें भी हैं तथा कृत्रिम रेशम के कारखाने भी हैं। इस के उपरान्त गेहूँ के आटे मे से जिस प्रकार हम सेव बनाते हैं वैसे ही किस्म की अनेक खाने की वस्तुवें के बनाने के भी कारखाने हैं। ये सभी कारखाने बिजली के बलसे चलते हैं और बिजली पानी के प्रवाह मे से आने के कारण सस्ती पड़ती है। देश मे संगमरमर पत्थर और गन्धक इन दो खनिजों की पर्याप्त उत्पत्ति होती है और दुनियाँ भरमें वहाँ का गन्धक सस्ते भाव में बिकता है।

योरोप से भारत को जैसे बहुत कुछ सीखना है उसी प्रकार योरोपीय संस्कृति की पैठ गई हुई कितनी ही बातों से दूर रहना है। भारत से आने वाले बहुत से युवावय के मनुष्य योरोपकी स्वतंत्रता के रंग में रंगे हुये होकर अपने मन और इन्द्रियों के ऊपर से काबू

खो बैठते हैं। तथा उल्टे मार्ग पर चले जाकर उसी प्रकार के ललचाने वाले साधनों के वशीभूत होकर अपने धन और उसी ही प्रकार ज़िन्दगी की बर्बादी करते हैं। 'गाँव हो तो वहाँ गन्दगी होती ही है' ऐसी अपने में एक कहावत है। इसी प्रकार जो पीला हो सभी सोना हो ऐसा नहीं होता। योरोप मे भी जनता के जीवन का जैसे उज्ज्वल अंचल है वैसे ही काला अंचल भी है। दृष्टान्त रूप में योरोप में शराब का उपयोग मुक्तहस्त होकर होता है। नैतिक चारित्र्यके बन्धनों के ढीले होने से कमज़ोर मनके मनुष्यों का चरित्र शिथिल होते विलम्ब नहीं लगता। परन्तु गुणग्राही मनुष्यों को सदा हर एक ठिकाने से जो अच्छाई दीखे उसे ग्रहण करनी चाहिए तथा खराब तत्त्वों से दूर रहना चाहिए। लालच की वस्तुयें बहुत हैं और योरोप की प्रजा की प्रकृति ऐसी है कि वह प्रत्येक मार्गसे जीवन का आनन्द ले लेती है। इस से गरीब अथवा अमीर, वृद्ध अथवा युवा सभी अपने को जैसा भावे वैसा आनन्द प्राप्त कर लेते हैं। वाद मे मनुष्य का मन जितना उन्नत हो उतना ही यह आनन्द उच्च कोटिका और जितना हल्का हो उतना ही यह आनन्द हल्के प्रकार का होता है।

इस देश में बूढ़ा दिखाई पड़ना पसन्द नहीं। विशेष कर स्त्रियों को तो नहीं ही है। किसी को बुड्ढा आदमी कहें तो अपमान करना समझा जाता है। हमारे साथ गाड़ी में मुसाफिरी करते समय किसी की उमर पूछी नहीं जा सकती। कितनी ही वृद्ध उमर की स्त्रियाँ थीं वे युवती दिखाई पड़ने के लिए घण्टे घंण्टे पर शीशा लेकर सिरका बाल सँवारती थीं और ओठों पर लाल रंग लगाती थीं। मुख पर लगाने के लिए पाउडर - पफ आदि सामान की एक छोटी सी बैग वे सदा के लिए साथमे ही रखती हैं और मनुष्यों के समूह के मध्य मे भी होटल में खाना चालू हो उस समय भी और ऐसे ही अनेक स्थलों पर इस प्रकार की सुन्दरता प्रदर्शित करने की क्रिया चलती ही रहती है। पुरुषों तथा स्त्रियों को कपड़ा पहनने का विचित्र शौक होता है। बिल्कुल मैला अथवा हल्का कपड़ा अच्छे समाज में चलता ही नहीं तथा गरीब और अमीर मनुष्यों की पहचान करना अशक्य हो जाता है।

इटली के शहरों तथा ग्रामों मे कला-कारीगरी, हस्तोद्योग, और प्राकृतिक सौन्दर्य देखते हुये तारीख ४ जून के दिन हम स्विटज़रलैण्ड की राजधानी जिनीवा मे आ पहुँचे।

स्विट्ज़रलैण्ड की प्राकृतिक रमणीयता की तुलना अपने देश मे कश्मीर के साथ करने में आती है। एक फार्सी का कवि कश्मीर के विषय मे कह गया है—

"अगर फिरदोस वर रूवे ज़मीनस्त
हमीनस्त, हमीनस्त हमीनस्त।"

अर्थात् पृथ्वी पर यदि कहीं पर भी स्वर्ग आया हो तो वह यहीं पर है, यहीं पर है बस यहीं पर है। मैंने कश्मीर देखा है, कश्मीर अतिशय रमणीय है। कश्मीर मे प्रकृति माताने मुक्तहस्त से सौन्दर्य प्रदान किया है। परन्तु स्विट्ज़रलैण्ड में प्राकृतिक-सौन्दर्य के साथ कला और कारीगरी की मिलावट हुई है।

वर्फ के ऊँचे ऊचे पहाड़ों पर रेल्वे निकालने में आयी हैं। १२ से १४ हज़ार फीट की ऊंचायी तक "रोपरेल्वे" दौड़ती है। ऐसी रेल्वे की वगल में भूमिस्थ-गृह में पानी की मोटी धारा पड़ती रहती है। उसे चलती गाड़ी से यात्री देख सकें इस लिए विविध रंग की विजली की और कैण्डिल की वत्तियाँ रखने में आती हैं। इंजिनियरिंग का यह एक उत्तम नमूना है।

स्विट्ज़रलैण्ड का मुख्य उद्योग कण्डेंस्ड मिल्क (जमाया हुआ दूध) है। वहाँ इसके अधिक संख्या में कारखाने हैं। यह इलेक्ट्रिक मशीनरी की वड़ी निकासी करता है। रेशम के कारखाने हैं। विशेष वड़ा उद्योग घड़ियाँ वनाने का है। स्विस घडियाँ दुनियाँ मे सराही जाती हैं और होटलों मे सेवा सत्कार अच्छा है। गायें के पालन और पोषण के लिए स्विट्ज़रलैण्ड बेजोड़ है। अपने देश में साधारण मनुष्यों को न मिल सके ऐसे सुख और सुविधायें वहाँ गायों को मिलती हैं। तथा उनकी देख-रेख रखी जाती है। गायें की नस्ल सुधारने के लिए वैज्ञानिक उपाय वर्ते जाते हैं। वहाँ की साधारण गाय प्रातः- सायं दोनो समयें में ८० पौन्ड दूध देती है और एक गाय का मूल्य २०० पाउन्ड जितना कूता जाता है जव कि अपने हिन्दुवों के गोमाता के पूजक होते हुये भी इस देश में गायें का क़त्ल होता है और जो जीती भी हो वह मरने की ही राह देखती हो ऐसी दुर्वल और कंगाल दशा में रहती है।

अपने गो-ब्राह्मण प्रतिपाल कहे जाते हैं, गोरक्षा के लिए वड़ी वड़ी सभायें करते हैं, प्रस्ताव पास करते हैं परन्तु अपने स्वयं गायों को रिरका रिरका कर मारते हैं। ग्राम मे अथवा शहर में

गायें हाड़पिंजर जैसी अवस्था में रात-दिन रिड़कती होती हैं और उनके बाँधने के लिए मकान भी नहीं होता।

खरे गो-ब्राह्मण-पालक तो योरोप के देश हैं कि जहाँ गाय का ठीक पालन हो रहा है और ब्राह्मण की पालना अर्थात् विद्या का सच्चा प्रचार हो रहा है। वहाँ पर भैंसों का नाम निशान नहीं है। उन लोगों का मानना है कि भैंस का दूध पीने से जड़ता आती है। ऐसा मानने के बहुत से कारण हैं। गाय का दूध तो पवित्र गिना ही जाता है परन्तु गोवर और गोमूत्र भी पवित्र हैं। अपने तो गायों का नहीं बल्कि उनके नाम का पूजन करते हैं। जब कि सच्चा गोपूजन योरोप और दूसरे देशों की प्रजा करती है। योरोप, अमेरिका तथा अफ्रीका मे एक एक गोपालक के पास ५० हज़ार से लाख गायें तक होती हैं। उनके दो दो हज़ार के यूथ बना कर चराते हैं। लाखों एकड़ भूमि गोचर के लिए रखते हैं। वहाँ प्रत्येक गाय प्रतिदिन पूरा पक्का एक मन दूध देती है। एक गाय की क़ीमत १०० से २०० पाउण्ड तक और एक साँड़ की हज़ार पाउण्ड तक क़ीमत होती है। आस्ट्रेलिया के साँड़ों की तारीफ़ की जाती है। सप्ताह में उन्हे दो दिन नहलाया जाता है और बालों पर ब्रश चला कर साफ़ रखते हैं। उनके दुहने के लिए रबर का वैकुयम होता है। उससे गाय के स्तन पर ज़रा भी असर नहीं होता। जब कि अपने यहाँ उसका स्तन खींच खींचकर उसकी नस तक तोड़ डालते हैं। वहाँ पर दूध दुहने का काम जब चलता है तब रेडियो का संगीत चलता होता है और शरीर पर ब्रश से खरहरा होता रहता है। गायों का मकान पूरा हवा और उजाले वाला तथा स्वच्छ होता है। तनिक भी वहाँ पर गन्दगी होती नहीं अथवा गोबर और मूत्र की दुर्गन्ध भी नहीं आती। ज़रा भी गन्दगी हो फौरन पानी डाल कर साफ़ कर डालते हैं। उसकी खूराक के लिए ज्वार आदिका पयाल, घास, भूसा, खोल, मक्की आदि का भूसा करके सब मिला देते हैं और उसमे मात्रा मे नमक डालकर जाँच करते हैं कि जिससे गायों को गरम न पड़े और उसके पेट में किसी प्रकार का रोग न होवे। जाड़े और बरसात के लिए उस मिश्रित भूसे की ईटें बना रखते हैं और आवश्यकता पड़े तो उसका चूरा बना कर गायों को देते हैं। अपने यहाँ सूखे ज्वार के डंठल का ऐसा वैसा ढेर बना रखते हैं कि

गायों के आधे दाँत जल्दी खराब हो जाते हैं, मुँह छोल उठता है और बहुत सा भाग निकम्मा हो जाता है। वे लोग तो जैसे मनुष्य को खाना देने में पूरा ध्यान रखते हैं वैसे ही पशुवों को खाना देने मे भी पूरा ध्यान रखते हैं और उनसे करोड़ों रूपयों की पैदायश करते हैं। अमेरिका मे इतना अधिक दूध का उत्पादन होता है कि बड़ी मात्रा में वह खपत से बँच जाता है। उसका पाउडर बना कर दूसरे देशो में मुफ्त भेजते हैं।

गोसंवर्धन के लिए अपने को स्विट्जरलैण्ड जैसे देशों से बहुत कुछ सीखने को है।

योरोप के सभी देशों में शिक्षा के पीछे कितना धन खर्चा करने मे आता है और कितनी जहमत उठाने में आती है यह पाठकों को अज्ञात नहीं है। म्यूनिच (जर्मनी) मे हम एक उद्योगशाला देखने गये थे। उस मे पैंतीस सौ विद्यार्थी अध्ययन करते हैं। स्कूल के मकान पर दश लाख पाउण्ड खर्चा करने में आये हैं। ऐसी तो दूसरी बहुत सी पाठशालायें वहाँ पर हैं। म्यूनिच की बस्ती आठ लाख की है। शहर बहुत ही सुन्दर है। वहाँ का म्यूज़ियम देखने लायक़ है। उस मे ईस्वी सन् की तेरहवीं सदी से लेकर आज तक की अगणित वस्तुयें संगृहीत की गई हैं। उनके पीछे विपुल धन खर्चा किया गया है।

यहाँ की जनता में विवेक, विनय, और सभ्यता खूब है। उसमे विशेष कर यहाँ की पुलीस की प्रशंसा किये बिना चले ऐसा नहीं। योरोप के देशों की पुलीस का तात्पर्य है जनता का सच्चा सेवक। पुलीस-विभाग का नौकर होने का अर्थ है प्रौढ़, अनुभवी, और परोपकारी मार्गदर्शक होना। स्थल - स्थल का परिज्ञान अपने को पुलीस दे सकती है। ट्राम, तथा ट्रेनो मे भीड़ होने पर यात्रियों और पर्यटकों की बारबार देख-भाल रखना और अपने स्वजनों की तरह उनकी खातिर करना, कोई भूल हुई हो तो अति नम्र शब्दो में क्षमा माँग लेना और अत्यन्त मधुरता से बात करना। समस्त प्रजा की संस्कृति इतनी ऊँची है कि, अन्य की सुविधा का विचार स्वयं पहले करते हैं और अपने स्वयं तक़लीफ़ मे बैठकर भी दूसरे को सुविधा कर देते हैं। वाणी अतिशय मधुर। "थैंक यू" और "बेग योर पार्डन" ये शब्द तो इनकी जीभ पर निरन्तर रमते ही रहते हैं। पथिक - प्रवासी यदि नियम का भंग करें तो योरोप की पुलीस इतनी सख़्त होती है कि इन का जीना भी दूभर हो जावे। इतना

नियम का भय ये देश रखते हैं।

दूसरी एक विचित्र वस्तु वहाँ देखने को मिली। आकाश के ग्रहों आदि को समझाने का स्थान (विश्वदर्शन-गृह प्लनेटोरियम) देखा। इस मकान पर एक गुम्मट है। देखने आने वाले सब अन्दर प्रविष्ट हो जाते हैं इस लिए अँधेरा हो जाता है। पीछे विशाल गगन में जितने तारागण चमकते हैं वे सब गुम्मट रूपी आकाश में दिखाई पड़ते हैं और ग्रह किस गति से चलते हैं यह प्रत्यक्ष बताने में आता है। यहाँ उत्तरी ध्रुव और दक्षिणी ध्रुव भी दिखाने मे आते हैं। प्राचीन समय में ऐसा मानना था कि पृथ्वी स्थिर है और सूर्य उस के आसपास घूमता है। परन्तु सच्चा अन्वेषण यह हुआ कि पृथ्वी सूर्य के आस-पास घूमती है। इस सिद्धान्त के अनुसार पृथ्वी, सूर्य, चन्द्र और ग्रहों का परिभ्रमण किस प्रकार होता हैं यह सब बताने में आता है। उस समय सच्चा प्रकाशमान सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी आदि अपने समीप मे घूम रहे हों वैसा हम उन्हें देख सकते हैं। इसके साथ सभी ग्रहों का परिज्ञान भी जर्मन भाषा में दिया जाता रहता है। इसके उपरान्त म्यूज़ियम में चित्र, फोटो और दूसरी वस्तुवें का गँजा हुआ संग्रह रखा है।

म्यूज़ियम देखने के पश्चात् हम बावेरिया के राजा का महल देखने को गये। इस महल मे ४९० कक्ष हैं और उनमे बहुमूल्य ऊँची कारीगरी के फर्नीचर हैं।

म्यूनिच छोड़कर हम जर्मनी की राजधानी बर्लिन में आये। बर्लिन चालीस लाख मनुष्यों की बस्तीवाला व्यापारिक नगर है। जर्मनी हुनर और उद्योग-प्रधान देश है। उसके ग्राम-ग्राम में कोई न कोई वस्तु बनाने का कारखाना आया है। उन मे एशन मे आया हुआ क्रप का कारखाना विश्वविख्यात है। इस कारखाने मे विज्ञान और इंजिनियरिंग विद्या के अन्तिम से अन्तिम अन्वेषण का लाभ लेकर धूल मे से भी सोना बनाने पर्यन्तका काम चलता है— ऐसा कहें तो भी चल सकता है। हम क्रप की मशीनरी के बड़े ग्राहक रहे इस लिए क्रप के कारखाने के अधिकारियों ने हमारे लिए मोटर आदि की सारी व्यवस्था कर रखी थी और उनका असिस्टेण्ट मैनेजर हमारे साथ घूमकर कारखाना और दूसरी देखने लायक़ जो वस्तुयें थीं उन्हे बताने आया। क्रप के कारखाने की स्थापना १८११ मे हुई है। उसमे इस समय ८५ हज़ार मनुष्य काम करते हैं उनके वेतन

का दो करोड़ शिलिंग प्रत्येक मास मे दो समयों पर चुकाया जाता है। इस पर से पाठक ख्याल कर सकते हैं कि वह राक्षसी कारखाना कितना विशाल होगा। एक ओरसे कच्चा लोहा और कोयला कारखाने में दाखिल होता है और दूसरी तरफसे तैयार यंत्रकाम स्टीमर और रेल्वे में चढ़ता जावे तब तक सारा काम अच्छी व्यवस्था के साथ चलता है। साथ ही किसी भी वस्तु को निकम्मा न जाने देना यह इस कारखाने की विशेषता है। वह भी यहाँ तक कि चिमनी मे से निकलने वाले धुयें से गैस बनाकर उसे काम में लाया जाता है। कोयले की राख से भी टार निकालकर उससे अनेक किस्म के रंग बनाने में आते हैं।

ऐसी क्रप की चार फैक्टरियाँ भिन्न भिन्न स्थानों में आयी हैं। बर्लिन में कारखाने से लगी हुई साइन्स और इंजिनियरिंग पाठशालायें हैं। वहाँ के प्रत्येक स्कूल में मज़दूरों के बालकों को बीस बीस हज़ार की संख्या में शिक्षण दिया जा रहा है। इसके अतिरिक्त बर्लिन के बिजली के कारखाने मे भी ८० हज़ार आदमी काम करते हैं। जर्मनी और उसकी राजधानी बर्लिन का वर्णन करें तो एक पुस्तक भर जावे। कला, सौन्दर्य और कारीगरी में इटली आगे है- वैसे ही जर्मनी विज्ञानविषय में अग्रस्थान रखता है। जर्मनी मे हुन्नर-उद्योग अपार है। उससे देश के तमाम स्त्री पुरुषों को रोज़ी और रोटी मिल रही है। अन्तिम महायुद्ध के बाद जर्मनी थोड़ा निस्तेज हो गया है।

जर्मनी की जनता मज़बूत, परिश्रमी और बहुत उद्योगी है। इस देश की हजारों और लाखों स्त्रियाँ भी प्रातः साइकिल के ऊपर काम करने को निकल पड़ती हैं और होटलों, कारखानों तथा दूकानों में काम करती नज़र पड़ती हैं। उनकी शरीर का बर्फ जैसा उजला रंग, सुगठित मज़बूत हाथ और पग, बड़ी आँखें और मरदानगी से भरी हुई पोशाक को देख कर अवश्य ऐसा लगता है कि यह तेजस्वी और वीर्यवती जनता लड़ाई मे भले ही हार बैठी परन्तु हिम्मत तो नहीं ही हारी। जर्मन की जनता के वीरत्व, बुद्धि, शक्ति और हस्त-उद्योग में बिल्कुल ही क्षति नहीं हुई है। वैसी ही मशीनरी, रेशम, कपड़ा, चीनी का काम, कारपेट, यंत्रकार्य आदि अनेक कारखाने, ग्राम ग्राम में स्कूल, कालेज, विश्वविद्यालय और प्रयोग-शालायें, अपने देश का उद्धार और उन्नति कैसे हो इस सच्ची हार्दिक

भावना से काम करने वाली बलवान् और परिश्रमी प्रजा, यह सब देखते हुये अभी जर्मनी का ओज खूब प्रज्वलित दिखाई पड़ता है। इस देश मे कुरान अथवा वेद का झगड़ा नहीं, जनता कर्म को ही अपना धर्म समझने वाली है। प्रत्येक मनुष्य परिश्रम करने में और उसके फल में अपने मन को प्रसन्न रखने में ही ज़िन्दगी का हेतु समझता है। अपने देश को सुखी करने के लिए और स्वयं सुखी होने के लिए शक्ति भर बुद्धि, बल का प्रयोग प्रत्येक व्यक्ति कर रहा है। एकता और संघटन की तो जर्मनी की सात करोड़ की आबादी एक सुन्दर उदाहरण है।

जर्मनी से होलैण्ड तथा बेल्जियम होकर हम इंग्लैण्ड पहुँचे। होलैण्ड के उद्योगों मे कपड़े की मिल मुख्य उद्योग हैं। होलैण्ड का मुख्य शहर ऐमस्टर्डाम समुद्र के तल से १४ फीट नीचा है। इस लिए समुद्र के पानी से शहर की रक्षा करने के लिए समूचे किनारे को सीमेण्ट कंकरीट से बाँधकर बाद में शहर बसाया गया है। शहर मे मानो चारों तरफ नहर का जाल बिछाया गया है और उनके आर-पार जाने के लिए चार सौ जितने तो पुल हैं। होलैण्ड बहुत श्रीमान् देश है तथा योरोप मे रहने के लिए सब से महँगे मे महँगा देश है।

बेल्जियम काँच के कारखाने के लिए प्रसिद्ध है। शीशा आदि काँच की वस्तुयें वहाँ अधिक मात्रा मे होती हैं और सारी दुनियाँ को पूरा करता है। रहन-सहन मे दूसरी जगहों की अपेक्षा सस्ता है।

फ्राँस की राजधानी पैरिस पैंतीस लाख की बस्ती वाला एक रौनकदार शहर है। पैरिस मे मौज-शौक के इतने अधिक साधन हैं कि उनके वर्णन के लिए कोई अनुभवी कलम चाहिए। प्राचीन और अर्वाचीन कला के सहस्रों मनोमोहक मकान, नाटक, आपेरा और सिनेमा के सैंकड़ों आलीशान थियेटर हैं। इसके अतिरिक्त संगमरमर पत्थर के बने कला के म्यूज़ियम, गिरजाघर, ऊँची ऊँची मीनारें, मनोहर होटल, वीर नरों की प्रतिमावों से सुशोभित सुन्दर आनन्द के रास्ते, फल-फूल से नमी हुई वृक्ष-वेलें, बाग-बगीचे और घूमने-फिरने के रमणीय स्थल ये सब पैरिस आनेवालों के मन को मोहित करते हैं। ईसाई धर्म का मन्दिर "नॉत्रदाम", अनेक रोमाँचकारी कथावों से भरपूर 'बास्टील का किला' और विश्व के सात आश्चर्यों में एक आश्चर्य 'एफिल टावर'

ये सब पैरिस में आये हैं। जगत् भर में ऊँचे से ऊँचा यह टावर ९८३ फीट ऊँचा है। २४ घण्टे जीती-जागती इस नगरी में विलासी-जनो के लिये दिवस रात्रि और रात्रि दिवस है। समस्त योरोप की सुन्दर रमणियों का पैरिस केन्द्रस्थान है और इन्द्रियों के यथेच्छ विलास के फलस्वरूप यदि नरक का दुःख एकत्र करना हो तो वह भी पैरिस में बन सकता है। पैरिस की जनता का विलास सीमा का उल्लंघन कर गया है।

पैरिस से अपनी अंतड़ियों के उपचार के लिये मैं पुनः जर्मनी गया। इस समय की यात्रा में ज़ेकोस्लोवेकिया, आस्ट्रिया और हंगरी का निरीक्षण किया। इसके अतिरिक्त डेन्मार्क, नोर्वे, स्वीडन और पोलैण्ड की यात्रा मै कर आया था। ये सभी देश उद्यमी और परिश्रमी हैं।

डेन्मार्क में योरोप के दूसरे बहुत से देशों की अपेक्षा शिक्षण का परिमाण अधिक लगा। हम योरोप के ग्रामों में दो दिवस घूमे। वहाँ पर बड़ी उम्र के स्त्री-पुरुषों के स्कूल देखे। उन में दिया जाने वाला प्रौढ़ शिक्षण जीवन के हरएक क्षेत्र मे उपयोगी सिद्ध हो-ऐसा था। हम लोग जिसको लोकशाला कहते हैं वैसी बड़ी शालायें डेन्मार्क में स्थान स्थान पर चलती हैं। उनमे इन्हे सच्चे नागरिकों के कर्त्तव्य सिखाने में आते हैं। लोकतंत्र राज्य मे स्वतंत्र नागरिक का जीवन कैसा होना चाहिए इसकी शिक्षा दी जाती है। जिस के पास जितनी जानकारी होती है वह उतनी दूसरों को सिखाता है। कला, कारीगरी, भाषा, गणित आदि विषय इस प्रकार वहाँ पर सिखाये जाते हैं।

डेन्मार्क मे निःशुल्क शिक्षण मिलता है। शिक्षण सादा और सस्ता है। यह देख कर हमें अपनी पुरानी पाठशालायें याद आयीं। मैंने गाँव की पाठशाला मे चार कितावें पढ़ी हैं। चार वर्ष मे शिक्षण के पीछे केवल छ रूपये कुल खर्च मे आये थे। एक आने की पुस्तक और एक आने की क़लम आदि फुटकर वस्तुयें। मासिक दो आना, वर्ष मे डेढ़ रूपया और चार वर्ष मे छ रूपये हुये। अपना देश दूसरे देशों की अपेक्षा ग़रीब होते हुये भी यहाँ शिक्षण खर्च का बोझ अधिक है। शिक्षणशास्त्रियों, राज्यशासनारूढ़ व्यक्तियों और समाज के नेतावों को इस वस्तु का विचार करने की आवश्यकता है।

स्वीडन मे दिया-सलाई का कारखाना और समुद्र की सीप से

खिलौने, बटन, फ्रेमों आदि के बनाने के स्थानों को भी देखा। इस प्रवास को दस दिन में पूरा करके मै पोलैण्ड जाने के लिए डॅंजिग बन्दर पर उतरा। विस्टुला नदी के किनारे आया हुआ पुराना ऐतिहासिक नगर वार्सा खूब ही सुन्दर है। एकादश दरवाजों वाला दुर्गयुक्त शहर पोलैण्ड को शोभायमान कर रहा है। पोलैण्ड, नोर्वे और स्वीडन की जनता हमें जर्मनी की जनता की अपेक्षा अधिक पुष्ट और गंभीर मालूम पड़ी।

योरोप के कितने ही देशों मे कोयला बिल्कुल होता नहीं, इससे नदी के वहते हुये पानी को लेकर उससे विद्युत्-शक्ति प्राप्त कर रेलवे आदि चलाने में आती हैं। योरोप में कोई भी देश नदी से दूर बाँधने में आया नहीं है इस लिए पानी की तथा नदी के बहाव की शक्ति की सुविधा खूब मिल सकती है। इटली, स्विट्ज़रलैण्ड, स्पेन, ज़ेकोस्लोवेकिया आदि देशों में कोयला और लोहा कम निकलता है। वे इस माल के लिये पड़ोसी राज्यों से खरीद करते है, परन्तु रेलवे चलाने में स्वीडन, नोर्वे, पोलैण्ड और स्विट्ज़रलैण्ड को बिल्कुल कोयले की आवश्यकता पड़ती नहीं, कारण यह है कि वहाँ के पहाड़ों मे से बहते अनेक झरनों मे से 'टरबाइन' लगा कर उनकी शक्ति से रेलवे चलाने में आती हैं।

पोलैण्ड से हम बर्लिन वापस लौटे तो उस समय लीपज़िक मे रंग के कारखाने देखे। जर्मनी रंग के कार्य के लिए विश्वविख्यात है। यहाँ की प्रजा कोयले के कचड़े में से सुन्दर रंगों के बनाने की कला जानती है। रंगों के कारखाने में सब मिल कर ३५ लाख आदमी काम करते हैं। यहाँ हरएक कारखाने में मज़दूर के कार्य पर लगने और काम से छूटने की रिपोर्ट यन्त्ररचना से मनुष्य के टिकिट पर छपती है। हर सप्ताह सब को वेतन चुकता करने में आता है। इस यांत्रिक योजना से दो घण्टे में ही सब का वेतन चुकता हो सकता है और इससे समय का, पैसे का और परिश्रम का पर्याप्त बचाव हो जाता है।

योरोप के इतने देशों का दर्शन करके बर्लिन से लन्दन पर्यन्त आठ घण्टे की हवायी यात्रा करके सायंकाल सात बजे मै लन्दन आ पहुँचा।

इंगलैंड की यह हमारी दूसरे वार की यात्रा थी। जिन उन्नत गुणों के द्वारा अंग्रेज़ जाति महान् स्थान पर पहुँची है उन गुणों

और वहाँ की प्रजा की समृद्धि देखने की मेरी जो आशा थी वह पूरी हुई। यह प्रजा स्वदेशाभिमान, निश्चयबल, अनुशासन, सहनशीलता और विवेक से भरी हुई है। यह ऐसे अनेक गुणों वाली प्रजा है। वहाँ का हवा पानी लोकसुखकारी और अच्छा है। ठढे प्रदेशों मे बीमारी के जीवजन्तु अधिक नहीं पैदा होते। इस लिए स्पर्शजन्य रोगों की मात्रा बहुत मामूली होती है। इस के उपरान्त जनता स्वास्थ्य के नियमों को समझने वाली और उसके अनुसार चलने वाली है।

इस समय योरोप की कामकाज सम्बन्धी विज्ञापन देने की विचित्र पद्धतियों मे एक बात पर मेरा ध्यान विशेष गया है। यहाँ के देशो में अपने धन्धों का विज्ञापन देकर लोगों के मन को आकृष्ट करने का ही एक धंधा बन गया है। तथा विज्ञापन पर लोग लाखों पाउण्ड का खर्च करते हैं। मै विज्ञापन सम्बन्धी एक नयी रीति देखकर बहुत प्रसन्न हुआ। एक छोटा विमान हवा में एक मील जितना ऊँचा पतली हवा के स्थान में चढ़ जाता है और अन्दर गैस का धुवाँ भर रखता है और हवामे फिरते फिरते उस धुवें के द्वारा-प्रकाशमान अक्षर बनाता जाता है। इन अक्षरों में जो ज़ाहिर खबर देनी होती है उसका लेख आजाता है। लगभग एक घण्टे तक ये अक्षर सारा शहर बाँच सके इस प्रकार हवा मे दिखायी पड़ा करते हैं और बाद में जैसे बादल पृथक् होते हैं उसी प्रकार एक के बाद एक अलग होते जाते हैं।

समस्त योरोप मे इंगलेन्ड की राजधानी लन्डन सबसे बड़ा और अधिक बस्तीवाला नगर है। लन्दन की वस्ती कुल ८० लाख से ९५ लाखकी है। अनाज के ढेर पर जिस प्रकार चींटियाँ एकट्ठी हो जाती हैं उसी प्रकार लन्दन के मार्गो पर हर समय अपार मानव आया जाया करते हैं। पैदल रस्ते से एक मील चलकर जाना पड़े तो यदि आधा घण्टा लगे तो मोटर मे बैठ कर एक मील काटने मे एक घण्टा लग जाता है। भरपूर बस्ती वाले भागों में चली जाती हुई बहुसंख्यक मोटरों, गाड़ियों, ट्रेनों और साइकिलों आदि सवारियों के यातायात को वहाँ की पुलीस जिस कुशलता से चलाती है उसे देखकर चकित हो जाना पड़ता है। अपने देश की तुलना में योरोप के सभी देशों की पुलीस का व्यवहार प्रेम और नम्रता से अधिक भरा हुआ होता है परन्तु लन्दन की पुलीस का तात्पर्य है योरोप के

सभी देशों में अग्रस्थान रखने वाली पुलीस । पुलीस के आदमियों का कद्दावर शरीर और सम्मान पैदा करे ऐसी आकृति होती है । तदुपरान्त उन्हे शहर के एक एक रास्ते का, गली-कूचे का, तथा मकान का पूरा-पूरा परिज्ञान होता है । पूछने वाले को तनिक भी बेचैनी या क्रोध दिखलाये विना वे अति नम्रता और शान्ति से हँसते मुख से सारी जानकारी देते हैं । पुलीस केवल हाथ ऊँचाकर दे तो स्वयं शहंशाह की मोटरकार भी एक इञ्च खिसक नहीं सकती ।

लन्दन में अनेक अद्भुत वस्तुयें देखने जैसी हैं । उनमे प्रथम वस्तु तो वहाँ की ट्यूब रेल्वे है । भूमि पर चलने वाली ट्राफिक को कोई बाधा अथवा अड़चन न आवे इस वास्ते विशेष, दक्ष कारीगरों और इंजिनियरों ने बुद्धि दौड़ाकर इस रेल्वे को भूमि के नीचे भूम्यन्तर में बनाया है । उनका कुल विस्तार लगभग ३०० मील जितना है । शहर मे एक स्थानसे दूसरे स्थान पर जाने के लिए लाखों आदमी हमेशा इस रेल्वे का उपयोग करते हैं । आधे आधे मील पर स्टेशन रखने में आये हैं । चलती गाड़ी मे भूमिस्त-मार्ग मे यात्रियों को स्वच्छ हवा मिलती रहे वैसी रचना करने मे आयी है । स्टेशन पर उतरने वाले यात्रियों को इस भूम्यन्तर स्थानसे ऊपर रास्ते पर जाने के लिए एक सीढ़ी रखने में आयी है कि जिस पर खड़े रहते हुये ही मनुष्यों को घूमती घूमती वह सीढ़ी विना किसी श्रम ऊपर के मार्ग पर पहुँचा देती है । भूमि पर टेम्स जैसी विशाल नदी वहती जाती हो और उस मे स्टीमरें भी चलती हों । उस नदी के नीचे यह ट्यूब रेल्वे दौड़ती जाती हो— ऐसी अद्भुत बुद्धि से काम किया गया है । इस प्रजाने अपने मस्तिष्क को इतना कष्ट दिया है कि उसकी बजह से अब शरीर पर बहुत थोड़ी तकलीफ लेने को रहती है ।

दुनियाँ के समस्त देशों की देखने लायक तमाम वस्तुवों के नमूनों से भरपूर लन्दन का ब्रिटिश म्यूजियम और २५ लाख पुस्तकों से भरी लायब्रेरी हमने देखी । बकिंगहम पैलेस जिसमे शहंशाह रहते हैं, वेस्टमिनिष्टर एबे, इन्डिया आफिस के मकान आदि स्थलों का वर्णन करते पार मिले ऐसा नही । यहाँ अत्यन्त प्रशंसा की पात्र-भूत "मैडम टुसो की एक्ज़हिबिशन" नाम से जानी जानेवाली मोम के पुतलों की एक प्रदर्शनी है । ये पुतले इतने सुन्दर हैं कि प्रथम दृष्टि मे तो अच्छे से अच्छे देखने वाले भी भूल में पड़जावें ।

प्रदर्शन मे प्रविष्ट होते ही सीढ़ी के पास एक पुलीस का पुतला रखा है। उसे बहुत से आदमी सजीव पुलीस समझ कर ऊपर जाने का रास्ता पूछते हैं और बाद में अपनी भूल समझ कर हँस पड़ते हैं। दूसरा पुलीस का पुतला सलाम करके खड़ा हुआ दिखाई पड़ता है जिससे बहुत से आदमी उसके प्रत्युत्तर में सलाम करते हैं परन्तु थोड़ी दूर जाने पर फौरन अपनी की हुई भूल का पता चल जाता है।

लन्दन मे १५ दिवस व्यतीत कर हम डरबी गये। डरबी मे मेसर्स जार्ज फ्लेचर एण्ड कम्पनी का खांड के कारखाने के लिए मशीनरी बनाने का बड़ा भारी कारखाना है। अपनी लुगाज़ी सुगर फैक्टरी की लगभग २० लाख रूपयों की तमाम मशीनरी हमने इस फर्म से खरीदी हैं। मेसर्स जार्ज फ्लेचर की मोटर हमे लेने के लिए लन्दन आयी थी। उसमे बैठ कर हम लन्दन से डरबी जा रहे थे। रास्ते मे हमने मेमनों का झुण्ड देखा। उसमे चरवाह नहीं था। केवल दो कुत्ते इस समूह को संभाल रहे थे। मेड़े सड़क से गुज़र रहे थे। हमारी मोटर आती देख कर एक कुत्ता दौड़ता हुआ सामने आया और हमारी मोटर के पास फिरा। हमने मोटर साइड मे ली तो भूँकते भूँकते इधर इसके चारों ओर फिरने लगा।

दूसरा कुत्ता अमुक प्रकार की आवाज़ करके भेड़ों को इकट्ठा कर रहा था। आगे से पीछे जावे और इस प्रकार मेमनों को जल्दी पार करने लगा। मोटर को रोंकने वाला कुत्ता पीछे बराबर देखता रहता था। जब सभी भेड़े गुज़ार गये तब इसका भूँकना बन्द हुआ और बगल में खड़ा रह गया। मानो कुछ हुआ ही नहीं।

कुत्ते की इस कुशल चतुराई को देख कर हमे आश्चर्य हुआ।

अपनी तबियत को सुधारने के लिए मैं जर्मनी के वाज़ी सेनेटोरियम मे रहता था। वहाँ हमेशा प्रातःकाल में एक कुत्तागाड़ी आती थी। उसमे पावरोटी की पेटी रखी होती थी। कुत्ते के गले मे छोटी घण्टी लटकाई रहती थी। यह घण्टी बजाता था कि हम लोग बाहर निकल कर पेटी में से पावरोटी ले लेते थे। कुत्ता इस प्रकार हरएक को रोटी पहुँचा देता था।

कुत्ते जैसे स्वामिभक्त और समझदार प्राणी का योरोप में ऐसा सुन्दर उपयोग होता है, जब कि अपने यहाँ कुत्ता भाररूप बना है। पागल और रोगी कुत्तों का उपद्रव शहर ग्रामों में दिन-दिन बढ़ रहा है। उसका उपाय किसी को सूझता नहीं। उनके मारने की

बात से सब भड़क उठते हैं, परन्तु कुत्तों का भय, उनके कारण फैलने वाले रोग आदि वस्तुवों का अपने का विचार करना चाहिए।

जिसके गले मे पट्टा हो वही कुत्ता जी सके, ऐसा नियम योरोप मे है। वहाँ पट्टे विना कोई कुत्ता नज़र में नहीं आता। अपने यहाँ भी ऐसा होने की आवश्यकता है।

अपने बहुत से भाई विषैले प्राणहर सर्पों को मारने मे भी हिचकिचाते हैं। सर्पदंश से प्रत्येक वर्ष ३० हज़ार आदमी अपने यहाँ मृत्यु पाते हैं। लन्दन के हेनरी ब्रदर्स लि० वाले मिस्टर मोरीस ने हमसे बात की कि तुम्हारे देश से एक बार स्टीमर मे पेटियाँ आयीं, उनमें से दो सर्प निकले। कस्टम मे भगदड़ मच गई। जंगली जानवर, नीलगाय, वन्दर, सुवर, हिरण आदि से किसानो को खूब डर होता है। उनको हाँक कर निकाल देने अथवा वे उपद्रव कम करें ऐसे कठोर उपाय वर्तने में अपना मन मानता नहीं। इसमे वस्तुतः अहिंसा नहीं निर्वलता है।

कौटुम्बिक आपत्ति

व्यापार के कामकाज तथा ज़िंदगी के दूसरे साहसों में किसी समय अनिर्धारित परिस्थिति उपस्थित हो जाती है तो मनको स्थिर रखना, कठिनाइयों मे से मार्ग निकालना यह मात्रा में सरल है। कौटुम्बिक आपत्तियों में धीरज रखना यह अधिक कठिन है।

व्यापार के कार्य मे से माथा उठाने का समय नहीं था ऐसे समय में कितनी ही कौटुम्बिक आपतियाँ आयीं। सन् १९२७ में मेरे पूज्य पिताश्री का देहान्त हुआ। इस समय बड़े भाई उनकी सेवामे उपस्थित थे। अन्तिम घड़ी में पिताजी के दर्शन का लाभ नहीं मिला, इसका दुःख मन मे रह ही गया।

सन् १९३१ मे मेरे बड़े भाई का शरीरान्त हुआ। इस समाचार से मुझे भारी आघात लगा। फौरन कुटुम्ब-सहित देश में गया। पूज्य माताजी और भाभीजी बहुत दुःखी थे। हमारे समस्त कुटुम्ब को इस दुःखद घटना से भारी आघात लगा।

बड़े भाई के स्वर्गवास का दुःख हलका नहीं हो पाया था कि इतने में इसी मास में मेरे चाचा के २२ वर्षके जवान इकलौते पुत्र भाई ओधवजी की ब्लेकवाटर - कालेज्वर से अफ्रीका में मृत्यु हो गई। जिस चाचाजीने मुझे युगण्डा बताया, जिसने मुझे साथ देकर भविष्य का उज्ज्वल मार्ग दिखलाया उनके इस पुत्र को मैंने अपने पास रखा था। पढ़ाकर उसे काम पर लगाया। उसकी इस प्रकार आकस्मिक मृत्यु होने से मुझे धक्का लगा। इस प्रकार के निरन्तर आघातों से चित्त में क्षोभ हुआ परन्तु ईश्वर की इच्छा के अधीन बनकर धैर्य रखा।

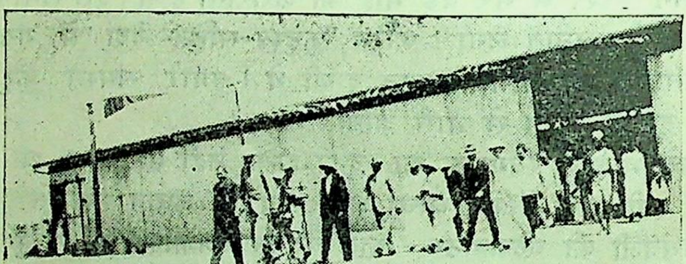
रहे सहे की पूर्ति करने अथवा आगमें इन्धन डालने के समान इस दुःख के समय में मेरे बड़े भाईका चि० पुत्र गोपालदास गंभीर बीमारी में पड़ गया। सारा परिवार उसकी सेवामे रुक गया। मन के ऊपर चिन्ता का भार खूब रहा। प्रभु ने उन्हे आयुष्य दिया। घातक

बीमारी से वे उठ बैठे। एक दूसरे के ऋणानुवन्ध के कारण जो फर्ज़ होता है उसे चुकाना ही पड़ता है।

इस समय कौटुम्बिक कारणों से लम्बे समय तक देश में रहना हुआ। उस अरसे में सन् १९३२ मे मेरे छोटे पुत्र चि० महेन्द्र का जन्म पोरबन्दर में हुआ।

अफ्रीका से पत्र आते थे। वहाँ का काम-काज चलता था फिरभी मेरी उपस्थिति की आवश्यकता थी। सन् १९३३ में मै अफ्रीका पहुँचा।

सुगर फैक्टरी का कार्य अब ढर्रे पर आगया था। जीनेरियों का कामकाज नियम के अनुसार चला करता था। इस लिए एक नया साहस प्रारंभ किया। युगण्डा मे नाइल नदी के किनारे मशिंडी पोर्ट पर कपास का काम करती हुई हमारी "होइमा काटन कम्पनी" चलती है। (चार जीनेरियाँ हैं)। वहाँ हमने सन् १९३४ मे ९९ वर्ष के पट्टे पर दश हज़ार एकड़ ज़मीन ली। उसमे केतकी (साइसल) की खेती प्रारंभ की और वहाँ सन् १९३८ में साइसल फैक्टरी डाली। हमने जब फैक्टरी शुरू की थी उस समय केतकी के रेशे के

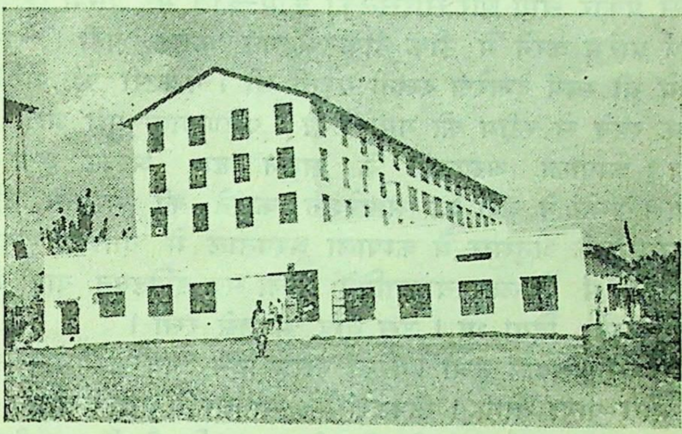


मशिंडी पोर्ट साइसल फैक्टरी का नामदार गवर्नर के हाथों उद्घाटन

एक टन का तीस पाउन्ड भाव था। बाद में पन्द्रह पाउन्ड हो गया। १७, १८ पाउन्ड घर में पड़ता था इस लिए घाटा जाता था। धीरे धीरे यह घाटा कम होता गया।

इस देश मे योरोपियन लोग चाय की खेती करते थे। भारतीयों को चाय बोने की छूट नहीं थी। मुझे यह वस्तु खटकती थी। अपने को चाय की खेती की स्वतंत्रता मिलनी ही चाहिए इसके लिये मैंने लड़ाई की। सरकार के साथ पत्र-व्यवहार प्रारंभ किया।

युगण्डा सरकार ने पहले इनकार किया। हमार सारा मामला इगलैण्ड मे सांस्थानिक प्रधान के पास उपस्थित किया। दो वरस तक लड़े। अन्तमे हमे चाय की खेती करने की सन् १९३४ मे छूट मिली। भारतीयों के अधिकार के लिए ऐसी छोटी-मोटी लड़ाई वहाँ वारवार करनी पड़ती थी। आज भी लड़ना पड़ता है।



टी फैक्टरी-कसाकू (लुगाज़ी)

लुगाज़ी की वगल मे हमने पहले से ही एक हज़ार एकड़ भूमि ले रखी थी। उसमे चाय की खेती प्रारंभ की। यह बोने के



टी स्टेट-कसाकू (लुगाज़ी)

वाद पाँच वर्ष मे चुनने जैसी होती है। ये पौदे ५० वर्ष पर्यन्त चाय

देते रहते हैं। इस समय लगभग एक हज़ार एकड़ में चाय की खेती है। उस में ऊँची किस्मकी दश लाख पौण्ड चाय पैदा होती है। दूसरी एक हज़ार एकड़ भूमि लेकर चाय की खेती बढ़ाने का काम चालू है। वहाँ चाय की बड़ी फैक्टरी डाली है जिसमे पाँच वर्ष पीछे वीस लाख पौण्ड चाय तैयार होगी।

इस प्रकार चाय और साइसलका काम-काज मैंने प्रारंभ किया। नया कार्य प्रारंभ करने में ठीक ठीक मेहनत करनी पड़ी। सुगर फैक्टरी मे भी स्वयं देखरेख रखनी पड़ती थी। फैक्टरी में अधिक समय तक रहने से स्टीम की गर्मी लगी। परिणामतः मुझे अर्श का दर्द हुआ। कम्पाला अस्पताल के सर्जन डा० अल्बर्ट कूक को दिखलाया। उन्हों ने अर्श का आपरेशन कराने की सम्मति दी। उनकी सम्मति के अनुसार मै कम्पाला अस्पताल मे दाख़िल हुआ। इस अस्पताल में सोलह चारपायियों वाला एक इण्डियन वार्ड मैंने पहले से बनवा दिया था। उस वार्ड में मुझे रखा।

आपरेशन सफल हुआ। परन्तु वारह दिन पर्यन्त पेशाव नहीं उतरा। भारी पीड़ा भोगी। डाक्टरों की सावधानी भरी देखभाल से तबीयत सुधरी। अपनी इस बीमारी की सूचना किन्ही भी कुटुम्बीजनों को नहीं दीथी। वे अपने पास हों तो उन्हे तक़लीफ हो, वे चिन्ता किया करें, यह मुझे अच्छा नहीं लगता था।

मेरे जीवन में कितनी गंभीर बीमारियाँ आयी हैं परन्तु इस दुःख में किसी को भी भागीदार बनाने जैसा विचार मुझे आया नहीं। सहज मे ही कोई उपस्थित हो गया तो भले ही। इस संसार में अकेले आये और अकेले जाना है, यह वस्तु ऐसी बीमारी के समय विशेष याद आती थी।

डाक्टर, नर्सें, साथीदार लोग मेरी बीमारी के समय खड़े सूखते थे। उन की प्रेमभरी सेवा मै कभी भूला नहीं। किसी समय अन्तिम घड़ी समीप मालूम हो तबभी मनमे घबराहट होती नहीं थी। ईश्वर की इच्छा होगी वहाँ पर्यन्त जीवूँगा, नहीं तो चला जाऊंगा, ऐसा विचार करके मन शान्त होता था। गीता, रामायण, भागवत, ऐसी धार्मिक पुस्तकें बाँचता और प्रभु-स्मरण करता था।

एक मास वाद चलने की शक्ति आयी। डाक्टरों ने हवाफेर के लिए बाहर जाने को सलाह दी। इस समय दक्षिण आफ्रीका मे एक बड़ा प्रदर्शन किया जाने वाला था। प्रदर्शन के संचालकों ने युगण्डा

सरकार को विशेष निमंत्रण भेजा, इससे सरकार के प्रतिनिधि के रूप में दक्षिण अफ्रीका जाने का विचार किया।

दक्षिण अफ्रीका के सुन्दर और समृद्ध प्रदेश सब को देखने को मिलें इस लिए सकुटुम्ब जाने का निश्चय किया। मोम्बासा से स्टीमर से हम रवाना हुये। रास्ते में आनन्द करते निर्विघ्न दक्षिण अफ्रीका के डर्बन बन्दर पर पहुँचे।

३०

दक्षिण अफ्रीका की यात्रा

डर्बन बन्दर पर वहाँ के अग्रणी भारतीय व्यापारियों और स्नेहियों ने हमारा उमंग भरा स्वागत किया। मेरी द्वितीय यात्रा में (सन् १९०४ में) जब मैं बम्बई से चला तो दक्षिण अफ्रीका जाने के लिए निकला था, परन्तु भाग्य मुझे पूर्व अफ्रीका ले गया। मेरे बड़े भाई सन् १९०५ में आये तब से इस सुन्दर समृद्ध देश को देखने और वहाँ बसने का मन था। एक प्रवासी के रूप मे दक्षिण अफीका आते मुझे यह बहुत याद आया और इस भूमि को दृष्टि से देखते आनन्द हुआ।

दक्षिण अफ्रीका में लगभग साढे तीन लाख भारतीयों की बस्ती है। भारतीय व्यापारी पैसे टके मे खूब सुखी हैं, करोड़ पति हैं। वहाँ मासिक चालीस पाउण्ड से न्यून वेतन किसी का नहीं है। फेरी लगाने वाले भी महीने मे पचास से सौ पाउण्ड पैदा करते हैं, परन्तु वहाँ पर रंगभेद बहुत है। होटल, सिनेमा, पोस्ट, टेलीग्राफ, बैंक, रेस्टोरेंट, ट्राम, रेलवे, हरएक स्थल पर काले, पीले, गेहुँअरे रंग और गोरे के मध्य भेद है। पाठशाला में साथ पढ़ा नहीं जा सकता। यहाँ जो हालत हरिजनो की थी वही हालत वहाँ अपनी है।

पूज्य महात्मा गान्धी जी ने भारतीयों के अधिकार के लिए सत्याग्रह की लड़ाई चलायी थी, उससे अधिकार मिला था, परन्तु बाद में पहले जैसी स्थिति होती जा रही है।

पूज्य बापू जी ने जहाँ वर्षों पर्यन्त तपश्चर्या की उस फिनिक्स आश्रम को देखने हम गये। यात्री की दृष्टि से सभी स्थल देखे। एक दिन वहाँ रहे। पूज्य बापू के पुत्र श्री मणिलाल गान्धी फिनिक्स में थे। उन्होने खूब प्रेम से सब कुछ बताया। प्रिटोरिया और जोहान्सवर्ग वे साथ साथ आये। यह सम्पूर्ण प्रदेश अतिशय सुन्दर है, फूल-फल से भरा है। दक्षिण अफ्रीका मे खनिज सम्पत्ति पर्याप्त निकलती है। प्लेटिनम, ताँबा, कोयला, लोहा और हीरा तथा

सोने की वहाँ खाने हैं। व्यापार बहुत अच्छा चलता है। पैसा-टका से देश परिपूर्ण है।

हमारे अनेक कुटुम्बी-जन दक्षिण अफ्रीका मे बसते हैं। श्री. ए. गोकल और चि. गोकल, श्री राडिया ब्रदर्स आदि हमारे सम्बन्धियों की जमी हुई फर्में हैं। इनके उपरान्त त्यागी भाई सोराबजी, खान बहादुर क़ासम आदम काला आदि मित्रों की मुलाक़ात हुई। पोरबन्दर के रईस, सज्जनता की मूर्त्तिरूप श्री उमरभाई ज़वेरी से बार बार मिलने को मिला। श्री उमरभाई पूज्य बापू के साथीदार और प्रामाणिक व्यापारी थे। उनके ऊपर बहुत बड़ा ऋण हो गया था। घी के व्यापार में घाटा हुआ इससे स्वयं घी खाना छोड़ दिया, ऋण न भर उठे तब तक बूट नहीं पहनना और मोटर मे नहीं बैठना - ऐसी प्रतिज्ञा ली। दस वर्ष मे ऋण पूरा किया और प्रतिज्ञा पूरी की।

मेरे बड़े भाई ई० सन् १९०५ से १९१० तक पाँच वर्ष दक्षिण अफ्रीका में रहे। उनकी दूकान अच्छी चलती थी। इस समय में पूज्य महात्माजी की लड़ाई वहाँ चल रही थी। उसमे उन्होने भाग लिया था।

दक्षिण अफ्रीका में साढ़े तीन लाख भारतीय, लगभग दस लाख मलायन, तीस लाख के क़रीब योरोपियन और एक करोड़ जितने नेटिवों की बस्ती है। वहाँ पर मेष-वृद्धि उद्योग बड़े पैमाने पर चलता है। आस्ट्रेलिया से दूसरे नम्बर पर आता है। ऊन उत्तम प्रकार का और अधिक परिमाण मे पैदा होता है। दुनियाँ का ४० प्रतिशत सोना, ६५ प्रतिशत हीरा और ३० प्रतिशत तांबा दक्षिण अफ्रीका में से निकलता है। धन-धान्य फल-फूल आदि का पार नहीं। अभी बहुत सा भाग बिना खेती का पड़ा हुआ है।

दक्षिण अफ्रीका मे हम जहाँ गये वहाँ हमारे स्नेही-सम्बन्धी मिले। सब ने भाव से भरा स्वागत किया। बहुत से कुटुम्बी होने के कारण घर जैसा ही लगा। मेरी पत्नी के भाई लोग वहाँ वर्षों से निवास बना कर रह रहे हैं।

हम प्रदर्शन देखने गये। प्रदर्शन उदाहरणीय था। अनेक प्रकार की नवीन वस्तुयें उसमे देखने को मिलीं।

दक्षिण अफ्रीका का जलवायु उत्तम होने से मेरा स्वास्थ्य एकदम सुधर गया। नवीन रक्त आया, स्फूर्त्ति आयी। हमे अभी

केपटाउन जाने को था, इतने मे मेरी पत्नी की तवियत नरम होने से हम पीछे वापस आये।

मार्ग में लोरेन्जो मार्क आया। वहाँ के भारतीय व्यापारी भाइयों ने अत्यन्त प्रेमपूर्वक स्वागत किया। वहाँ परमिट के विना किसीको दाखिल नहीं करते थे। अंगूठा लगाकर परमिट निकलवाये तो प्रविष्ट हो सके। मैने अंगूठा लगाने से इन्कार किया। निश्चय किया कि अंगूठा की निशानी न लें तभी मैं उतरूँगा। चक-चक चली। हम दृढ़ थे। वहाँ के भाई हमें उतारना चाहते थे। अन्त मे नियम की बारी आयी। युगण्डा सरकार के प्रतिनिधि के रूप में हम प्रदर्शन में गये थे। उन्होने विशेष सिफारिश की थी 'मि. मेहता हमारे यहाँ के प्रतिष्ठित और प्रख्यात व्यापारी हैं। उनके इन देशो में आगमन पर हमारे प्रतिनिधि के रूप में उन्हे उचित सम्मान दें।'

हम इस प्रकार विना अंगूठे की निशानी लगाये ही उतरे। जगह जगह पर सभायें और सम्मेलन सम्पन्न होने में आये। मानपत्र तथा उत्तम वस्तुवों की भेंटें देने मे आयीं। इससे हमे किसी भी सभामें मानपत्र नहीं लेना है ऐसा निर्णय (सन् १९३६ से) किया।

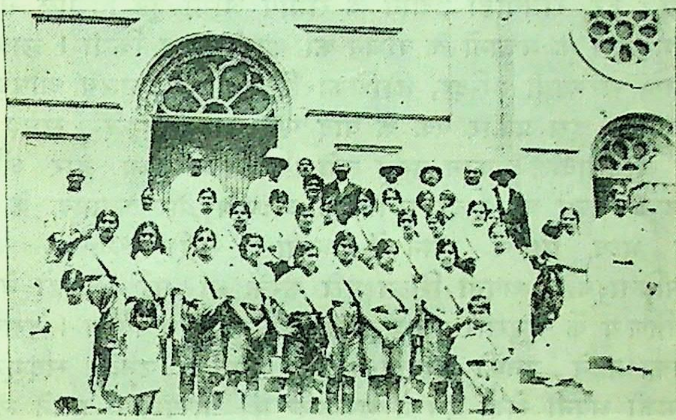
सम्मान करना यह एक वात है, मानपत्र द्वारा गुणगान करना यह पृथक् वात है। इस प्रकार के ग़लत मान और अधिक विशेषणों से मनुष्य अभिमानी वन जाता है और उसका पतन हो जाता है। मनुष्य को केवल अपने सर्जनहार के ही गुण गाने चाहिए। अपना सच्चा झूठा वखान मनुष्य को अच्छा लगता है परन्तु वाद मे वह स्वयं नीचा गिरता है।

दक्षिण अफ्रीका का अपना यह प्रवास मुझे जीवन-पर्यन्त स्मरण रहेगा। यह मुझे एक कुटुम्ब-मेले के समान लगा। मेरा सारा प्रवास खूब आनन्ददायक रहा।

इस प्रवास का वर्णन स्थान-संकोच को लेकर मैं संक्षेप में कर रहा हूँ। पोरबन्दर के आर्यकन्या-गुरुकुल और महात्मा गान्धी कीर्त्तिमन्दिर इन दोनो संस्थावों के विचार का बीजारोपण अफ्रीका में विल्कुल अकस्मात् हुआ था-इसका-विवरण यहांपर लिखना उचित है।

सन् १९३५ में बड़ौदा आर्यकन्या-महाविद्यालय की विद्यार्थिनियें अपने संचालकों के साथ पूर्व और दक्षिण अफ्रीका की यात्रा में निकलीं थीं। दोनो देशों के मुख्य नगरों में उनके व्याख्यान और व्यायाम के प्रयोग हुये। दोनो ही देशों में उन्होने सुन्दर छाप डाली।

इस समय वड़ौदा के श्रीमन्त महाराजा साहेब सयाजीराव गायकवाड अमेरिका में थे। उन्होने वर्तमान पत्रों मे यह समाचार पढ़ा और धन्यवाद भेजा। दोनो ही स्थानों पर लगभग ढाई लाख का संग्रह हुआ। खर्च निकाल कर दो लाख बचा। इस प्रवास मे गुरुकुल में पढ़ती हुई मेरी एक पुत्री साथ थी। वे जिंजा आये तो एक सभा मे– "ऐसे कन्यागुरुकुल की काठियावाड में आवश्यकता है" यह व्याख्यान हुआ। इसी सभा मे "यदि काठियावाड में आर्यकन्या-गुरुकुल स्थापित हो तो दो लाख रूपया देने की मैंने घोषणा की।"



वड़ौदा आर्यकन्या-महाविद्यालय की वहनो का अफ्रीका का प्रवास (१९३४)

मेरी वड़ी पुत्री चि. सविता वहन तथा उसकी एक साथी-वहन चि. मंजुला वहन ने यदि ऐसी संस्था खुलेगी तो उसमे अपनी सेवा देने की विश्वस्तता दी। इस प्रकार 'पोरवन्दर आर्यकन्या-गुरुकुल' के विचार का बीज जिंजा की सभा में आरोपित हुआ – वह वृक्षरूप में किस प्रकार फूला-फला इसे दूसरे प्रकरण में दूँगा।

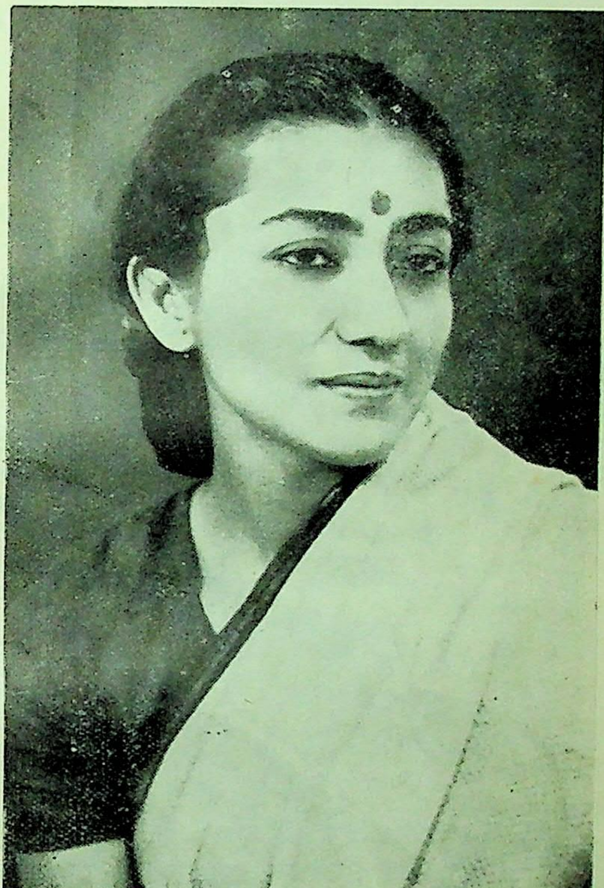
दक्षिण अफ्रीका वाले लार्ड हाफमेयर सेटेलमेण्ट के काम के विषय में भारत आये तो माननीय महाराणा साहेव के आग्रह से पोरवन्दर आये थे। उन्होने पूज्य वापूजी के जन्मस्थान को देख कर वहाँ पर स्मारक वनवाने का विचार उपस्थित किया। मेरे मन मे ऐसी भावना पूर्व से ही थी। उसे इस विचार से वल मिला। उसमे से कीर्त्तिमन्दिर की रचना हुई। इसका विवरण स्वतंत्र प्रकरण मे देने मे आवेगा।

आर्यकन्या-गुरुकुल

सन् १९३६ में आर्यकन्या-गुरुकुल की नीवं डालने मे आयी। पोरबन्दर शहर और बरडा पहाड़ के मध्य, खाड़ी के किनारे, शहर से एक मील दूर, राजवाडी उद्यान के समीप आयी हुई विशाल भूमि के ऊपर गुरुकुल के मकानों के बाँधने का कार्य प्रारंभ किया। छात्रालय, विद्यालय, सरस्वती मन्दिर, शिक्षिका-निवास, पुस्तकालय, औषधालय, स्नानागार— इस प्रकार एक के बाद एक स्वच्छ, सुन्दर, सूघड़ और संपूर्ण सुविधावाले मकान बनने लगे। आगे के मध्य द्वार और दो विशाल दरवाज़ों पर टावर लगाया। व्यायाम और क़वायद के लिए मध्यमे भव्य प्राङ्गण रखने में आया। सन् १९४० के वर्ष मे कु० सविता बहेन अपनी शिक्षा पूरी करके आ गईं। उन्हो ने पूर्व किये निर्णय के अनुसार गुरुकुल को जीवन अर्पण किया। दूसरी दो स्नातिका बहनें उनकी सहायता में आयीं। उनके सद्गुरु पं० चेतरामजी अपनी सेवा देनेको गुरुकुल में आ वसे। हमने लगभग २५ लाख रूपये का ट्रस्ट करके संस्था को अर्पण किया। संस्था किसीका दान नहीं लेती। सरकारी सहायता भी नहीं लेती।

सौराष्ट्र कन्याशिक्षण मे बिल्कुल पिछड़ा हुआ होने से प्रारंभ में गुरुकुल में केवल छ कन्यायें आयीं। धीरे धीरे संस्था का विकास होता गया— कठिनाइयाँ दूर होती गयीं। कन्यावों के संरक्षकों का विश्वास दिन प्रतिदिन बढ़ने लगा। आज चार सौ कन्यायें गुरुकुल में अभ्यास करती हैं। एस. एस. सी और गुजरात यूनिवर्सिटी की बी. ए. (स्नातिका) पर्यन्त डिग्रियों की पढ़ाई चलती है। भारती श्रेणी पर्यन्त पूरा पाठ्य-क्रम है। तदुपरान्त संगीत, चित्र-कला, हस्तोद्योग, व्यायाम आदि का शिक्षण दिया जाता है। पाकशास्त्र, बीमार की सुश्रूषा, तैरना तथा ऐसी ही जीवन में उपयोगी बातों की शिक्षा देने में आती है। सुदृढ़ शरीर, उत्तम जीवन, निर्भयता और संस्कारिता ये गुरुकुलकी विशिष्टतायें हैं।

हमारे कुटुम्ब के लिए गुरुकुल तीर्थस्थान के समान है, विशाल



कु. श्री. सविता बहन नानजीभाई मेहता



कु. श्री. निर्मलाबेन नानजीभाई मेहता



श्री सरस्वती मन्दिर का उद्घाटन : ना. राजप्रमुखश्री के वरद हस्तों से



श्री आर्यकन्या गुरुकुल की ब्रह्मचारिणिओं का सरस्वती स्तवन

घर जैसा बना है, कन्यावों के साथ प्रार्थना करना, भोजन करना, खेलकूद मे भाग लेना, बीमारी आदि में उनकी देख-रेख करना— यह कुटुम्ब के बड़े के रूप में हमारा कर्तव्य बन गया है। किसी समय लम्बे समय बाद यात्रा से आते हुये अपने बालकों के। देखकर जो आनन्द होता है, उन्हे मिलने के लिए मन तरसता रहता है, वैसा ही गुरुकुल विषय में हमारा बना हुआ है।

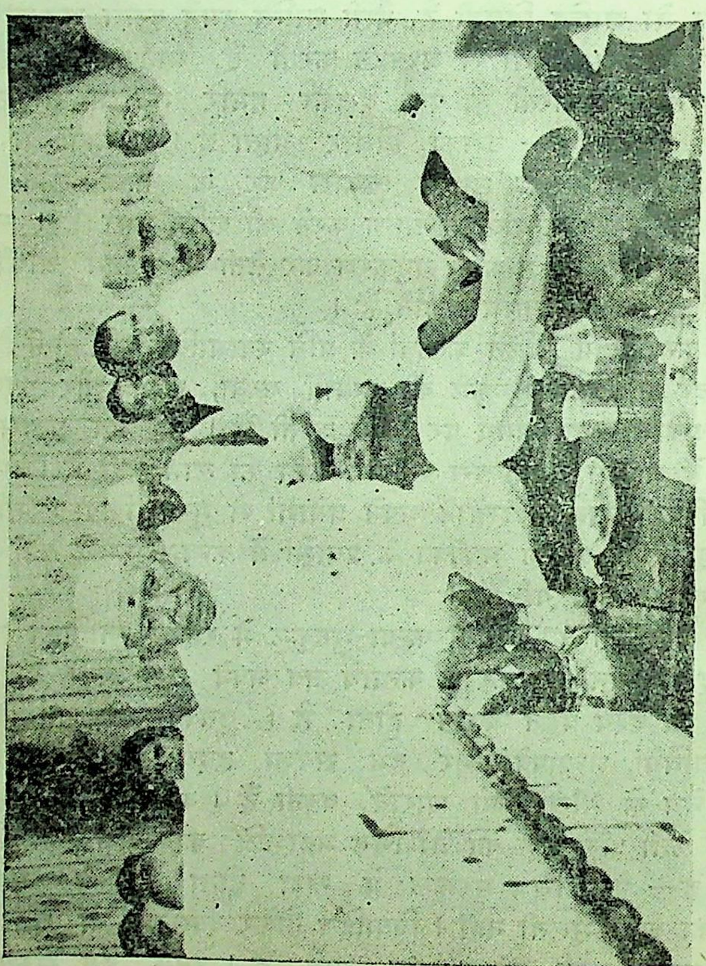
कन्या-गुरुकुल में जिस आनन्द और पवित्रता की भावना से मन के। जो शान्ति मिलती है, वैसी शान्ति हमने दूसरी अनुभव नहीं की। कन्यायें एकाग्रता से अध्ययन करती हैं, मानवता की ऊँची भावना से काम करती हैं, यह देखकर हमारे मन मे मातृशक्ति कितनी अद्भुत है— उसका विचार आता है। कन्यावों मे जो महाशक्ति भरी हुई है उसका विकास कर के बाहर लाने की आवश्यकता है। कन्यावों मे ग्रहण करने की शक्ति भारी है। चाहे किसी भी वस्तु का तत्काल अनुकरण कर लेती हैं। हम चौकी मे कुमारों के लिए विद्यालय चलाते हैं।

कन्यावों मे ललित कलावों के प्रति स्वाभाविक रुचि होती है— पोरबन्दर आर्यकन्या-गुरुकुल की कन्यायें गरबा, रास, और सुन्दर नाट्य-प्रयोग समय-समय पर किया करती हैं। वे जब प्रवास मे जाती हैं तो भी अपनी इस अनोखी कला का लाभ देती हैं। बम्बई, पूना, दिल्ली आबू के। इन्होंने अपने प्रयोगों से मुग्ध किया। भारत तथा पूर्व और दक्षिण अफ्रीका के प्रवासों में कन्या गुरुकुल की यह कला खूब बखानी गई थी।

आठ-दश वर्ष पर्यन्त कन्या-गुरुकुल मे रहकर स्नातिका होने के बाद अध्ययन पूरा कर के कन्यायें जब अपने घर जाती हैं तब बिदाई का दृश्य बहुत करुण होता है। उनकी सहाध्यायिनियों, अधिष्ठात्रियों, अध्यापकों और हम सबका हृदय भर आता है। सबके नेत्र से आँसुवों की धारायें बहती हैं। कण्व के आश्रम से विदाई लेती शकुन्तला का जो चित्र महाकवि कालिदास ने चित्रित किया है— ऐसा चित्र गुरुकुल में खड़ा होता है। ये कन्यायें संस्थाके। कभी भूलती नहीं। विवाहित होकर श्वसुराल में जाने के बाद उनके हृदय द्रावक पत्र आते हैं। उनमे "हम संस्थाके। कभी भूलेंगे नहीं, गुरुकुल के दिवस हमें याद आते हैं, जीवन मे हमें यह वस्तु कभी मिलेगी नही"— आदि शब्दों के। पढ़कर हमारा हृदय

द्रवीभूत हो उठता है।

स्त्रीशिक्षा के अनुभव से मुझे ऐसा लगा है— कि कन्यायें कुमारों की अपेक्षा अनुशासन, व्यायाम, स्वच्छता आदि में आगे पड़ती मालूम होती हैं। भरने-गूँथने, संगीत, नृत्यकला आदि में वे आगे हैं ही। बहनों की तो हमने धनरूपी जड वस्तु से सहायता की है, जब कि उन्होंने चैतन्यरूपी अपना विकास सिद्ध कर, बताकर मुझे पूरा सन्तोष दिया है।



पोरबन्दर महिला महाविद्यालयकी शिलारोपण-विधि

गुरुकुल के समस्त संचालक भी हमें ऐसे ही सरस और संस्कारी मिले हैं। इतने बड़े सेवा-भावी भाई बहन हैं कि किसकी



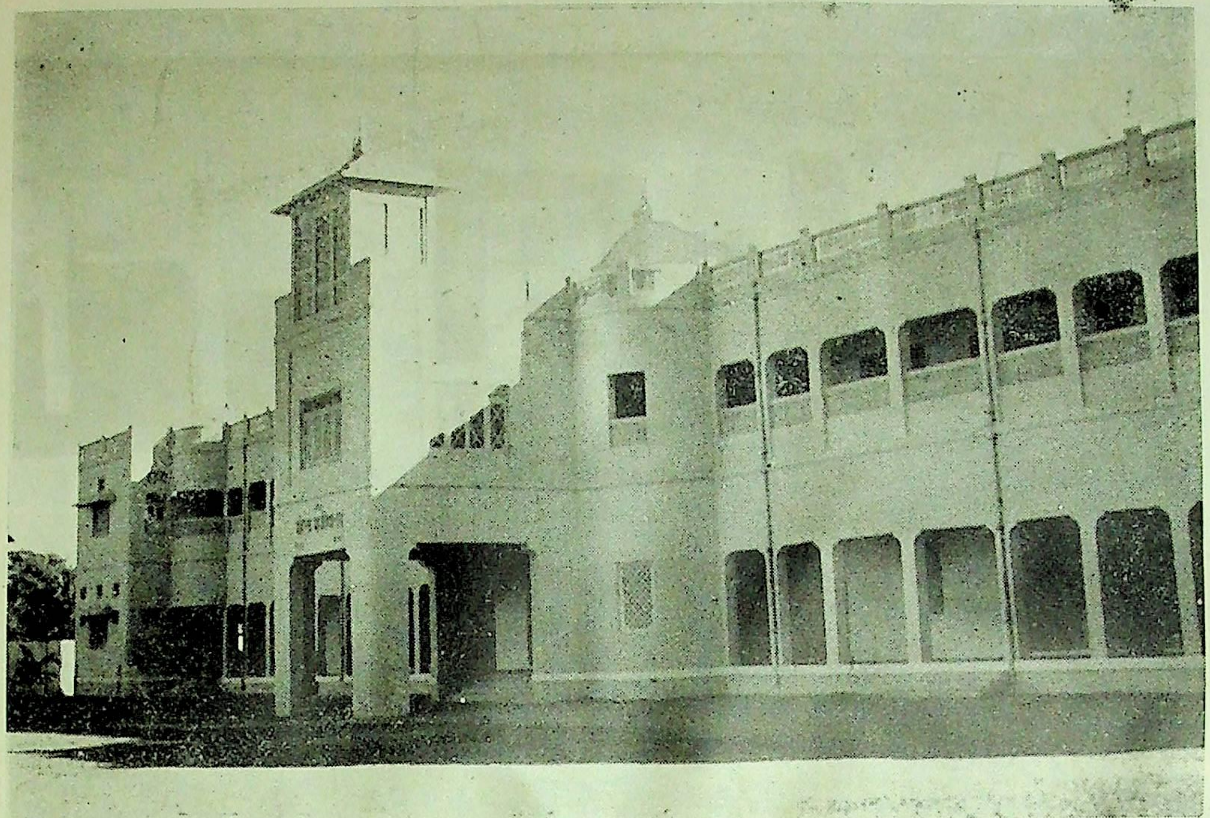
श्री आर्यकन्या गुरुकुल



श्री आर्यकन्या गुरुकुल : विद्यालय विभाग



महिला-महविद्यालय आश्रम, पोरबन्दर



श्री महिला महाविद्यालय कालेज

प्रशंसा करूँ और किसकी न करूँ। सभी एकरूप वने हैं इनके नाम देकर मै पृथक् क्यों करूँ।

गुरुकुल की कन्यायें घर जाने के वाद उनको जो ज्ञान गुरुकुल मे मिला है उसे पचा सकें वैसे पति उन्हे मिलते नहीं; इससे उन के जीवन मे विसंवाद पैदा होता है। इस सम्वन्ध में कन्यावों का पत्र पढ़कर वहुत दुःख होता है। आज-कल कालेज के विद्यार्थियों की चारों ओर से फरियादें आती हैं। मानवता समाप्त हो गई है। स्त्रियों के यहाँ चेत जाने की आवश्यकता है। यदि भारतीय आर्य महिलायें परदेशीय सुधारों का अन्धा अनुकरण करती जावेंगी तो भारत की संस्कृति का नाश होगा। योरोप और अमेरिका का गृहस्थ-जीवन विल्कुल सुखी नहीं-जब कि जापान का अभी सुखी है।

आर्यसंस्कृति की रक्षा सच्ची आर्य-स्त्रियाँ ही कर सकेंगी, ऐसी हमे श्रद्धा है, इसीसे ही आर्यकन्या-गुरुकुल जैसी संस्थायें खड़ी करने और उनके पीछे तन, मन, धन खर्चने मे मुझे जीवन की कृतार्थता लगती है। सौराष्ट्र मे कन्या-शिक्षण की संस्थाये हैं परन्तु उच्च शिक्षा के लिए पृथक् महिला-विद्यापीठ नहीं हैं। पू. महर्षि कर्वे जी की पूना की यूनिवर्सिटी के समान एक संस्था सौराष्ट्र में स्थापित करने की मेरी उम्मीद वहुत समय से थी। अन्त मे हमारी यह इच्छा पूरी हुई है। हमने १५ लाख रूपये का महिला महाविद्यालय ट्रस्ट किया है। इस ट्रस्ट की तरफ से पोरवन्दर में आर्यकन्या गुरुकुल के सामने विशाल भूमि लेने मे आयी है। इस स्वास्थ्यप्रद, आह्लादक वातावरण में महाविद्यालय तथा छात्रालय के मकान तैयार करने मे आये हैं। सन् १९५५ से महाविद्यालय के वर्गों को प्रारंभ करने का ट्रस्ट ने निर्णय किया है। संस्था के छात्रालय में २०० से ३०० वहनों का समावेश हो सकेगा।

महिला महाविद्यालय गुजरात यूनिवर्सिटी के साथ जुड़ा है और उसमे एम. ए. पर्यन्त शिक्षण देने का प्रवन्ध है। कालेज के विषयों के अतिरिक्त धार्मिक शिक्षण, संगीत, कला आदि जीवनोपयोगी विषय सिखाने में आते हैं।

उसमे एम. ए. पर्यन्त फिलहाल शिक्षण शुल्क नहीं लेने का निर्णय किया गया है। आवश्यक पुस्तकें भी संस्था पूरी करती है। मासिक भोजन और पुस्तकों के लिए व्ययार्थ ४०) लेने मे आता है।

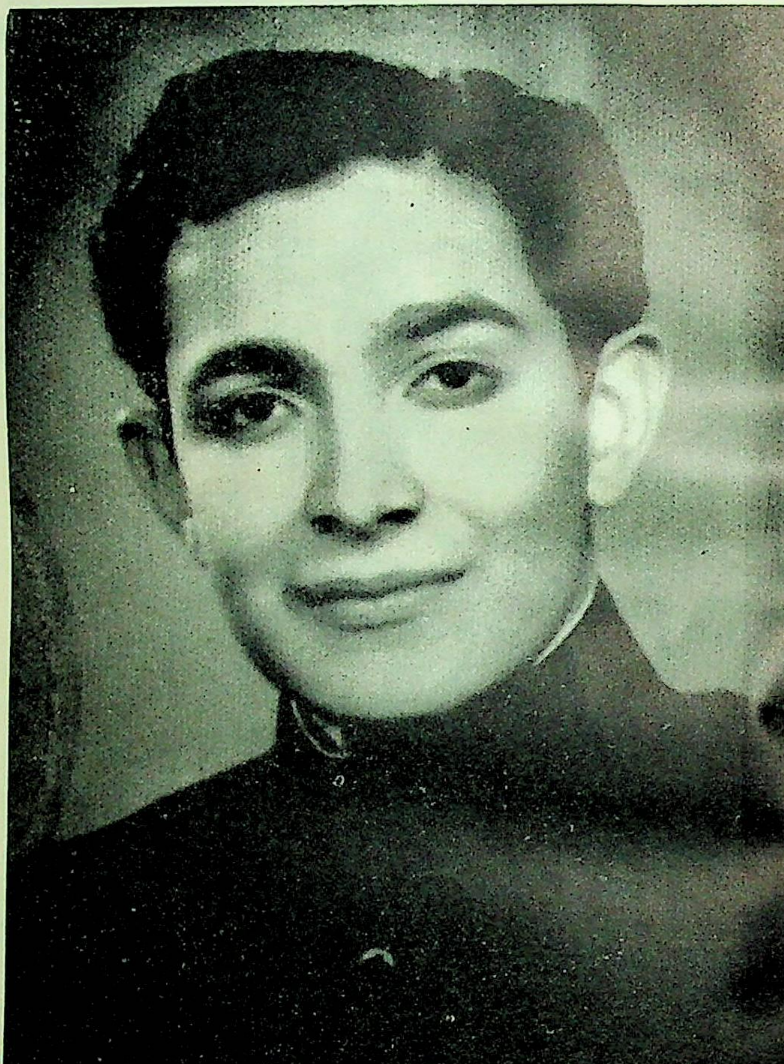
शेष सारा व्यय संस्था उठाती है।

महिला-महाविद्यालय के मकानों की शिलारोपण-विधि सौराष्ट्र के माननीय मुख्य मंत्री, काँग्रेस के मनोनीत प्रधान श्री ढेवरभाई के वरद हस्तों से ता. ६-१२-५४ को सोमवार के शुभ दिन पर करने मे आयी थी। इस अवसर पर सौराष्ट्र के माननीय मंत्रीगण, दीर्घायुष्यमान् माननीय युवराजश्री, सेठ श्री प्राणलालभाई देवकरण नानजी आदि सद्गृहस्थों ने उपस्थिति दी थी।

इस संस्था के मकान चार मास में सात लाख रूपये के खर्चे से तैयार करने में आये थे। तथा इसका उद्घाटन सौराष्ट्र के राजप्रमुख जामनगर के महाराज श्री दिग्विजयसिंह के वरद हस्तों से मंत्रियों, शिक्षणशास्त्रियों और सौराष्ट्र के संमानित नागरिकों की उपस्थिति में करने में आया था।



श्री महिला-कालेज के उद्घाटन समय पर गुरुकुल की ब्रह्मचारिणियों का व्यायाम-प्रयोग



श्री. महेन्द्रकुमार नानजीभाई मेहता

महाराणा मिल

कपड़े की मिल का विचार सर्वप्रथम सन् १९१० में मुझे अचानक किस प्रकार आया उसे आप लोग पहले प्रकरण मे देख चुके हैं, परन्तु इस समय यह केवल एक तरंग थी। उसके बाद मुझे जब बम्बई जाना पड़ता तब सदा सेठ मथुरादास की मिलों को देखने जाता था। उनकी छ मिलें मैने देखी थीं। माधवजी मिल बाप-दादा के समय की पुरानी थी। भरूचा मिल, मथुरादास मिल, कस्तूरचन्द मिल - ये सभी नयी थीं। मेरे मन मे बहुत बार विचार आता था कि पैसा होवे तो मिल करूँगा। मथुरादास सेठ भी कहते थे कि "मिल करो।"

"अभी तो पैसा नहीं" ऐसा संक्षिप्त उत्तर मैं देता था।

सन् १९२४ में भारत में मिल करने का विचार आया। उस समय स्वर्गीय श्री पट्टणी साहेब ने आग्रह किया कि "यहीं भावनगर में मिल करो।" यह बात माननीय महाराणा साहेब के पास गई तो उन्हो ने कहा कि "आप पोरबन्दर मे ही मिल करो। चाहिए जितनी उतनी सुविधा दूँगा।" भावनगर राज्य की तरफ से भी मदद करने का वचन मिला, परन्तु पिताजी और माता का आग्रह था कि 'दूसरी जगह जाना नहीं, हम दूसरी जगह पर नहीं आवेंगे। अब जो करो वह हमारी नज़रों के सामने करो। अफ्रीका छोड़ कर सब यहाँ आजावो - थोड़ा मिलेगा तो थोड़ा खायेंगे। हम सब छिन्न भिन्न होते जा रहे हैं, यह हमे अच्छा नहीं लगता है।' जो विचार उन दिनो में मेरे माता-पिता को आते थे वही आज हमको आते हैं। वृद्धावस्था के विचार जवानी में आवें तो दुःख न भोगना पड़े, परन्तु जब अपना समय बीत जाता है तब सूझता है।

जो मति पीछे उपजे सो मति आगे होइ,
काम न बिगड़े आप का जग हँसे न कोइ।

इस लिये माँ-बाप का कहना मान कर पोरबन्दर मे ही राज्य के पास से ज़मीन ली और रहने के लिए मकान बाँधे। इस समय

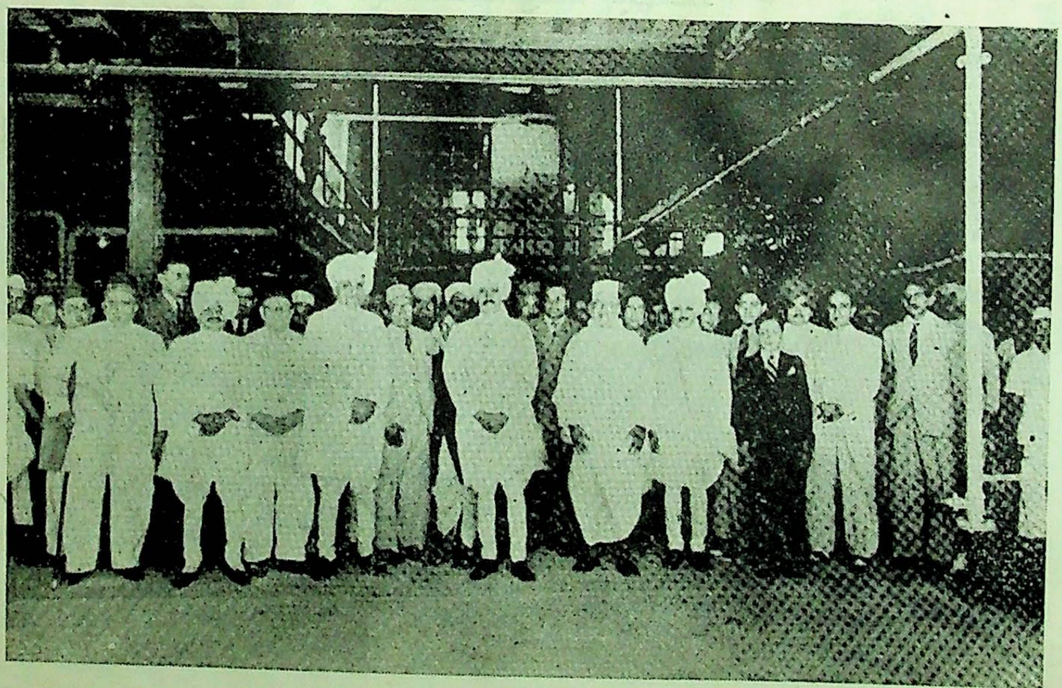
युगण्डा रोड के ऊपर जो ज़मीन है उस ज़मीन की सभी कुटुम्बियों के लिए खरीद की। सन् १९२५ मे मिल के मकान का कार्य शुरू हुआ। मेरे पुराने इञ्जिनियर ईश्वरभाई पटेल को यह कार्य सौंपा। सन् १९२७ में काठियावाड राजकीय परिषद् की चौथी बैठक स्व. श्री. ठक्कर बापा की अध्यक्षता मे पोरबन्दर में हुई। पू. बापू की हाजिरी में परिषद् संपन्न हुई। मिल का मकान तैयार था, यन्त्र और मशीनरी अभी आये नहीं थे। इस लिए परिषद् के मण्डप के रूप में उसका उपयोग किया गया। तपस्वियों के पग पड़ने मेरे साहस के सफल होने की निशानी थी।

इस समय में मिल की अवस्थायें बहुत खराब थीं। बम्बई और अहमदाबाद मे बहुत सी मिलें बन्द पड़ गयीं। जापान की स्पर्धा के कारण कितनी ही मिलों का नीलाम हो गया। पचास लाख की मिल पाँच लाख मे गयी। मज़दूरों की हड़ताल के कारण मिल उद्योग पामाल हुआ। अफ्रीका में आर्थिक स्थिति बिगड़ी। सभी स्थानों पर मंदी आयी - इससे तीन-चार वर्ष मिल चालू करने का विचार स्थगित रखा।

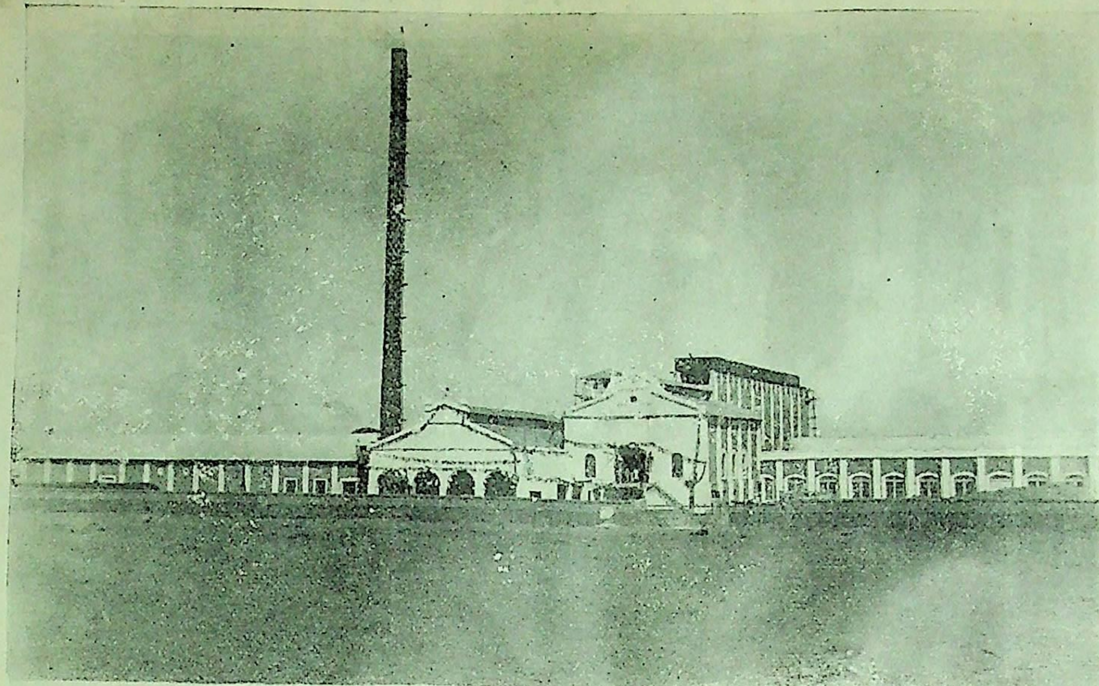
सन् १९३२ में देश में आया तो मिल की मशीनरी के लिए आर्डर दिया। दो वर्ष में धीरे धीरे मशीनरी आ गयी। प्रारंभ में तीन सौ पावरलूम्स डाले। सन् १९३४ मे मान्यवर महाराणा नटवरसिंहजी बहादुर के शुभ हस्तों से संमानित शुभेच्छुकों की उपस्थिति मे बड़ा सम्मेलन करके मिल खुली कराया परन्तु इस प्रसंग पर मुझ से पहुँचा न जा सका। युगण्डा मे रूई की फस्ल चल रही थी इससे मै पहुँच न सका। उसी प्रकार बड़े भाई और पिता जी मिल चालू होती देख नहीं सके इसका दुःख मन मे ही रह गया।

मान्यवर महाराणा साहेब, उस समय के दीवान ताजीमी सरदार श्री त्रिभोवनदास जे. राजा आदि ने अच्छी मदद की। काठियावाड़ में इस समय जो मिलें चलती थीं उन सब मे ऐसी ही एक मिल भावनगर में थी। मेरे पास उस समय मिल का अनुभवी कोई नहीं था। व्यवस्था-शक्ति वाले मैनेजर थे परन्तु मिल के कार्य की जानकारी नहीं थी। इससे चार वर्ष घाटा आता रहा।

सन् १९३७ में देश में आया तो उस समय चार मास खासकर मिल के लिए ही रुका। मिल का निरीक्षण किया। घाटा कैसे जाता है इसके लिए विचार किया। श्री ईश्वरभाई मिल के कार्य से



पोरबन्दर के नामदार महाराणाश्री के वरद हस्तों से सम्पन्न हुआ दी महाराणा मिल्स का उद्घाटन



दी महाराणा मिल्स, पोरबन्दर

अनभिज्ञ थे, इससे हम सूती कपड़े नहीं तैयार कर रहे थे बल्कि समझो रूई तैयार कर रहे थे। (कपड़ा रूई के भाव बिकता था इस लिए घाटा जाता था) भावनगर महालक्ष्मी मिल के मालिक सेठ श्री भोगीलाल भाई के साथ इस कार्य के विषय में सम्बन्ध जोड़ा। वे आकर यदा कदा मार्ग बता जाते थे। उन्होने मित्रधर्म निभाया।

अहमदाबाद की रोहित मिल वाले श्री सेठ वाडीलाल भाई तथा उनके बड़े भाई श्री चूनीलाल भाई के साथ भी मेरा स्निग्ध सम्बन्ध था। उनके काँग्रेस के कार्यकर्त्ता होने से सन् १९३२ से उनके साथ परिचय था। उनकी तथा सेठ भोगीभाई की मिलें मैने देखीं। वे तो मिल उद्योग के निष्णात गिने जाते हैं। उन्होने हमे खूब मदद दी। गाड़ी थोड़ी रास्ते पर आयी। हमारे पास मशीनरी पूरी नहीं थी। कितनी वार तो मिल बन्द करने को मन हुआ। आधी नयी और आधी पुरानी मशीनरी थी, परन्तु कारीगर अजान थे, इस लिए सब बराबर ही था। मज़दूर पूरे नहीं मिलते थे। बाहर से बुलाया। इस समय हड़तालों का ज़ोर था। बम्बई से मज़दूर लाये गये परन्तु वे बार-बार हड़ताल करते थे और भग जाते थे। वर्ष भर मे आठ-आठ हड़तालें। सन् १९३५, '३६, '३७ तीनो वर्षों में छ-सात लाख का घाटा दिया। पन्द्रह लाख में मिल खड़ी की, उसके ऊपर इतना खोया। सन् १९३७ मे जदुराय भाई मैनेजर के रूप में आये। वे इस काम के जानकार थे।

मिल में रेशम की बिनाई भी प्रारंभ करने का विचार किया। प्रिंण्टिग की अधूरी मशीनरी थी, उसे और उसके लिए मशीनरी लाने के लिए जापान जाने का निश्चय किया। जापान के उद्योग के निरीक्षण करने का हेतु भी था।

जापान की यात्रा का निर्णय होते ही हमारे साथ आने वाला मण्डल तैयार हुआ। सेठ श्री वाडीभाई ने कहा "पिता जी को अपने साथ ले जावो। उनकी तबियत ठीक नहीं रहती। आप हो इस लिए भेजता हूँ।" इस प्रकार वाडीभाई के पिता जी सेठ श्री लल्लूभाई तैयार हुये। सेठ चतुर्भुज भाई दोशी, श्री भोगीभाई के चि. बकुभाई तथा इनके मामा श्री गिधुभाई कोटक के भाई पोपट भाई सकुटुम्ब तैयार हुये। माननीय मोरारजी भाई देसाई के छोटे भाई अमुभाई, जो एक विज्ञ मैनेजर तथा वीविंग मास्टर हैं वे मशीनरी जानकार के रूप में श्री लल्लूभाई के साथ आये। रोहित

मिल के मैनेजर भगवती भाई भी साथ थे। इस प्रकार ३५-४० जनो की मण्डली तैयार हुई। मै भी कुटुम्ब सहित जाने को तैयार हुआ।

सुन्दर मुहूर्त देख कर हम जापान जाने के लिए रवाना हुये। हमारा जापान का प्रवास हमे भली प्रकार उपयोगी सिद्ध हुआ। मिल के कार्य के लिये जाने को सूझा परन्तु जापान जैसे प्रगतिशील देश के पास से हमे बहुत जानने को मिला। इस यात्रा का वर्णन पाठकों को भी उपयोगी होगा – ऐसा मान कर अब पीछे के प्रकरण में उसे विवरण सहित दूँगा।

महाराणा मिल की एक महत्व की बात लिख कर मै जापान की यात्रा पर प्रस्थान करूँगा।

सन् १९१० में सेठ मनसुखलाल भगुभाई की तेलिया मिल देखने अपने मित्र शोभाभाई के साथ मै गया था। उस समय अचानक मेरे मन में मिल खड़ी करने की इच्छा हुई। इस समय तो शक्ति भी नहीं थी केवल तरंगरूप ये विचार थे, परन्तु ईश्वर कृपा से मिल खड़ी हुई और संयोगवशात् लड़ाई के कारण ज़मीन का भाव बढ़ जाने से यह तेलिया मिल बिकने लगी और मेरे मैनेजर श्री जदूभाई को उसकी मशीनरी लेने को मैने सन् १९४३-४४ में भेजा। मशीनरी का सौदा हो गया। मुझे देखने को बाक़ी था। मै देखने गया तो मुझे मालूम पड़ा कि १९१० में जिसे देखा था यह वही मिल है और मशीनरी भी वही है, इस लिए फौरन सौदा पक्का किया और मशीनरी ख़रीद ली। मुझे पुरानी बात याद आयी और मन मे हुआ कि मनुष्य के भाग्य में क्या लिखा हुआ है, उसकी उसे खबर नहीं पड़ती। अढ़ाई सौ लूम और टेकुवे खरीदे। महाराणा मिल छ सौ लूम की हुई। जापान से आनेके बाद दो सौ लूम सिल्क की डाली। यह प्रसंग ईश्वर की दया का प्रत्यक्ष उदाहरण है। सच्चे अन्तःकरण से प्रभु के पास माँगें और पुरुषार्थ करें तो वह वस्तु ज़रूर मिलती है।

सन् १९१० मे केवल पन्द्रह हज़ार की पूँजी थी तब शेख-चिल्ली जैसा विचार किया। प्रभु ने ३४ वर्ष मे यह किस प्रकार पूर्ण किया कि जिस मिल के ओटे पर बैठ कर ईच्छायें की थीं उसी मिल की मशीनरी ३४ वर्ष में जादू की भांति किस प्रकार आ गई, यह मुझे अभी समझ नहीं पड़ता। इस वस्तु पर चाहे जो विचार मनुष्य को आवे वह स्वाभाविकहै। इसी का नाम प्रभु की दया और वांछित फल है। किसी मनुष्य को शंका रहती हो कि प्रभु नहीं तो उसका यह उदाहरण है।

जापान की यात्रा

मुम्बई से विक्टोरिया स्टीमर में हम रवाना हुये। मित्रों ने शुभ विदाई दी। तीसरे दिन सीलोन आया। सीलोन से तात्पर्य है लंका। इस समृद्ध और सुन्दर देश को पीछे लौटते समय शान्ति के साथ देखने के रखा। हमे सीलोन में कोलम्बो बन्दर पर २४ घण्टे रुकने के था। इस समय में कोलम्बो शहर की समृद्धि और व्यापार देखा। दूसरे दिन स्टीमर रवाना हुई। हम सिंगापूर पहुँचे।

सिंगापूर यह पूर्वका समुद्री-प्रवेशद्वार माना जाता है। पहले बड़ा भारी फौजी पडाव था। युद्धपोत बन्दर के द्वार पर पड़े रहते थे। हम दे दिन वहाँ रुके। हमारा और अहमदाबाद मिल का माल वहाँ आता था, इस लिए बहुत से भारतीय व्यापारी परिचित मित्र थे। खूब प्रेम से मिले। शहर देखा। यह पांच लाख की बस्तीवाला सुन्दर शहर है। शहर की सजावट उड़कर आखें को लगे ऐसी। सिंगापूर से रवाना हुये।

सिंगापूर से मलाया स्टेट की राजधानी पिनांग जाया जाता है। मलाया में विश्व का ४० प्रतिशत रबर और एक अरब रूपये का टिन उत्पन्न होता है। इन्हें शुद्ध करने की फैक्टरियाँ सिंगापूर में हैं। बहुत समृद्ध देश है। वहाँ पर लगभग सात लाख भारतीय हैं।

हम सिंगापूर से फिलीपाइन गये और मनिला उतरे। अमेरिका का यह टापू व्यापारिक तथा राजकीय दृष्टि से बहुत उपयोगी है। मनिला टापू मे हेम्प साइसल की बड़ी मात्रा में खेती होती है, उससे नौका, स्टीमरों के लिए रस्से बनतें हैं। मनिला टापू लगभग समस्त दुनियाँ के रस्सी और रस्सों की पूर्ति करता है। ईख की भी यहाँ पर भारी खेती होती है। कारखाने में दश लाख टन खांड होती है। सोने की खाने हैं और प्रदेश बहुत उपजाऊ है। पहले यह टापू स्पेन के पास था। हमारे लिए ये दोनें वस्तुयें देखने और समझने में उपयोगी थीं। दे रात्रि वहाँ पर ठहरे। सुन्दर तट और रमणीय नगर देखा। मनिला नगर की दश लाखकी बस्ती है। ऊँची

अमेरिकन ढंग की इमारतें बड़े बाजार, अमेरिका की समृद्धि वहाँ देखने को मिली। रात्रि मे स्टीमर पर आ गये। इस टापू मे चीन, मलाया और जापान की मिश्रित प्रजा बसती है। छोटे छोटे बहुत से टापू वहाँ पर हैं। लगभग दो करोड़ की वस्ती होगी। वहाँ सोनेकी खाने भी हैं। समुद्र के मध्य-भाग में टापुवों के आये होने से साइक्लोन और तूफान खूब होते हैं। लोग सामूहिक रूप में बहुत सुखी और साहस वाले हैं।

मनिला से चलकर हांग-कांग पहुंचे। वहाँ भी दो दिवस रुके। हांग-कांग यह एशिया का सुन्दर से सुन्दर शहर है। चीनी लोगों को वहाँ देखा। हांग-कांग मे मिली जुली प्रजा बसती है। हज़ारों बन्दर गाहों का झण्डा हांग-कांग की खाड़ी मे फहराता है। वहाँ के घरों तथा स्टीमरों की रोशनी के कारण रात्रि मे यह बन्दर-गाह अपूर्व शोभा धारण करता है और दुनियाँ भर के बन्दर गाहों की दिखावट में उत्तमरूप की इसकी गणना होती है।

हांग-कांग में बहुत से सिख बसते हैं, जमीन्दार हैं और वहाँ के निवासी हो गये हैं। फौज़ से निवृत्त होकर वस्ती की है। कितनों ने वहाँ पर विवाह करलिया है। व्यापारी भी बहुत सुखी हैं। हांग-कांग बड़ाभारी फौज़ी स्थान है हमे देखने के अतिरिक्त और कोई कार्य नहीं था। शान्ति से सब देखा।

सारे दिन फिरना. नया नया देखना, आनन्द करना और रात्रि में स्टीमर में आकर सो जाना। हांग-कांग से आगे चले। स्टीमर मे अच्छी भोजन की व्यवस्था थी। साथ मे रसोइया लिया था। सिनेमा, खेल कूद के साधन आदि की बड़ी अनुकूलता थी। इन दिवसों में जो प्रवास का आनन्द किया वह जीवनभर मे भूले ऐसा नहीं। स्टीमर में भूख खूब लगती थी। दूना भोज़न खाया जाता था।

हांग-कांग से रवाना हुई स्टीमर दूसरे दिन मार्ग मे एकाएक खड़ी रही। हम रात्रि के बारह बजे तक सिनेमा देखकर फाटक पर बैठे थे। लल्लूभाई सेठ को ब्लडप्रेसर था उनकी तबियत सुधरती जा रही थी। वे खूब आनन्द में थे। पांच छ बहने भी थीं। स्टीमर अचानक खड़ी हो गई, इस लिए हमने वेटर को पूछा, 'स्टीमर क्यों खड़ी हो गई? इसने जवाब दिया "साइक्लोन है"।

यह समुद्र ही ऐसा है कि जहाँ पर बार-बार बड़े बड़े तूफान आते हैं परन्तु हमारी स्टीमर २२००० टन की जबर्दस्त स्टीमर थी।

एक घण्टे मे वीस नोट (२५ मील स्पीड)। चाहे कितना ही बड़ा तूफान आवे परन्तु इसे प्रभावित कर सके ऐसा नहीं था। हम सो गये। प्रथम श्रेणी की केविनें बड़ी और एयर कंडीशन वाली थीं। गरमी जैसी वस्तु ही नहीं थी। मै सवेरे पहले ही पांच बजे जाग गया। बाहर डेक पर घूमने को निकला।

चारों ओर समुद्र उछल रहा था। अभी अंधेरा था, इतने मे मेरी दृष्टि सामने दिखलायी पड़ती बत्तियों पर गई। समुद्रमे ये बत्तियाँ किस की। कोई स्टीमर आती होगी ! परन्तु अधिक ध्यानसे देखा तो सामने की बत्तियां कोई सिग्नल दे रही हों, ऐसा लगा। मन में शंका हुई कि ऐसी बत्तियाँ तो लड़ाई के समय में युद्धपोत ही एक दूसरे को देते हैं। नीचे आकर सेठ चतुर्भुज दोशी, श्री पोपटभाई कोटक को जगाया और कहा कि "उठो तो लड़ाई जैसा लगता है'। उन्हो ने कहा "आपको तो लड़ाई का ही बिगुल बजता रहता है"। तथा वे ऊपर आये। देखा तो उन्हे भी विश्वास हुआ कि कुछ है तो सही, सभी पूछ ताछ करने लगे। स्टीमर को वायरलेस से सूचना जब तक न मिले तब तक आगे नहीं बढ़ना"। २० नोट (सवा मील की एक नोट) की रफ्तार से वेग से स्टीमर चली जा रही थीं। हम नहा धोकर चाय-पानी पी ने ऊपर आये। कैप्टेन ने सूचना दी 'चीन, जापान के मध्य लड़ाई शुरू हो गयी है। शंघाई पर बाम्बमार चल रहे हैं। हमे आगे बढ़ने की मनाही है। वायरलेस आवेगा तभी अपने आगे चल सकेंगे।

पानी, शाकभाजी आदि वस्तुवें में पचास प्रतिशत कटौती कर दी गई। समुद्र में कहाँ तक रहना पड़ेगा, इसकी कोई ख़बर नहीं थी। हमे कोई वस्तु पूछने की भी नहीं रह गई। नव बजे पायोलेट आया तो हवा और समुद्र तेज़ थे। शंघाई केवल ४० मील दूर था। शहरसे वे अख़बार ले आये। हमने अख़बार में समाचार पढ़ा "चीन और जापान के मध्य फूट निकला युद्ध; जापान द्वारा किया गया बम्बार्ड, चीनी बस्ती के बदले भूलसे ब्रिटिश और मिश्र बस्ती मे गिरा बाम्ब; आठ सौ आदमियों की मृत्यु; बारह सौ घायल," पढ़कर सब विचार में पड़ गये। मनमे हुआ, अपशकुन हुआ। उसी दिन सायंकाल वायरलेस आगया "शंघाई से चार मील दूर रहना"।

समुद्र मे तूफान था। पायोलेटने रस्सी बाँधकर ऊपर चढ़ाई। स्टीमर चार मील दूर पर ठहरी। शंघाई चीन का मुख्य बन्दरगाह

और साठ लाख की बस्ती का शहर है। पांच जाति की जनता वहाँ पर बसती है— फ्रेञ्च, ब्रिटिश, अमेरिकन, जापानी और चीनी लोग। हर एक की कोर्ट अलग अलग है। कोई किसी को रज़ा के बिना पकड़ नहीं सकता। पांच हिस्सो में शहर बसा है। सन् १८७० में चीन के साथ लड़ाई हुई तब से भाग पड़ गया है। बन्दरगाह पृथक् पृथक् और चुंगी भिन्न भिन्न। शंघाई बन्दरगाह से यांगसेक्यांग को नदी मे मीलों पर्यन्त स्टीमरें अन्दर जा सकती हैं। नदी के दो भाग पड़े हैं। चुंगी भी वहाँ पर चुकानी पड़ती है। हमे उतरने की अथवा शहर के पास जाने की मनाहीं थी।

दूर से शहर दिखाई पड़ता था। बमवर्षक चालू थे। बड़े बड़े राक्षसी मकान ज़ोर से जल रहे थे। जापान के युद्धपोत सेना और बारूद गोले भरभर के आ रहे थे। चीन सामान्यतया ग़रीब देश है। शस्त्र-सामग्री नहीं मिलती। हांग-कांग और दूसरे रास्ते से यूरोप की जनता उसे साधन पूरा करती है। सन् १९३१ मे इसी प्रकार चीन के साथ जापान की लड़ाई हुई। इस लड़ाई में जापान ने मंचूरिया को ले लिया। यह प्रदेश बहुत समृद्ध है। समस्त एशिया में जापान बहुत समृद्धिशाली राष्ट्र गिना जाता है। मंचूरिया पर विजय करने के बाद उसका विचार यूरोपियनो को निकाल कर अपना आधिपत्य जमाने का था। जापानी स्टीमरों मे से भयंकर बमवर्षा चालू थी। हमारी और दूसरी स्टीमरों की बत्तियों पर नाम लिखा था कि "यह तटस्थ देशकी स्टीमरें हैं"। किसी भी स्टीमर को पीछे लेजाने अथवा जापान लेजाने की रज़ा नहीं थी। हमारी स्टीमर चार मील दूर पड़ी थी। दो दिन तक वहाँ खड़ी रही। तीसरे दिन जापान और चीन के कौंसेल ने मिलकर निश्चय किया कि छ घण्टे लड़ाई बन्द रखना और परदेशी लोग बिना कारण मारे न जायँ इस लिए जिन्हे शंघाई छोड़ आना हो उन्हे खाड़ी मे पड़ी हुई स्टीमरों में जाने देना चाहिए। जिन्हे जहाँ जाना हो उन्हे वहाँ जाने की सुविधा कर दी जावे।

छ घण्टे युद्ध बन्द रहा। बन्दर से लाइटरें और होडियाँ छूटीं। उसमे भर भर कर यात्री आने लगे। सब को केवल एक हैण्डबेग लेने की छूट थी। हमारी स्टीमर मे अठारह सौ आदमी आये। खड़े रहने की जगह नहीं मिलती थी। इसी प्रकार २४ स्टीमरें सवारियों से भर गईं। दो दो दिन के भूखे प्यासे स्त्री-पुरुष और

बालक भाग निकले। किसीने भारत का तो किसीने योरोप का रास्ता लिया। हमारी स्टीमर को जापान की तरफ़ आगे बढ़ने की मनाहीं हुई। बहुत सी स्टीमरें हांग-कांग की ओर को वापस लौटीं। हांग-कांग तटस्थ बन्दर था। हांग-कांग की बस्ती पांच लाख की थी, उसमे दूसरे पांच लाख आकर भर गये। कितने ही पैदल रास्ते से आये। हमारी स्टीमर बन्दर पर ठहरी। इस लिए हुकुम मिला "जिसको उतरना हो वह तीन घण्टे में उतर जावे।" हम खिन्न हुये। कहाँ जावें और क्या करें? मेरे मन मे एक निश्चय था कि 'इतनी दूर आने के बाद पीछे नहीं फिरना।' हमारे दल मे भेद पैदा हुआ। हम लगभग २० व्यक्तियों ने आगे जाने का निश्चय किया। मरना तो भी साथ ही और जीना तो भी साथ - ऐसा निश्चय करके हम नीचे उतरे।

हांग-कांग मे कहीं पर जगह नहीं मिलती थी। एक होटेल में रोज का पचास रूपया देकर एक हाल भाड़े पर रख लिया। उन में से श्री लल्लूभाई तथा श्री अमूभाई को एक रूम में रखा।

हमारा सामान नीचे उतारा गया। मै सामान पर बैठा था इतने में एक आदमी पुकारता हुआ आया "नानजी कालीदास मेहता, नानजी कालिदास मेहता, इसमें कहाँ हैं?" अपना नाम सुन कर मै खड़ा हो गया। मैने पूछा 'तुम कौन हो?' मै पूरी तरह अंग्रेज़ी जानता नहीं था। वह हिन्दी नहीं जानता था। इतने मे श्री पोपट भाई आये। उन्होने अंग्रेज़ी मे बातचीत की। पहले भाई ने कहा "मै मिसेस और मि. मेहता को लेने आया हूँ। मेरा नाम इस्माईल है। मोम्बासा मे हमारे बहुत से अढ़तिये हैं। उन्हे मैं माल भेजता हूँ। मि० खीमजीभाई मेहता पहले आये थे। उनका तार है।

श्री पोपटभाई ने हमारा परिचय कराया। मैने उनका आभार माना। श्री पोपटभाई कुटुम्ब सहित उनके अपने पारसी मित्र डाक्टर के यहाँ गये। भाई इस्माईल ने कहा "हमारे यहां दो रूम है, बरान्दा है, समा सको तो सभी आवो।" हमने भाड़े पर लिए हुये कमरे मे तीन आदमियों को रखा और हम इस्माईल के यहां गये। बिल्कुल अज्ञात देश में अचानक परिचय निकला, उससे स्नेह-सम्बन्ध और मानवप्रेम क्या वस्तु है? इसका ख़्याल आया। इनके पिता जी कच्छी थे, दो भाई और दो बहनें थीं।

भाई इस्माईल के यहाँ दो बड़े कमरे थे। दोनो ही खण्ड

आनन्द के थे। वे दो भाई और दो बहन उनमें रहते थे। सभी को पश्चिम के सुधार का रंग चढ़ा हुआ था। परन्तु बहुत सेवा-भावी थे। बरान्दे मे चटाई बंधी थी। वर्षा चालू थी, हमारे साथ बहने थीं। उन्होने हाथों-हाथ रसोई की। दो चीज़ें बनायीं। रसोई तैयार हुई, इतने में हम नहाने गये। टट्टी की व्यवस्था थी। टट्टी और रसोई भी गन्दे थे – घर स्वच्छ और वस्त्र सुन्दर। स्वयं आज्ञाकारी, नम्र और ईमानदार। चोरी का नाम भी नहीं जानें। सच्चा सेवक कहें तो चल सकता है। हमने तीन दिवस वहाँ पर बिताये। हम नव जने वहाँ पर उतरे थे।

हम कावलोन में रहते थे। भाई इस्माईल की दूकान हांग-कांग मे थी। हांग-कांग पूर्व मे पहाड़ों पर आया हुआ रमणीय शहर है। इसे पूर्व का पैरिस कहें तो ठीक होगा। गड़रियों की झोंपड़ी जैसा गोलाकार टापू है। मार्ग गोलाकार। रोपरेलवे बनायीं हुई है, एक ऊपर जाती है दूसरी नीचे आती है। अंग्रेज़ों का भारी स्थान है। सामने के किनारे पर चीन की सीमा है। इस समय नानकिंग और मंचूरिया तक रेलवे जाती है। शहर में जगह की तंगी की वजह से लाख दो लाख आदमी समुद्र में किश्ती के मकान में रहते हैं। फ्री पोर्ट है। कावलोन से हांग-कांग २०० फेरी बोट जाती हैं और २०० आती हैं। दस मिनट का रास्ता और दस सेण्ट भाड़ा। यात्री बोट में खड़े रहते हैं और झट सामने के किनारे पर पहुँच जाते हैं। चीन का यह बड़े से बड़ा बन्दर है। चीन का बड़ा व्यापार वहाँ से चलता है। बगल मे मकाऊ बन्दर है। वह हवा खाने का स्थल है। पोर्टुगीज़ का यह बड़े से बड़ा बन्दरगाह है। फ्रान्स के प्रथम मोण्टेकार्लो जैसा ही यह रमण का एक बड़ा स्थान है। यहाँ सभी किस्म के दुर्गुण देखने को मिलते हैं। तथा इन सब को देखने वाले को ऐसा ही मालूम होता है कि कौन जाने यह एक बड़ी नरक की खान हो! योरोप की प्रजा चीनी लोगों के असंघटन और कमज़ोरी का लाभ लेकर वहाँ घुस गई है। चीन की ६० करोड़ की बस्ती और ये ही दो तीन बन्दरगाह हैं – इस लिए बन्दरगाहों का व्यापार ज़बरदस्त चलता है। भारत बहुत से बन्दरगाहों मे भाग रखता है। बड़ा देश हो तो वहाँ हरएक बन्दरगाह पर व्यापार चलता है। हमें बन्दरगाह पर जाने की मनाहीं थी फिर भी मोटर पर गावों को देख आते थे। भाषा कुछ

समझ नहीं पड़ती थी। लोगों के मिलने जुलने से बहुत आनन्द होता था। हांग-कांग में मिलें देखीं। सूत भारत से आता था, वहाँ केवल बुनने का काम होता था। हांग-कांग और शंघाई मे अपने कितने ही बड़े व्यापारी ई. डी. सासुन, सर दोराव टाटा और दूसरी अनेक फर्में थीं। पहले अफीम का बड़ा भारी व्यापार था। अफीम बन्द हुआ बाद मे सूत और दूसरे माल भेजने लगे। सन् १९१४ की लड़ाई हुई तब तक व्यापार खूब था - अब भी चालू है। जापान ने अपना उद्योग खिला हुआ किया तब उसका कब्ज़ा लिया। जापान, चीन, और दूसरे विदेशियों की मिलें शंघाई में पड़ी हैं। चीनियों की खूराक में मछली और चावल मुख्य हैं। मछली को उबाल कर खाते हैं। मछली का बड़ा व्यापार चलता है। ग़रीबी के कारण मज़दूरों का शरीर कमज़ोर है। अठारह-बीस वर्ष की लड़की के सिर पर धवल बाल दिखाई पड़ता है। शरीर में कमज़ोर होते हुये भी मज़दूर खूब सचेत हैं। काम करते हों तो उस समय यंत्र को खड़ा नहीं रखते। आस-पास गन्दगी नहीं रखते। इस समय बेकारी बहुत थी। ग़रीबी का पार नहीं था। इस लिए वे कार्य में खूब ही ध्यान रखते थे। छुट्टी दे देंगे तो क्या खाऊँगा- ऐसा उन्हे डर रहता था। लगभग २५ प्रतिशत किश्तियों पर मकान बना कर रहते थे। हांग-कांग की बग़ल के टापू में फौज़ रखी थी, तोपें लगा रखी थीं, ब्रिटिश लोग जहाँ पर राज्य करते हैं वहाँ ऐसा दबदबा रखते हैं कि दूसरा घबड़ा जावे।

हांग-कांग में भारतीयों की बहुत सी फर्में हैं। बम्बई, मद्रास आदि शहरों के साथ व्यापारिक सम्बन्ध है। हम चार दिवस पर्यन्त वहाँ रुके। पाँचवें दिन कैनेडा-पैसिफिक कं. लिमिटेड मे अपना पैसेज बुक कराया। दूनी टिकिट बैठी। २८ हज़ार टन की बड़ी स्टीमर थी। हम इस स्टीमर में जापान जाने को रवाना हुये और बिना किसी विघ्न के जापान के नागा-साक़ी बन्दर पर उतरे।

३४

जापान की यात्रा (चालू)

नागासाकी यह जापान का एक मुख्य बन्दरगाह है जिसके ऊपर अमेरिका ने एटमबोम्ब फेंका था और जो भस्म हो गया था। हम हांग-कांग मे चार दिन रहे थे। उस समय हांग-कांग मे कालरा चल रहा था इस लिए हमारी डाक्टरी जांच हुई। टट्टी पेशाब की परीक्षा हुई। तीन घण्टे की सख्त जांच के बाद हमें छोड़ा। हमारी स्टीमर वहाँ २४ घण्टे रुकी। प्रातः चल कर हीरोशिमा होकर दूसरे दिन हम कोबे पहुँचे। प्रातः नव वजे जापान के किनारे पर पग रखा। भारतीय और जापानी मित्र सामने लेने को आये थे। युद्ध का समय था। स्टीमरों में फौज़ियों की भर्त्ती होरही थी और बारूद-गोले चढ़ायें जा रहे थे। युद्धपोतें चीन की ओर रवाना होने को तैयार हो रही थीं। दो घण्टे मे अपना सामान उतरा कर श्री कोटन साहेब के घर पहुँचे। श्री लल्लूभाई सेठ ने अपने लिए पहले से ही कोबे होटल में प्रबन्ध करा रखा था। वे बीमार थे इस लिए वहाँ रहे। होटल मे भारतीय भोजन की व्यवस्था की। डाक्टर आकर इंजेक्शन दे जावे वैसी व्यवस्था रखी थी। आपस के होटलों में एक प्रकार की खास विशिष्टता है ग्राहकों को जिस प्रकार का चाहिए वैसी किस्म का खाना वे बनाकर देते हैं। वहाँ पाक-विज्ञान की संस्था चलती है। उसमें जापानी स्त्रियाँ हर एक प्रकार की बानगी बनाना सीखती हैं। देश को भूल जावें— ऐसा सुन्दर, स्वच्छ भोजन बनाकर देते हैं। हमारे साथ श्री कोटक साहेब के भाई कुटुम्ब सहित आये थे। इनके आग्रह के कारण हम उनके घर गये।

घर पहुँचकर चाय-पानी लिया। इस समय वहाँ पर रेशनिंग थी। वहाँ की सरकार कायदे में इतनी सख़्त है कि चाहे कितना ही श्रीमान् और सत्ताधीश हो तो भी भूल नहीं कर सकता है। गरीब अथवा अमीर जो कोई अपराध करता है उसका नाम बदनाम हो जाता है। साथ ही अपराध के बदले मे सख़्त दण्ड होता है।

श्री गीधुभाई कोटक की पत्नी के इस समय देश मे आये हुये होने के कारण जापानी बाई रसोई बनाने वाली के रूप मे भी काम करती थी। हम चाय-पानी पीकर बैठे थे, इतने मे वह बहन आयी। उसने तीन बार नमस्कार करके श्री गीधूभाई को पूछा "थायसो ने ओकसान? (सेठ सेठानी अपने घर उतरने वाले हैं और भोजन करने वाले हैं)"।

श्री गीधूभाई ने हाँ की, इस लिए पूछा "कितनी रोटी खावें गे?"

श्री गीधूभाई हमारे सामने देखकर हसने लगे। मैंने पूछा क्या बातचीत चलती है?"

"आपसे कहने जैसी नहीं, इज्ज़त जावे ऐसी है" मैंने कहा अपनी आबरूह साथ ही है— कहो तो सही" बाई की नज़र नीचे ढली हुई थी। जापान में स्त्रियाँ आँख में आँख मिलाकर बात नहीं करतीं— एक तो आँखे छोटीं और आदत भी ऐसी ही पड़ गई है। पति-पत्नी मे भी यही मर्यादा है।

अपने देश में आँखो मे जो चंचलता है वैसी हमें वहाँ देखने में नहीं आयी।

श्री गीधूभाई ने मुझे कहा "यह पूछती है कि मेहमान कितनी रोटी खावें गे?"

मैने कहा "क्या उत्तर दिया?"

"नहीं दिया"

"इसे कहें कि हम बहुत दिनो तक घरकी खोराक खाना चाहते हैं, इस लिए आज ज़्यादा करो, तुम्हारी रोटी कैसी होती है— यह आज देखकर कल निश्चय करूँगा"

श्री गीधूभाई ने इसे जापानी भाषा में मेरी बात कह बतायी, इस लिए यह हंसती हँसती चली गई।

श्री गीधूभाई ने कहा कि "इतनी ज़्यादा सचेतता रखने का कारण देशकी ग़रीबी है। जूठा नहीं छोड़ना चाहिए। जूठा छोड़ने वाला पापी गिना जाता है, और देश का अपमान करना गिना जाता है"। यह सुनकर मुझे हुआ कि कितनी ज़्यादा मितव्ययिता, कितनी सावधानी। अपने देशकी बेदरकारी, अनाजका कितना बिगाड़ हम करते हैं। जैसा कि यदि अनाज साफ करने, भरकर रखने, फस्ल को काटने के समय पर, बारियाँ भरने में सम्पूर्ण देश में

खराब होनेवाले अनाज का यदि हिसाब करें तो लाखों का नुकसान होता हैं; घुन पड़े, खराब हो जावे, चूहे खावें, पक्षी खा जावें, इसकी कोई परवाह नहीं। अन्न बिना लाखों मनुष्य तड़पते हैं, भूखे मरते हैं— इस की कोई परवाह नहीं। जापान में अन्न का दाना पड़ा हो तो उठा लेवें, पतीली घिसकर खा जावें।

बाई ने रसोई तैयार की— हम भोजन करने बैठे। उसने भोजन परसा। हम भोजन कर रहे थे इतने मे पतीली में हाथ मे पहना हुआ कड़ा ठपकाया। मैने पूछा "यह सिग्नल किसका हुआ? श्री गीधूभाई ने कहा— 'यहाँ यह प्रथा है कि पतीली खड़ के कि जानना चाहिए कि भोजन समाप्त है। इस लिए माँगना नहीं।

अपने देश में खाते समय छोटे बड़े सब माँग करते हैं और न खाना हो तो भी आग्रह करके खिलाते हैं। बिना मागे परसते हैं, जूठन पड़ी रहती है और इतना खिलाते हैं कि बीमार पड़जावे। यह तरीका जापान में नहीं है। मैने बहुत से देश देखे परन्तु जापान जैसी मितव्ययिता वाला कोई देश देखा नहीं।

स्नेही मित्रों के यहाँ पारी-पारी से खाने का चालू हुआ। जापान के होटल भी सस्ते हैं, यूरोप जैसे मँहगे नहीं। सात से दश रूपये में रूम और भोजन मिलता है। जब कि यूरोप में २५ से ४० रूपये पड़ते हैं। जापानी बाई अपने घर पर खाती-पीती है और रसोई पानी करती है, कपड़ा धोती है, बर्तन माजती है, बत्ती करती है, गरम पानी करती है और परसती है तथा उसका वेतन १८ से ३० रू० मासिक है। जापानी स्त्रियों मे ऐसी प्रथा है कि जब जब घरमे पति अथवा सेठ आवे तब तब वह घर के द्वार पर्यन्त उसके सामने आती हैं। तीन बार नमन करती हैं, छतरी, कोट जो भी हो उसको लेकर खूंटी पर लटका देती हैं। बाहर जाना हो तो उसकी ओर बूटका मुँह कर दे। इसकी नम्रता मनुष्य को शान्त कर देती है। सारे घर घरमे इसकी दृष्टि चारों तरफ फिरती ही होती है। घरकी वस्तु को संभाल कर रखती है, एक धागा भी खराब या निकम्मा नहीं जाने देती। बिजली अत्यंत सस्ती है तिस परभी उसको नुकसान नही जाने देती हैं। आवश्यकता नहो तो फौरन् बत्ती बुझा देती है। दश मिनट बाहर जावे तो भी बत्ती बुझाकर जावे बूट पर पालिश करती हैं, कपड़ा सीती है, घर साफ़ करती है, रसोई करतो हैं— एक ही बाई घरका सारा काम संभाल लेती है।

सूघड़-पना, स्वच्छता, नम्रता, ईमानदारी, और मितभाषिता— ये पाँच जापान के महा गुण हैं। चोरी, झूँठ, अथवा भय को तो वहाँ के लोग जानते हीं नही। जिसके घर में नौकरी करें उसका परम सेवक बन कर रहती हैं। उनकी ऊंची भावना देखकर अपने प्रेमसे गद्‌गद हो जाते हैं। कोबे मे रहनेवाले लगभग हजार भारतीय परिवारों में जापानी स्त्रियाँ ही रसोई बनानेवाली और धायी के रूप में काम करती हैं। ये स्त्रियाँ अपने बालकों की जिस प्रकार देखभाल करती हैं उसे देखकर ताज्जुब मे पड़जाना होता है। जापानी धायी मे प्रेम खूब होता है। अपने बालक उन्हें ही माँ कहते हैं। उनके ऊपर माँ की अपेक्षा विशेष प्रेम रखते हैं।

आठ दिन के बाद एक विशेष मोटर लेकर हम देश मे घूमने निकले।

सन् १९२१ से जिन जापानी मित्रों के साथ मेरा व्यापारिक सम्बन्ध था उन सभी के साथ कौटुम्बिक सम्बन्ध बँध गया था। 'टोयमैका कैशा' कम्पनी, 'गो सोका बुशी केशा', 'जापान काटन ट्रेडिंग कम्पनी', 'मई हु बी शान', उसके मैनेजर मि. टाबुची करके अफ्रीका में थे। उन्हे जंजीबार में टायफाइड हो गया था। उसने सब से पहले अपनी बीमारी के समय मुझे तार करके बुलाया और मेरे हाथ को अपने हाथ में लेकर कहा "मि० मेहता मुझे कुछ हो जावे, और इस बीमारी से मैं उठ न बैठूँ तो मेरे लड़के को आप संभालना" इतना अधिक विश्वास इन मित्रों का मैंने संपादन किया था। यह और इसकी पत्नी अफ्रीका में दस वर्ष रहे। वे हिन्दी और अफ्रीकी भाषा अच्छी जानते थे।

इन जापानी मित्रों ने मेरे जापान आने का समाचार जापानी जनता को समाचार पत्रों द्वारा बताया। उनमे मेरा परिचय देते हुये लिखा –

"मि० नानजीभाई मेहता जापान में सब से पहले अफ्रीका की रूई भेजने वाले, हमे अफ्रीका ले जाने वाले, रूई का व्यापार करने वाली जापानी कम्पनियों के मार्गदर्शक, जापान के कपड़े के व्यापारियों को सुविधा देने वाले, जापान के मित्र और युगण्डा के कपास के व्यापार के बड़े व्यापारी हैं। जापान देश के ऊपर इनका बहुत बड़ा उपकार है। वे जापान में आये हैं। इस समय युद्ध का काल है अतः अधिक तो नहीं परन्तु जिस होटल में, कारखाने में

अथवा रेलवे में जावें वहाँ उनको हरएक प्रकार की सुविधा दी जावे ऐसी हमारी अभ्यर्थना है। मि० मेहता जापान के परम मित्र हैं" इस प्रकार हरएक वर्तमान पत्र में छपाया और अपनी एजेन्सियों मे लिख डाला।

सर्व प्रथम हम क्योटो गये। वहाँ पर सभी सुविधा मिली। कोई चार्ज नहीं लिया। नांगोया मे भी ऐसा ही हुआ। हमे लगा कि यह उचित नहीं, इस लिए हम छोटी छोटी होटलों में उतरने लगे। बड़ी प्रसिद्ध होटलों मे तो हमारे वास्ते पहले से ही सब व्यवस्था हुई रहती थी। बड़ी फर्मों के मैनेजर हरएक प्रसिद्ध शहर में हमारी राह देख कर हमारे स्वागत करने की तैयारी करके बैठे होते थे। हम लोग हमारी किसीको खबर न मिले इस लिए बिल्कुल अज्ञात छोटी होटेल में अपना उतारा कर लेते थे। उसके बाद ही दूसरें को मिलने जाते थे। सेठ लल्लूभाई और हमने मशीन खरीदने का प्रारंभ किया। रेशम बिनने की चार सौ शटरें सेठ लल्लूभाई ने लीं और दो सौ हमने लीं। योरोप की अपेक्षा मशीनरी बहुत सस्ती थी। ब्लीचिंग, डाइंग और प्रिण्टिग के प्लाण्ट लिए। दूसरी भी बहुत सी मशीने लीं। कितनी ही श्री कोटक एण्ड कं. के द्वारा और कितनी ही सेठ चतुर्भुज दोशी की मार्फत लीं। लगभग दस लाख के सामान की खरीद की।

जापानी लोग अपने घर में खूब सादगी रखते हैं। चाहे कितना भी धनी हो फिर भी घर मे अधिक फर्नीचर नहीं होता। धान के पयाल से भरी हुई, चमड़े से मढ़ी हुई सादी चार गद्दियाँ रखते हैं। धनी लोग पयाल के बदले मुलायम रेशम जैसी एक प्रकार की रूई भरते हैं। कपोक रेशम जैसी एक मुलायम रूई है। मलबार के किनारे, अमेरिका और अफ्रीका मे यह पैदा होती है। मेहमान आता है तो उसे बैठने के लिए गादी देते हैं। कुर्सी अथवा सोफा कहीं पर देखने को न मिलेगा। घर मे भगवान् बुद्ध की एक मूर्त्ति होती है। खुदाई का काम किया हुआ एक सुन्दर नाज़ुक पीढ़ा भी रखते हैं। अतिथि अथवा घर का स्वामी बाहर से आवे तो सामने गृहिणी घुटनो पर बैठ कर तीन बार नमस्कार करती है। उसका जूता लेकर किनारे पर रखती है और घास के रेशे से निर्मित स्लिपर पहनने को देती है। जिंससे घर साफ रहे। कपड़ों में वे ओवर कोट जैसा पैर पर्यन्त पहुँचने वाला कपड़ा पहनते हैं,

इसे वे 'कीमेनो' कहते हैं। फुलवारी जैसा रंगीन कपड़ा होता है। हाफपैण्ट और उसीमे बनी हुई कमीज़ होती है। सिर का बाल अच्छी तरह संवारते हैं। पीछे बाल बिगड़े नहीं इस बात का ध्यान रखते हैं। स्त्रियाँ विवाह मे पितृरिक्थ के रूप में जो गहना मिला हो उसीको पहनती हैं।

सम्पूर्ण जापान की मुख्य खूराक मछली और चावल है। मूली का अँचार बनाते हैं। जापान मे मूली बहुत मोटी होती है। उसे तिर्छा बोते हैं। लकड़ी की चार फीट की मोटी अंचारदानी मे अंचार बरसों तक रखते हैं। मूली को राई के पानी मे डुबो रखते हैं। भोजन करने बैठते हैं तो लकड़ी के चिम्मच से मूली की फाँक निकाल कर एक तरफ रख लेते हैं। दो चीज़ से अधिक नहीं पकाते। बहुत ही कम खर्ची करते हैं। स्वच्छता सूघड़पने में जापान का नम्बर पहला पड़ता है। घर मे तनिक भी कूड़ा करकट पड़ने नहीं देते। कोई वस्तु कूड़े मे डालनी हो तो उसे आँगन मे पड़े हुये पीपे में डाल देते हैं। उस पीपे को ढँक रखते हैं। प्रातःकाल भिन्न भिन्न वस्तुवों को लेने वाले निकलते हैं। इस पीपे में से कोई काँच का टुकड़ा ले लेते हैं, कोई काग़ज़ ले लेते हैं तो कोई खाद का ढेर उठा लेते हैं। हरएक वस्तु का उपयोग होता है। किसी वस्तु को निकम्मा नहीं जाने देते।

अपने गावों में दो चीज़ें खाने में होती हैं। शहर के आदमी भोजन में ज़्यादा चीज़ें खाकर बीमारी बढ़ाते हैं। यात्रा मे यात्री की सुविधा खूब सावधानी से देखी जाती है। रेलवेगार्ड सारी ट्रेन मे फिरा करता है। एक छोर से दूसरी छोर पर्यन्त यात्रियों को पूछता रहता है कि "आप को कोई तक़लीफ है। कोई तक़लीफ हो तो मेरे केबिन मे आइयेगा।" एक बार मिलिटरी के आदमियों को पैसेंजर-ट्रेन में जाने को था। तीसरे दर्जे मे भीड़ थी – इस लिए गार्ड ने कहा "तीसरे वर्ग के डिब्बे मे बहुत भीड़ है। दूसरे वर्ग के यात्रियों को हरकत न हो इस प्रकार सब दूसरे वर्ग में बैठ जावो।" थोड़े स्टेशन गये, तीसरे वर्ग मे जगह हुई, इस लिए फिर सूचना दी गई कि "अब तीसरे वर्ग में पूरी जगह हो गई है। कृपा करके सब वहाँ पर पहुँच जावें।" सब शान्ति से दूसरे वर्ग से उतर कर तीसरे वर्ग में चले गये।

जापान मे एक दूसरा रिवाज़ यह है कि पुरुष जब तक खड़ा

हो तब तक स्त्री नहीं बैठती – इतनी मर्यादा रखती है। हमारी यात्रा में एक छोटा किस्सा हमने देखा। एक जापानी परिवार हमारे डिब्बे में आया। स्त्री-पुरुष और बालक आदि थे। डिब्बे में जगह न होने से वे सब खड़े थे। मै अपनी पत्नी के साथ सामने की सीट पर बैठा था। इस जापानी बहन और बालक को किनारे पर बैठा देख कर मै खड़ा हो गया और अपनी पत्नी के बगल में उनके लिए जगह कर दी और उस बहन को वहाँ बैठने को कहा। यह बहन बच्चे को लेकर दो घण्टे से खड़ी थी, थकी हुई थी, तिसपर भी विनयपूर्वक बैठने से इन्कार किया और कहा –"मेरा पति खड़ा है इस लिए मुझ से नहीं बैठा जा सकता। आप उसे जगह देंगे तो उपकार होगा।" ऐसा कह कर वह बहन खड़ी ही रही। पति-पत्नी के मध्य ऐसा सद्भाव देख कर मुझे आनन्द हुआ।

जापान मे सरकार के क़ानून से सब बहुत डरते हैं। कोई आदमी कितना ही बड़ा क्यों न हो, परन्तु अपराध में हो तो उसको सख़्त सज़ा होती है। गार्ड ने किसी समय भूल की हो तो हाराकीरी (अपघात) कर लेता है। सरकारी नौकर अथवा प्रजाजन गंभीर गुनाह में आ जावें तो पकड़े जाकर दण्ड भोगने में शर्म मानते हैं। इसकी अपेक्षा अपघात करके मर जाना उत्तम मानते हैं, इसमें गौरव मानते हैं। भारी अनुशासन वाली और स्वाभिमानी प्रजा है।

हम कितनी ही फैक्टरियों में गये। वहाँ पर पति-पत्नी दोनो ही डाइरेक्टर होते हैं। वे भी मज़दूरों के साथ ही काम करते हैं। मज़दूरों के साथ कार्य करने में छोटापन नहीं मानते। हम कारखाना देखने गये तो मज़दूरों के साथ काम करते हुये संचालक दम्पती काम करने का कपड़ा बदल कर हमारे साथ आकर बैठे। खाते समय केण्टीन में मज़दूर से लेकर डाइरेक्टर पर्यन्त सभी साथ ही बैठते हैं। गन्दगी का नामोनिशान नहीं मिलता। स्वर्ग जैसा बनाकर रहते हैं।

अपने देश में एक मज़दूर आदमी ४ से ८ ओटोमेटिक लूम चलाता है जब कि जापान मे एक मज़दूर ऐसे ३२ लूम चलाता है। पुरुष २० प्रतिशत और स्त्रियाँ ८० प्रतिशत मिलों में और फैक्टरियों में काम करती हैं।

गृह-उद्योग में जापान को कोई नहीं पहुँच सकता। हरएक के

घर में छोटा मोटा गृह-उद्योग होता ही है। संध्या समय पर्यन्त एक से दो एन पैदा करते हैं और इतने से ही सन्तोष मानते हैं। कोई बेकार नहीं बैठता। मधुमक्षिका की भांति सारा देश उद्यमी है। खूराक और रहन-सहन सादे तथा सस्ते हैं। जीवन बिल्कुल खर्चालू नहीं। नहाना हो तो प्रत्येक स्थान पर स्नानगृह। एक सेण्ट में नहाने को पानी मिलता है। नहाने जाने के लिए प्लेटफार्म के पास की भांति एक सेण्ट डालना पड़ता है। तब दरवाज़ा खुलता है। तौलिया और साबुन के लिए पांच सेण्ट हैं। (बारह आने का एक एन और एक एन के सौ सेण्ट) सब पेटी मे सेण्ट डाल कर स्नान कर आते हैं। अपने यहाँ घर में प्रत्येक को गरम पानी करना पड़ता है। कितने ही पानी बिना महीनों पर्यन्त नहाते नहीं। ऐसा वहाँ नहीं। ट्राम भी सस्ती। रेलवे सस्ती। सिनेमा घर भी सस्ता, तीस सेण्ट मे सिनेमा-नाटक देख सकते हैं। उसमें पाँच सेण्ट सरकार को कर जाता है, सिनेमा में वर्ग पृथक् नहीं, हरएक साथ बैठता है। एक शो पूरा होने पर भी बैठा रहे तो इसी टिकिट में दूसरा शो भी देखा जा सकता है। उठ कर बाहर जावे तो दूसरी टिकिट लेनी पड़ती है। मोटर सस्ती है। एक मील का ३० सेंट। बिजली भी सस्ती है। जीवनस्तर सामान्यतया बहुत सस्ता है। जब कि अपने यहाँ दिन प्रतिदिन महँगा होता जाता है।

जापान मे उच्च शिक्षा की प्रथा अपने यहाँ जैसी ख़र्चीली नहीं। वहाँ ऊँची उम्र के विद्यार्थी अपने शिक्षण के ख़र्च के लिए कमाई के साधन खड़े करते हैं। विद्यार्थी कालेज में नाटक तैयार करते हैं। व्याख्यानगृह में नाटक के प्रयोग तैयार करते हैं। उसमें नाट्यकला के जानकार स्त्री-पुरुष भी मदद करते हैं। पढ़े लिखे लोग बिना पुरस्कार नाटक लिख देते हैं। बड़े शहरों में ऐसी ही मंडली को नाटक करने की परवानगी मिलती है। इसमे से रक़म पैदा हो उसमें से कालेज का खर्च निकलता है। हाईस्कूल और युनिवर्सिटियाँ चलती हैं। सरकार पर बन सके उतना कम भार पड़े - उसकी सावधानी हरएक विद्यार्थी रखता है। धर्मादा भी सरकार को ही देते हैं। व्यक्तिगत संस्था चलायी नहीं जा सकती। मंदिरों का कब्ज़ा सरकार के पास है, उसमे पुजारी को वेतन मिलता है। बारह वर्ष पर्यन्त के बालकों का प्राथमिक शिक्षण जापान की मातावों के हाथ में ही होता है। मातृहृदय, सरल, नरम और

प्रेमपूर्ण होता है । इस लिए बालक के पालन-पोषण का काम वहाँ स्त्रियाँ ही करती हैं । प्राथमिक शालावों मे शिक्षिकायें ही पढ़ाती हैं। वहाँ खेलकूद के साधन रखने में आते हैं । जापानी बालक बारह वर्ष का हो जावे तो उसको अनिवार्य रूप में बन्दूक चलाना सिखाने में आता है । अंग्रेज़ी पढ़ाई का वहाँ बिल्कुल मोह नहीं । एक जापानी मित्र से मैने पूछा, 'तुम्हारे मक्खी की टाँग जैसे अक्षर हैं तो अंग्रेज़ी लिपि क्यों नहीं अपनाते ?' उसने मुझे उत्तर दिया "माता कुरूपा भी हो तो भी अपनी ही होती है । वैसे ही अपनी लिपि अपनी है । हम अपनी लिपि और भाषा भूल जावें तो गुलाम बनें । आप इसीसे गुलाम बने हो ।"

उत्तर सुन कर मै चुप हो गया। पाँच प्रतिशत अंग्रेज़ी शिक्षण है और ९५ वे प्रतिशत मातृभाषा सीखते हैं ।

बालक स्कूल आते हैं तो उनके गले मे एक पुस्तक बँधी होती है । उसमे उनके मा-बाप का पता लिखा होता है । स्कूल के दरवाज़े पर नर्स दवा लेकर बैठी होती है । वह शरीर की परीक्षा करती है, नख, दाँत, कान, आँख, बाल, जीभ इस प्रकार सब देखती है । इन मे मैल हो तो साफ कर देती है । यदि माँ-बाप के ध्यान देने मे कुछ न्यूनता हो तो पुस्तक मे नोट करके सूचना देगी, कि आपने अमुक भूल की है । इसे ध्यान मे रखना। एक दो-बार सूचना देती है, तीसरी बार यदि भूल करें तो छ मास अथवा बारह मास उनके बालक को घर रखने की सज़ा देती है। समाचार पत्र में छपता है कि 'अमुक बहन ने बालक का ध्यान नहीं रखा इस लिए बालक को इतने मास की सज़ा हुई है।' समाचार पत्र में आता है इस लिए लज्जित होते हैं । कितने ही अपघात भी कर लेते हैं । भारत की जनता बालकों की इस प्रकार परवरिश कर नहीं सकती । जापान मे स्त्री-शक्ति इतनी अधिक जागृत है कि वहाँ के महिला-मण्डल की सदस्य संख्या तीस से चालीस लाख की है । एक एन वार्षिक फी रखी है । महिला-मण्डल के पास करोड़ों एन का फण्ड है । दुःखी और अशक्त स्त्रियों की उसमें से सहायता होती है । महिला-मण्डल की अनेक शाखायें हैं ।

जापान की प्रजा मितभाषी है । बिना आवश्यकता किसी के साथ बोलती नहीं । बाज़ार में भी आवाज़ और चिल्ली-पों नहीं ।

रात-दिन अपने कार्य के अतिरिक्त और कोई बात नहीं । से सी. ईतो की डायमंड मिल देखने को हम गये थे । वहाँ पर ८० प्रतिशत बाइयाँ काम कर रही थीं । हमने बहुत से यंत्र देखे परन्तु किसी बहेनने हमारी तरफ़ नहीं देखा । सब अपने काम में संलग्न थे । अपने यहाँ तो सीटियाँ, हल्लागुल्ला और फजूल दूसरों की बातों का बतंगड़ बनाने के कारण कार्य में एक सूत्रता नहीं है । मैनेजर अथवा सेठ मिल देखने निकले तो सीटी से चेतवनी दे देते हैं । सेठ जान सके कि सभी काम कर रहे हैं । लापरवाही के कारण काम में हानि पहुँचती है । दूसरी एक प्रथा यह देखी कि यदि मा-बाप को पैसे की आवश्यकता हो तो अपनी लड़की को मिल के काम में भेजते हैं और दो वर्ष का वेतन अग्रिम लेते हैं । मिल मे होस्टेल बांधी होती है और वहाँ पर वह रहती है । वह वहाँ खावे-पीवे, सख़्त काम करे और मा-बाप को मदद करे ।

एक बार जापानी माल पर ब्रिटिश कालोनी में अधिक चुंगी पड़ी । ऐसा उपाय रचा कि ब्रिटिश कालोनी में जापान का माल न बिक सके । दुनियाँ के बाजारों के साथ स्पर्धा हुई । जापान को इसके सामने टिके रहना था । जापानियों मे देशभावना, क्रियाशक्ति और ईमानदारी होने से मज़दूर सख़्त काम करने लगे । एक घण्टा अधिक काम बिना मज़दूरी के करने का ठहराया । तथा अपने वेतन मे दश प्रतिशत अपनी मर्ज़ी से कटौती करवा दी । मज़दूरों की ऐसी देशभक्ति थी । मालिक लोग भी जब अधिक उत्पादन होता है और नफा रहता है तो दश से २० प्रतिशत पर्यन्त मज़दूरों को बोनस दे देते हैं । किसी प्रकार का कचकच नहीं, हल्लागुल्ला नहीं, प्रत्येक को संतोष और आनन्द है । हर एक उद्योग को: कारखानो को वहाँ के लोग देश की सम्पत्ति मानते हैं । इसी उद्योग के ऊपर उनका जीवन है ।

ब्रिटिश ने जब जापानी माल पर भारी चुंगी डालदी तो सम्पूर्ण जापान के मज़दूर एकट्ठे हुये । उन्होने विचार किया कि देशकी प्रतिष्ठा संभालनी चाहिए । इस मे ही जापान की जनता की हिफ़ाज़त है । आठ घण्टे का 'इण्टर नेशनल मज़दूर एग्रीमेण्ट का क़ायदा था । इससे कम काम होता है ज्यादा नहीं । मज़दूरों ने निर्णय किया कि दश प्रतिशत वेतन कम लेंगे और अधिक मज़दूरी बिना लिए हुये एक घण्टा अधिक काम करेंगे । ब्रिटिश चुंगी २५

प्रतिशत अधिक लगायी गई तो मज़दूरोंने ३० प्रतिशत फ़ायदा कर दिया इससे उद्योग-धन्धा टिका रहा। हिन्द में ऐसी बात हो जावे तो उद्योग ही टूट जावे।

देशभक्ति और एकता यह जापान का सच्चा बल है। जापान मे कोई भी अन्यदेशीय आकर बसा हो तो उसके घरमें काम करने वाली बाई इसके रहन-सहन और आचार विचार के ऊपर नज़र रखती है और पुलीस मे जाकर उसकी रिपोर्ट लिखाती है। इतना अधिक अपने देश की ये वफ़ादार होती हैं। ये लोग बहुत ही सचेत और बुद्धिशाली हैं। ऊपर की दृष्टि से देखते हुये अपने को ऐसा लगता है कि कुछ समझते नहीं परन्तु वास्तविक रूप में छोटी से छोटी बात इन के ध्यान में होती है। इनको रात दिन एक ही चिन्ता रहती है कि, 'अपने देश की उन्नति कैसे हो ?

जापानी स्त्रियाँ कलाकार होती हैं। किसी भी वस्तु को झटसे ग्रहण कर लेती हैं। सरकार ने नई वस्तुवों के सीखने के लिए जगह जगह पर निष्णात रखे हैं। जिसको जो सीखना हो उस मोहकमे के मुख्यव्यक्ति को वह फोन करे। लहाँ से निष्णात आता है और दो दिन रहकर काम बता जाता है। वहाँ के असोसियेशन और सरकार दोनो ही इस विषय में खूब ही जागरूक हैं। जापान में चमड़ा बहुत होता नहीं, इस लिए जापानी लोग लकड़ी की चट्टी पहनते हैं और घास के मोटे रेशे में से भी चप्पल बनाकर पहनते हैं। वे अपने देश की ही वस्तु इस्तेमाल करते हैं।

वहाँ पर वेतन का मानदण्ड अपने यहाँ की अपेक्षा काफी न्यून है। वहाँ वीविंग मास्टर को दो सौ एन मिलते हैं— अपने यहाँ पांच सौ से लेकर हज़ार रूपये।

जापान के लोग अपने को सूर्यवंशी कहते हैं। उनके ध्वज मे सूर्यका चिन्ह है। हर एक बालक के हाथ में यह ध्वज होता है। लड़ाई के समय मे "जापान की विजय" यह इनका राष्ट्रीय नारा है। विद्यार्थी लोग चाँद रखते हैं परन्तु उसमें भी सूर्य लटकाते हैं। जापान की जनता सूर्यपूजक गिनी जाती है।

चीन के साथ लड़ाई में शंघाई से आगे जापान की फौज़ पीछे हटने लगी। चीनियों का ज़बर्दस्त दबाव पड़ा। इस समय सरकार ने प्रजाके योग्य संदेश भेजा— 'देश के लिए पाँच लाख सैनिकों की ज़रूरत है। कोबे तथा नागासाकी दोनो बन्दरों से युद्धपोत रवाना

होंगे। जो देशरक्षा के लिए बलिदान देना चाहते हों उन्हें उस स्थल पर पहुँच जाना चाहिए"।

हवा के वेग से सन्देशा पहुँच गया। अठारह से ४५ वर्ष पर्यन्त के पुरुष जो भी सवारी मिली उसी में बैठ कर निकल पड़े। गाड़ी, रेल्वे, घोड़े, बाइसिकल से, अथवा बाद मे पैदल, तथा मोटर से २४ घण्टे में पाँच के बदले दश लाख सैनिक आ पहुँचे।

शहर की दश लाख की वस्ती थी। उसमें दूसरे दश लाख आ पहुँचे। उन्हे खिलाया क्या जावे? रखें कहाँ?। सरकार विचार में पड़ गई। फौरन् ही उसने जनता के योग्य शहरी मातावों से विनती की तथा रेडियो से ज़ाहिर किया "देश के सिर पर संकट है, लड़ाई चल रही है। चीन जैसी बड़ी जनता के साथ लड़ाई है। पाँच लाख आदमियों की मांग की थी परन्तु दश लाख आ गये हैं। अपनी पितृभक्ति की यह निशानी है। परन्तु इन सबको कहाँ रखें? शहर की बहने इन सबको दो दिन अपने घर में रखें ऐसी विनती है। जिन के घर मे समावेश हो सके वे ले जावें। रोज़ दो दो लाख आदमी भेज सकेंगे। इतनी मदद मातायें करें। तीन घण्टे अपना काम बन्द रखें। मेहमान को संभालें।" स्त्रियों ने फौरन् काम बन्द रखा। जो सैनिक जहाँ मिले वहाँ से एक दो करके अपने घर ले गईं। उन्हे संभाल लिया।

पांच दिन में पांच लाख मनुष्यों को मोर्चे पर भेज दिया। दूसरे पांच लाख को अपने अपने घर जाने को कहा। आवश्यकता पड़े तो फिर से बुलाने का विश्वास दिलाया। उन सबका पता लिख लिया। जहाँ ऐसी देशभावना हो वही देश स्वतंत्रता का उपभोग कर सकता है और वही देश ऊँचा उठ सकता है। इस भावना को अपनाने की अपने देश को ज़रूरत है।

जापानी जनता की ऊँची भावना और नीतिमत्ता का माप इस प्रसंग से निकल सकता है।

इन दिवसों मे गली-कूँचे तक 'लड़ाई' अर्थात् "जापान की जीत का नाद गूँजता था। कागज के सूर्यचिन्ह से अङ्कित झण्डा फहराता था। ठिकाने ठिकाने पर बहने रक्षा-बंधन करती थीं। हज़ारों बहने हज़ारो सैनिकों को शुभाशीर्वाद देती होती थीं। सभी सैनिकों को कोई न कोई बख़्शीश देती थीं। इस समय हल्लाशोर होने से सरकारी कार्य में विक्षेप हुआ। रेडियो द्वारा

विनती की गई "शान्ति रखो"। एक दम शान्ति हो गई। "लड़ाई" के अतिरिक्त और दूसरा कोई उच्चार नहीं था। झण्डा लेकर स्टेशन पर विदाई देने जिसे जाना हो वह जाता था।

ये सैनिक स्वयंसेवक के रूप में जा रहे थे। उनके कुटुम्ब के निर्वाह के लिए वे जहाँ पर काम करते होते थे वहाँ से आधा वेतन मिलता रहता था। वहाँ सैनिक वेतन नहीं लेते। देश सेवा मुफ्त देते हैं। कुछ थोड़े वेतन लेने वाले होते हैं। केवल १५ सेण्ट सिगरेट के लिए मिलता है। इस प्रकार पाँच लाख सैनिक रवाना हो गये।

जापान मे हमने तीन मास व्यतीत किये। थोड़े दिन शेष रहे तब मित्रों ने विदायी समारंभ का आयोजन किया। इण्डियन असोसियेशन की क्लब थी। उसमे १२०० से १५०० आदमी बैठ सकें ऐसा बन्दोवस्त था। इन बन्धुवों ने हमे भोजन दिया। एक हजार भाइयों को मिले। उन में साढे तीन सौ जितने जापानी मित्र थे। वे बडी बड़ी फर्मों के मालिक थे। सब के साथ गाढ़ व्यापारिक सम्बन्ध था। युक्तप्रान्त के मि० वाहेज कर के एक विद्वान् भाई समाचारपत्र निकालते हैं। वे लोग जापानी भाषा मे बोलते थे। हम हिन्दी में बोले। वे उसका अनुवाद करते गये। इस प्रकार मित्रों से मिलने का अवसर मिला इस लिए आभार माना। बाद में मैंने कहा "जापान सूर्यवंशी है। भारतने जापान और चीन को धर्म तथा संस्कृति दिया है। जहाँ पर अन्धकार था वहाँ पर प्रकाश दिया है वैसे ही हममे भी बहुत से सूर्यवंशी हैं। इस प्रकार धार्मिक बन्धुत्व है और जाति बन्धुत्व है। भगवान् बुद्ध ने हमारे देश में जन्म लिया परन्तु उनका धर्म यहाँ और चीन मे टिका हुआ है। एशिया भरमे जापान शक्तिशाली प्रजा है। हम आपके पास से दूसरी कोई वस्तु नहीं माँगते हैं परन्तु हम स्वतंत्रता के लिए शांति की जो लड़ाई कर रहे हैं उसमें आप सहायता दें। आप के देश मे भारतीय व्यापार करते हैं, उनके लिए आप जो प्रेम और सम्मान रखते हैं तदर्थ आभार मानता हूं। जापान कर्मशील प्रजा है। स्त्रियों की उन्नति के लिए जापान जगत् भरमे प्रसिद्ध है— ऐसा हमने सुनाथा, उसे इस अपने प्रवास में अपनी आंखों से देखा। आपकी जनता वीर जनता है— उद्यमी और ईमानदार है। अनुशासन और व्यवस्था यहाँ पर उदाहरणीय है। आप के पास से हमे बहुत कुछ सीखने को है।

मेरे कथन के प्रत्युत्तर में मि० टाबुटी केशा के मैनेजर मि० सासा कुरा, जो बम्बई में बहुत वर्ष रह गये थे वे बोले "भारत एशिया का अंग है। परन्तु परतंत्र है इस से दुःख होता है। हमारे व्यापार को देश देशान्तर मे खिलाने में और अफ्रीका की रूई इस देश में भेजने में जो व्यापार हम बिल्कुल ही नहीं जानते थे उसमें भारतीयों ने हमारी मदद की है। उसके बदले में जापान आप सबका आभार मानता है। हम आप के देश की मदद ज़रूर करेंगे। आप हमारे देश में आये इस से हमे बहुत आनन्द हुआ है। इस प्रकार अनेक सम्मिलन और पार्टियाँ हुईं। जैसा उत्साहभरा स्वागत किया वैसी ही भावभिनी विदाई भी दी।

टोकियो में राजा महेन्द्रप्रताप रहते थे। वे एक महान् क्रान्तिकारी पुरुष हैं। शहर से छ मील दूर पर एक गृहखण्ड बांध कर वे रहते थे। विद्यार्थियों को वे अपने घर रखते थे। जापानी भाषा सिखाते थे। वे पन्द्रह रूपये मासिक ट्यूशन लेकर अपना गुज़ारा चलाते थे। उन्हे इंडियन असोसियेशन की ओर से सहायता मिलती थी। सन् १९११ में दिल्ली में बम फेंका तब से वे विदेश चले गये। इनकी सम्पत्ति से वृंदावन मे "प्रेम महाविद्यालय" नाम की बड़ी संस्था चलती है। उनसे भेंट असोसियेशन में हुई। उन्होंने अपनी जीवन-कहानी कही। वे साइबेरिया के मार्ग से रूस गये। वहाँ से जर्मनी और इटैली गये थे। हिटलर और मसोलिनी को मिले थे। भारत में वे अपराधी गिने जाते थे। भारत स्वतंत्र हुआ उसके बाद वे देश में आये। अपनी समस्त जागीर तीन गाँव की उपज का ट्रस्ट बनाकर संस्था को अर्पण कर दिया है। वयोवृद्ध तपस्वी की भांति वानप्रस्थ जीवन बिताते हैं। वे अनेक भाषायें जानते हैं। उनकी भेंट से मुझे खूब आनन्द हुआ।

मि. कोवाशी मेरे मित्र थे। उनकी माता का देहान्त हो गया। उनकी अफ्रीका में फर्म थी। वे अपने देश की ही भांति सूतक मनाते हैं। मरणोत्तर क्रिया के समय एक से सौ यन पर्यन्त चांदला के रूप में रक़म देते हैं। अपने यहाँ पहले काल में रक्षाबन्धन भेजते थे। वही प्रथा वहाँ पर भी है। ग़रीब आदमी भी यह उत्तर-क्रिया कर सकते हैं। जैसे यहाँ सप्ताह बैठता है वैसे ही वहाँ पर भी बैठाते हैं। अपनी जैसी ही प्रथा है। मैंने काग़ज़ में ५० यन भेजा। आश्वासन का तार किया। एक छोटी पार्टी भी दी।

एक छोटा सा मनोरम प्रसंग यहाँ देता हूँ।

अपने साथ हम एक बढ़ई ले गये थे। मिल में नकाशी डालने का लकड़ी का जो कार्ड आता है, उसमें बुनने का यंत्र चलता हो तो नकाशी होती है। बूटे-कसीदे के काम में भी उपयोगी होती है। उसको देखने के लिए उसे ले गये थे। मिस्त्री बहुत धर्मकट्टर था। इस लिए उसने रास्ते में कुछ खाया नहीं। बन्दरगाह पर उतर कर किसीके घर भोजन किया। रास्ते में गोल पड़ी और चने के बेसन की बनी पपड़ी खा लिया। इससे दाढ़ मे सख्त दर्द था। बम्बई के सेठ शामजी कालिदास सवानी एण्ड कं. के आफिस के सामने एक बगीचा था। उसमें मिस्त्री गाल पर हाथ रख कर बैठा। अचानक पुलीस की दृष्टि गई। मिस्त्री को इस प्रकार बैठा देख कर वह उसके पास गया और उसे पुलीस स्टेशन पर ले गया। मिस्त्री घबराया। भाषा नहीं समझता था। पुलीस ने पूछा "सेठ कौन?" मिस्त्री को एक शब्द आता था। थायसो का अर्थ सेठ है - इस लिए वह बोला "सेठ दोशी।" पुलीस ने दोशी को फोन किया : "आप का आदमी यहाँ पर अपघात कर रहा है। जल्दी आवो।" हम फौरन मोटर लेकर वहाँ दौड़े गये। मिस्त्री बैठा था। हमें देख कर बोला "दाढ़ बहुत दर्द कर रही थी। बगीचे में दाढ़ पर हाथ रखकर मैं बैठा था। वहाँ से यह पकड़ लाया है। हमने पुलीस को पूछा 'इसे किस लिए पकड़ा है?' पुलीस ने कहा "दाढ़ पर हाथ रखकर बैठा था।"

"परन्तु इससे क्या हो गया?"

"हमारे देश में अपघात की यह निशानी गिनी जाती है। जो आत्महत्या करने वाला होता है वही दाढ़ी पर हाथ रखकर बैठता है।"

हमने हँस कर कहा "हमारे यहाँ तो सारा देश गाल पर हाथ रखकर बैठा है। हमारे देश में दुःख अथवा थकावट की यह निशानी है। बाद में लिख कर छोड़ दिया।

जापान में जगह जगह पर बौद्ध मन्दिर आये हैं। एक नारा नाम का गाँव है। वहाँ बुद्ध की बैठी हुई प्रतिमा है, बड़ा भारी घंटा लटकाया हुआ है। एक लम्बी लकड़ी से रस्सी खीचें तो यह बजता है। यह घंटा जो बजा जावे उसे पीछे वहाँ आना ही पड़े-ऐसा कहा जाता है। मन्दिर अधिकांश में सरकार के हाथ में होते

हैं। पुजारी को वेतन मिलता है। बड़े बड़े में चुटकी से नमक डालकर, तीन ताली देकर नमस्कार करते हैं। घुटने पर बैठ कर प्रार्थना करते हैं। मंदिर में अपूर्व शान्ति। इस प्रकार दर्शन कर जाते हैं। फौज़ी आदमी लड़ाई में जाने के पूर्व भगवान् को नमस्कार करके जाते हैं। इस देश में अनाज कम होता है। इसलिए तमाम जनता मांसाहारी है। फिर भी भगवान् बुद्ध को खूब मान से पूजती है।

हमने नागोया के बुद्ध-मन्दिर में सुन्दर नृत्य देखा। पीला वस्त्र पहनकर अपने यहाँ जैसे देवदासी का नृत्य होता है वैसा नृत्य था। नर्त्तकियाँ जापानी भाषा में मंत्र बोलती हैं। साध्वी जैसी लगती थीं परन्तु ये साध्वी नहीं थीं। गृहस्थ थीं। नाच-गान पूरा होने पर भगवान् की मूर्त्ति के सामने लम्बी पड़कर नमन किया। आँख पर हाथ रखकर बिना किसीको देखे चली गईं। अपने ऊपर इनकी भावना की गहरी छाप पड़ती है। ये ईश्वर के साथ एकतार सा हुई हों ऐसा लगता है। उनके साथ दो साधु थे। उनके पास छोटा सा वाद्ययंत्र था। इस वाद्ययंत्र के ताल पर उन्होंने नृत्य किया।

जापान जैसी कलाकारीगरी मैंने भारत में अथवा योरोप में नहीं देखी। हरएक वस्तु अत्यन्त कलामय फिर भी सस्ती। ये किस प्रकार बनाते हैं और बिक्री किस प्रकार परते पड़ती होगी, यह एक असमाधेय पहेली है।

विद्यार्थी लोग अभ्यास करते करते माँ-बाप के ऊपर भार न हो जावें इसलिए वे भी कमाई करते हैं। विद्यार्थी एक तीन पहिये-वाली साइकिल रखते हैं। उसमें बैठने और पीछे के भाग में माल भरने की सुविधा होती है। यह ट्रायसिकिल लेकर बाज़ार में खड़ा रहता है। दूकान पर जाकर सेठ को बिनती करता है "एक एन का काम दीजिए।" चाहे जिस किसी भी आदमी का माल स्टेशन पर पहुँचावे अथवा बन्दरगाह पर गोदाम में लेजावे। १६ से १८ वर्ष पर्यन्त के बालक यह काम करते हैं। एक एन दो इसलिए खुश हो जावे। स्टीमर अथवा स्टेशन पर बुकिंग आफिस में जाकर क्लर्क को बिनती करते हैं "हमारा विद्यालय का समय होने को आया है। आप ज़रा जल्दी पार्सल कर दीजिएगा। मैं विद्यार्थी हूँ।" ऐसा कहता है इसलिए क्लर्क जल्दी पूरा कर देता है।

रास्ते में उन्हे माल चढ़ाने में अथवा आफिस में माल उतारने में हरएक आदमी उनकी मदद करता है। सायंकाल तक में दो यन पैदा कर लेते है। खर्च एक यन आता है। इस प्रकार ये अपने माँ बाप और अपने लिए उपयोगी बनते हैं।

एकबार हम सेठ शामजीभाई सवानी के आफिस में बैठे थे। उनके भागीदार श्री दलीचंद सेठ को बाहर जाना था। इसलिए अपने जापानी क्लर्क को सूचना दी कि "आज आप सब रात्रि के दस बजे तक काम करियेगा। बिल तैयार करियेगा, यहीं पर भोजन करियेगा। आप सब को बहुत सुन्दर भोजन दूँगा। मछली, मांस, अण्डा, चावल, चाय (जापान की बिना दूध-शक्कर वाली) सब मिलेगा"। ऐसा कहा इस लिए सब ने उठकर तीन बार नमस्कार किया और बोले "आप का आभार! हमे सुन्दर भोजन मिलेगा। पाँच घण्टे का कार्य मिलेगा। काम उपरान्त एक यन का भोजन। पुनः उपकार!" ऐसी नम्रता, सभ्यता और अनुशासन हो तो राष्ट्र आगे आ सकता है।

सन् १९३७ मे मेरे लड़के जापान की यात्रा पर गये थे। उस समय का एक दिलचस्प प्रसंग यहाँ पर देता हूं। वे हमारे मैनेजर के साथ घूमने गये थे। एक बार कोबे के एक बगीचे में सब बैठे थे। किसी कार्य के लिए जेब से मनीबेग बाहर निकाला, वह भूलसे बेञ्च पर पड़ा रह गया। वे होटल में चले गये। बाद में बटुवा बाग के रखवारे के हाथ में आया। वहाँ से रखवारे ने पुलीस को फोन किया "किसी का बटुवा यहाँ बाग में पड़ा रह गया है। उसके अन्दर बहुत बड़ी रक़म है।" पुलीस ने रखवारे को आज्ञा दी कि "यहाँ पर दे जावो"। रखवारे ने फौरन् पुलीस थाने पर पाकेट पहुँचा दिया। पाकेट में नाम पता आदि थे। जापान में कोई भी परदेशीय आवे तो उसका उल्लेख पुलीस विभाग में होता है। समाचार पत्र में भी इसकी सूचना देने में आती है। पुलीस ने नाम स्थान देखकर उतरने का स्थान ढूँढ़ निकाला। और होटल के मैनेजर को फोन किया। होटल के मैनेजर ने पता लगाया तो लड़के सो गये थे। पुलीस को उत्तर दिया कि "ये गृहस्थ हमारे यहाँ हैं परन्तु सो गये हैं। सबेरे खबर दूँगा।" सबेरे लड़के उठे और चाय पीने बैठे तो वेटर ने पूछा "आप का मनीबैग कहाँ है? ज़रा जेब देख लें।" लड़कों ने जेब देखी। पाकेट नहीं था। चिन्ता

हुई। पाकेट में ३५ हज़ार एन, थामस कूक का चेक, रिटर्न टिकिट और नोट थे। होटल के मैनेजर ने पुलीस को फोन किया। पुलीस ने उत्तर में पूछा कि "ये सज्जन यहाँ आकर ले जावेंगे कि पुलीस के साथ भेज दे?" "यहाँ आकर आप लोग दे जावें तो उपकार।" पुलीस पाकेट लेकर आये। लड़के प्रसन्न हुये और पुरस्कार के रूप मे सौ एन देने लगे। उस समय पुलीस ने कहा "आप का आभार मानता हूँ, परन्तु हमें बख़्शीश दे रहे है इससे हमारे देश का अपमान होता है। सेवा, यह धर्म है, फर्ज़ है। बाहर के यात्रियों के लिए सावधानी रखनी चाहिए - जिससे हमारा दोष कोई निकाल न सके। हमारे यहाँ किसीको तक़लीफ पड़ी ऐसा नहीं लगना चाहिए, यही हमारी देश सेवा है। हमारे देश की प्रतिष्ठा विदेशों में बढ़े यही हमें देखना है।" ऐसा कहकर नमस्कार कर पुलीस चला गया।

इस प्रकार कोई वस्तु नाटकशाला अथवा सिनेमागृह में गुम हुई हो तो वह पुलीस के सुपुर्द होती है। महीनों पर्यन्त उसकी ज़ाहिरात दी जाती है: 'कृपा करके जिसकी हो वह लेजावे।' इसके लिए पृथक् विभाग है। अल्मारी में नाम लिखकर रख रखते हैं - मालिक होना सावित करके ले जा सकता है। छः मास राह देखकर, ग्राहक न मिले तो पुलीस उसे नीलाम कर देती है और इस रक़म को बाल-सेवा-गृह में भेज देती है।

योरोपियनों और अमेरिकनों ने जापानियों की परीक्षा लेने के लिए बाज़ार में नोटें फेकीं। गिन्नी, गहने और पैसे जहाँ तहाँ डाल इन्हों ने मन में सोचा की जापानी लोग इन्हें उठा लेंगे। परन्तु इन्हों ने चोरी का नाम तक भी सुना नहीं है। उन्हें जो पैसे मिले उसे पुलीस में सौंप देते हैं। इस प्रकार जापान की ईमानदारी का उन्हें विश्वास हुआ।

जापानियों को नृत्यकला का विशेष शौक है। बड़े नाट्यगृहों में अमेरिकन, इटैलियन, भारतीय नृत्य - इस प्रकार के तमाम देशों के नृत्य सीखने में आते हैं।

परदेश के यात्रियों पर जापान की सभ्यता, स्वच्छता और स्वास्थ्य की सुन्दर छाप पड़े, इसलिए पासपोर्ट देने से पूर्व हरएक की शारीरिक जाँच करते हैं, वैसे ही भाषा, रीति-रिवाज़, कपड़ा आदि हरएक वस्तु जाँचने में आती हैं - जिससे विदेश में उत्तम

आदर्श उपस्थित हो सके।

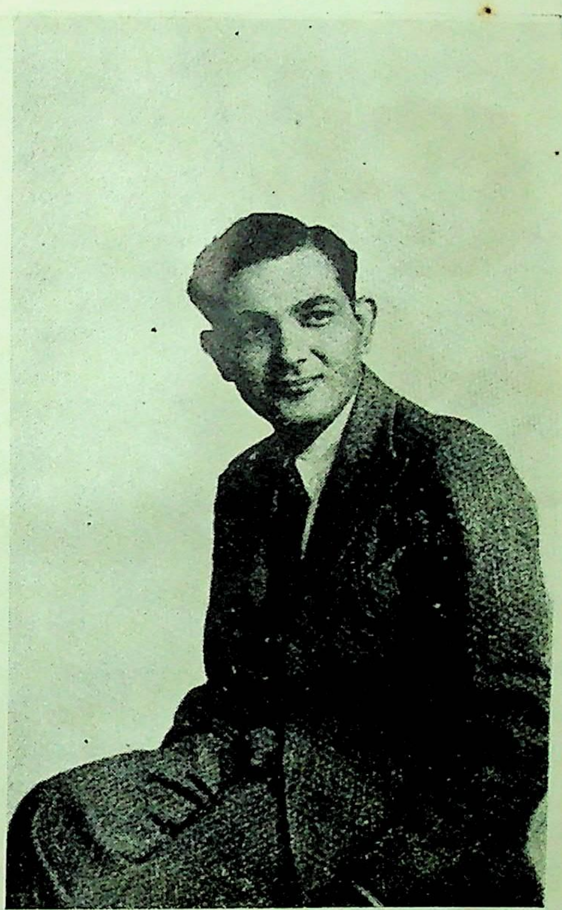
जापान की प्रतिष्ठा जगत् में किस प्रकार बढ़े – इसका विचार प्रत्येक जापानी करता है। दुनियाँ में जापानी जहाँ जहाँ जाते हैं, उनकी सुन्दर छाप पड़ती है। अपने लोग तो स्टीमर चढ़ते उतरते भी हल्ला गुल्ला कर डालते हैं। दक्षिण अफ्रीका में, मेडागास्कर में, अपनी रहन-सहन के कारण तथा रास्ते पर भी गन्दगी करने की ऐसी आदत है कि इसके कारण अपने लोगों को अमुक रास्ते पर चलने की भी मनाही करने में आयी है। दुनियाँ में अपनी इन गन्दी आदतों के लिए अपनी बेइज्ज़ती हुई है। कपड़ा, घर, दूकान, भाषा, सभी स्वच्छ हो तो एक संस्कारी प्रजा के रूप में जगत् में भारतीयों की प्रतिष्ठा फैले।

जापान में फौज़ी तालीम अनिवार्य होने से स्वच्छता, अनुशासन, नियमबद्धता और स्वार्पण के गुण फैलते हैं। अपने यहाँ भी १४ वें वर्ष से सैनिक-शिक्षण अनिवार्य करने की आवश्यकता है। तथा साथ ही स्त्रीशिक्षा को उत्तेजना मिलनी चाहिए। मातायें तैयार हो ऐसी शिक्षापद्धति के प्रबन्ध की आवश्यकता है।

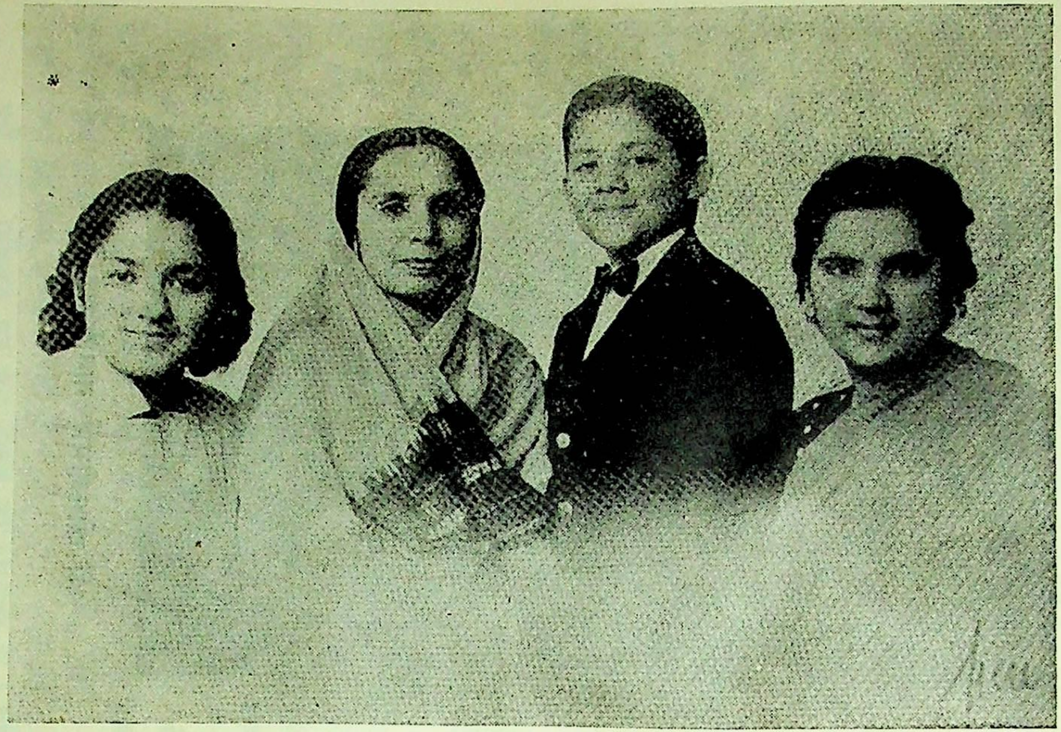
जापान में झूठ नहीं बोला जाता ऐसी प्रथा है। झूठ बोलने में वे महापाप मानते हैं। जापान के विद्यार्थी छोटेपन से ही साहस और देशप्रेम सीखें वैसा पाठ्यक्रम बनाने में आता है। स्कूल में साहित्य, इतिहास-भूगोल, विज्ञान, नाट्यप्रयोग, सिनेमा आदि प्रत्येक में देश की उन्नति हो – ऐसी दृष्टि रखने में आती है। सिनेमा के चित्र भ्रष्ट और अनीति की प्रेरणा न देनेवाले नहीं होते। ऐतिहासिक, धार्मिक और देशभक्ति फैले ऐसे चित्र वहाँ दिखलाने में आते हैं।

टोकियो में हमने संग्रहस्थान देखा, उसमें जर्मनी और रूस से भेंट में आयी हुई बड़ी तोपें थीं। ये तोपें जापान ने जब रूस को हराया तब सन् १९०६ में वहाँ से लायी गयी थीं। ये तोपें जापान का सामर्थ्य प्रकट करती हैं।

पूर्व और पश्चिम का भेद देखने को मिलता है। पश्चिम की संस्कृति की अपेक्षा जापान में अपने को उल्टा देखने को मिलता है। अमेरिका में भोगविलास, स्वेच्छाचार और उड़ाऊपना है, जब कि जापान में सादापन, मितव्ययिता, ईमान्दारी, नीति, धर्म और गृह-उद्योग है।



श्री खीमजीभाई नानजीभाई मेहता



श्री. खीमजीभाई के धर्मपत्नी तथा पुत्र पुत्रीओं

पूरे तीन मास हमने जापान में व्यतीत किये। बहुत देखा, जाना और बहुत सा अनुभव प्राप्त किया। मित्रों ने खूब प्रेम प्रदर्शित किया। हम जब यंत्र खरीदने गये तब अपनी पत्नी को एक गाँव के होटल में अकेले रखा। उसने साड़ी पहनी थी, उसका नया वेश, नया चेहरा, जुदी बोली को देखकर गाँव की स्त्रियों को बहुत नवीनता मालूम पड़ती थी। उसे गाँव मे घूमने को लेगयीं। उसके साथ मिसेस टाबुची थीं। एक स्त्री-ड्राइवर गाड़ी ले आयी। इस गाड़ी में मेरी पत्नी को प्रदर्शन की भांति घुमाया। बहुतसा माल खरीदा। साडियाँ लीं, और कहा कि पहनना बतलावो। दो दिन होटल में रहीं तो उन्होंने रक्षण किया। आनन्द आया। भाषा नहीं समझ में आती थी। अपने घर बैठने को लेजावें, मोटर में सारे गाँव में घुमाया। ऐसे तो ये प्रेमीजन हैं।

जापान में गाली जैसा कोई शब्द नहीं। बहुत क्रोध में आवे तो कहे "तुम जापानी नहीं हो"। उसको ये लोग भारी अपमान का शब्द मानते हैं।

मेरे जापान की यात्रा के दिन खूब आनन्द में बीते। मित्रों से विदायी ली और जिस से गये थे उसी ही इटैलियन स्टीमर में रवाना हुआ। अधिक रुकने की इच्छा थी परन्तु युद्ध के कारण नहीं रुक सका।

लड़ाई चालू थी। अमेरिका और जापान के मध्य मतभेद खड़ा हो गया था। जापान का इरादा यूरोप की प्रजा को निकाल कर अपनी सत्ता जमाने का था। टोकियो यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर ने मुझे कहा "हमे एशिया के निवासियों की एकता करनी है"।

लड़ाई का ज़ोर प्रथम जैसा ही था। फौज़ और गोला-बारूद लेकर युद्धपोत चीन की ओर बढ़ते जा रहे थे। हम हांग-कांग पहुँचे। वहाँ थोड़े समय रुके। वहाँ से रेशम तथा दूसरी वस्तुओं की खरीद की। हांग-कांग से चलकर सिंगापूर होकर सीलोन आये।

सीलोन के कोलम्बो बन्दरगाह पर उतरे। इस समय सीलोन देखने का हमारा विचार था। मोटर लेकर अंदर के भाग में गये। सारे दिन घूमकर स्टीमर पर पीछे वापस आया। सीलोन का अर्थ लंका है। यह लंका वही रावण की स्वर्ण लंका होगी अथवा नहीं यह कौन जाने। परन्तु चाय, काफ़ी और गरम मसाले की पैदावार से सोने की बनी है। सीलोन में बड़े और घने जंगल तथा

नव हज़ार फीट ऊँचे पहाड़ हैं। चाय, काफ़ी, गरम मसाला और नारियल से घिरा हुआ यह टापू हरियाली से भरा है। जंगलों में हाथी के यूथ फिरते हैं। रबड़, चाय, काफ़ी पर्याप्त होते हैं। अत्यन्त समृद्ध औड़ रमणीय देश है। इस दृष्टि से लंका सुवर्ण-भूमि है।

सीलोन से सीधे बम्बई उतरे। सवा तीन मास की यात्रा करके हमारी मण्डली सुख के साथ अपने देश में आ गई। दीवाली नज़दीक थी। बम्बई का दीपोत्सव, रोशनी और खाना-पीना बखाना जाता है - इसलिए हमने बम्बई में दीवाली करने का निर्णय किया।

३५

दूसरे विश्वयुद्ध का प्रभाव

जापान से वापस आनेपर उसी वर्ष अपने बड़े पुत्र चि. खीमजीभाई और अपने भतीजे झीणालाल का विवाह बम्बई में किया। विवाह के प्रसंग में किसी प्रकार का फजूल खर्च नहीं किया। केवल ७२ रूपये में निपटाया। चांदला की प्रथा बन्द की। भोजन बन्द किया। नयी प्रथा डाली। लग्न में जितना खर्च करना था उतनी रक़म दान में दे दी। नया रिवाज़ चलाया। दुनियाँ की स्वतंत्र प्रजाओं में विवाह के अवसर पर ऐसा अंधाधुंध खर्च कोई करता नहीं। अपने यहाँ दो चार मास पहले से तैयारियाँ प्रारंभ हो जाती हैं। हज़ारों और लाखों रूपयों का चक्कर तथा समय का अपव्यय होता है। व्यर्थ का दिखावा, समय की बरबादी, अन्न का बिगाड़-देखादेखी से रुढ़िग्रस्त मनुष्य सारासारता का विचार भूलजाता है। इसमें कष्ट भी होता है।

बम्बई में विवाह का कार्य पूरा करके पोरबन्दर आये। महाराणा मिल में नये यंत्र लगाये। मिल में जाने वाला घाटा बन्द हुआ। मिल जो रूई का सूत बना रही थी अब उसके बदले कपड़ा होने लगा। श्री. भोगीलाल भाई सेठ ने अच्छी मदद की। मिल बन्द करने का तरङ्ग-तुक्का बन्द हुआ। माननीय महाराणा साहेब स्वस्थ हुये। नयी मशीनरी आने से मिल का कार्य ढर्रे पर आया। मिल का काम-काज रास्ते पर लाकर अफ्रीका जाने को रवाना हुआ।

अफ्रीका जाकर इस समय साइसल फैक्टरी पर विशेष ध्यान दिया। साइसल का भाव २० पाउण्ड टन था। इसका युद्ध में २५० पाउण्ड हो गया था। (हाल में ७० पाउण्ड है।) साइसल कार्य सट्टा जैसा है। दुनियाँ के अन्य भागों की अपेक्षा पूर्व अफ्रीका में अधिक से अधिक केतकी होती है। वर्ष में डेढ़ से दो लाख टन रेशे का उत्पादन है। हमारे प्लाण्टेशन में दस हज़ार एकड़ में साइसल की खेती थी। अढ़ाई से तीन हज़ार टन रेशा तैयार

होता था। हमारी जीनेरियों और साइसल के काम को भाई वल्लभदास संभालते थे। उनकी तबियत ढीली रहती थी, मुझ से पहुँचा नहीं जाता था, इससे साइसल फैक्टरी और पाँच जीनेरियाँ बेंच डाली, उन्हे केवल चार जीनेरियों का काम-काज सौंपा। जब जीनेरियाँ बेंचीं तो उस समय रूई, कपास और साइसल का भाव नार्मल था - बाद में बढ़ा।

सन् १९३९ में लड़ाई शुरू हुयी।

सन् १९४० में इटैली की सेना पूर्व अफ्रीका के नज़दीक आने लगी। इसका प्रभाव युगण्डा पर भी पड़ा। कम्पाला आदि शहर ब्लेक आउट करने लगे। इटैली का आक्रमण लगभग मोम्बासा पर्यन्त पहुँच चुका था। पूर्व अफ्रीका में अंग्रेज़ी फौज़ थोड़ी थी। फिर भी अंग्रेज़ दृढ़ता से टिके रहे। पूर्व अफ्रीका में बसने वाला प्रत्येक अंग्रेज़ अपने व्यापार, खेती और दूसरे काम-काज को छोड़कर लड़ाई के मोर्चे पर जाने को तत्पर हो गया था। लाखों की सम्पत्ति छोड़कर देश के लिए तैयार हुये। देश पर आपत्ति आवे तो सर्वस्व का त्याग करने की शक्ति प्रत्येक स्वतंत्र प्रजा में होती है। अपने को भी स्वतंत्रता के चालू रखने में इन गुणों को धारण करना पड़ेगा।

इटैली की सेना ज्यों ज्यों समीप आती गई त्यों त्यों सब के मन में दहशत हुई कि ये लोग बमबारी करेंगे, शहर और फैक्टरियों को तोड़ डालेंगे। सरकार को खांड की ज़रूरत थी। बाहर से खांड आ सकती नहीं थी। इसलिए सरकार फैक्टरियों के रक्षण पर विशेष ध्यान रखती थी। सर्वत्र अन्धेरा ही था।

धीरे धीरे पूर्व अफ्रीका में अंग्रेज़ी सेना बढ़ने लगी। दक्षिण अफ्रीका और भारत से कुमुक आयी। इटैलियन पीछे हटे। एबिसीनिया पर बाद में अंग्रेजों का प्रभुत्व स्थापित हुआ। इटैलियन बन्दियों को पकड़ कर केनिया-युगण्डा में लाने में आया। सभी भयमुक्त हुये। दो लाख क़ैदी ईस्ट अफ्रीका में आये। उनके द्वारा तार-कोल का पक्का रास्ता बनवाया गया।

हमारे मोम्बासा के मकान का सरकार ने आफिस आदि कार्यों के लिए अपने प्रयोग में लाने के अर्थ कब्ज़ा ले लिया था। इसलिए मैंने परिवार को घर में छोड़ आने का विचार किया और बच्चों के पढ़ने का प्रबन्ध पंचगनी में किया।

सन् १९४१ के मई मास में मैं देश में आया। महाराणा मिल का काम ठीक चल रहा था। उसमें रेशम की मिल चालू की। सन् १९४१ से मिल में पैदायश होने लगी। इस समय देश में अधिक समय व्यतीत करने का मैंने विचार किया। युगण्डा में तर हवा के कारण लो-ब्लडप्रेशर रहता था। तबियत ठीक नहीं रहती थी। जापान की यात्रा में मिला हुआ वज़न घट गया था। लुगाज़ी के काम-काज को भाई खीमजीभाई ने थोड़ी आनाकानी के साथ मंजूर कर लिया था। भाई वल्लभदास की बीमारी बढ़ने से वे देश में आ गये और उनके काम-काज को हमारे भतीजे झीणालाल ने संभाल लिया। लुगाज़ी की बगल में ही युगण्डा टी इस्टेट लि० नाम की चाय की फैक्टरी शुरू की थी। अफ्रीका के काम का थोड़ा बहुत भार मन पर रहा करता था। फिर भी हवा परिवर्तन और व्यापार उद्योग के निरीक्षण के लिए थोड़े समय तक देश में रहने का निश्चय किया।

भारतीय महासागर में अफ्रीका जाती हुई स्टीमरें जापान के लड़ाई में पड़ने डुबाई जाने लगीं, इस लिए छः वर्ष पर्यन्त अफ्रीका जाया नहीं गया और किसीसे वहाँ से आया नहीं गया।

सन् १९४२ में पोरबन्दर से जलवायु के परिवर्तन के लिए मैं दार्जिलिंग गया। अपने देश में हवाखोरी के स्थलों में दार्जिलिंग उत्तम गिना जाता है। दार्जिलिंग की पहाड़ियों पर से हिमालय की नन्दा देवी और गौरीशंकर (माउण्ट एवरेस्ट) शिखर दिखाई पड़ते हैं। बीस से तीस हज़ार फीट पर्यन्त ऊँचाई पर आये हुये इन हिमाच्छादित उत्तुङ्ग शिखरों का दृश्य अद्भुत है।

ब्रह्मदेश देखने की बहुत समय से मेरी इच्छा थी। इसलिए इस समय के प्रवास में ब्रह्मदेश जाने का विचार किया। कलकत्ता से विमानमार्ग से बर्मा गया। वहाँ अफ्रीका रह गये हुये कई जापानी मित्र मिले। भारतीय व्यापारियों ने प्रेमपूर्वक स्वागत किया। केवल दस दिन के लिए ही बर्मा गया था - इसलिए उतावल में रंगून, माडले और दूसरे मुख्य मुख्य स्थल देख लिए। जापानी मित्रों ने मुझे अकेले में कहा "जापान लड़ाई में उतरने को है- इसलिए जल्दी पीछे वापस जाइयेगा। नहीं तो यहीं पर फँस जावोगे।"

रंगून एक सुन्दर शहर है। वहाँ का बौद्ध मन्दिर विश्व-प्रसिद्ध है। मंदिर एक ऊँची पहाड़ी पर आया है। साढ़े तीन सौ

फीट ऊँचा इसका शिखर सोने से मढ़ा है। इसलिए इसे "श्वेडेगोन पेगोडा" कहा जाता है। बाजार और मकानो की रचना बहुत आकर्षक है। विशाल और स्वच्छ मार्ग यात्रियों के ध्यान को खींचते हैं। वहाँ व्यापार में स्त्रियाँ आगे बढ़कर भाग लेती हैं। पेट्रोल की फैक्टरी देखने की इजाज़त नहीं थी परन्तु रिफाइनरी पाँच घण्टे पर्यन्त देखी। सायंकाल वहीं पर रहे और भोजन किया। भारत के अन्तिम मोग़ल बादशाह शाह आलम को जहाँ पर रखा गया था उस स्थान को देखा। उनका रोज़ा देखा। बर्मा टिम्बर की सॉ मिलें देखीं, राइस मिलें देखीं तथा व्यापार-वाणिज्य देखा। मन पर भारी प्रभाव हुआ। मन में हुआ कि "इस देश में व्यापार खिलाने जैसा है।" देश बहुत उपजाऊ और रमणीय है परन्तु लड़ाई पास थी, जापान तैयार था। आज आवे कि कल आवे ऐसा डका बज रहा था। इसलिए मोटर में माडले पर्यन्त जा आया। माडले में जहाँ पर लोकमान्य तिलक महाराज और लाजपतराय आदि देशभक्त रखे गये थे, उस राजा मिन्दमान के राजमहल और किले को देखा। मित्रों ने सम्मान में सभायें आयोजित कीं, सम्मिलन किये और वर्मी नृत्य का प्रबन्ध किया। बर्मा के प्रधानमंत्री मि० ऊसो को देशनिकाला किया गया तब वे युगण्डा में आये थे। उन्होंने खूब भाव व्यक्त किया। मित्रों ने मानपत्र देने की तैयारी की। उन को पहले से ही मैंने इन्कार कर दिया। किसी स्थान पर मानपत्र दिया गया तो उसे सभा में ही वापस दे दिया।

मेरे मित्र, कोपले के व्यापारी सेठ अमृतलाल ओझा ने वहाँ पर सुगरफैक्टरी की है। उन्होने कहा "हमारी ग़ैरजानकारी से घाटा जाता है, इस लिए आप देखलो और कोई मार्ग निकालो। मै उसकी फैक्टरी देखने गया। फैक्टरी देखा, जगह देखी, मनमें हुआ कि "इस में साहस करने जैसा है" फैक्टरी अधूरी थी। जमीन और खेती में दूसरे २० लाख रूपये डाले जावें तब चल सकती थीं। नहीं तो घाटा बढ़ता जावेगा और अंतमें फैक्टरी बन्द करनी पड़ेगी। भाई अमृतलाल ने कहा "इसमें मैने छः लाख रोका है"। इतने का शेयर मै लेलूं, शेष आप लगावो और फैक्टरी संभाल लो"। मै फैक्टरी संभालता तो दूसरे मित्र शेयर लेने को तैयार थे परन्तु मैंने कहा "अभी दो तीन मास ठहरें। जापान आने की तैयारी में है। साथ ही विकास में दो तीन मास जावेंगे"। इस प्रकार यह बात

वहीं पर रह गई— तिसपर भी वर्मा में व्यापार करने जैसा लगा। खांड के कारखाने के उपरान्त दूसरी व्यापार की अनेक दिशायें वहाँ खुली थीं। चावल की मिलें, और टीम्बर तथा तेल का काम भी बहुत था। सन् १९३२ से वर्मा के पृथक् किये जाने के बाद सारा व्यापार अपने हाथों में आवे ऐसा प्रयास अंग्रेजों ने प्रारंभ किया था।

वर्मा में ८० लाख टन चावल पैदा होता है। उसमें वर्मा ४० लाख टन बाहर देशान्तर में भेजता है। टिम्बर और तेल का भी ऐसा ही है। खपत कम और पैदावार अधिक इस लिए बहुत अधिक भाग परदेश को जाता है। रूई भी डेढ़ दो लाख गाँठ होती है। वहाँ कई एक जीनेरियाँ हैं परन्तु अधिक जिनेरियों के लिए गुंजायश मालूम पड़ी। समय थोड़ा था। इस लिए थोड़ा जांच पड़ताल कर, थोड़ा आँख से देखकर तथा थोड़ा पूछ पाँछ कर हकीकत प्राप्त की।

हमें वर्मा व्यापार की दृष्टि से और रहने की दृष्टि से बहुत पसन्द आया। कुदरत की हर दृष्टि से यह देश उन्नत है। इरावती जैसी बड़ी बड़ी नदियाँ वहाँ बहती हैं। वर्मा लोग मात्रा में मौजी लगे। खाना-पीना, मंदिरों मे बत्तियाँ करनी, नाचगान और मौज मज़ा करने आदि में अधिक समय वे लोग बिताते हैं। स्त्रियाँ घर और दूकान दोनों का काम संभालती हैं। वहाँ स्त्रियाँ विवाह करके ससुराल नहीं जाती हैं। शिक्षण अधिक है। लोग बौद्ध धर्म को मानते हैं। हर एक आदमी को एक समय 'फुंगी' (साधु) होना ही पड़ता है। पीला कपड़ा पहन कर छः मास पैदल देश में भ्रमण करे और बाद में गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होवे। वर्मा की जनता मांसाहारी है। हाथमें बड़ा छुरा रखती है। शराब पीने में आगा पीछा नहीं देखते। चावल की खेती बड़ी मात्रा में होती है। यह खेती-बारी मुखरूप में उड़ीसा और बिहार के लोग करते हैं। अपने यहाँ से लाखों भारतीय मज़दूर छः मास के लिए वर्मा जाते हैं और खेती काम करके देशमें वापस आते हैं। वहाँ भारतीयों की सारी बस्ती लगभग १४ लाख की है। वर्मा में अपने देश से गये हुये मुसल्मानोंने वहाँ की स्त्रियों से विवाह किया और उनमें से कितनी स्त्रियों को तलाक़ भी देदिया। उस मिश्रित प्रजा की संख्या लाखों हो रही है। ऐसी ही हकीकत मुझे जानने को मिली। मुसल्मान और वर्मी प्रजाकी संकर जाति को वहाँ बरजादी कहा जाता है। इस प्रजा में धर्म-

सहिष्णुता बहुत है। परिवार के लोग बौद्ध ईसाई अथवा चाहे जो धर्म पालें परन्तु इसमें किसी को कोई बाधा नहीं। एक करोड़ और ६० लाख की कुल बस्ती है।

बर्मा बहुत समृद्धि का देश है। अभी बहुत सा भाग खाली पड़ा है। बहुत से उद्योग खिलाये जा सकते हैं— ऐसी गुंजाइश है। बर्मा मे जापानी मित्रों से मुझे सूचना मिली कि जापान युद्ध में पड़े ऐसा संभव है। इसलिए वहाँ के भारतीय भाइयों को यह बात मैं ने बतलायी। अतः वे सचेत हो गये और बहुत सा पैसा देशमें भेज दिया।

मैं आठवें दिन हालैण्ड के विमान में बैठकर कलकत्ता आया।

कलकत्ता से मैं विहार प्लाण्टेशन और सुगर फैक्टरी देखने गया। उसमे से कितनी ही वस्तुये जानने को मिलीं। वहाँ से मैं जगन्नाथपुरी दर्शन करने गया।

अपने पूर्वजों ने चारो दिशाओं में यात्रा के चार धाम रखे हैं। इस मे बहुत लम्बी दृष्टि है। चारों धामों की यात्रा करनेवाले को सम्पूर्ण देश का दर्शन हो जावे यही योजना उसमे है। साथ ही बहुत देखने और जानने को भी मिलता है। उत्तर में बद्री – केदार, दक्षिण में रामेश्वर, पूर्व में जगन्नाथपुरी और पश्चिम में द्वारका। इन चार महा तीर्थों के मध्य अड़सठ तीर्थ समा दिये हैं।

जगन्नाथपुरी में हमने कोढियों, रक्तपित्तियों, और अस्थिपंजर जैसे लोगों को देखा। वहाँ असह्य गन्दगी देखी। मंदिरोंमें आसपास की मूर्तियों में बीभत्स मूर्तियाँ देखकर बड़ा दुःख हुआ। मिस मेयो जैसी विदेशी देवी को ऐसी ही वस्तुयें देख कर टीका करने का अवसर मिला। भारतभूषण पू० पण्डित मदनमोहन मालवीयजी महाराजने इन मूर्तियों को दूर करने का बहुत परिश्रम किया। पूंज्य महात्माजी इन मूर्तियों को देखकर बहुत ही नाराज़ हुये। वे दर्शन किये विना पीछे वापस आये, तिस पर भी ये मूर्तियाँ अभी उसी ही दशा में देखने में आती हैं।

पुरी से दक्षिण में हम मदूरा गये। वहाँ पर मीनाक्षी देवी का प्रसिद्ध मंदिर देखा। यह मंदिर प्राचीन शिल्प-कला का उत्तम नमूना है। इसकी भव्यता और सुन्दरता दक्षिण के समस्त मंदिरों में बढ़ती है। मदूरा से रामेश्वर गया। भारत माता के चरणों में वहाँ तीन समुद्र एक होते हैं। ये हैं—अरब सागर, हिन्द महासागर

और बंगाल की खाड़ी। यह दृश्य अद्भुत है। रामेश्वर से ट्रावनकोर गया। वहाँ रबर तथा शक्कर का कारखाना देखा। त्रावन्कोर से ५२ माइल दूरी पर कन्याकुमारी का अपूर्व प्राकृतिक स्थल है जहाँ पर स्वामी विवेकानन्द को समाधि लगी थी। उस स्थान का दर्शन किया। पूज्य बापूजी ने भी वहाँ पर प्रार्थना की थी। दक्षिण के प्रवास से पीछे लौटते हुये हमें सूचना मिली कि 'जापान युद्ध में सम्मिलित हो गया है। बर्मा में इस की अफवाह हमें मिल चुकी थी।

हम बम्बई होकर देश में आ गये।

हिमालय यात्रा (बद्री-केदार-उत्तर काशी)

हिमालय यह भारतवासियों के लिये आत्मा की शान्ति का मंदिर है। हरएक भारतवासी के हृदय में हिमालय बसा है। हिमालय का स्मरण होते ही संसार का सुख-दुःख भूल जाता है। आत्मा की परम शान्ति याद आती है। हिमालय के सभी तीर्थ-स्थानों में श्री बदरीनाथ धाम सब से बड़ा और पवित्र माना जाता है। हिमालय में अनेक ऋषिमुनियों ने हज़ारों वर्ष तप करके इस स्थान को पवित्र बनाया है। सामान्य दुनियावी चीजें प्राप्त करने में अपने को कितनी मेहनत पड़ती है? तो फिर आत्मसुख देने वाले इस परम धाम की यात्रा विकट हो तो इसमें आश्चर्य ही क्या? मैंने यात्रा की कठिनाइयों को कुटुम्ब के सामने उपस्थित किया। श्रद्धालु यात्रियों की भांति सब कुछ कठिनाई हो, सहने को तैयार हो गये। परिणामस्वरूप मेरी धर्मपत्नी, मेरे पुत्र चि. धीरेन्द्र तथा चि. महेन्द्र तथा मेरी पुत्रियाँ चि. सविता बहन तथा निर्मला बहन यात्रा में आने के लिये तैयार हुये। हमारे साथ 'शारदा' मासिक के तंत्री श्री रायचूराजी तथा छत्रावा के रईस गढवी मेरुभा भी सम्मिलित हो गये।

पोरबन्दर के माननीय महाराणा साहेब, सगे सम्बन्धियों और मित्रों की शुभेच्छावों के साथ तारीख २५ वीं मई १९४४ गुरुवार के दिवस पोरबन्दर से हम रवाना हुये। बम्बई, दिल्ली होकर तारीख पाँचवीं जून को हरद्वार पहुँचे। हरद्वार यह तपोभूमि बद्री-केदार का मुख्य द्वार है। वहाँ गंगा स्नान के लिये सदा हज़ारों यात्री आते हैं। आखिरी पच्चीस वर्षों में हरद्वार में यात्रियों के लिए बहुत सी सुविधायें हुई हैं। सुन्दर मकान, आकर्षक बाज़ार, गंगा के किनारे पर सुन्दर घाट, अनेक धर्मशालायें हरद्वार के यात्रियों को सुविधा और आनन्द देते हैं। सब से अधिक सुविधा वाली धर्मशाला 'भाटिया-भवन' के नाम से प्रसिद्ध थी। उसमें हमारा उतरना हुआ।

हमारी इस यात्रा का विस्तृत वर्णन " तपोभूमि बदरी-केदार " नाम की मेरी लिखी पुस्तक में दिया गया है। इसलिए जिज्ञासु पाठक सूक्ष्म विवरण उसमें से प्राप्त कर सकते हैं। यहाँ पर तो प्रवास वर्णन की केवल उड़ती पड़ती झांकी कराऊँगा। हरद्वार से चौदह मील मोटर के रास्ते से हम ऋषीकेश पहुँचे। ऋषिकेश में 'स्वर्गाश्रम' और 'कालीकमली वाला' ये नाम प्रसिद्ध हैं। हिमालय के 'कालीकमली वाला' की सेवा मानी हुई है। उसके सदाव्रत, धर्मशालायें, औषधालय, पानी-प्याऊ आदि प्रवृत्तियों के द्वारा इस संस्था का नाम सारे भारत में प्रख्यात है। इस संस्था को देखने हम लक्ष्मण-झूला के आगे गंगास्नान कर स्वर्गाश्रम में गये। दोनों किनारों पर वृक्षों की सुन्दर पंक्तियाँ और मार्ग में थोड़े थोड़े अन्तर पर आये हुये साधुवों के कुटीरों को देखते हुये हम वहाँ पर पहुँचे। वहाँ जाने के बाद हमने जाना कि 'कालीकमली वाले' के दो शिष्यों ने उनकी सेवा-प्रवृत्तियों का दो भाग डाल लिया था। एक के हिस्से में स्वर्गाश्रम और दूसरे के हिस्से में सदाव्रत, धर्मशालायें और औषधालय आये थे।

ऋषिकेश से देवप्रयाग, कीर्तिनगर होकर हम आगे बढे। ज्यों ज्यों हम केदारनाथ जाते गये त्यों त्यों हिमालय के हिमाच्छादित सुन्दर शिखर दूर दूर से दिखलाई पड़ते गये। गौरीकुण्ड (गरम पानी का कुण्ड) से सात मील तक मार्ग चारों तरफ बर्फ के ढेरों से ढंका हुआ था। हिमालय का पहाड़ कितना विकट है, इसका अनुभव हमें वहाँ पर ही हुआ। बर्फ के मार्ग से आगे बढ़ते हुये 'जय केदारनाथ' 'जय बदरी विशाल' का नाद यात्री करते थे। जहाँ जहाँ हमारी दृष्टि जाती थी वहाँ वहाँ रूई के ढेर जैसे बर्फ से ढँके हुये शिखर ईश्वर की महत्ता का ध्यान दिला रहे थे। प्रातः नव बजे फाटा से निकल कर सायंकाल चार बजे गंगा के किनारे पौने दो सौ मील डोली में और पैदल चलकर ११,७६० फीट की ऊँचाई पर हम केदारनाथ में आ पहुँचे।

इन अन्तिम दस वर्षों में रास्ता काफ़ी सुधरा है। प्रत्येक वर्ष एक लाख यात्री जाते हैं। हमारा डेरा नेपाल की रानी के बंगले में था। मंदाकिनी के तट पर यह बंगला आया है। वहाँ हरएक प्रकार की सुविधा थी। हम थके-थकाये रात्रि को शान्ति से बिताया।

ठण्डी सख़्त थी। प्रातःकाल उठते ही ठण्डी के कारण हाथ-पैर सूज गये। गर्मी के लिये लकड़ी का ढेर लगाकर उसे सुलगाया तब शरीर में स्फूर्त्ति आयी।

सूर्योदय समय में केदारनाथ के पीछे दृष्टि की तो सूर्य की किरणों से आच्छादित बर्फ का भव्य पहाड़ देखा। यह ही सुमेरु पर्वत है जहाँ पर महात्मा काकभुशुण्ड ने गरुडजी को श्री राम कथा सुनाई थी। साढ़े ग्यारह हज़ार फीट की ऊँचाई पर हम खड़े थे और वहाँ से लगभग दस हज़ार फीट की ऊंचाई पर मेघ के साथ मिलता हुआ सुमेरु पर्वत देखा। जीवन का यह एक सुलभ्य अवसर था।

स्नानविधि पूरी करके प्रातः दस बजे के लगभग हम केदारनाथ का दर्शन करने गये। भारतवर्ष के बारह ज्योतिर्लिङ्ग में केदारनाथ भी गिना जाता है। लाखों यात्री वहाँ पर दर्शन करने आते हैं। हम भी दर्शन करके अपने डेरे पर आये। पूजा में हमें दो घण्टे लगे। शरीर ठण्डे बरफ जैसा हो गया। रक्त जम सा गया। केदारनाथ से बदरीनाथ जाते हुये रास्ते में ओखीमठ नाम का पहाड़ी गाँव आता है। चारों तरफ पहाड़ों से घिरा हुआ ४५०० फीट की ऊँचाई पर आया हुआ यह सुन्दर स्थान है। पहाड़ों के मध्य घूमती और कलकल करती हुई गंगाजी। बंगले के चौक में अपने आप समाधि लगे ऐसा स्थान है।

हिमालय में इस प्राकृतिक सौन्दर्य के मध्य गंगाजी के किनारे मुझे जो उच्च विचार उठे वैसे किसी भी स्थल पर आये नहीं। अभी भी यह स्थान मन से हटा नहीं है। जब जब जगत् की तरफ से आंख को खींच कर मन में इस स्थान का विचार करता हूँ अथवा मन से इस शान्ति के परम धाम में पहुँच जाता हूँ उस समय अनेक विचारों से हृदय घिर जाता है। मैं हूँ अनपढ़ मनुष्य! किसको समझाऊँ? ३६ करोड़ हिन्दुओं में किस को कहूँ? सुलगती भट्टी लेकर इस दुनियाँ से एक दिन विदा होना है। सुख जैसी वस्तु की छाया भी अभी भारतवासी को मिली नहीं। जहाँ देखो वहाँ दुःख की पुकार सुनाई देती है। सुख का मार्ग बताने वाला बता रहा है परन्तु वर्षों से दुःखी प्रजा हृदयबल खो चुकी है। उसे अपने हृदय की बात किस प्रकार समजाऊँ? हिमालय के उच्च शिखरों को नमन कर, ईश्वर को स्मरण कर आँसुओं से मन को

शान्त किया। ईश्वर सब का मार्गदर्शक है ऐसा विचार कर डाकबंगले में वापस आया।

अलखनन्दा नदी के सामने के तट पर बाणासुर का किला खण्डहर की अवस्था में खड़ा है। गाँव का नाम शोणितपुर है, जो अभी भी टूटी फूटी अवस्था में है। थोड़े झोंपड़े हैं।

ओखीमठ से जोशीमठ और वहाँ से बदरीनाथ की तरफ हमने प्रस्थान किया। ज्यों ज्यों आगे बढ़ते गये त्यों त्यों बर्फ के पहाड़ों के मध्य घोर जंगलों को पार कर हमें जाने को था। रास्ता बहुत विकट था। तिसपर भी आसपास के अद्भुत दृश्य विचित्र शान्ति दे रहे थे। पहले कभी नहीं देखा था ऐसा दृश्य देखकर आँख ठहरती नहीं थी। चारों तरफ विविध रंग के वनस्पति पहाड़ को घेर कर खिल निकले थे। एक पहाड़ तो ऐसा आया कि जिसके पास जाते ही सैकड़ों प्रकार के इत्र एक साथ ही महकते हों, इत्र का मानो फौवारा पड़ता हो - ऐसी सुगन्ध फैल रही थी। ऐसी अपूर्व सौरभ कहाँ से आती है, इसकी जाँच पड़ताल करने पर पता चला कि इस पहाड़ के जंगलों में कस्तूरी मृग रहते हैं और वहाँ पर ऐसे वनस्पति हैं जिनमें से दिन-रात सुवास निकलता रहता है। रास्ते की हमारी सारी थकावट इस नैसर्गिक दृश्य और सुवास से उतर गयी। पातालगंगा का पहाड़ इस प्रवास का एक भयंकर रास्ता था। यह पहाड़ स्लेट और राख का बना हो ऐसा दिखायी पड़ता था। रात्रि में वर्षा की एक भी झाटा आजावे तो वहाँ से गुज़रने में ज़िन्दगी का बीमा हो जावे। रात्रि में बरसात में यह पहाड़ फटकर अब धँस पड़ेगा यह कुछ कहा नहीं जा सकता। अनेक यात्रियों ने वहाँ पर जीवन को खोया है। पर्वत के तंग मार्ग से बहती हुई पातालगंगा; लटकती हुई सी बड़ी शिलायें, इनका राख जैसा रंग समस्त वातावरण को भयंकर बनाता है। यात्री लोग दौड़ते हों ऐसे वहाँ से उतावल में उसे पार करते हैं। वर्षा की ऋतु में सरकारी विभाग ने इस रास्ते को बन्द कर रखा है।

एक किनारे पर नीलकण्ठ पर्वत, इसके पार्श्वमें सोलंकी पहाड़, सामने दिखायी पड़ता अलखनन्दा का उछलता जल, दूसरी तरफ हिन्दू धर्म की सर्वश्रेष्ठ तीर्थभूमि के रूप में दिखाई पड़ता भगवान् विष्णु का बदरीनाथ मन्दिर, मन्दिर पर चमकता महाराणी अहिल्याबाई द्वारा चढ़ाया हुआ सुवर्ण कलश, पहाड़ी पगदण्डियों पर

चले आते यात्रियों की पंक्तियाँ— ये सभी दृश्य एक साथ हमारी दृष्टि में पड़े।

हज़ारों यात्री जिस स्थल के दर्शन के लिए बर्फ के पहाड़ों के बीच से विकट यात्रा करते हैं, जहाँ पहुँचने के लिए एक एक श्रद्धालु हिन्दू जीवनभर तरसता है और जिसके लिए एक पुरानी कहावत है—

जे जाय बद्री, वह न आवे उदरी।
और जो आवे उदरी, तो न रहे दरिद्री॥

(अर्थात् जो भगवान् बद्रीनाथ का दर्शन करता है उसे फिर से माता के पेट में जन्म धारण नहीं करना पड़ता, यदि किसी कारण मनुष्य जन्म लेना पड़े तो उसे धार्मिकता की दरिद्रता नहीं रहती)— ऐसी इस तपोभूमि में पग डालते ही हमें एक प्रकारका आनन्द हुआ।

महान् योगीजन, ब्रह्मज्ञानी, ग्रंथकर्ता लोग तथा कविजन इसी भूमि में रह चुके हैं। मनु भगवान् का आश्रम यहाँ पर ही था। श्री कृष्ण भगवान् के इस स्थल पर आने की हक़ीकत महाभारत में है। पाण्डव लोग वनवास के समय यहीं पर आये थे। पाणिनि मुनि का व्याकरण इस स्थान पर रचा गया था। व्यास भगवान् बदरिकाश्रम में ही रहे थे। महर्षि वसिष्ठ ने यहीं पर तप किया था। इस प्रकार बदरिकाश्रम यह पवित्र और प्राचीन धाम गिना जाता है। बदरीनाथ में पद्मासन मार कर बैठी हुई विष्णु भगवान् की मूर्त्ति है। मन्दिर बहुत पुराना नहीं। हज़ार दो हज़ार वर्ष का पुराना होगा। हज़ारो यात्रियों के लिए मन्दिर बहुत संकरा लगता है।

हमने स्नान करके विष्णु भगवान् का दर्शन किया। मनको अपूर्व शान्ति मिली। बद्रीनाथ में यात्रियों के लिए धर्मशाला की अच्छी सुविधा है हिमालय के लिए आवश्यक ही एक वस्तु वहाँ मिलती है। अच्छी कस्तूरी, ऊन और शुद्ध शिलाजीत भी मिलती है। पोस्ट और तार आफिस है। मन्दिर के प्रबन्ध के लिए एक समिति है। सामान्यतया व्यवस्था सुन्दर है। सदा प्रातः सात से ११ बजे तक और सायंकाल छः से नव बजे तक मन्दिर खुला रहता है। मई महीने से नवम्बर पर्यन्त छः मास दर्शन होता है। शेष छः मास पहाड़ पर्वत से ढका रहता है।

हिन्दू धर्म के चार महाधामों के मुख्य इस धाम में तीन दिवस रहकर प्राकृतिक दृश्यों का अत्यन्त आनन्द लेकर ऋषिमुनियों की तपश्चर्या से पवित्र हुई भूमि को वन्दन करके हम २० जून को

प्रातः सूर्योदय के इस वर्फ से आच्छादित पहाड़ को नमस्कार करके पीछे लौटे।

हमारे जीवन में बदरीकेदार की यात्रा सदा के लिए यादगार बनी है। संसारी व्यवहारके कामों को करते हुये मुझे जब जब अवसर मिलता है मैं चित्त की शान्ति के लिए हिमालय की गोद में पहुँच जाता हूँ।

बदरीकेदार का तपोवन चित्त को शान्ति देता है, जगत में सच्चा सुख किस में है, इसकी झांकी कराता है। इस स्थल पर मन बहुत ऊँची भूमिका पर पहुँच जाता है। आत्म सुख के ही विचार आते हैं। अपनी भारत भूमिकी प्राचीन संस्कृति पीछे किस प्रकार सजीव रहे इस प्रकार के अनेक विचारों से हृदयभर जाता है। इसमें से कुछ विचारों को यहाँ पर उपस्थित करूँगा। जबसे वर्णाश्रम धर्म खण्डित हुआ उस समय से भारत की भव्यता में बट्टा लग गया। ब्राह्मण अर्थात् शिक्षक, क्षत्रिय अर्थात् रक्षक, वैश्य अर्थात् पोषक और शूद्र अर्थात् सेवक— इन चारों वर्गों में समानता थी। ऊँच नीच का भाव नहीं था, एकता थी, सेवा-भावना थी और स्वार्पण था। उस समय अपना देश उन्नति के शिखर पर था।

इस समय सौराष्ट्र के लखपति उद्योगवीर परदेश आकर बसे हैं, परदेश में प्रतिष्ठा जमायी है, और सम्पत्ति प्राप्त की है। वे जन्मभूमि में आ बसें। अपनी बुद्धि, शक्ति और धन देश के हुन्नर-उद्योग को खिलाने में लगावें। देशके ग़रीब भाइयों को ईमान्दारी की रोज़ी देने की सेवा करें।

स्वराज्य-सरकार उन्हे इसके लिए चाहिए उतनी अनुकूलता कर रखे उनलोगों और जन्मभूमि दोनों का ही कल्याण हो।

आज जनता जाग्रत हुई है, देश स्वाधीन बना है। इस प्रसंग में अपने सर्वस्व को देश के लिए खर्च करने को तैयार रहना चाहिए। प्रजा के धनिक और ग़रीब लोग यदि परस्पर मधुर सहकार करेंगे और भारतवर्ष की प्राचीन भावना को जगावेंगे तो उस दिन भारत में सुख और शान्ति होगी।

आज के बहुत से प्रश्नों में स्त्रियों की उन्नति का प्रश्न सबसे उपयोगी है। स्त्रियों को बौद्धिक और शारीरिक तालीम देनेकी विशेष आवश्यकता है। उन्हे घर के कोने से बाहर लाने की ज़रूरत है। स्त्रीशक्ति जब निर्भय, स्वावलम्बी और सुशील बनेगी तब

भारतभूमि देवताओं का निवास-स्थान बनेगी।

भारत यह प्राचीन पुण्यभूमि है। एक दिवस ऐसा था जब भारत संस्कृति के उच्च शिखर पर बिराजमान था। ऐसा दिन पुनः जल्दी से वापस आवे ऐसी प्रार्थना गंगा किनारे बैठे बैठे प्रभु के पास की। दूर दूर, हिमालय के शिखरों पर दृष्टि करते हुये हृदय में सन्तोष हुआ कि आज नहीं तो कल भारत वर्ष जगत् की समस्त प्रजामें अग्रस्थान प्राप्त करेगा।

हिमालय की यह तपोभूमि हज़ारों मील दूर है। हजारों फीट ऊँची है। तिसपर भी वहाँ पर सामान्य से सामान्य मनुष्य जा सकता है। कोई भी यात्री डेढ़ सौ रूपये में यह प्रवास कर सकता है। यात्रा के मध्य में उतरने के लिए विश्रामस्थानों और काली-कमलीवाले की धर्मशालाओं में प्रबन्ध। वहाँ रहने, और खाने पीने के बर्तनो तथा चीज़वस्तुओं की सुविधा होती है। भारतवर्ष के प्रत्येक यात्री के लिए बदरी-केदार सुलभ है।

सन् १९५२ के अक्तूबर मास में अफ्रीका की यात्रा से आकर दूसरी बार मैं हिमालय की यात्रा पर गया था। इस समय की यात्रा में मेरे साथ भाणवड के बालपंडित चन्द्रमौलीश्वर, उनके पिता तथा चाचा थे। लोहाणा महापरिषद् के महामंत्री श्री छगनभाई पारिख और लुगाज़ी फैक्टरी के हमारे सेक्रेटरी भाई केशवजी विठलानी थे वे हरद्वार में मिले।

बदरी-केदार की यात्रा के समय हमारे साथ भारी संघ था। इस समय मंडली छोटी थी तिसपर भी खूब आनन्द आया। हम ऋषिकेश से खास मोटर में प्रथम देवप्रयाग गये। वहाँ से देवप्रयाग ४४ मील पड़ता है। पहाड़ी रास्ते पर अनुभवी ड्राइवर हो तभी ही मोटर सलामती से चला सकता है। हमारा ड्राइवर भाई मोतीलाल पंज़ाबी ब्राह्मण था। उसने खूब होशियारी से सारी यात्रा में मोटर चलाई। भावुक और धैर्यवाला यह ड्राइवर हमारी यात्रा में सब से अधिक उपयोगी था। ऋषिकेश से २२ मील ऊपर आमने-सामने मोटर का क्रोसिंग होता है तथा वहाँ पर यात्री विश्राम लेते हैं। छोटा सा लकड़ी का छपरा बनाकर वहाँ पर एक होटल बनाया गया है। इसे हमारे बालपंडित ने ताजमहल के बदले "छाजमहल होटल" नाम रखा। ऋषिकेश से देवप्रयाग का सम्पूर्ण मार्ग अतिशय रमणीय है। एक किनारे पर ऊँची पहाड़ी और दूसरे किनारे पर पहाड़ की

खन्दक में गंगाजी की धारा चली जाती है। गंगा के एक किनारे हमारी मोटर चली जा रही थी। सामने बदरीनाथ को जाते हुये यात्री पैदल रास्ते पर चल रहे थे। मार्ग टेढ़ा-मेढ़ा, संकरा और खतरनाक था। रास्ते में पहाड़ियों पर बसे हुये पक्षी की मालाओं जैसे ग्राम आ रहे थे। कोई दस घर का, कोई बीस घरों का गाँव बसा होता है। पहाड़ की चोटी पर्यन्त खेती की हुई होती है। किसान पहाड़ी झरने में से पानी लेकर धान और गेहूँ आदि अनाज पकाते हैं। स्त्रियाँ और पुरुष दोनों ही खेती करते हैं। बालकों की पढ़ाई के लिए कितने ही स्थानों पर स्कूल बने हैं। दूर दूर से बालक पाठशाला में पढ़ने आते हैं। हम ऋषिकेश से चार घण्टे में देवप्रयाग पहुँचे।

देवप्रयाग संगम पर बसा है। एक तरफ से अलखनन्दा और दूसरी तरफ से भागीरथी आती हैं। संगम स्थान पर प्रत्येक वर्ष हज़ारों यात्री आते हैं। इस जगह पर दो नदियों का प्रवाह इतना वेगवान् होता है कि पैर फिसलने पर मनुष्य फौरन प्रवाह में फेंक उठता है। मेरी पहली यात्रा में ३५ हज़ार रूपये व्यय कर मैंने वहां पर घाट बंधाया। इस घाट पर सायंकाल की आर्त्ती के समय बालपंडित का प्रवचन रखने में आया था। देवप्रयाग के विद्वान पंडित, अध्यापक और नागरिक उनके प्रवचन सुनकर मुग्ध हुयें। देवप्रयाग में एक हाईस्कूल और संस्कृत पाठशाला चलती है। आसपास के पहाड़ी प्रदेश से मीलों पर्यन्त चलकर विद्यार्थी यहां पढ़ने आते हैं। उन विद्यार्थियों को रहने के लिए एक छात्रालय की आवश्यकता थी। इस लिए उस छात्रालय के चार खण्ड दस हज़ार में बनवा दिये और आठ सहस्र रूपये व्यय करके एक श्मशान भूमि भी मैंने बनवा दी।

देवप्रयाग के पास अलखनन्दा और भागीरथी के रमणीय किनारों के शान्त स्थल प्रत्येक यात्री के मन को हर लेते हैं। दोनों बहनों का संगम के बाद गंगा नाम पड़ता है। वहां से हटने का मन नहीं होता - ऐसी अनुपम जगह है। देवप्रयाग में दो दिवस रहकर हम बाद में हरद्वार वापस आये।

एक दिन हरद्वार में आराम लेकर हम उत्तर काशी जाने को निकले। ऋषिकेश से टेहरी गढ़वाल के राजाकी नयी राजधानी नरेन्द्रनगर पहुँचे। नरेन्द्रनगर की ऊंचाई समुद्रतल से लगभग

३५०० फीट है। छोटासा सुन्दर शहर बसाया गया है। ऊपर से चारों तरफ़ सुन्दर दृश्य दिखाई पड़ता है। नरेन्द्रनगर से आगे जाते हुए लगभग तीन हज़ार फ़ीट ऊंचा चढ़ना पड़ता है और वहाँ से दूर दूर गंगोत्री तथा वर्फ से ढंके हुये वदरीकेदार के शिखर दिखायी पड़ते हैं। वहाँ से रास्ता नीचे उतरता है। एक ओर पहाड़ और दूसरी तरफ गहरा पर्वतीय खड्डा। केवल एक मोटर कठिनाई से चल सके उतना चौडा रास्ता तथा पहाड़ी से चक्कर लेते हुये अनेक टेढ़ मेढ़ मोड़। इसमे चाहे जितना योग्य ड्राइवर हो उसकी मारी कसौटी होजाय ऐसा है। ऐसे ख़तरनाक मार्ग हमें जाते समय लौटते हुये दो तीन वाहन सामने मिले थे। केवल ईश्वर कृपा से ही घटना घटित होने से हम बच सके। ऋषिकेश से टेहरी ५१ मील है। सात वजे ऋषिकेश से निकल कर दोपहर को एक बजे पहुँचे। टेहरी को आते समय देखने के लिए छोड़कर हम धरासू की ओर आगे बढ़े। टेहरी से धरासू २७ मील होती है। गंगा के किनारे पर ऊंचे ऊंचे पर्वतदरी में रास्ता चला जाता है। रास्ते में अनेक भयस्थान आते हैं। अभी दो वर्ष पूर्व ही मोटर चल सके वैसा रास्ता बनाया हुआ होने से मार्ग की सजावट का काम अभी चल रहा था। हम सायंकाल ६ बजे धरासू पहुंचे। बाबा काली कमलीवाले की धर्मशालायें तो हर एक जगह होती हैं। हमारा उतारा डाक बंगले में था। वहाँ पर पूरी सुविधा थी। धरासू के पास यमुना की एक धारा गंगा से मिलती है। इस से यह भी संगम स्थान गिना जाता है। धरासू से आगे जाने के लिए मोटर का रास्ता नहीं। पैदल अथवा डोली में जाना पड़ता है। हमने आदमियों के लिए डोली और सामान के लिए खच्चर भाड़े पर किया। धरासू से उत्तर काशी १९ मील है।

प्रातःकाल सूर्योदय होने से पूर्व आठ डोलियाँ और पाँच खच्चर उत्तर काशी की तरफ़ चल निकले। शुरूआत में हममें से कोई भी डोली में नहीं बैठा। प्रातःकाल सुन्दर पवन और गंगाजी का किनारा। चलने में आनन्द आता था। दो मील चलने के बाद हमनें बैठना प्रारंभ किया। एक किनारे पहाड़ो और दूसरी ओर पर्वतदारी में गंगाजी बहती जाती है। एक खच्चर चल सके इतनी संकरी पगदण्डी पर हमारा संघ चला जाता था। चार-पाँच मील जाने के बाद दूर दूर पर गंगोत्री और यमनोत्री के धवल शिखर

दिखायी पड़े। यह दिखाव अपूर्व था। एकाध-दो मील डोली में बैठना और मील दो मील चलना, ऐसा करते हुये दस-ग्यारह बजे आधे रास्ते पर पहुँचे। हमारे साथ पर्याप्त नाश्ता था। एक पहाड़ी झरने पर हमने पड़ाव डाला। वहाँ आनन्द से नाश्ता-पानी किया। आराम लिया और बाद में चल निकले। रास्ते में आनन्द करते हुये सायंकाल पाँच बजे हम उत्तर-काशी पहुंचे।

हमारे लिए उतारे-पतारे की व्यवस्था करने के लिए एक भाई आगे गया था और उसने व्यवस्था कर रखी थी। उत्तर-काशी में सेठ विरलाजी की सुन्दर धर्मशाला है। उसमें हमने निवास किया। उत्तर-काशी यह गंगोत्री जाते हुये मार्ग में आनेवाला एक यात्रा का धाम गिना जाता है। चारों तरफ ऊँची पहाड़ी से घिरा हुआ यह तीर्थधाम गंगा के किनारे बसा है। लगभग चार हज़ार की बस्ती है। छोटा सा बाज़ार, तार-पोस्ट आफिस, पुलीस स्टेशन, धर्मशाला, संस्कृत पाठशाला, हाईस्कूल आदि की सुविधा वहाँ है। आस-पास खेती हो सके वैसी सुविधा वहाँ पर है। चारों तरफ पर्वतमाला होने से ठण्ढी के समय में वहाँ रहा जा सकता है। गंगोत्री में वर्फ पड़ने लगे तो वहाँ के तपस्वी उत्तर-काशी आकर बसते हैं। उत्तर-काशी में ऐसे सन्तों के दर्शन का अमूल्य लाभ मिला।

हम रात्रि में थकेथकाये हुये खा-पीकर सो गये। प्रातः गंगास्नान करके श्राद्धविधि पूर्ण कर देखने को निकले। उत्तर-काशी में श्री विश्वनाथ का प्राचीन मन्दिर है। बौद्धधर्म के आक्रमण से वह बच गया मालूम पड़ता है। मंदिर में दर्शन करके हम उत्तर-काशी की कितनी ही संस्थाओं को देखा और उसके बाद महात्माओं के दर्शन को गये।

पू. कृष्णाश्रम स्वामी, पू. तपोवन स्वामी, पू. गंगानन्द स्वामी, पू. ब्रह्मप्रकाशजी स्वामी और पू. गणेशदत्तजी गोस्वामी आदि महात्माओं का दर्शन करके हम पावन हुये। परम विरक्त, निजानन्द में मस्त जगत् की समस्त झंझटों से परे, सात्विक मूर्त्ति जैसे इन संन्यासियों का दर्शन एक दुर्लभ वस्तु थी। हिमालय के महात्मा लोग अधिकतर मौन रहते हैं। तिसपर भी हमें उनकी अमृतवाणी का थोड़ा लाभ मिला। अधिकांशतया ये साधु गंगोत्री में निवास करते हैं। परन्तु जाडे की ठण्ढी ऋतु में चार मास उत्तर-काशी में

आकर वसते हैं। 'सन्तों के दर्शन से पाप धुल जाता है' ऐसा शास्त्रों में कहा गया है। उसका हमें प्रत्यक्ष अनुभव हुआ। उनके पास जितनी देर बैठे होते हैं दुनियाँ की सारी उपाधियाँ भूल जाती हैं। पूर्व के पुण्य हों तभी ऐसे महापुरुषों के सहवास का लाभ मिल सकता है।

हमारे भोजन की व्यवस्था पू० गोस्वामी गणेशदत्तजी के यहाँ थी। वे गाँव से तीन मील दूर गगा के किनारे शांति-कुटीर में रहते हैं। उनका आश्रम सत्यतः शान्ति-कुटीर है। उन्हों ने खूब भाव से हम सब का स्वागत किया। माता जैसे भरे हृदय से आत्मीयता एवं प्रेम से वे हमें भेंट पड़े। भोजन कराया और आश्रम में रोका। भोजन और आराम करने के बाद गंगा के किनारे हरियाले मैदान में जाकर बैठे। वहां पर गोस्वामीजी की वाग्धारा चली। अपने जीवन के विविध अनुभवों को उन्हों ने कह सुनाया। पू. स्वामी रामतीर्थ जी के जीवन की अनेक घटनायें उन्हों ने कहीं। पूज्य बापूजी और पण्डित जवाहरलालजी के साथ अपने पूर्व अनुभवों का वर्णन किया। दूसरे दिन भी उनके प्रेमाग्रह के वश होकर हम वहां पर गये। वहां तो दिवसों पर्यन्त रहने का मन होता था ऐसा स्थल था, परन्तु हमारा मण्डल जुदी जुदी दुनियावी उपाधियों वाला था। तीसरे दिन हम पीछे वापस आये।

लौटते समय हम टेहरी में स्वामी रामतीर्थ की समाधि देखने गये। गंगा के किनारे जहां पर उन्हों ने तप किया था वह स्थान देखा बिलंगना नदी-किनारे उनकी समाधि का दर्शन किया। टेहरी राजधानी का शहर होने से वहां आठ दस हज़ार की बस्ती है। बड़ा बाज़ार, कालेज, धर्मशालायें, पोस्ट-तार आफिस आदि तमाम सुविधायें हैं। दो घण्टा टेहरी रुक गया और भोजन किया। तथा रात्रि होने के पूर्व ऋषिकेश वापस आगया। थोड़ी अधिक रात्रि बीतने पर हरद्वार आगया। हरद्वार में हमारा उतारा गुजराती भवन में हुआ। वहां हमने दीवाली पर्यन्त रुकने का विचार किया। १४ वर्ष की उम्र और ५२ पौण्ड वज़न के बालपंडित चन्द्रमौलीश्वर, जिनका लघुनाम हमने शुकदेव रखा है उनका प्रवचन रखा। सैकड़ों भावुक स्त्री-पुरुषों ने प्रवचन का लाभ उठाया। शुकदेवजी के आगे अध्ययन के लिए काशी हिन्दू-विद्यापीठ में पूज्य गोस्वामीजी द्वारा प्रबन्ध किया। १२ वर्ष की बाल-उम्र में उनको मिले हुये ज्ञान को देखकर सभी चकित हो रहे थे। पूज्य ठक्कर बापा के परम शिष्य

श्री छगनलाल भाई पारिख ने भी हमें प्रवास में खूब आनन्द कराया। उनका विनोदी, निखालिस और सेवाभावी स्वभाव हमें सदा याद रहेगा। १५ वर्ष हुये वे अनाज-पानी नहीं लेते। बाफे हुये शाक-भाजी से चलाते हैं। वर्ष में एक मास गंगाजल से उपवास करते हैं।

इस यात्रा में दूसरे स्नेही पूज्य महात्मा गांधीजी के परम शिष्य 'छांया हरिजन आश्रम' के संचालक स्नेहमूर्त्ति श्री रामनारायण पाठक अपने स्वास्थ्य के कारण पोरबन्दर उत्तर-काशी आये। ऋषिकेश के ब्रह्मचारी श्री हरजीवनजी, बालपण्डित शुकदेवजी, उनके विद्वान् पिता और चाचा - ये सभी साक्षर लोग एकत्र हुयें, इससे इस समय के प्रवास में मुझे बहुत ही आनन्द आया। गंगा किनारे हरिद्वार में दीवाली करने के बाद मैं बम्बई होकर पोरबन्दर आया।

आखिरी अफ्रीका की यात्रा से आने के बाद फिर हिमालय के दर्शन को गया।

हिमालय भारतवासियों का आध्यात्मिक गुरु है, उसी प्रकार यह भारत की प्रजा का पालक पिता भी है। इस पुण्यभूमि पर हिमालय न होता तो सगर राजा न होते। सगर न होते तो पुरुषार्थ परायण भगीरथ न हुये होते। भगीरथ न हुये होते तो भागीरथी गंगा न हुई होती और भागीरथी गंगा न होती तो भारतवर्ष सहरा का रेगिस्तान हो गया होता। हिमालय से नव महा नदियां निकलती हैं। सिंधु, ब्रह्मपुत्रा, यमुना, रावी, चिनाव, सतलज, झेलम और इरावती। इन नव सरिताओं के प्रवाह द्वारा भारत नन्दनवन बनता है। यह पानी और खाद दोनों की पूर्त्ति करके भूमि को उपजाऊ बनाती हैं। हिमालय के जंगल बरसात लाते हैं। सारी गर्मी में हिमालय बर्फ का पानी बहाता है। हिमालय के उच्च शिखर हवा को रोंक कर ठण्डी, गर्मी और वर्षा की समानता रखते हैं। हिमालय विदेशियों के आक्रमण को रोकने वाला महान रक्षक है। इस प्रकार हिमालय भारत की राजकीय, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक चतुर्विध उत्क्रान्ति का जनक है। हिमालय औषधियों और जड़ीबूटियों का धाम आरोग्य का आश्रम है।

हिमालय न होता तो भारत न होता। उसने ऋतुयें दी हैं। वह वर्षा देता है। ठण्डी देकर गर्मी को कम करता। साथ ही नदियाँ दी हैं जो भूमि को फस्ल वाली और उपजाऊ बनाती हैं। उसमें भी यह सब से अद्‌भुत रक्षण देश को दे रहा है।

बदरीकेदार की दूसरी यात्रा

श्री आर्यकन्या गुरुकुलकी ७५ ब्रह्मचारिणियें, शिक्षक, शिक्षिका बहेनें तथा अन्य सहकर्मी आदमियें सहित सब ९० व्यक्ति तारीख़ १० अपरैल के दिन पोरबन्दर से रेल मार्ग से रवाना हुये।

मैं अपनी पत्नी के साथ विमान में बम्बई से दिल्ली पहुंचा।

दिल्ली में गुजराती समाज के गृहस्थें के आग्रह को सम्मान देकर माननीय श्री मोरारजीभाई देसाई की अध्यक्षता में ब्रह्मचारिणियें का एक सांस्कृतिक कार्यक्रम रखने में आया जिसमे सौराष्ट्र की भिन्न भिन्न बस्तियें की मेहर जाति के तथा किशन गोपाल आदिके विभिन्न रासें का कार्यक्रम करने में आया। कार्यक्रम लगभग अढाई घण्टे चला। सभी को अत्यन्त आनन्द मिला।

दिल्ली मे— श्री बिरला मन्दिर, पूज्य बापूजी का देवस्थान राजघाट, सप्रू हाउस, लालकिला, दीवानये— आम दीवानये - खास, मोती मस्जिद, ज़ुमा मस्जिद, शाहजहाँ का स्नानगृह, खास महल, रंग महल, राष्ट्रपति-भवन, पार्लियामेण्ट हाउस, कुतुब मीनार, वेधशाला जन्तर मन्तर आदि दर्शनीय स्थलें को ब्रह्मचारिणियें को दिखलाया।

सभी की इच्छा भाखरा 'डेम' देखने की थी— इस लिए वहाँ जाने का प्रबन्ध किया। रास्ते में पानीपत स्टेशन पर डब्बे में आग लग गयी, इस से गाड़ी छः घण्टे लेट हुई। पानीपत में हमें यह पर्चा मिला।

भाखरा बाँध की औसत ऊंचाई ७६० फीट होगी। पानी छः सौ फीट गहरा रहेगा। उसका सारा क्षेत्रफल १५००० वर्ग फीट में फैला है।

इस बाँध की योजना दो विशाल पर्वतें के बीच उन पर्वतें का दीवाल के रूप में उपयोग कर सतलज और दूसरी नदियें के संगम पर करने में आयी है। इसके निर्माण कार्य का प्रारंभ ईस्वी

सन् १९४६ में हुआ । सर्व प्रथम एक यूरोपियन इंजीनियर मि० लुईस ने ऐसे विशाल बाँध की सफलता का विचार दिया था। और इस स्थल की पसंदगी की थी ।

इस बाँध के नीचे लगभग बारह खाने रखने में आये हैं जिस में लगभग १२ फीट डायमीटर की फौलाद की पाइपें रखने में आयी हैं।

८००० मज़दूर काम करते हैं। इस की आयु ६०० वर्ष की कूतने में आयी है। इसमे से ६४ वर्ग मील तक फैले: हुये गोविंद सागर में पानी भरने में आवेगा । तथा उसमें से ३००० मील लम्बी नहरें निकलेंगी और ८०० मील दूर राजस्थान, पंजाब, तथा दिल्ली के आधे भाग पर्यन्त नहरों द्वारा खेतों को पानी पूरा करने में आवेगा ।

इस बाँध के निर्माण कार्य में लगभग दश लाख टन सीमेण्ट खर्च करने में आवेगी, ऐसा अनुमान है। तथा यहाँ के विजली घरों में लगभग ९ लाख कीलोवाट विजली उत्पन्न करने में आवेगी। इस बाँध से तथा विजली के उत्पादन से खेती में १७५ करोड़ रूपयों की बचत होगी ।

इस बांध के निर्माण कार्य में लगभग दो अरब का खर्च होगा और इस्वी १९५९-६० में यह क़ार्य पूर्ण होगा— ऐसा मानने में आता है।

यह डेम दुनिया में अमेरिका के स्टेड ग्रीनिटी डेम के बाद दूसरे नम्बर का है। मनुष्य की शक्ति से समुद्र में व्यर्थ जाती हुई पानी की शक्ति को रोक कर भारतने महान् भगीरथ कार्य किया है।

भारत के स्वतंत्र होने के बाद बहुत से बांध बांधे गये और बँध रहे हैं। भारत की जनता का जैसा सद्भाग्य और जैसी भावना होगी उसी परिमाण में कार्यों का फल मिलेगा ।

डेम देख कर दो दिन बाद दिल्ली वापस आये ।

इस बांध को देखने के लिए सौराष्ट्र के सुपुत्र केन्द्रीय सरकार के मंत्रिमण्डल में भारत के बांध कार्य के विभागीय मंत्री श्री हरसुखलालभाई हाथी ने सारी व्यवस्था कर दी थी। सौरष्ट्र के सुपुत्र जहाँ जाते हैं वहाँ अपनी शक्ति से सेवा करके कुल एवं देश के नाम को प्रकाशित करते हैं।

पूज्य श्री ढेवरभाई, श्री मनुभाई शाह, श्री जयसुखलालभाई हाथी, श्री रसिकभाई, श्री रतुभाई अदाणी, श्री जीवराजभाई मेहता

तथा श्री शान्तीभाई हीरजी आदि सोराष्ट्र के अनेक सुपुत्र देश की अमूल्य सेवा कर रहे हैं।

दिल्ली से वैशाख तृतीया के दिन हरद्वार जाने के लिए हम रवाना हुये। वहाँ से श्री केदारनाथ के दर्शन को चले। मार्ग में पर्याप्त बर्फ और वर्षा थी। उसकी सूचना मिला करती थी। वहाँ के निवासियों से मालूम हुआ कि अन्तिम ५०,१०० वर्षों में ऐसी बर्फ पड़ी नहीं थी।

गौरीकुण्ड से केदारनाथ पर्यन्त ७ मील का मार्ग बर्फ से बिल्कुल ढक गया था। और उसके ऊपर से चलने में पग ठिठुर गया। १३००० फीटकी ऊँचाई पर श्री केदारनाथ के मंदिर का २ मील दूरसे दर्शन हुआ।

हमने दश ब्रह्मचारिणियों के साथ एक रास्ता बतानेवाला चले—इस प्रकार प्रबन्ध कर रखा था। साथ में पण्डे भी थे। मार्गदर्शक आगे चलकर सूचना दें उसके अनुसार हम सबको चलने को था। अन्यथा बर्फ में फिसल जाना पड़े।

इस पवित्र स्थल के देखने के उत्साह में किसी को अधिक कष्ट मालूम नहीं पड़ा।

श्री केदारनाथ में हम उतरने वाले थे, वहाँ पर पूर्व से ही हमने ईंधन भेज रखा था। परन्तु सख़्त ठण्ढी के कारण जल्दी जलता नहीं था।

कितने ही यात्री तो भग गये थे। उनके चेहरे पर खूब ही घबराहट थी। तथा पूछने पर बड़ी तक़लीफ़ और बहुत भय के उद्गार निकलतें थे। हम वहाँ पर दो घण्टे रुके। दर्शन करने के बाद गरम काफी पिया तथा सभी ने पैर सेंके। पीछे फिरे तो उस समय बरसात और बर्फ दोनो पड़ने लगे थे। दो तीन ब्रह्मचारिणियाँ बेसुध हो गयी परन्तु सद्भाग्य से डांडीवाला मील गया और उन्हे डांडी में बैठा दिया। इस समय का वर्णन करना बहुत कठिन है। दो वृद्ध यात्री बहनें बर्फ में समा गयीं। हमारे साथ फिल्म उतारने वाला आदमी था। अच्छे अच्छे दृश्यों की फिल्म उतारने का काम चालू था।

सायंकाल सात बजे कितने ही घोड़ो पर, तथा कितने ही पैदल चलकर और कितने डोलियों में बैठकर १४ मील का ऊबड़-खाबड़ मार्ग काटकर गौरी कुण्ड पहुँचे। सारी रात बर्फ और वर्षा

पड़ती रही। चारों तरफ पहाड़ चाँदी से हो गये थे। उस समय की सुन्दरता अलौकिक थी। सवेरे छः बजे बरसात बन्द रही। सात बजे सारा सामान खच्चर और घोड़ों पर लादकर रवाना हुये। वहाँ से दश मील दूर फाटा आया। इस प्रदेश का सृष्टि सौन्दर्य ऐसा है कि देखने वाले दर्शक को मुग्ध कर लेता है। सभी दुःख भूल जाता हैं तथा परमात्मा की ऐसी बुद्धिलीला के समक्ष चाहे कैसा भी नास्तिक मनुष्य हो परन्तु उसका मस्तक जानमें अथवा अजान में नत हो जाता है।

गढवाल प्रदेश बहुत ग़रीब है। वहाँ पर किसी प्रकारका उद्योग नहीं है। पहाड़ों में खेती भी होती नहीं। तथा बस्ती भी थोड़ी है। लोग अधिकतया यात्रियों पर ही अपना निर्वाह चलाते हैं।

किसी भी प्रजाको यदि भारत का धार्मिक जीवन देखना हो तो इस रास्ते से आने में देखा जा सकता है। हमें रास्ते में दो तीन यूरोपियन मिले थे।

फाटा से गुप्तकाशी और अगस्त्यमुनि हो करके हम रुद्रप्रयाग पहुँचे।

इस समय यात्रा में एक लाख मनुष्य आये थे। उनमें ७० प्रतिशत स्त्रियाँ और ३० प्रतिशत पुरुष होंगे।

रुद्रप्रयाग में श्री स्वामीजी ने कालेज बनवाया है। उनकी मैंने पहली यात्रा में सहायता की थी तथा एक कन्या पाठशाला बनवा दी थी। छात्रावास के लिए कमरे बनाने की आवश्यकता होने से उस निमित्त पाँच हज़ार रूपये यदि वे सरकार के पास से प्राप्त कर लें तो इस शर्त पर दोनों को पाँच पाँच हज़ार रूपये का दान दिया।

रुद्रप्रयाग से बस में पीपलकोटि आये। वहाँ से खच्चर, और घोड़ों पर सामान लादकर पैदल तथा डोलियों में हम २० मील दूर जोशीमठ पहुँचे। जोशीमठ से श्री बद्रीनाथ २० मील दूर है।

जोशीमठ में एक प्राइमरी स्कूल बनाने की आवश्यकता थी इस लिए वहाँ पर पांच हज़ार रूपये सरकार से मिलने की शर्त पर पाँच हज़ार का दान दिया।

रास्ते में हमें थोड़े से विद्यार्थी मिले। उनसे प्रश्न करने पर उनमें मानवता नहीं मालूम पड़ी। आजकल कितने ही युवक यात्रा के लिए निकलते हैं परन्तु उनमें धार्मिक भावना होती नहीं, केवल

सैर करने के लिए यात्रा में निकलते हैं – ऐसा लगा।

जोशीमठ में ही थे तभी बरसात और बर्फ पड़नी प्रारंभ हो गयी थी इसलिए दो दिन ठहर जाना पड़ा। रहने और उतरने की सुन्दर सुविधा मिली थी। ज़िन्दगी में न मिलने जैसे प्राकृतिक सौन्दर्य के देखने को मिलने से बालक आनन्द की कलोल कर रहे थे।

हमारे साथ डोलीवाले, घोड़ेवाले और खच्चरवाले मिलकर सब ६० आदमी थे। उन सब को मिष्टान्न का भोजन दिया।

वहां से हमें पाण्डुकेश्वर जाना था। पूर्व से ही वहां आदमियों को भेज रखा था – इसलिए वहां रसोई तैयार रखी हुई थी। वहां पहुँचते ही वर्षा प्रारंभ हो गयी और बर्फ पड़ना चालू हो गया।

जो यात्री पैदल आ रहे थे उनमें से २४–२५ के बर्फ में समाप्त हो जाने का समाचार मिला। यह समाचार मिलते थोड़ा समय हुआ होगा कि वहाँ पर १५०० फीट की ऊँचाई से एक बस गई उसमें बैठे हुये ३४ आदमी समाप्त हो गये – ऐसी सूचना मिली। हमें भी चिन्ता होने लगी कि अब क्या करें? श्री बद्रीनाथ केवल १० मील दूर रह गया था – इसलिए दर्शन करके ही वापस होने का निश्चय किया। आदमियों से पूछने पर पता चला कि रास्ता बहुत खराब है, बर्फ के पहाड़ धस जाते हैं। इससे हमें पाण्डुकेश्वर में दो दिवस रुका रहना पड़ा। कठिन बरसात और बर्फ का कोई ठिकाना नहीं था। पहाड़ों ने रूपा के रंग का वस्त्र धारण कर लिया हो – ऐसा दृश्य लगता था।

सरकार की तरफ से वायरलेस छूटा और अधिक घटनायें न हों इसलिए तीन दिन तक आना जाना बन्द रहा। तीसरे दिन सबेरे पाण्डुकेश्वर से श्रीबद्रीविशाल की जय बुलाते हुये रवाना हुये और एक बजे श्री बद्रीनाथ पहुँच गये। हम सब जहाँ पर उतरे थे वहाँ कम्पाउण्ड में ३ से ४ फीट मोटी बर्फ की पर्त जम गयी थी।

हमारे साथ हमारे गौर श्री रामप्रसाद कोटीयार थे। उन्हों ने हमारे उतरने के वास्ते सुन्दर सुविधा की हुई थी। घोड़े और खच्चरों को बर्फ के तबेले में बांधने में आया। चने के अतिरिक्त और कुछ खाने को नहीं था। उस तरफ के घोड़े अभ्यस्त हैं इस लिए जी सकते हैं। इधर के घोड़े वहाँ जी नहीं सकते।

श्री बद्रीनाथ के मन्दिर में ४ बजे दर्शन किया। कोई कोई दूकाने खुली थीं, उन्हें देखा। जो चाहिए थीं उन चीज़ों को ख़रीदा।

समस्त बद्रीनाथ में छपरे तथा मकानों पर बर्फ छायी हुई थी। मंदिर के दरवाजों में से बर्फ निकाल कर मार्ग बनाने में आया था।

दूसरे दिन प्रातः अलखनन्दा तथा बगल में गरम पानी के कुण्ड में स्नान करने के बाद मन्दिर में जो भेंट धरनी थी उसे रखकर दर्शन किया।

सभी के बर्फ ऊपर बैठाकर फिल्म ली और दोपहर में दो बजे रवाना होकर सायंकाल ७ बजे पाण्डुकेश्वर आ गये। वहां रातभर रुके। सवेरे वहाँ से रवाना होकर एक बजे दिन में जोशीमठ आ गये। वहाँ पर भी रात्रिभर रहे। वहां पर रात्रि में बरसात शुरू हो गयी – इससे तीन दिन रुका रहना पड़ा।

तीसरे दिन हम सब रवाना हुये तथा गुलाबकोटि पहुँचे। वहाँ सूचना मिली की पहाड़ों में से मिट्टी धँस जाने के कारण रास्ता बन्द है। इससे घोड़े और खचरों को दूसरे रास्ते से भेजा और हम जोशीमठ पर्यन्त बाँधे जाने वाले बस के रास्ते से लकड़ी के पुल के ऊपर होकर पीपलकोटि पहुँचे। तथा वहाँ रातभर रहे।

वहाँ पर हमारी स्पेशल लगाई हुई बसें थीं। उनमें रवाना होकर १६५ मील दूरी पर रात्रि के दस बजे हरद्वार पहुँचे। खूब ही थकावट लगी थी और कपड़ा भी मैला हो गया था। पैर ठंडी से जम गया था अतः आठ दिवस हरद्वार में आराम किया।

शहर के लोगों के आग्रह से वश होकर मैं पू० गोस्वामीजी की प्रधानता में भाटिया भवन में गुरुकुल की बहनों का एक सुन्दर नाटक भी रखने में आया। वहाँ लगभग तीन हज़ार मनुष्य देखने को आये। बैठने के लिए अधिक स्थान न होने से बहुतों को निराश होकर वापस जाना पड़ा।

देहरादून, मसूरी, ऋषिकेश आदि स्थानों पर घूमकर वहाँ से दिल्ली आये।

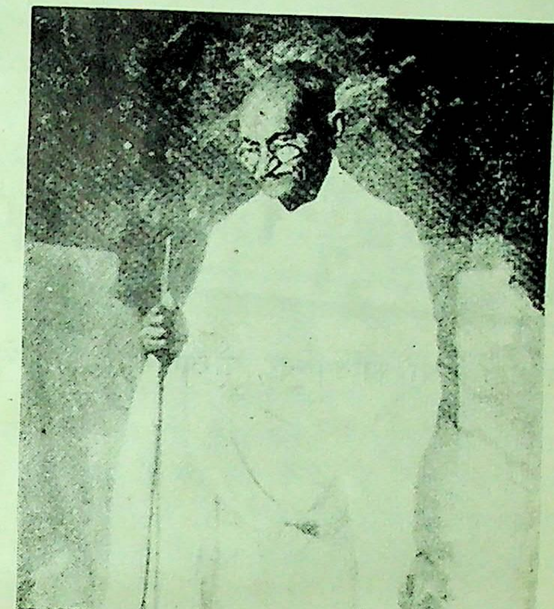
दिल्ली से मैं तथा मेरी पत्नी दोनों ही प्लेन में सीधे बम्बई गये तथा गुरुकुल की ब्रह्मचारिणियों ने जयपुर, आबू आदि दर्शनीय स्थलों को देखकर ता. ५-६-५७ के दिन पोरबन्दर पहुचीं। जयपुर में इन्होंने जयपुर का दुर्ग, दीवाने-आम, दीवाने-खास, शीशमहल, रनवास, माधवसिंह, मानसिंह, प्रतापसिंह, पृथ्वीराज, रामसिंह आदि महाराजाओं की समाधिये, जैनमंदिर, म्यूज़ियम और देलवाडा के दहेरा आदि स्थान देखे।

महात्मा गान्धी कीर्त्तिमन्दिर

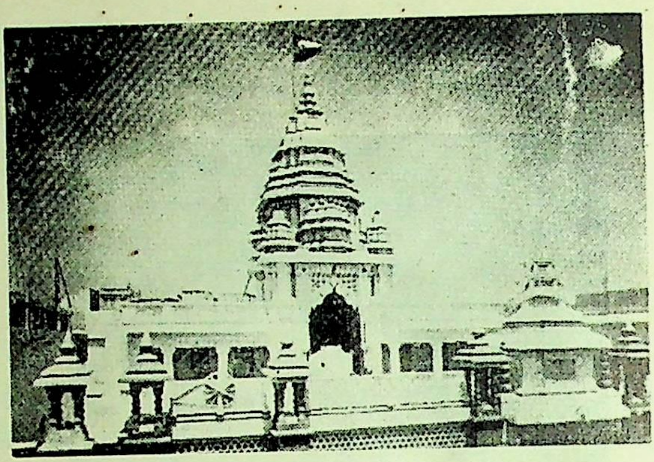
पूज्य बापू का प्रथम दर्शन सन् १९१५ में मुझे हुआ, ऐसा स्मरण है। बम्बई में लार्ड सिनहा की अध्यक्षता में काँग्रेस का अधिवेशन हुआ था। उस समय पूज्य बापूने पोशाक रूप में धोती, अंगरखा, अंगोछा, पगड़ी, हाथ में छड़ी—ऐसा विशुद्ध काठियावाड़ी वेश ग्रहण किया था। सन् १९२०-२१ में कलकत्ता काँग्रेस तथा शान्ति निकेतन में, सन् १९२२ में अहमदाबाद काँग्रेस और साबरमती में दर्शन किया था तथा उनके सहवास का लम्बे समय तक लाभ मिला था। अफ्रीका में स्वराज्य की लड़ाई का समाचार मैं पढ़ा करता था। तथा यदा कदा चन्दे में मदद करता था।

सन् १९३५ में जब मैं देश में आया तो पूज्य बापू से मिले। सेवाग्राम गया था। मेरी धर्मपत्नी भी साथ थीं। हम श्री जमुनालाल बजाज के घर पर उतरे थे, उस समय पूज्य विजयालक्ष्मी पंडित भी वहाँ पर थीं। हम पूज्य बापू के दर्शन करने सेवाग्राम गये। बापूजी घूमने निकले उस समय साधारण भेट हुई। हम मिलने गये तो उस दिन बापू का मौन था। प्रणाम करके बैठे। बापू ने चिट्ठि में लिखा "रूकोगे न? मै हाँ कहते हुये कहा "हम आपके दर्शन के लिए आये हैं।" बापू हंस पड़े। रोज सायं प्रार्थना होती थी। इसमें हम जाते थे। मेरी पत्नी रसोड़े में बा की सहायता करती थीं। हमारे ये दिवस जीवन में यादगार बने।

उसके बाद मुझे दक्षिण अफ्रीका में जाना पड़ा तो वहाँ लार्ड हाफमेगर की भेट मुझसे हुई। वे सेटलमेण्ट के लिए भारत आये तो उस समय मान्यवर महाराणा साहेब के आग्रह से पोरबन्दर में पूज्य बापू के जन्मस्थान को देखकर उन्हे हर्ष और शोक दोनों ही हुये। जगत् के एक अवतारी पुरुष के जन्मस्थान को देखकर आनन्द हुआ परन्तु अंधेरे मकान अंधेरी गली और आस-पास की दुर्गन्ध को देखकर उन्हे अपार दुःख हुआ। उन्होंने कहा आप लोगों को इस महापुरुष की महत्ता का मूल्य नहीं। दूसरा कोई देश होता तो यहाँ



पू. महात्मा गांधीजी



श्री महात्मा गांधी कीर्तिमन्दिर, पोरबन्दर (सामने से)

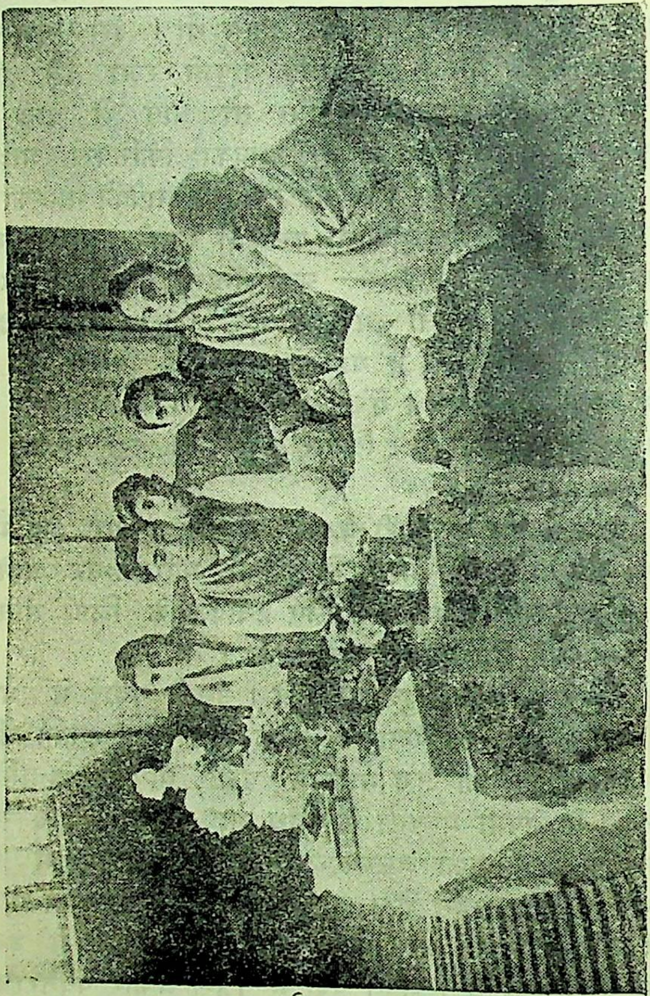


श्री महात्मा गांधी कीर्तिमन्दिर, पोरबन्दर (बग़लमें से)

पर करोड़ों रूपया खर्च डाला होता, आपके देशको उन्हों ने क्या दिया और क्या दे रहे हैं, इसकी क़ीमत नहीं। इस स्थल पर सुन्दर चिरजीवी स्मारक होना चाहिए। इस बात को सुनकर मेरे मनमें बहुत लाग हुई। इसके पहले भी मेरे मनमें जन्मस्थान मे स्मारक करनेका मनोरथ गहराई के साथ उठता था। इस विचार से उसे बल मिला। मैंने मन में सोचा कि बापूजी रज़ा देवें ता स्मारक करूँ। फिर से मैं सेवा-ग्राम गया तो बापू से बात की। "मैं दक्षिण अफ्रीका हो आया। वहाँ आपका फिनिक्स आश्रम देखा, लार्ड हाफमेयर से भेट हुई और उन्हों ने आपको नमस्कार कहलाया है। वे जब पोरबन्दर आये ता उन्हों ने आपके जन्मस्थान में कोई स्मारक होने की ज़रूरत है— वहाँ गन्दगी भी बहुत रहती है। ये मकान मिल जावें तो हम कुछ करें"। पूज्य बापू ने इतना कहा कि "वहाँ गन्दगी होती है यह तो सत्य है; परन्तु ये मकान तो हमारे कुटुम्बियों के हाथ में हैं। सम्प्रति कौन संभालता है इसकी भी मुझे पूरी खबर नहीं। विचार करूँगा"। इस प्रकार यह बात वहीं पर अंटक गई।

सन् १९४४ में बदरी-केदार की यात्रा पर जब मैं गया तो "पूज्य बापू आगाख़ान महल से छूटकर महाबलेश्वर जानेवाले हैं। वहाँ से पंचगनी दो मास के लिए हवाफेर के लिए आनेवाले हैं" ऐसा समाचार जोशीमठ में मुझे मिला।

पंचग़नी में मेरे पुत्र पढ़ते थे। उनकी पढ़ाई में मदद करने लिए एक शिक्षक रख रखा था, इनके वास्ते एक मकान भी भाड़े पर था। इस मकान को जून मास में पूज्य बापूजी के लिए खाली कराया। वे अपनी मण्डली के साथ आ पहुँचे। इस समय हमें पूज्य बापू की सेवाका अमूल्य लाभ मिला। पंचगनी में पूज्य बापू अत्यन्त खुशहाल रहते थे। आनन्द का फौवारा उड़ता था। बहुत ही सबेरे चलकर फिरने जाते थे। सायं-प्रातः प्रार्थना में उनके प्रवचन सुनने को मिलते थे। अपने देश में जिस प्रकार पर्वतराज हिमालय है, वह विश्व में अप्रतिम है, वैसे ही अपने महापुरुष अनुपम हैं। पूज्य बापू को मिलने के लिए देशनेता आते थे— उनकी बातें सुनते थे। उनके दर्शनों का अपूर्व लाभ मिलता था। पंचगनी मे कीर्त्तिमन्दिर विषय में भी थोड़ी बात हुई। उन्होने "कुटुम्बीजन स्वीकार करें तो मुझे कोई बाधा नहीं"— ऐसा कहा। डेढ़ मास



पूज्य गांधीजी के साथ पंचगनी में जुलाई १९४४

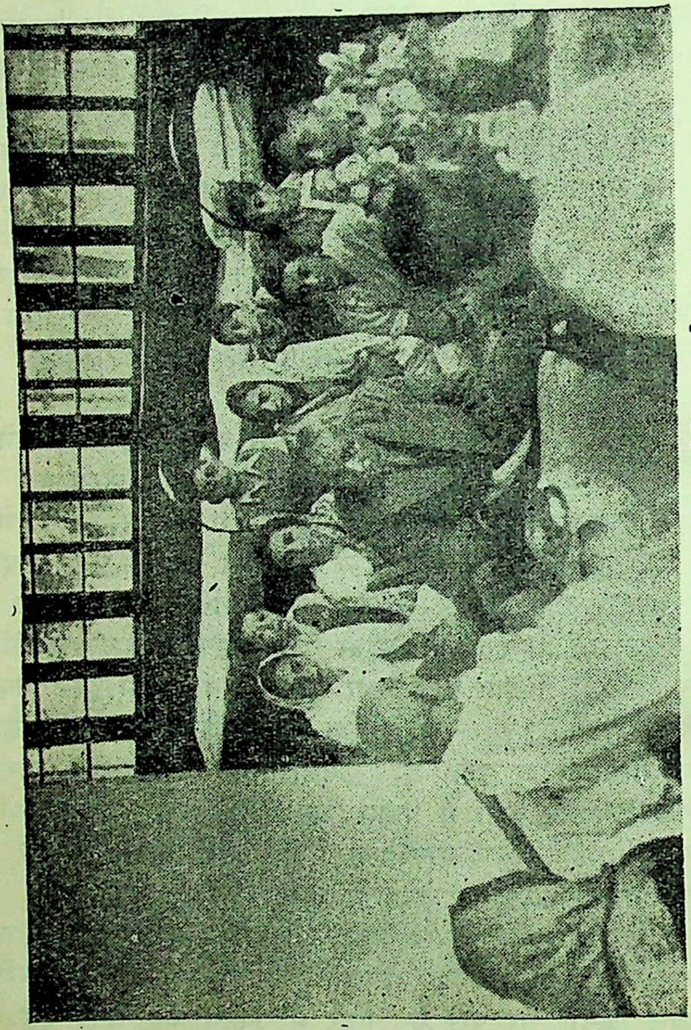
रहकर पूज्य बापू पंचगनी से विदा हुये और हम पोरबन्दर वापस आये।

माननीय महाराणा साहेब से कीर्त्तिमन्दिर के विषय में मैंने बात की। मान्यवर महाराणा साहेब की अध्यक्षतामें अगुवा नागरिकों की एक सभा मिली। उसमें यह प्रश्न उपस्थित हुआ "जन्मस्थान के पास स्वच्छता रहे, एक बाग बने और वहाँ पर रचनात्मक प्रवृत्तियाँ चलें— ऐसी योजना सबने विचारी। सन् १९४५-४६-४७ में यह बात चालू रही। इस में श्री माणिकलाल गान्धी आदि २९ हकदार थे। बगल में आये मकानों के मालिकों की भी बधा थी। धीरे धीरे ये सभी बाधायें दूर हुईं। सभी को लगभग ७५ हज़ार रूपया दिया।

सन् १९४७ में भारत स्वतंत्र हुआ। छः मास बाद सौराष्ट्र का एकीकरण हुआ। इससे कीर्तिमन्दिर की बात को पुन: वेग मिला और सौराष्ट्र काँग्रेस के अध्यक्ष श्री पूज्य दरबार गोपालदास भाई के हाथ से शिलारोपण विधि कराई।

सन् १९४७ के दिसम्बर मास में मैं पूज्य बापू से मिलने दिल्ली गया। भारतीयों का पूर्व अफ्रीका में आना बन्द करने का विधान वहाँ की धारासभा में आ चुका हुआ था। इस विषय में मुझे पूज्य बापू के साथ बातचीत करने की थी। मैं पूज्य बापू तथा पूज्य सरदार वल्लभभाई को मिला, पूज्य पंडित जवाहरलाल को भी विदित कराया। उनके प्रयत्न से छः मास तक बिल मुलत्वी रहा, परन्तु अन्त में विधान पास हुआ और भारतीयों को ईस्ट अफ्रीका में आने की मनाही हुई। अपने देश में ग़रीबी बढ़ती जाती है, प्रजा भी बढ़ती जाती जा रही है, कैनेडा, पश्चिम अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैण्ड आदि देशों में पर्याप्त जगह है परन्तु भारतीयों और एशियावासियों के लिए द्वार बन्द पड़ा है। गोरों ने एक हज़ार वर्ष की गणना करके इन देशों में जगह सुरक्षित रखी है।

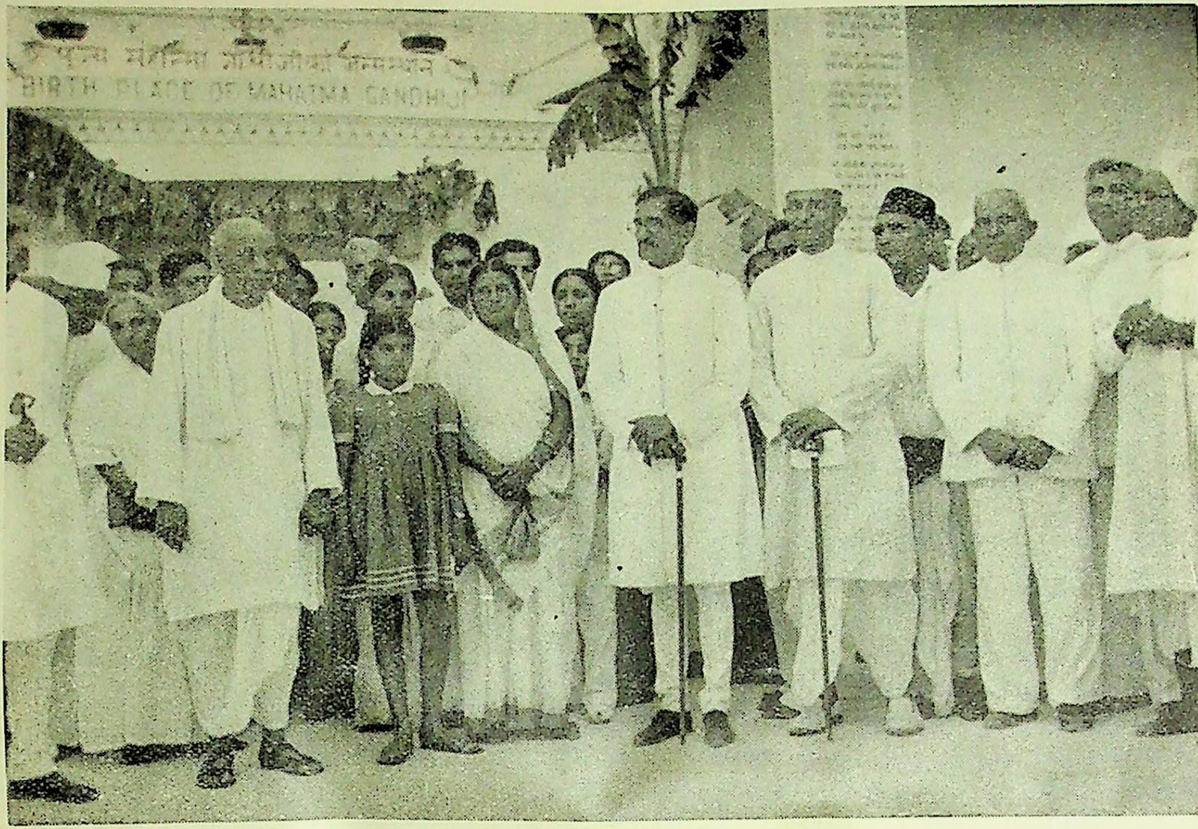
आस्ट्रेलिया में केवल एक करोड़ की बस्ती है। वहाँ पर पचास करोड़ का समावेश हो इतनी जगहें संभाल कर रखी हैं। वे केवल किनारे पर बसे हैं फिर भी किसी को आने देते नहीं। आस्ट्रेलिया एशिया का भाग है, यह प्रश्न विकट है। भारतीय जनता जहाँ जहाँ बसी है वहाँ वहाँ से उसके निकालने का प्रयत्न हो रहा है। बर्मा और सीलोन जैसे पड़ोसी देशों में भी यह स्थिति होती जा रही है।



पूज्य गांधीजी के साथ पंचगनीमें जुलाई १९४४



कीर्तिमन्दिर का उद्घाटन करने के लिये आये हुए सरदार श्री. वल्लभभाई पटेल का स्वागत



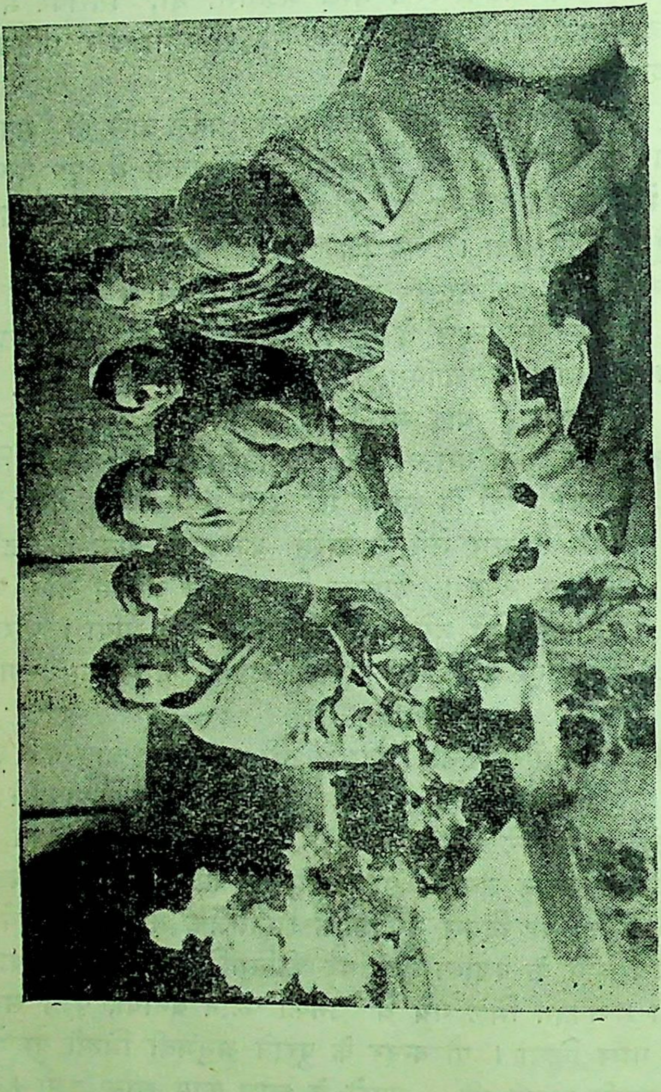
सरदार श्री कीर्तिमन्दिर का उद्घाटन करने के लिए पधारे उस समय का दृश्य

इस प्रश्न को पूज्य बापू के पास उपस्थित करने में विशेष रूप से दिल्ली गया था। परन्तु पूज्य बापू, पूज्य सरदार साहब तथा पूज्य पंडितजी देश के आन्तरिक प्रश्नों में खूब गुँथे हुये थे। देश का खण्ड हो जाने से चारों तरफ़ भारी अशान्ति थी, तिसपर भी इन सभी महानुभावों ने मेरी बात को शान्ति से सुना और पंडितजी से सिफारिश भी की।

सन् १९४५ में बापू पुनः सवा मास पहले वाले ही मकान में रहे। बाद में सन् १९४६ में भी पधारे। पंचगनी में पू० बापू खूब आनन्द में रहते थे, आनन्द का फौवारा उड़ता था, उनके अटहास से कमरा गूँज उठता था। जब कि दिल्ली में सन् १९४७ में उनके चेहरे पर निराशा, उद्विग्नता और वेदना दिखायी पड़ती थी। पंचगनी में बार-बार कहते थे मैं एक सौ पच्चीस वर्ष जीने वाला हूँ। मुझे देश में रामराज्य स्थापित करके जाना है। देश का खण्ड होने के बाद यह वस्तु समाप्त हो गई। दिल्ली में कहा "अब मुझे जीना पसन्द नहीं।" दिसम्बर मास में मैं दिल्ली गया था तो वहाँ ठण्डी के कारण मेरे हाथ में अन्दरूनी पीड़ा होने लगी – इसलिए उपचार लेने के वास्ते कलकत्ता गया। वहाँ पर मैं थोड़े समय तक रुका। उपचार लिया, कुछ आराम जान पड़ा। कलकत्ता से वापस होते हुये बम्बई होकर देश में आया। पोरबन्दर पहुँचा कि उसके दूसरे ही दिन दुःखद घटना घटने का समाचार सुना।

इस समय मेरी पत्नी जिंजा में थी। पूज्य बापू के श्राद्ध-दिन पर भारतीय, अफ्रीकन, योरोपियन और अन्य एशियावासी लोग नाइल नदी के किनारे गये। हज़ारों की मेदिनी एकत्र हो गई। नाइल नदी के पवित्र जल में पूज्य बापू के अवशेषों को मेरी पत्नी ने विसर्जित किया। यह दिवस युगण्डा के सामाजिक जीवन में अपूर्व था।

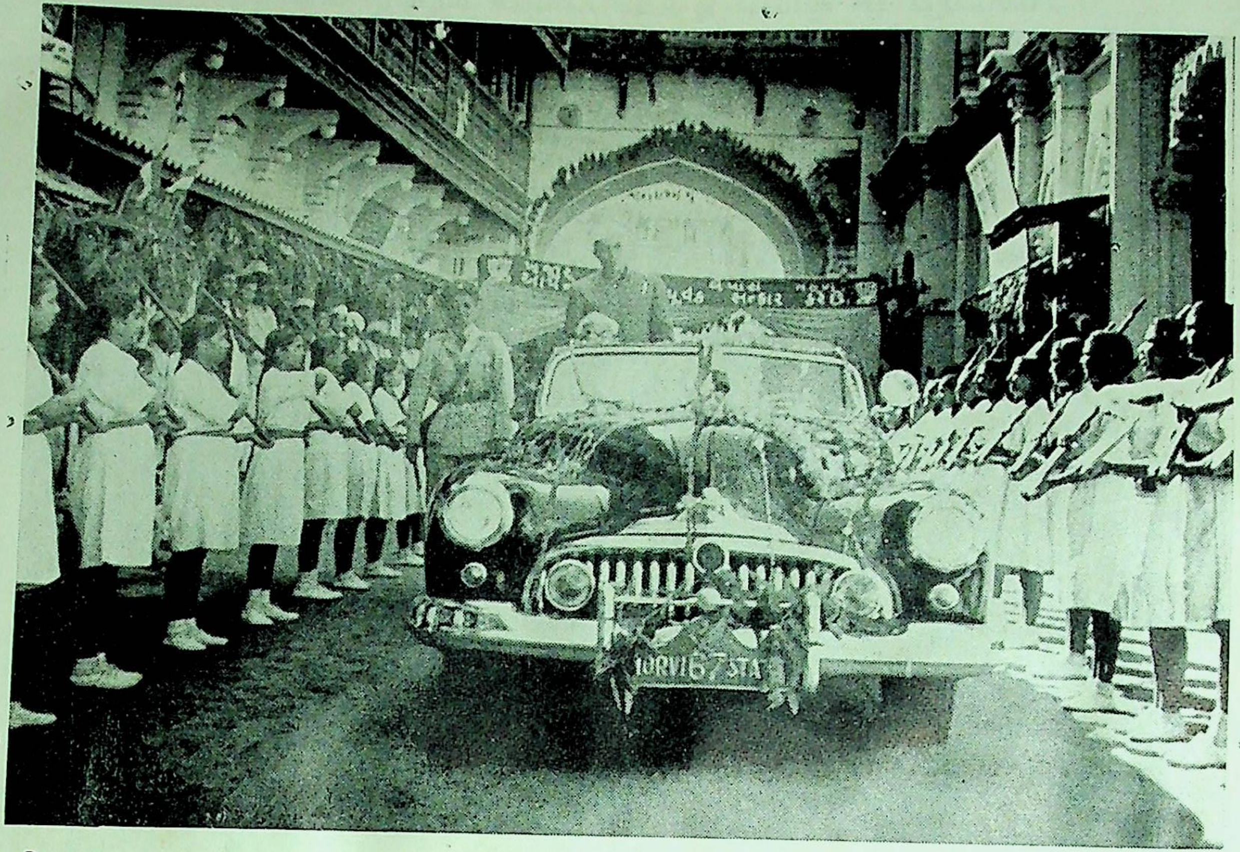
पूज्य बापू के देहान्त होने पर कीर्तिमन्दिर का विचार बाद में आगे बढ़ा। मकान मिल गये थे उनका प्लान बनाया, पूज्य सरदार साहब ने पास किया। पोरबन्दर के पुराने अनुभवी मिस्त्री पुरुषोत्तम भाई ने उसकी रचना की – झपाटे के साथ काम चालू हुआ। बापू जितने वर्ष जिये थे उतने फीट ऊँचा शिखर बनाया। पूज्य बापू को जो प्रिय हों ऐसी रचनात्मक प्रवृत्तियाँ हो सकें ऐसी योजना की। पूज्य सरदार साहब उनकी तबियत अच्छी न होते हुये भी इसके



पूज्य गांधीजी के साथ पंचगनी में, जुलाई १९४४



कीर्तिमन्दिर में प्रवेश करते हुए भारत के राष्ट्रपति श्री. राजेन्द्रप्रसाद



कीर्तिमन्दिर में प्रवेश करते हुए श्री.पण्डित जवाहरलाल नेहरू का गुरुकुल की ब्रह्मचारिणिओं की ओर से स्वागत



कीर्तिमन्दिर में से विदाग्री लेते हुए भारत के वडाप्रधान श्री. पण्डित जवाहरलाल नेहरू



श्री. मोरारजीभाई देसाई कीर्तिमन्दिर की मुलाकात में

उद्घाटन के लिये सौराष्ट्र पधारे। माननीय महाराणा साहेब, राजः प्रमुख, माननीय मुख्यमंत्री श्री ढेबरभाई तथा दूसरे मंत्रीगण तथा सौराष्ट्र के अन्य प्रतिष्ठित नागरिक इस अवसर पर उपस्थित थे। हजारों की मानवमेदिनी के समक्ष पूज्य सरदार साहब ने कीर्तिमन्दिर का उद्घाटन किया।

एक तरफ हवेली, दूसरी ओर रघुनाथजी का मन्दिर, सामने केदारनाथजी - तीनों धर्मस्थानों के मध्य दीवान साहब कबा गांधी रहते थे। रघुनाथजी के मन्दिर में कथा सुनते थे। इस मन्दिर को सुधार कर कायम रखा। पूज्य बापू को इस स्थल पर धार्मिक संस्कार मिले थे - उसी स्थान पर कीर्तिमन्दिर की रचना हुई। आज सुदामापुरी की भांति भारतवर्ष के हज़ारों नर-नारी कीर्तिमन्दिर की यात्रा में आते हैं।

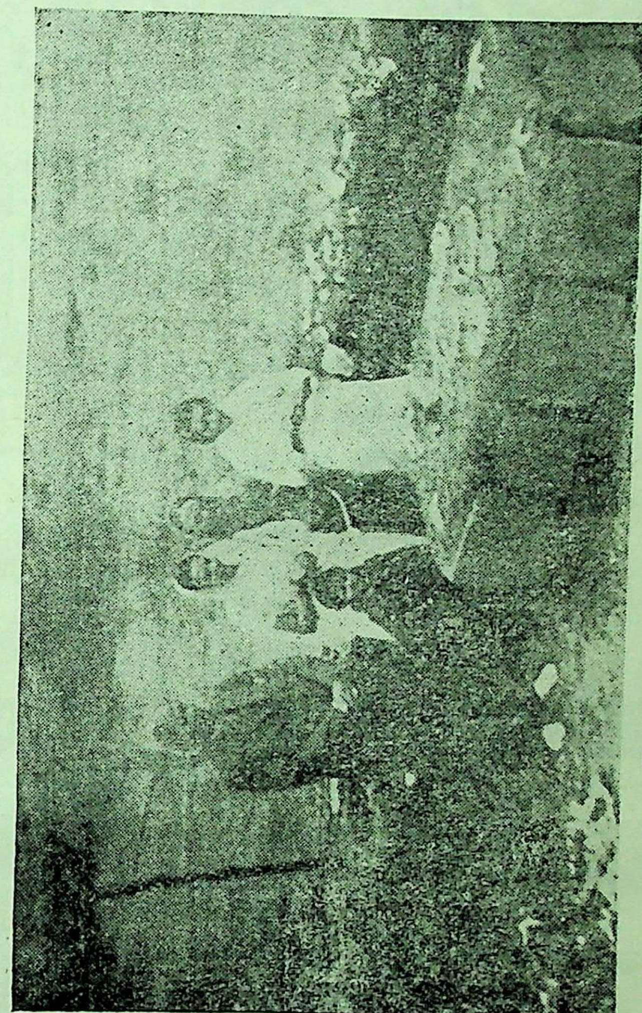
पूर्व अफ्रीका में पूज्य बापू के स्मारकरूप में गांधी-कालेज बनाया जावे ऐसा विचार पूज्य बापू के दुःखद अवसान के समय आया।

पूर्व अफ्रीका के भारतीय एजेंट पूज्य अपा साहब पन्त के पास सब बातें कीं। वे प्रसन्न हुये और बहुत सहायता की। उस काम के लिए दो तीन बार अफ्रीका की यात्रा की। प्रो० रमणिलाल भाई याज्ञिक को खास इस कार्य के लिए रोका। भारतीय सरकार के शिक्षण विभाग के सचिव श्री हुमायूँ कबीर भी वहाँ पर हो आये। वहाँ पर गान्धी-विद्यापीठ स्थापित किया जावे - ऐसी योजना करने में आयी। तथा इसमें पाँच लाख पौण्ड का चन्दा संग्रह हुआ। उसमें छोटे बड़े सब ने मदद की। पूज्य बापू के लिए भारतीयों और अफ्रीकनों को समानरूप में मान है। इस कार्य के लिए कुल पाँच लाख पौण्ड एकत्र करने का है और जो लगभग पूरा हो जाने को आये हैं। महात्मा गान्धी राष्ट्रीय स्मारक-निधि में से १५ लाख रूपया मिला है। ईस्ट अफ्रीका सरकार ने रॉयल टेकनिकल इन्स्टीट्यूट निकाला है, उसके साथ गान्धीजी का नाम जोड़ा है। उसमें तीन कालेज (आर्ट्स, सायन्स और कामर्स) अपनी तरफ से चले - ऐसा लगभग निश्चित हो गया है। बाक़ी को वहाँ की सरकार चलावेगी। बाहर के विद्यार्थियों के लिये छात्रालय बनाया जावेगा। किसी भी धर्म अथवा जातिभेद के बिना उसमें सब कोई दाखिल हो सकेंगे।

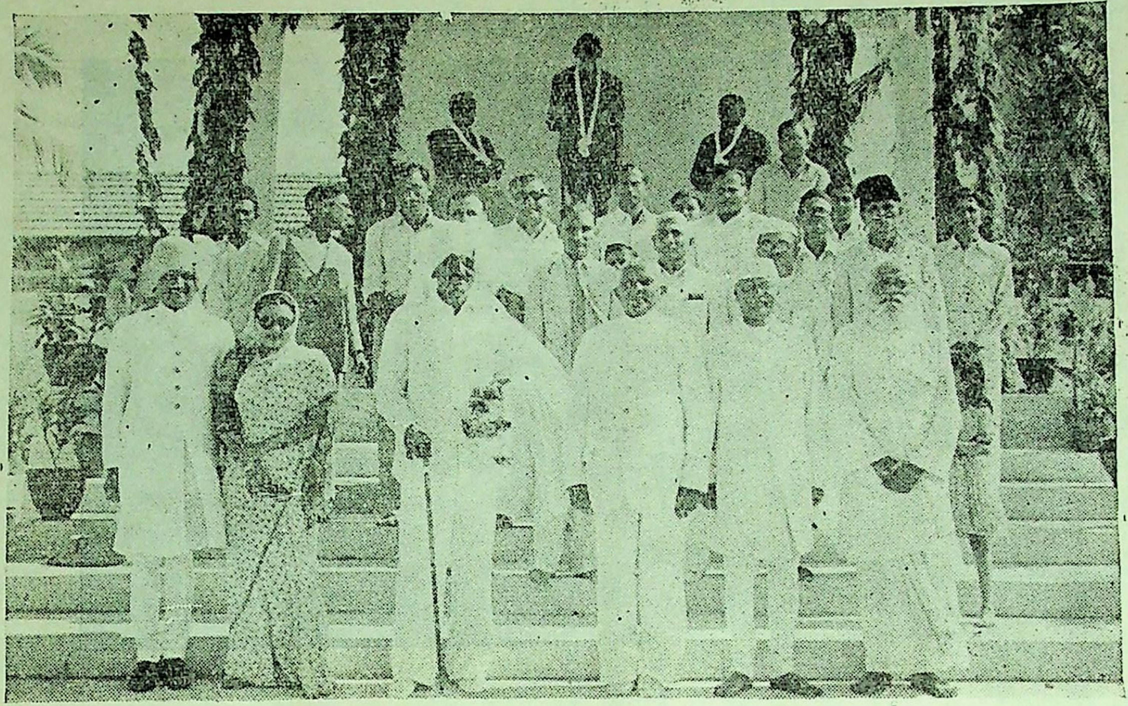
जब कि मुस्लिम भाई "ओनली फॉर पर्शियन मुस्लिम" के लिए अपना पृथक् कालेज चलाते हैं।

पोरबन्दर में महात्मा-गान्धी कीर्तिमन्दिर को देखने के लिए अपने लाड़ले राष्ट्रपति पूज्य राजेन्द्रप्रसाद तथा भारत के लाड़ले नेता और हृदयसम्राट् पू० पण्डित जवाहरलाल पधारे थे। तदुपरान्त पूज्य बापू के अनेक भक्त और देश परदेश के महान् कीर्तिमन्दिर के दर्शनार्थ आते हैं। उनके दर्शनों और प्रवचनों का अमूल्य लाभ पोरबन्दर की जनता और हमें मिलता रहता है।

पोरबन्दर में महात्मा गान्धी मार्ग पर स्टेशन से शहर में प्रवेश करते पाँच रास्ते एकत्र होते हैं – वहाँ पर कन्या विद्यालय, बालमन्दिर और प्रसूतिगृह के सुन्दर मकान आये हैं। इस जगह पर मार्ग निकट एक तालाब था। उसमें पानी की निकासी न होने के कारण जीवजंतुओं से दुर्गन्ध फैलती थी। इस तालाब को पाट-कर वहाँ पर स्त्रियों और बालकों के लिए एक बगीचा बनाने में आया और पूज्य बापूजी, पूज्य सरदार साहब तथा पूज्य पण्डितजी-इन तीनों की प्रतिमायें रखी गई हैं। इसकी उद्घाटन-क्रिया माननीय महाराणा साहब के शुभ हाथ से करने में आयी। बाग़ में बालकों के खेलने के लिए झूला तथा विश्राम के लिए वृक्ष लगाने में आये हैं। शहर के राजमार्ग पर आया हुआ यह 'राज्यमाता रूपालीबा बाग़' नगर की शोभा में अभिवृद्धि करता है।



पूज्य कस्तूर बा की समाधि के दर्शन में



पोरबन्दर में राजमाता रूपालीबा बाग़ का उद्घाटन

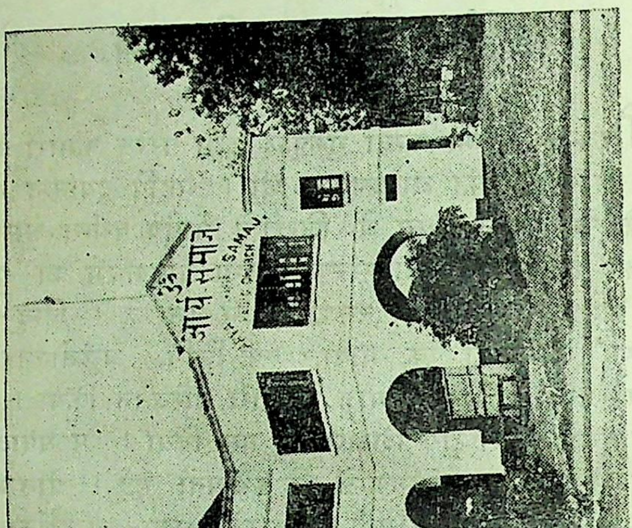
महर्षि दयानन्द महाविद्यालय

पोरबन्दर में आर्यकन्या गुरुकुल हुआ परन्तु कुमारों के लिए एक ऐसी ही संस्था की आवश्यकता थी। महर्षि दयानन्द सरस्वती सौराष्ट्र के एक महान् सपूत थे, जिन्हों ने पंजाब पर्यन्त आर्यधर्म का विजय डंका बजाया और आर्यसंस्कृति तथा वैदिकधर्म का पुनरुद्धार किया। समाजसुधार में भी उनकी महान् देन है। हिन्दू-संघटन, स्त्री-शिक्षण, राष्ट्र की एक भाषा, एक लिपि, अछूतोद्धार आदि कार्यों द्वारा उन्हों ने हिन्दू समाज में भारी परिवर्तन किया। सब से विशेष तो इन्हों ने राष्ट्रीय शिक्षण पर बल दिया। पूज्यपाद महर्षि की प्रेरणा से अनेक आर्यगुरुकुलों की स्थापना हुई। प्रातःस्मरणीय स्वामी श्रद्धानन्दजी का काँगड़ी गुरुकुल इसका आदर्शरूप है। मेरे मन में ऐसे कुमार गुरुकुल के स्थापित करने की आकांक्षा थी। वह अमल में आयी।

एक बार वार्ता के प्रसंग से मैंने माननीय जामसाहेब श्री दिग्विजयसिंहजी बापू तथा माननीया महाराणी गुलाबकुँवरबा साहेब के पास इस बात को मैंने कहा। उन्हों ने कहा "यहीं जामनगर में ऐसी कोई संस्था होवे तो हमें बहुत खुशी होगी। आप ऐसी संस्था खड़ी करो, राज्य की तरफ से मदद मिलेगी। मैट्रिक पर्यन्त पाठ्य-क्रम रखो तो मासिक एक हज़ार रूपये और स्नातक पर्यन्त रखो तो दो हज़ार रूपये पर्यन्त ग्रांट देंगे।"

ऊपर की बातचीत हो जाने के पश्चात् हमने जामनगर में गुरुकुल खोलने का निर्णय किया। हमारी विनती का आदर करके माननीय जामसाहेब ने २०० एकड़ ज़मीन दी। जेल के सामने के मकान में भाड़े से विद्यार्थियों के रहने तथा पढ़ने की तात्कालिक व्यवस्था की। एक सौ जितने कुमार प्रारंभ में ही आकर निवास करने लगे। संस्था प्रारंभ हुई।

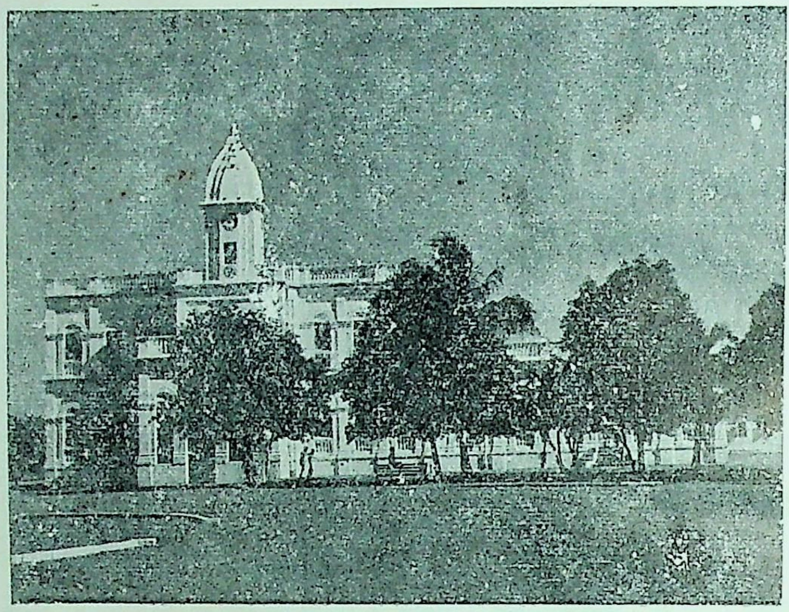
परन्तु थोड़े समय में भारत का खंड हुआ। सिन्ध के पाकि-स्तान में चले जाने से जामनगर के पास भारत का सैनिक-शिबिर

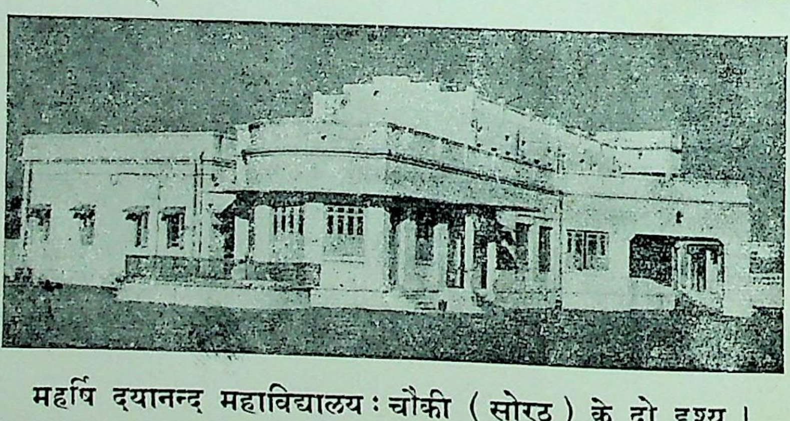


आर्यसमाज मन्दिर, कम्पाला



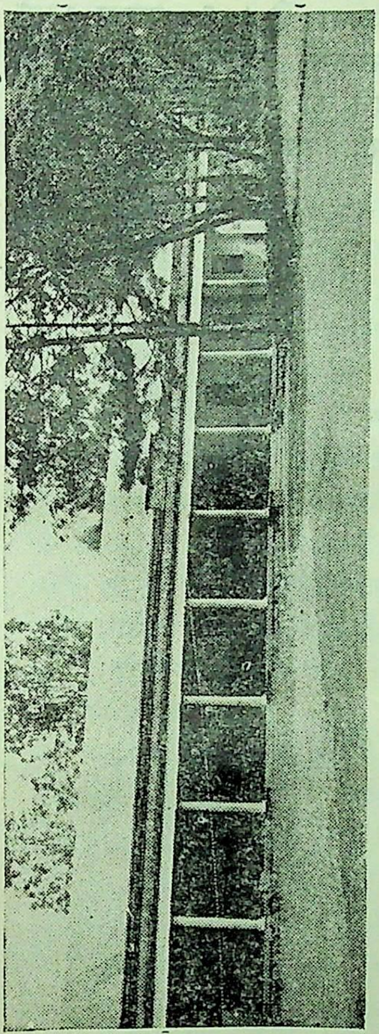
महर्षि दयानन्द सरस्वती





महर्षि दयानन्द महाविद्यालय : चौकी (सोरठ) के दो दृश्य ।

पड़ा। जहाँ सेना आयी उसके बगल में ही गुरुकुल की ज़मीन थी। इसमें से कितनी ही भूमि सेना ने ले ली। ऐसी स्थिति में भविष्य का विचार करके वहाँ संस्था क़ायम करने का कार्य स्थगित किया।



श्री श्रद्धानन्द ब्रह्मचर्याश्रम, नैरोबी

बीच में सौराष्ट्र का एकीकरण हुआ। जूनागढ इस इकाई के साथ मिला। गुरुकुल के ट्रस्टी संस्था को किसी सुन्दर स्थान पर परिवर्तित करने का विचार कर रहे थे।

जूनागढ से दस मील दूर चौकी में नवाब साहब का बंगला खाली पड़ा था। गिरनार की गोद में गुरुकुल हो तो संस्था चमके। वहाँ का वायु-जल बहुत अच्छा है। इससे गुरुकुल को चौकी में लेजाने का निर्णय किया। सौराष्ट्र सरकार ने साठ वर्ष के पट्टे पर संस्था को ये मकान भाड़े पर दिये। लगभग दो लाख रूपये खर्च करके मकानों को संस्था के योग्य बनाया। संस्था की खेती के लिए बड़ी भूमि ख़रीदी। बीस लाख रूपये का अपनी तरफ से ट्रस्ट किया।

आज महर्षि दयानन्द महाविद्यालय में लगभग डेढ़ सौ कुमार आर्यगुरुकुल की पद्धति से शिक्षण ले रहे हैं। अड़ाई सौ विद्यार्थी रह सकें ऐसी सुविधा वहाँ पर है। संप्रति मैट्रिक पर्यन्त वर्ग वहाँ पर चलते हैं। उद्योग द्वारा शिक्षा देने का विचार अपने पूज्य राष्ट्रपिता देते गये हैं – यह प्रयोग वहाँ सफल हो सकेगा ऐसा हमें लगता है।

एक विद्यार्थी के अनुपात से ७० रूपये खर्च होते हैं। जब कि विद्यार्थियों के पास से रूपये चालीस लेने में आते हैं - जिसमें पढ़ने, रहने, पाठ्य-पुस्तकों, खेलकूद के साधनों का खर्च लेने में आता है। शेष ३० रूपये मासिक का घाटा प्रति विद्यार्थी आता है जो स्थायी फंड के व्याज मे से दिया जाता है। ६० हज़ार रूपये वार्षिक की कमी पड़ती है, जिसमें सरकारी सहायता दस हज़ार रूपये आती है। व्यापार की शिक्षा देने का प्रबन्ध हो रहा है। हमारी महती इच्छा तो उस संस्था को आर्यसंस्कृति के अनुरूप आदर्श गुरुकुल करने की है।

सन्तों के दर्शन में

दक्षिण भारत में अपने तीन महान् सन्त रहते थे— श्री रमण महर्षि, श्री अरविंद बाबू और स्वामी रामदासजी। उनके दर्शन के लिए जाने का हमारा विचार बहुत समय से था। इस संतत्रयी का नाम आज समस्त भारतवर्ष और जगत् के सुशिक्षित आध्यात्मिक स्त्री-पुरुषों में अच्छे प्रकार प्रख्यात है। उनके दर्शनके लिये जाना— यह भी एक बड़े भाग्य की बात गिनी जाती है। हम अच्छा दिन देखकर बम्बई से विमान में बंगलोर से मोटर में भगवान् श्री रमण महर्षि के आश्रम पर गये।

अरुणाचल पर्वत की तलहटी में तिरुवण्णमलै नामका एक छोटा सा नगर आया है। उसके पास सुन्दर पर्णकुटियाँ आयी हैं। घास से छाये मकान पुराने समय के ऋषियों के आश्रम का विचार पैदाकर रहे थे। एक छोटे मकान में सादे तख्ते पर रमण महर्षि बैठे थे। हमने आकर उन्हे प्रणाम किया। वे केवल हँसे उनके चेहरे पर अपूर्व शान्ति और आनन्द फैला था। मानो कोई दूसरी दुनियाँ में बसता हो ऐसा लगता हैं। अपने मनमें भी एक प्रकार की शान्तिका भास होने लगता है।

वे पहले एक गुफा में रहते थे। किसी को दर्शन नहीं देते थे। उनकी तेजस्वी आँखों में आत्मप्रकाश देखा जा सकता था। इस देह में ही यदि मनुष्य परम पुरुषार्थ करे तो आत्मदर्शन पा सकता है। इस बात की प्रतीति उनके दर्शन से हुई। उनके चौगिर्द अनेक भक्त इकट्ठा हुये हैं। प्रार्थना में वे स्वयं भाग ले ते थे परन्तु कोई प्रवचन करते नहीं थे। वे भाग्य से ही कभी बोलते थे। छोटे बालक के समान उनका निर्दोष जीवन था। हमारे पोरबन्दर के इंजीनियर श्री मणिभाई का पुत्र युवावस्था से वहाँ रहता है। दूसरे अनेक स्त्री-पुरुष वहाँ पर बसते हैं। देश-विदेश से श्रद्धालु अनुयायी दर्शनार्थ आते हैं। लगभग पचास हज़ार की बस्ती वाला शहर है। बड़े मन्दिर हैं। पर्व के दिवस पर बड़ा भारी जुलूस निकलता है,

दक्षिणी लोग धार्मिक भावना में भारत के दूसरे प्रान्तों की अपेक्षा बढ़े चढ़े लगते हैं। महर्षि के दर्शन को रोज़ आसपास से सैकड़ों लोग आते हैं और प्रार्थना में सम्मिलित होते हैं। यूरोपियन, गुजराती, सौराष्ट्रवासी लोग वहाँ पर्ण कुटियाँ बाँध रहे हैं। महर्षि के देहान्त के पीछे भी इस भावना को स्थायी करने का प्रयास कर रहे हैं।

वहाँ से हम पाण्डीचेरी गये। महर्षि अरविन्द बाबू अमुक निश्चित किये दिन पर ही दर्शन देते थे। इससे उनके दर्शनका लाभ नहीं मिला, परन्तु भारत के इस महान् योगी की प्रतिभा का हमें वहाँ पर दर्शन हुआ। पोण्डीचेरी समुद्र-किनारे लम्बाई से बसा हुआ सुन्दर शहर है। उसमें डेढ़ लाखकी बस्ती है। इस शहर के वे भाग में आश्रम की प्रवृत्तियाँ चलती हैं। स्वस्थता और व्यवस्था उदाहरणीय है श्री मणिबहेन जो पहले आर्यकन्या गुरुकुल पोरबन्दर में रह चुकी हैं, वहाँ पर मिलीं। गुजरात के श्री अम्बूभाई पुराणी वहाँ के आश्रम के विशाल छात्रालय, गौशाला, अतिथिगृह, उद्योगगृह आदि मकानों को मैंने देखा। आश्रम का एक बड़ा प्रेस है जिसमें श्री अरविन्द बाबू को दार्शनिक पुस्तकें और मासिक छपते हैं। यह समस्त व्यवस्था आश्रमवासी स्वयं करते हैं। चार सौ के लगभग आश्रमवासी होंगे। मकान की कमी के कारण लगभग सौ आदमी बाहर रहते हैं। आश्रम की समस्त व्यवस्था श्री माताजी संभालती हैं हम प्रार्थना के बाद ९ बजे श्री माताजी के दर्शन को गये। उन्होंने हमे फल तथा आशीर्वाद दिया। वहाँ का वातावरण हमें गंभीर लगा। थोड़ा अधिक समय रहे तो आदमी समझ सकता है दो दिवस में कुछ खबर नहीं पडती। संस्था देखकर मैं वापस मोटर के रास्ते से बंगलोर गया।

महर्षि रामदास स्वामी का नाम सौराष्ट्र में प्रसिद्ध है। उनका दर्शन अनेक भक्तों ने किया है। पोरबन्दर के माननीय महाराणा साहेब उनके परम भक्त हैं। स्वामी रामदासजी ने भारी संकटों में बैठकर तपस्या की है। "ईश्वर का सांनिध्य" इस पुस्तक के पढ़ने से उन के साक्षात्कार का विचार आ सकता है। परमात्मा निरंजन निराकार है। मनकी भावना के अनुसार सब ईश्वर की प्रार्थना करते हैं। उसकी प्राप्ति के लिए अनेक संकट सहन करने पड़ते हैं। कुछ लोग शांतिपूर्वक प्रभुप्राप्ति करते हैं। रामनाम यह ईश्वर की

प्राप्ति का अमोघ साधन है। ऋषि-मुनि लोग तो मार्ग बता गये हैं परन्तु उस मार्ग पर चलना और सुखी होना—यह अपने हाथ में है। यह अपने पुरुषार्थ पर अवलम्बित है। माननीय महाराणा साहेब उनके समागम में रह रहे थे— इससे दर्शन करने की खूब इच्छा थी। दक्षिण के इस सन्त का समागम करने मैं बंगलोर से मैसूर गया। वहाँसे आगे चला। बंगलोर और कानानूर के मध्य अनेक खाड़ियाँ आयी हैं। मैंने नक्शे में। रास्ता देखा था। खाड़ी आवेगी इसकी खबर नहीं थी। आगे रास्ता जाता नहीं था। समस्त प्रदेश खूब ही रमणीय है। सुन्दर वृक्ष और हज़ारों फीट ऊँचे पहाड़ हैं। काफी और रबर की खेती होती है। मालाबार के किनारे उद्योगों के खिलने की बड़ी संभावना है। अफ्रीका को भुलादे ऐसे रास्ते और जंगलों के बीच से गुज़रा। नदियाँ कलकल करती बही जा रही थीं— वहाँ पर रेल्वे हो सके ऐसा नहीं। पहाड़ों में गुफायें करनी पड़े और नदियों पर पुल बाँधने पड़े— करोड़ों का खर्च पड़े। मैं मोटर के रास्ते से वेग से दौड़ता जा रहा था। इतने में एक खाड़ी आयी। यह पार की जास के ऐसा नहीं था। हम वहाँ पर ही अटक गये। चारों तरफ दृष्टि डाली तो दूर पर एक सिगनल दिखाई पड़ा। हमें हुआ कि यहाँ कहीं पर स्टेशन होना चाहिए। मैंने निराश होकर तार भी कर दिया था कि "हम रास्ता भूल गये हैं, अन्न जल होगा तो वहाँ पर आवेंगे"। इतने में स्टेशन देखकर हमे आशा उत्पन्न हुई। स्टेशन पर आकर पूछा "कन्हड गढ की तरफ़ जानेवाली गाड़ी कब आवेगी ?। उत्तर मिला "आधे घण्टे में"। मुझे खूब आनन्द हुआ। मोटर में से हम सब उतर पड़े। हमने भाडे पर टेक्सी ली थी। ड्राइवर की अपनी ही टेक्सी थी। वह बहु भला था। इस मार्ग के बीच में नदी नाले आवेंगे, इसकी उसे कोई ख़बर नहीं थी। आधे घण्टे बाद गाड़ी में बैठकर हम रवाना हुये।

कन्हड़ गढ़ उतर कर शहर में गये। शहर से तीन मील दूर सहज ऊँची पहाड़ी पर आश्रम आया हुआ है। घास से छाये हुये मकान तथा शान्त मनोरम स्थान है। हम सामान आदि रखकर स्वस्थ होकर पूज्य स्वामीजी के दर्शन को गये। उन्होने हँसकर कहा "आपका तार मिला। दूसरों को दिलगीरी हुई परन्तु मुझे विश्वास था कि आज आवोगे"। हमारा खूब प्रेम से स्वागत किया। रात्रि में हम भजन में लग गये। भजन सुनकर अपूर्व आनन्द हुआ।

रात्रि को भोजन करके थके थकाये हम सो गये। जिस मकान में माननीय महाराणाजी थे उसी में हमें भी उतारा गया था। हम चटाई बिछाकर सो गये। खूब मीठी निद्रा आ गयी। प्रातःकाल आश्रम देखने को निकले। आश्रम में हस्तोद्योग का सुन्दर कार्य चलता है। स्वामीजी पूर्वावस्था में जो धन्धा करते थे उसे आश्रम में चलाते हैं। चर्खा, हाथ-शटर, पावरलूम, ब्लीचिंग और डाइंग आदि कार्य चलता है। सौ डेढ़ सौ कारीगर काम करते हैं। आश्रमवासी भी उद्योग चलाते हैं। पूज्य स्वामीजी से मैंने प्रश्न किया "यह व्याधि फिर क्यों प्रारंभ कर ली, जो था वही ठीक था। उत्तर में पूज्य स्वामीजी हँसकर बोले "राम जी की मर्ज़ी"।

गोशाला और आश्रम का बाग सुन्दर है। आश्रम की माता पूज्य कृष्णाबाई सबकी संभाल रखती हैं। पवित्र और सेवा-भावी पू० माताजी सबकी भावपूर्वक देख-रेख रखती हैं। ग़रीबो को छाछ दी जाती है। सायं-प्रातः भजन और रामधुन चलती है। सुन्दर जगह है। देशाटन करके स्वामीजी ने वतन में आकर आश्रम की स्थापना की। अब अपने ज्ञान का लाभ जनता को देते हैं।

दोपहर को भोजन करके एक बजे स्टेशन पर पहुँचे। गाड़ी में बैठकर हम तीन बजे उस स्टेशन पर उतरे जहाँ पर पहले मोटर गाड़ी छोड़ी थी। ड्राइवर लक्ष्मणराव हमारी राह देखता था। सायंकाल चार बजे हम मंगलोर पहुँच गये। मंगलोर दो लाख की वस्तीका व्यापार-उद्योग से चमकता शहर है। वहाँ हमें रुकना नहीं था। मोटर में फिर कर शहर देखा। चाय-पानी पीकर सायंकाव छः बजे वहाँ से रवाना हुआ। मंगलोर से बेंगलोर ३०० मील दूर है। हमें प्रातः १० बजे तक बेंगलोर पहुंच जाने को था। मार्ग जंगलमें होकर जाता है। खड्डा-खाभड़ और काफ़ी नदी नाले रास्ते में आते हैं। तिस पर भी रास्ता बहुत अच्छा है। इससे रातोरात निकले। लगभग दो सौ मील दूर रात्रिमें दो बजे मैसूर पहुंचे। मैसूर पहले देख लिया था इस लिए वहाँ अधिक नहीं रुका। हम होटल में सो रहे। खूब थके थे इस लिए प्रातः आठ बजे उठे। नहा धोकर नाश्ता करके दश बजे चल पडे। मैसूर से वँगलोर ९२ मील दूर है। सुन्दर तारकोलका रास्ता हैं। बारह बजे बंगलोर पहुंच गये। होटेल में भोजन करके एक बजे विमान में बैठा। और उसी सायंकाल ५ बजे बम्बई पहुंच गया। इस प्रकार हमारी दक्षिण की यात्रा पूरी हुई।

आसाम का प्रवास

बम्बई में लोहाणा महापरिषद् मिली थी। उसमें जाति-अग्रेसर व्यक्तियों के प्रेमवश होकर मुझे प्रमुखस्थान स्वीकार करना पड़ा। बड़ा होना हो तो पहले काँटों का बिस्तर बना लेना चाहिए। बाद में सोना चाहिए और अनुभव करना चाहिए कि कैसी नींद आती है? यह स्थिति हमारी परिषद् के प्रमुख होने के बाद हुई।

अपने परम मित्र सेठ शिवजीभाई सेठिया और महापरिषद् के उपप्रमुख सेठ खटाऊभाई सेठिया के साथ मैंने कच्छ का प्रवास किया। उस समय ही आसाम के प्रवास का कार्यक्रम बनाया। उस कार्यक्रम के अनुसार हम कलकत्ता पहुँचे। कलकत्ते में मैं तीन दिवस ठहरा। मित्रों के आतिथ्य का आनन्द चखा और आसाम के लिए चल पड़ा।

आसाम की तारीफ़ खूब सुनी थी। कामरूप देश के रूप में उसकी बड़ी प्रसिद्धि थी। चाय के बगीचों से आसाम विश्वप्रसिद्ध बन गया है। ब्रह्मपुत्रा जैसी बड़ी नदी वहाँ बहती है। चेरापूँजी में चार सौ पाँच सौ इञ्च तक बरसात पड़ती है। वहाँ पर घनेघोर जंगल आये हैं। यह सब वर्णन सुनकर आसाम जाने की बहुत समय से इच्छा थी। अन्त में यह इच्छा पूरी हुई।

सब से प्रथम मैं डिब्रूगढ़ गया, वहाँ पर होटेल में उतरा। डाक बँगला भरा हुआ था। होटेल बिल्कुल रद्दी था। इस होटेल की अपेक्षा तो पाखाना भी अच्छा होता है। होटेल में एक रात्रि तो कठिनाई से व्यतीत की। डिब्रूगढ़ में चाय की बड़ी खेती थी। भारत की चाय की बड़ी से बड़ी कम्पनी एण्डुल एण्ड काँ. के मैनेजर ने मुझे सब कुछ बताया। चाय की खेती देखकर मुझे अफ्रीका में कितने ही सुधार परिवर्धन आदि करने थे। श्री शिवजीभाई सेठिया मेरे साथ थे। कौन सी पद्धति से यहाँ कार्य चलता है, यह देखने का हमारा इरादा था। उसमें से मुझे बहुत जानने को मिला। आसाम में ८० प्रतिशत चाय के बगीचे योरोपियनों के हाथ में और

२० प्रतिशत भारतीयों के हाथ में है। भारतीयों में बड़े भाग में मारवाड़ी हैं। मारवाड़ी व्यापारी बहुत कमख़र्ची से काम करते हैं। इससे पाँच वर्ष में व्यापार जमा सकते हैं। हज़ारों व्यापारियों का समावेश वहाँ हो सके इतनी वहाँ पर जगह है।

डिब्रूगढ़ से गोहाटी विमान द्वारा जाया जा सकता है। विमान दिन में पाँच बार जाता और पाँच बार आता है। रेलवे पाँच दिन में मिलती है और स्टीमर आठ-दस दिन में एक बार मिलती है। मध्य में पाकिस्तान पड़ने से अड़चन खड़ी हो गई है। हम डिब्रूगढ़ से दोपहर को तीन बजे विमान में निकले। बीच बीच में थोड़े थोड़े अन्तर पर विमान स्टेशन करता जाता था। थोड़ी थोड़ी दूर पर उतराई करनी पड़ती थी इसलिए विमान तीन हज़ार फीट से ज़्यादा ऊँचा चढ़ता नहीं था। मार्ग में जंगल, पहाड़, नदियाँ, शहर और ग्राम ऊपर से दिखाई पड़ते थे। गाँव को घूमकर देखने की अपेक्षा अधिक रमणीय लगता था। एक सौ इञ्च से लेकर पाँच सौ इञ्च तक बरसात इस प्रदेश में पड़ती है। पहले की अपेक्षा जंगलों को कटा देने से वर्षा कुछ कम हो गई है। हम गोहाटी पहुँचे।

गोहाटी में खूब वर्षा पड़ी। खाने पीने और रहने का बिल्कुल ख़राब मामला था। इससे शौच अधिक आने लगा। तिसपर भी दो दिवस ठहरे। गोहाटी में कामाक्षी देवी के मन्दिर में दर्शन को गया। पहाड़ पर लगभग आधा मील चलकर जाना पड़ा। एक हज़ार फीट ऊँचा मन्दिर था। कलकत्ता की कालीमाता की तरह वहाँ पर भी पशुओं का भोग चढ़ता है। बहुत अधिक गन्दगी थी। गन्दी वायु नाक में चढे ऐसे दृश्य को देखकर हम पीछे वापस आये। गोहाटी आसाम का बड़े से बड़ा बन्दरगाह है। ब्रह्मपुत्रा नदी के किनारे लम्बाई में बसा है। सैकड़ों छोटी किश्तियाँ और नौकायें नदी में फिर रही थीं। व्यापार अच्छा था। बन्दरगाह को देखकर आनन्द हुआ। आसाम की राजधानी शिलाँग वहाँ से ५५ मील दूर है। गोहाटी से शिलाँग जाते समय चढ़ाई आती है। समुद्र के तल से शिलाँग ५५०० फीट ऊँचा है। रास्ते में घटनायें न हों इसलिए होल्डिंग रखी गई है। हम एक मोटर किराये पर करके गोहाटी से निकले। पहले से ही तार करके सरकारी होटेल में प्रबन्ध करा लिया था। हम दोपहर में पहुँचे। सरकारी होटेल

बहुत अच्छा था। सवा सौ परिवार रह सके ऐसी सुविधा थी। सख़्त ठण्डी पड़ रही थी। हमारे साथ साधन पूरा होने से कोई असुविधा नहीं पड़ी। भोजन कर आराम करके बगीचे देखने को निकले।

आसाम की राजधानी शिलाँग योरोप के किसी सुधरें हुये शहर के समान लगता है। ईसाई मिशनरियों ने वर्षों से वहाँ पैर जमा रखा है। वहाँ के अज्ञान ओर जंगली प्रजा में मिशनरी लोग गहराई तक पहुँच गये हैं। ईसाई धर्म का प्रचार खूब है। मिशन के स्कूल, कालेज, छात्रालय, दवाखाने चारों तरफ दिखायी पड़ते हैं। शिलाँग तो ईसाई नगर जैसा ही लगता है। एक ही पोशाक में सजी हुई मिशन स्कूल की कन्यायें घूमने निकलती हैं तो प्रत्येक का पग एक साथ उठता है, अनुशासनवद्ध चाल देखकर आनन्द होता है। स्त्री-पुरुष सभी को अनिवार्य सैनिक-शिक्षण - यह योरोप की प्रजा का मुख्य लक्षण है। स्वच्छता, शरीर, मन और आत्मबल का खिलाव, देशाभिमान आदि गुण योरोप में खिले हैं। जापान और जर्मनी इसी रास्ते से आगे बढे हैं। केवल अक्षरज्ञान से अपनी पुरानी रूढ़ि में फर्क नहीं पड़ता। तीन से अठारह वर्ष पर्यन्त जीवन में स्वच्छता, ईमानदारी, निर्भयता आदि के ऊपर बल देने की आवश्यकता है। इसमें वाद-विवाद को स्थान नहीं। समस्त जगत् की यात्रा करके मेरे अनुभव से आया हुआ यह सत्य है। ईसाई मिशनरियों में त्याग और सेवा करने की भावना है-जो अनुकरणीय है।

दूसरे दिन शिलाँग से चेरापूँजी गया। वहाँ पर भी मिशन के हाईस्कूल, अस्पताल और गिरजाघर थे। स्थान खूब ही रमणीय था। चारों तरफ प्रकृति के भव्य दृश्य बिखरे हुये थे। दूर दूर पर भारत और पाकिस्तान की सीमा दिखायी पड़ती थी। ब्रह्मपुत्रा नदी सर्पाकार बह रही है। इमारती लकड़ी बाँस से भरे जंगल हैं। ताड़पीन का तेल इस जंगल के वृक्षों में से ही बना है। इसकी मुझे खबर नहीं थी। यह पेट्रोल की भाँति पृथ्वी के गर्भ से निकलता होगा - ऐसा मैं मानता था, परन्तु वहाँ देखा कि यह वृक्षों के रस में से निकलता है। शिलाँग में इसका बड़ा कारखाना है। रंग के बनाने में तथा सुखाने में और शरीर में वात की पीड़ा पर यह काम में आता है। यह खुशबूदार और उत्तम वस्तु है। खुली रहे तो उड़ जावे। अपने देश में छोटे बड़े सभी इस वस्तुको जानते हैं।

हम गये तो उस समय वहाँ की धारासभा चल रही थी।

तीसरे दिन गोहाटी वापस आये। गोहाटी से मणिपुर की राजधानी इम्फल गया। मणिपुर छः-सात लाख की वस्ती का एक छोटा राज्य है। आसाम की सारी आबादी एक करोड़ की है। उसमें छोटे बड़े तीन राज्य आये हैं।

अंग्रेज़ों ने इस मार्ग से ब्रह्मदेश को जीता। हमने इम्फल में पहले से ही डाक बँगले में प्रबन्ध कर लिया था। मेरे मंत्री भाई मोहनलाल गणात्रा को एक सड़े हुये होटेल में रहना पड़ा। इसे जानवर का तबेला कहना चाहिए। इस भोजनालय का मालिक अहमदाबाद में रह चुका था। वहाँ वह एक मिल में मज़दूर था। उसकी पत्नी भी गुजराती थी। गुजराती ढंग का भोजन आँख मीचकर खा लेना पड़ता था। बर्तन कपड़े आदि खूब ही गन्दे थे।

हमने शहर देखा। मारवाड़ी सेठों की बड़ी बड़ी हवेलियाँ, बड़े बाज़ार आदि को देखा। ज़्यादा अच्छा कार्य तो स्त्रियाँ ही करती हैं। बर्मा की भांति आसाम में भी पुरुष ही ससुराल जाते हैं। सम्पत्ति की वारिस लड़की गिनी जाती है लड़का नहीं। सामान्यतया प्रजा खूब ग़रीब है। मणिपुर राज्य का कोई भी वतनी पाँच-दस लाख का मालिक नहीं होता। किसी के भी घर पर विदेशी नरिया अथवा अगासी नहीं देखी - इससे हमें नवीनता लगी। परन्तु भारी वर्षा के कारण छोटे मकान वहाँ पर अधिक सुविधा वाले माने जाते हैं। प्रजा का बन्धन मज़बूत नहीं - मंगोलियन, बर्मी जाति की प्रजा है। शरीर पर चन्दन लगाकर बाहर निकलते हैं। उनमें धार्मिक भावना अधिक दिखलायी पड़ी। हमने मन्दिर देखा और महाराजा का महल देखा। आसाम में मुस्लिम वस्ती बहुत ही न्यून है। इस देश के वारिसदार मारवाड़ी भाई ही हैं। कोई जंगल अथवा स्थान खाली नहीं। दार्जिलिंग में भी ऐसा ही लगा।

व्यापार के लिए इस देश में अभी बहुत बड़ी गुंजाइश है। वहाँ कोयला निकलता है, पेट्रोल तथा खनिज वस्तुओं का निकलना संभव है। विशाल और बिना जोती हुई भूमि है। जलवायु जितना चाहिए उतना अच्छा नहीं है। मलेरियावाली और नम हवा होने से वहाँ चाय अधिक होती है। अभी लाखों एकड़ ज़मीन खाली पड़ी है— बाँस का बड़ा जंगल खड़ा है।

हमें मणिपुर का नृत्य देखना था। मणिपुरी नृत्य की खूब प्रशंसा सुनी थी परन्तु हम चार दिन देरसे पहुंचे। उनका एक

बृहद् सम्मेलन हुआ था। महाराजा की उपस्थिति में एक एक हज़ार जोड़ा, एक ताल के साथ एक राग से नृत्य करते हैं। जब लोग नृत्य करते हैं तब सोलह कलायें खिल पड़ती हैं। वाद्य-यंत्रों में बाँसकी बनाया हुआ एक लम्बा ढालक वे रखते हैं। उसमें जितना सुर निकालना हो उतनी रस्सी बाँध कर छिद्र करके स्वर निकालते हैं। ढोलक पर ठपका देवे तो पाँच मिनिट तक गुंजार चालू रहता है। हमने यह नृत्य देखा था। हमें सूचना मिली कि वहाँ के एक स्कूल में उत्सव है और वहाँ पर नृत्य होनेवाला है। हमने इस स्कूल के लाभार्थ धर्मादा खेल में अधिक पैसा दिया तथा नृत्य देखा। इसका हाव-भाव, वेशभूषा, और नाद-स्वर देखने को मिला। पहले कहे गये समूह-नृत्य की पंक्ति में तो यह नहीं आ सकता परन्तु फिर भी हमें कुछ कल्पना आ सकी।

दूसरे दिन विमान में गोहाटी वापस आये। गोहाटी में एक बंगाली होटल साधारण तया अच्छा है। वहाँ रहते और भोजन की सुविधा ठीक है।

जापान की लड़ाई के समय जापानी मणिपुर पर्यन्त पहुंच गये थे। जापान हिन्द में न घुस जावे इस लिए अमेरिका ने वहाँ पर सैनिक जमावट की, एरोड्रोम, तारकोल की सड़क, बड़ी बैरेके तथा अरबों रूपये ख़र्च कर मकान बनाये हैं। इन जंगल, नदियों और पहाड़ों में वर्षों पर्यन्त मेहनत करने से जो नहीं हो सकता था, वैसा राजमार्ग करोड़ों डालर फेंक कर बनाया है। इस लड़ाई में भारत को पामाल किया। परन्तु कितनी ही वस्तुयें काम में आयीं। यह सारी ही साधन सामग्री भारत को मिली जिसमे से कितनी ही चीज़े ख़राब हो गई हैं। अभी भी कितनी ही सम्पत्ति है परन्तु सदुपयोग होता नहीं। व्यापारिक साहस के लिए वहाँ बहुत अच्छा क्षेत्र हैं। वहाँ पर कितने ही मारवाड़ी बसे हैं। काठियावाड़ी अथवा गुजराती कोई नहीं। जिनकी वहाँ जाने की इच्छा हो उनके लिए यह सिफारिश है : वहाँ की प्रजा ग़रीब है। इसलिए वह स्वयं विकास कर सके ऐसा नहीं। उन्हें सीमा पर पाकिस्तान का अत्याचार सहन करना पड़ता है। अपना सिद्धान्त शान्ति का होने से पाकिस्तानी अनुचित लाभ उठाते हैं तथा आसाम की प्रजा को दबाते हैं।

इस प्रकार आसाम का प्रवास करके हम विमान मार्ग से कलकत्ता आये और दो दिन वहाँ ठहर कर मैं बम्बई पहुँच गया।

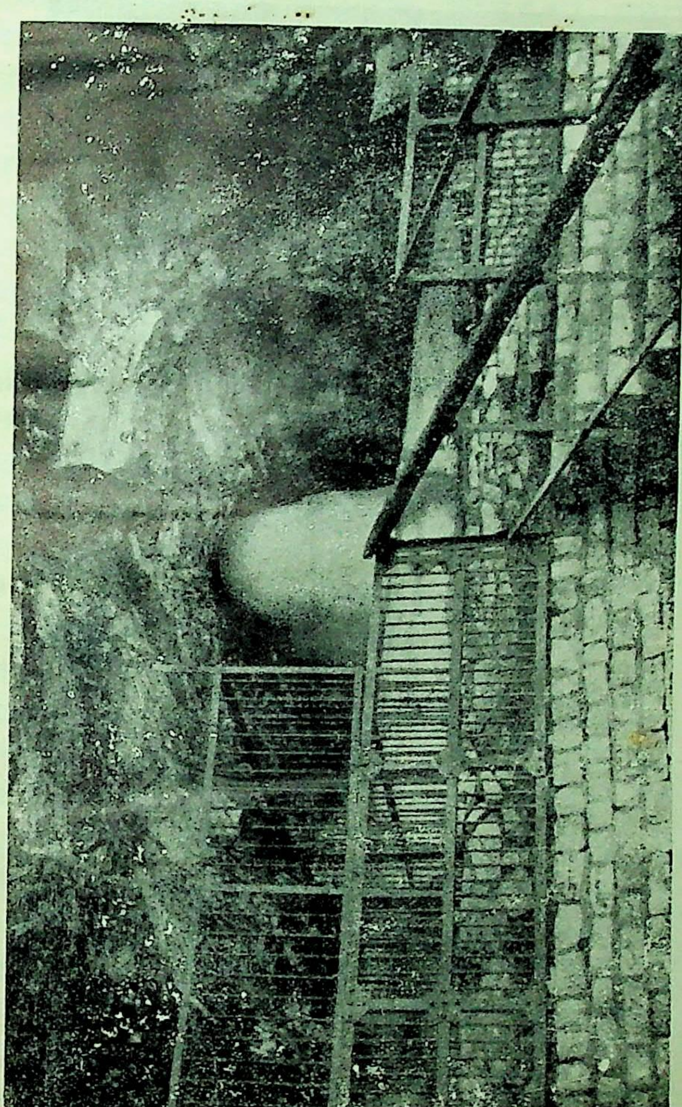
अमरनाथ की यात्रा

प्राकृतिक सौन्दर्य में अपना महान् और प्राचीन देश अधिक समृद्ध है। उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में हिन्द-महासागर तक और पूर्व में बंगाल से लेकर पश्चिम में अरब-सागर तक विस्तार में अनेक ऐसे सुन्दर स्थल विद्यमान हैं कि जिनको देखने के लिए देश के कोने कोने से और वैसे ही परदेशों से भी अनगिनत मनुष्य प्रतिदिन आकृष्ट हुये आते हैं। इन सब स्थलों में हिमालय के सौन्दर्य का वर्णन किस प्रकार किया जा सके? महान् कवियों और लेखकों की कलमों द्वारा इसका अनेक सुन्दर वर्णन लिखा हुआ है।

प्रकृति की असीम कृपा का पात्र विश्वविख्यात कश्मीर हिमालय की गोद में ही आया है। वहाँ की बर्फ से छायी हुई गगनचुम्बी पर्वतमाला, नीलाभ वृक्षराजियाँ, पानीचश्मे और अनेक छोटे बड़े झरने, तालाव, नदियाँ, महान् बादशाहों के द्वारा खुले हाथ द्रव्य खर्च करके बनाये हुये बगीचे, तथा यात्रा के सुन्दर स्थल और इन सब से ज़्यादा वहाँ का स्वास्थ्यवर्धक जलवायु आदि आकर्षणों से आकृष्ट हो लाखों यात्री देश विदेशों से भ्रमणार्थ आते हैं।

करोड़ों श्रद्धालु और धार्मिक वृत्तिवाले हिन्दू जिसके दर्शन के लिये सदा उत्सुक रहते हैं उस श्री अमरनाथ भगवान् का धाम भी कश्मीर में ही है।

धार्मिक दृष्टियों से अमरनाथ की यात्रा का बड़ा महत्व है। परन्तु प्रकृति-प्रेमियों के लिये भी अमरनाथ की यात्रा जीवन की एक अनुपम आनन्द का विषय बनी हुई है। वहाँ पहुँचने के लिए मार्गों की दुर्गमता और भयंकरता तथा यात्रा में आने वाली अनेक असुविधाओं की चिन्ता किये बिना सहस्रों नर-नारी प्रतिवर्ष इस तीर्थ की यात्रा में इकट्ठा होते हैं और अमरनाथ भगवान् का दर्शन जीवन को सफल तथा धन्य बना मानते हैं। जगत् में अन्य किसी स्थल पर स्यात् ही देखने को मिले इतनी प्रकृति की सुन्दरता इस स्थल में भरी है। इस अद्भुत दृश्य को देखकर कोई भी मनुष्य



श्री अमरनाथजी का बरफ का शिवलिंग



श्री पद्मनाभ मन्दिर, त्रिवेन्द्रम्

मुग्ध हुये बिना रहता नहीं। एक जापानी यात्री कह गया है कि-"मैंने समस्त संसार की यात्रा की, जिसमें मैंने अनेक पर्वत और जंगलों का भी भ्रमण किया है परन्तु कश्मीर की अमरनाथ की गुफ़ा देखकर मेरे हृदय को जो शान्ति मिली है वैसी और किसी भी स्थल पर मैंने अनुभव नहीं की।" ऐसे ही एक अंग्रेज़-यात्री भी कह गया है "इस स्थल पर आनेवाला प्रत्येक यात्री अपने काम-धन्धे और दैनिक झंझट वाले जीवन को सर्वथा भूल जाता है और उसका मन यहाँ के सृष्टिसौन्दर्य और भव्यता में ही एकाग्र हो जाता है। बर्फ़ से आच्छादित पर्वतमालाओं में उसकी आँखें और हृदय लीन हो जाते हैं। तथा सृष्टि के सर्जनहार की अद्भुत शक्ति की उसे झाँकी होती हैं। प्रत्येक यात्री के हृदय को प्रभावित करने में और उसकी आत्मा को उन्नत बनाने में इस स्थान की प्रेरणा भारी प्रभावकारी बनी हुई है।"

इसके अतिरिक्त एक और अंग्रेज़ यात्री कह गया है कि "इस स्थल के कण कण में सृष्टि के सर्जक के अस्तित्व की साक्षी समाई हुई है।"

ऐसे अद्भुत, भव्य, पवित्र स्थल की यात्रा पर जाने के लिए मैं बहुत समय से मनसूबा कर रहा था तथा अन्त में १९५५ के अगस्त मास में यह संयोग बना।

बम्बई से हम तारीख २१ वीं जुलाई के दिन विमान मार्ग से दिल्ली जाने को रवाना हुये और घण्टे में दिल्ली पहुँच गये। वहाँ से पुनः दूसरे दिन प्रातः विमान मार्ग से श्रीनगर जाने को रवाना हुआ और अमृतसर तथा जम्मू होकर चार घण्टे में श्रीनगर पहुंचा। श्रीनगर में चार दिन ठहर कर तारीख २७ वीं के दिन हम पहलगाम पहुँचे। पहलगाम की ऊँचाई समुद्रतल से ७२०० फीट है।

यात्रा के लिए कितनी ही आवश्यक वस्तुओं को हम बम्बई से ही साथ लाये थे। कितनी ही वस्तुयें पहले से आदमियों के साथ भेज रखी थीं और कुछ तैयारियाँ पहलगाम में ही करनी थी। वहाँ पर पहुँच कर मालूम पड़ा कि कपड़े-लत्ते के अतिरिक्त बाकी सारी वस्तुयें वहाँ से मिल सकती हैं। तम्बू, मोड़ी जा सके ऐसी हल्के वज़न की चारपाई, गद्दे, रजाई, गरम कम्बल, ओवर कोट, बरफ में चला जा सके ऐसी विशेष बनावट के जूते, कनटोप, हाथ के गरम दस्ताने आदि जिस प्रकार बिकती हैं वैसे ही भाड़े पर मिल

सकती हैं। इतना ही नहीं, बल्कि यात्रा के दरम्यान जिसे फोटोग्राफ लेने का शौक हो उसे अच्छा अच्छा केमरा भी भाड़े पर और ख़रीद में मिल सकता है।

पहलगाम से पैदल रास्ते से अमरनाथ २८ मील दूर है। यात्रियों में कितने ही घोड़ों पर और कितने ही पैदल यात्रा करते हैं। डोली, पालकी, घोड़े और सामान लादकर लेजाने वाले खच्चरों के भाड़े का दर कश्मीर सरकार ने नियत कर रखा हुआ है। भोजन के लिए भी आवश्यक सीधा-सामान साथ में ही ले जाना पड़ता है।

अमरनाथ की यात्रा का मार्ग अतिशय कठिन है। इसलिये यात्री लोग प्रवास में पड़ने वाली कठिनाइयों और असुविधाओं का बराबर ख्याल करके, इनको सहन करने की हिम्मत हो तभी इस यात्रा का विचार करते हैं। शरीर से दुर्बल अथवा किसी प्रकार के दर्दवाले को तो इस यात्रा का बिल्कुल विचार ही नहीं करना चाहिए। जिन्हें घोड़े पर यात्रा करने अथवा पैदल लम्बी यात्रा करने का अभ्यास न हों उन्हें यह प्रयोग करने जैसा नहीं। ऐसे यात्री यदि डोली अथवा पालकी में जा सकें तब ही उन्हें इस यात्रा का साहस करना चाहिए।

यात्रा में ये वस्तुयें रखनी आवश्यक हैं – (१) पूरी मात्रा में गरम कपड़ा, उसमें भी विशेष करके गरम गंजीफराक, लम्बी बाँह का स्वेटर, मफलर, ओवर कोट, हाथ और पैर के मोज़े, कनटोप, छतरी, बरसाती, छोटा बिस्तर जिसमें पर्याप्त मात्रा में ओढ़ने के लिए कम्बल, चादर और बिछाने के लिए गादी चाहिए। ऐसी गादियाँ पहलगाम से भाड़े पर मिल सकती हैं। इसके अतिरिक्त कितनी ही घरेलू दवाइयाँ भी साथ में रख़नी आवश्यक है। यात्रा के पाँच दिवस गिनकर उसीके परिमाण में आँटा, घी-तेल, चावल, दाल इत्यादि खाने की वस्तुयें भी साथ में रखनी पड़ती हैं – कारण यह है कि मार्ग में किसी जगह पर ये वस्तुयें मिल सकती नहीं। वासी भोजन कभी करना नहीं चाहिए। थोड़े सूखे मेवे साथ में रख लेना उचित है।

यात्रा में तीन स्थलों में पड़ाव डालना पड़ता है। इसलिए उसके वास्ते तम्बू भी चाहिए। पहलगाम में छोटे बड़े तम्बू भाड़े पर मिलते हैं। रसोई के लिए भी "चालोदरी" के नाम से प्रसिद्ध

एकाध छोटा तम्बू रख लेना चाहिए और शौच के लिए जिसे ज़रूरत मालूम पड़े एक पृथक् चालोदरी ले लेनी चाहिए। तदुपरान्त रसोई के लिए सगड़ी, कोयला, प्राइमस-स्टोव, किरोसीन, लैण्टर्न, आवश्यक वर्तन, नहाने के लिए बाल्टी और एक टार्च भी साथ रखनी चाहिए।

बहनों को घोड़े पर बैठकर यात्रा करने की इच्छा हो तो उन्हें पोशाक में सलवार, पतलून अथवा पैजामा पहन लेने में सुगमता रहती है। परन्तु इसकी अपेक्षा डोली में बैठकर अथवा जिन से बन सके, पैदल प्रवास करना अधिक अच्छा है। हरएक व्यक्ति के तले में लोहा लगी हुई एक छड़ी अवश्य साथ में रखनी चाहिए। उससे चढ़ाई चढ़ने में और बरफ में चलने में सुगमता हो जाती है।

सोने के लिये मोड़ी जानेवाली चारपायी और ज़मीन पर बिछाने की चटाई भी भाड़े पर मिल सकती है। रास्ते में यदि वर्षा आवे तो तम्बू में पानी भर जाता है इसलिए पड़ाव डाला हो तो वहाँ पर सो जाने के लिए ये साधन भी आवश्यक हैं।

अमरनाथ जाने का रास्ता अषाढ़ मास से भाद्रपद शुदि १५ तक अच्छा रहता है। परन्तु यात्रा के लिए अच्छे से अच्छा समय श्रावण शुदि का गिना जाता है। श्रावण शुदि १५ के दिन अमरनाथ की गुफ़ा में भगवान् का बरफ का शिवलिंग संपूर्ण आकार में बन जाता है। हर वर्ष इसी समय में छड़ी महाराज के नेतृत्व में यात्रा निकलती है। यात्रा का प्रारंभ पहलगाम से श्रावण शुदि १५ को होता है। उसमें हज़ारों यात्री सम्मिलित होते हैं। इस यात्रा की सुविधा के लिए काश्मीर की सरकार की तरफ से रास्ते की मरम्मत और सफाई आदि आगे से करा दी जाने आती है। तथा यात्रियों के संघ के साथ सरकारी डाक्टर, चलता दवाखाना और हास्पिटल छावनी की पूरी व्यवस्था रखने में आती है। ऐसे संघ में सम्मिलित होने पर अनेक यात्रियों के साथ समागम होने से विशेष आनन्द आता है। परन्तु किसीको संघ के साथ न मिलकर अकेले ही यात्रा करने की इच्छा हो उसे यात्रा समाप्त हुये पीछे नहीं बल्कि उसके पहले हो आना चाहिए। कारण यह है कि यात्रा के दरम्यान पाँच हज़ार यात्री और प्रत्येक के तीन मज़दूर गिनकर लगभग १५ हज़ार मज़दूर मिलकर कुल २०-२२ हज़ार आदमी हो जाने से समस्त रास्ते में पूरी गन्दगी हुई रहती है। तथा उससे हैरान और परेशान हो जाना पड़ता है।

३१ जुलाई के दिन पहलगाम से यात्रा की शुरुआत हुई। भोजन आदि से निपट कर तैयार हो हम साढ़े ग्यारह बजे चन्दन-वाड़ी के रास्ते पर चले। हमारे दल में चार व्यक्ति थे तथा उनके लिए दो डोली, दो सवारी के लिए घोड़े, सामान के लिए तीन खच्चर और इस कारण सब मिलकर २१ मज़दूर (प्रत्येक डोली के लिए आठ तथा प्रति घोड़ा और खच्चर एक एक) थे।

चन्दनवाड़ी का रास्ता पहाड़ के एक किनारे पर इतना ही चौड़ा है, ज़्यादा से ज़्यादा दो घोड़े एक साथ चल सकें। चन्दन-वाड़ी पहलगाम से ८ मील दूर है। दूसरे किनारे पर शेषनाग तालाब में से निकली हुई लीडर नदी सम्पूर्ण मार्ग मे बहती हुई देखने में आती है। तथा इसके सामने के किनारे पर पहाड़ों पर ऊँची विलक्षण वृक्षमाला दृष्टि में आती है। बीच में स्थल स्थल पर मक्की के छोटे छोटे खेत और उसके समीप में उनके रखवारों के झोंपड़े दिखायी पड़ते हैं। ऐसे निर्जन स्थान में चार छः कुटुम्ब किस आकांक्षा अथवा प्रेरणा से जीवन के अनेक वर्षों को व्यतीत करते होंगे – यह आश्चर्य की बात है। इनके छोटे छोटे, स्वस्थ और लाल गुलाब जैसे सुन्दर बालक यात्रियों के पास दौड़कर आते हैं, हाथ फैलाकर कहते है "सेठ साब पैसा दो"। जब वे बोलने लगते हैं तो एक तरफ सें उनकी सुन्दरता और तन्दुरस्ती देखकर हर्ष होता है और दूसरी तरफ उनकी यह भिक्षावृत्ति देखकर खेद होता है। इस भीख मांगने की आदत के पीछे उनका दोष नहीं बल्कि ग़रीबी का है। यहाँ की छोटी छोटी बालिकायें सिर के बाल का सुन्दर और कलामय ग्रंथन-कार्य करती हैं। इसके पीछे वे कितना समय और शक्ति रोकती होंगी – इसका विचार मुश्किल बन जाता है। छोटी बालिकायें अथवा बड़ी उमर की स्त्रियों के इस केशग्रंथन के अतिरिक्त और कोई भी आभूषण दृष्टि में आता नहीं। कपड़ा भी अतिशय गन्दा। ये लोग महीने में एक बार शायद ही स्नान करते होंगे। फिर भी उनके शरीर की स्वाभाविक सुन्दरता ढँकी नहीं रहती है। ऐसी बालिकाओं को भी पैसा पैसा की माँग करते देखकर पृथ्वी से इतने ऊँचे पहाड़ पर प्रकृति के अलौकिक सौन्दर्य के मध्य मनुष्य की ऐसी दीनता को ईश्वर ने कैसे रहने दिया है – यह सोचकर दुःख होता है।

पहलगाम से चन्दनवाड़ी सामान्यतया तीन से चार घण्टे में

जाया जा सकता है परन्तु हमें वहाँ पहुँचते आठ घण्टे लगे। कारण यह था कि सारे रास्ते पर यात्रियों और उनके साथ आदमियों की पंक्ति चलती होने से चलते चलते एक दूसरे से टकरा जावें ऐसी भीड़ थी और इससे गति बहुत धीमी रहती थी।

हम चन्दनवाड़ी पहुँचे तो सायंकाल के सात बजे थे। इस स्थल की ऊँचाई समुद्र के तल से ९५०० फीट है। इस स्थान का नाम चन्दनवाड़ी कैसे पड़ा? इस विषय में विश्वासजनक विवरण मिलता नहीं; किसी ने कहा कि पहले यहाँ चन्दन के वृक्ष होते रहे होंगे उससे यह नाम पड़ा होगा, परन्तु हमें वहाँ चन्दन का एक भी वृक्ष वहाँ पर दिखाई नहीं पड़ा।

चन्दनवाड़ी में जितने में पड़ाव किया जा सके उतनी जगह का विस्तार केवल एक मील का है। इतनी साँकरी जगह में १५ हज़ार आदमी और उनका सर-सामान और जानवरों का समावेश बहुत कठिनाई से हो सके ऐसा था।

काश्मीर की वस्ती में ९० प्रतिशत मुसलमान हैं जिनमें बहुत से मज़दूरी और खेती पर गुज़ारा करने वाले हैं। यात्रा में मिलनेवाले सारे मज़दूर मुसलमान ही होते हैं। ३० वीं जुलाई का दिन ईद का पर्व होने से यात्रा का प्रारंभ ३१ वीं जुलाई से ही हो सकता है-ऐसा था। हमने चन्दनवाड़ी में पहुँच कर मज़दूरों को कहा कि "आज अपनी तरफ से बासी ईद की प्रसन्नता में तुम्हें हलवा खिलाऊँगा तथा मज़दूरों के मुकादम को अपने पण्डा के साथ बाज़ार में भेज अपने मन की मिठाई लाने को कहा। थोड़ी देर बाद पण्डाजी वापस आकर बोले कि "ये लोग किसी भी हिन्दू की दूकान की मिठाई लेने को न करते हैं और यहाँ पर मुसल्मान की कोई दूकान है नहीं।" मज़दूरों के मुखिया ने कहा कि "हमें केवल सीधा दिला दो, हम अपनी रसोई स्वयं पकाकर खालेगें। हम हिन्दुओं का पकाया हुआ खाते नहीं और यहाँ तक कि उनका पानी भी नहीं पीते।" सीधा भी मुसल्मान की दूकान से दिलवाया तब उन्होंने लिया। अत्यन्त ग़रीबी होने पर भी अपने धर्म के लिए इस प्रकार की कट्टरता के वास्ते उन्हें धन्यवाद देना चाहिए।

इसे धर्मचुस्ती कहो, जनून कहो अथवा हिन्दू मुसल्मानों के मध्य सदियों से चला आता हुआ तिरस्कार अथवा नफरत की भावना कहो, परन्तु काश्मीर के मुसल्मान मज़दूरों की यह वृत्ति

सुखद तो नहीं ही हो सकती है।

उस दिन तो हम अपनी " आलोदरी " में खिचड़ी शाक बना कर तम्बू में खा लिया और दस बजे सो गये।

दूसरे दिन (ता. १ ली अगस्त) सबेरे चार बजे उठकर नित्य-कर्म पूरा कर लिया, तम्बू लपेट कर छः बजे शेषनाग के रास्ते पर चल पड़े। चन्दनवाड़ी से शेषनाग सात मील की दूरी पर है। वर्ष में आठ मास तो पहलगाम से चन्दनवाड़ी सरलता से आया-जाया जा सकता है।

चन्दनवाड़ी से ही आगे अमरनाथ की सच्ची यात्रा शुरू होती है। तथा उस रास्ते से वर्ष में केवल दो ही मास जाया जा सकता है।

इस मार्ग में एक आधा मील चलने के बाद जुवाघाटी और पीसूघाटी नाम की दो चढ़ाई चढ़नी पड़ती हैं। पीसूघाटी की चढ़ाई दो मील जितनी है और उसकी ऊँचाई लीडर नदी से २,००० फीट जितनी है। रास्ता बहुत फेरखोंच का है। ऊबड़-खाबड़ सा है। ज़रा भी चलते हुये कोई चूके तो ठोकर खाकर खड्ढे में गिर पड़े और उसका रामनाम सत्य हो जावे। मृत्यु को भेंटने जाते हों ऐसा लगता है। पीसूघाटी की ऊँचाई समुद्र के तल से ११००० फीट है। परन्तु ऐसी भयानक घाटी पर मज़दूर और घोड़े इतनी सरलता से चढ़ जाते थे कि अपने को आनन्द होता था और उन्हें शाबाशी दिये बिना रहा नहीं जाता था।

अमरनाथ की यात्रा के विषय में " अमरकथा " नाम की संस्कृत पुस्तक में एक ऐसी दन्तकथा है कि भगवान् शंकर सती पार्वती को 'अमरकथा' सुनाते थे उसमें पीसूघाटी के विषय में ऐसा वर्णन आया है —

" एक बार देव और दानव भगवान् शंकर को नमस्कार करने के लिए पर्वत पर चढ़ रहे थे। इतने में उनका आपस में झगड़ा उठ खड़ा हुआ कि भगवान् के पास पहले कौन जावे और दोनों युद्ध पर उतर पड़े। इस युद्ध में देवों की बड़ी हानि होने से उन्होंने सहायता के लिए शंकर भगवान् की प्रार्थना की। इससे शंकर ने उनकी सहायता करके दानवों का नाश कर डाला। इसलिए पीसू-घाटी के ढलाव पर जो बड़े बड़े पत्थर छिट-फुट पड़े देखने में आते हैं वे दानवों की प्रतीक हैं ऐसा कहा जाता है। जो यात्री पीसूघाटी पर चढ़ जाते हैं उनका सारा पाप महादेवजी धो डालते हैं - ऐसा

मानने में आता है।"

पीसुघाटी की चढ़ाई पूरी करने के बाद पीछे चार मील की उतरायी आती है। पीछे थोड़ी सी चढ़ाई आती है तथा थोड़ा आगे जाने पर समुद्र के तल से १३००० फीट ऊँचाई पर आया हुआ डेढ़ वर्गमील विस्तार वाला, दर्शन को मुग्ध कर देवे ऐसा सुन्दर तालाव दृष्टि में आता है। तालाव के उत्तर के भाग में बर्फ के तीन ऊँचे पहाड़ हैं जो ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर के नाम से प्रख्यात हैं और इन पहाड़ों में से बर्फ की नदी (अंग्रेज़ी में जिसे Glacier कहा जाता है) मन्द गति से बहती रहती है। इस नदी का बर्फ पिघलता है उसीके पानी का यह तालाव बना है। इस तालाव की गहरायी की माप कोई निकाल सका नहीं। लीडर नदी इस तालाव में से निकली है। शेषनाग तालाव, उसके पीछे के बर्फ के पहाड़, बर्फ की नदी और दूसरी दिशा में बर्फ से आच्छादित दूसरे पहाड़, ऊपर से पड़ता पानी का झरना - ये दृश्य सत्यतः बहुत ही अद्भुत हैं। यात्री की चिन्ता और मायावी दुनियाँ को यह दृश्य भूला देता है। ईश्वर की शक्ति कितनी अगाध है और मनुष्य कितना पामर है इस सत्य की यहीं पर प्रतीति होती है।

शेषनाग तालाव के विषय में ऐसी दन्तकथा प्रचलित है कि यहाँ की पर्वतमालाओं के मध्य एक बड़ा राक्षस रहता था तथा भयंकर तूफान और हंगामा फैलाकर आसपास बसने वाले देवों को भय एवं त्रास से परेशान करता था। इससे बचने के लिये देव 'त्राहि माम्' की पुकार करते हुये भगवान् शंकर के पास गये। उस समय भगवान् शंकर ने कहा कि "इस राक्षस को मैंने वरदान दिया है इसलिए उसका नाश मेरे से हो नहीं सकेगा, आप भगवान् विष्णु के पास जाइए।" देव विष्णु के पास गये। विष्णु भगवान् ने शेषनाग तालाव में से शेषनाग की पीठ पर आरूढ होकर सहस्र फणवाले नाग को आदेश दिया कि "हे नागाधिराज! अपने सहस्र मुखों से इस राक्षस का संहार करो।" इससे शेषनाग ने राक्षस पर आक्रमण कर उसका नाश किया। उस समय से इस तालाव और पर्वतमाला का नाम "शेषनाग" पड़ गया है।

समुद्र के तल से १३,००० फीट की ऊचाई पर आये हुये इस स्थान में किसी अिसी यात्री को श्वास लेने में कठिनाई पड़ती है- ऐसी बात सुनी थी परंतु हमें ऐसा कोई खास अनुभव हुआ नहीं-

जब कि थोड़ा प्रभाव तो हरएक को होता है।

हम चन्दनवाड़ी से प्रातः छ बजे निकले और सबेरे ११ बजे शेषनाग पहुँच गये थे। सबेरे बहुत पहले पहुँचने से यात्रियों की भीड़ बहुत नहीं थी; उसीके अनुसार हम पहले पहुँच सके थे, हमारे आदमियों को तम्बुओं तथा सर सामान के साथ रवाना होने में एक घण्टे का विलम्ब होने से उन्हें यात्रियों की बड़ी लाइन के साथ चलना पड़ा और इस कारण वे सायंकाल लगभग चार बजे शेषनाग पहुँचे। एक घण्टे के विलम्ब के लिए पाँच घण्टे का दण्ड भुगतना पड़ा। हमारे पास भोजन अथवा आराम का कोई साधन न होने से इतना समय हमें बिल्कुल निकम्मा बिताना पड़ा। शेषनाग से आगे के पड़ाव के स्थान का नाम 'वायजन' पड़ा है। चूंकि यहाँ पर बहुधा हवा का भारी तूफान आ जाता है इस लिए यहाँ आँधी-तूफान का भय भी लग रहा था। प्रभु कृपा से उस दिन वर्षा नहीं थी। कई बार जब वर्षा पड़ती है तो ठण्डो की सीमा नहीं रहती। कमज़ोर मनुष्यों का रामनाम सत्य हो जाता है। भूमि कीचड़वाली होने से आदमी और घोड़े फिसलकर मर जाते हैं। हमारी यात्रा में इस प्रकार १७ घोड़े और खच्चर तथा छः आदमी मर गये थे। परन्तु सौभाग्य से ऐसी कोई आफत आयी नहीं और आदमियों तथा सामान के आ पहुँचते ही संध्या में थोड़ी देर से भोजन करके रात्रि के १० बजे हम थकेथकाये निद्रा की गोद में गये।

दूसरे दिन प्रातःकाल शेषनाग से शीघ्र ही रवाना होकर हम पंचतारिणी के रास्ते पर हुये। प्रातः पाँच बजे के निकले हुये हम आठ मील का मार्ग चलकर १० बजे पंचतारिणी पहुँच गये। हमारे आदमी और सामान भी एकाध घण्टे के बाद आ पहुँचा। अमरनाथ यहाँ से केवल पाँच मील दूर है इसलिये उसी ही दिन जा आने का हमने विचार किया परन्तु इतने में हमें सूचना मिली कि छड़ी महाराज के पहले कोई भी यात्री अमरनाथ जा नहीं सकता यह नियम है। तथा छड़ी महाराज की सवारी दूसरे दिन श्रावण शुदि १५ को तड़के प्रातः निकलने वाली थी। इससे हमें तब तक राह देखने के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं था।

पंचतारिणी से आगे बढ़ने पर प्रारंभ में 'महागुणघाट' नाम से प्रसिद्ध तीन मील की चढ़ाई आती है। यह चढ़ाई समस्त यात्रा-भर में ऊँची से ऊँची चढ़ाई है और समुद्र तल से १६,००० फीट की

ऊँचाई पर आयी है। ज्यों ज्यों ऊपर चढ़ते जावें त्यों त्यों बायीं ओर भयंकर ऊँचायी वाली पर्वतमाला और दाहिनी तरफ गहरी गहरी दरी और धीमे बहता हुआ बर्फ के पानी का झरना। यह अनुभव सर्वथा अलौकिक लगता है। मार्ग बहुत संकरा है, एक ही टट्टू अथवा मनुष्य चल सके बस इतनी चौड़ाई। तिसपर यहाँ भी मनुष्य तथा घोड़े अभ्यस्त होने से सरलता से चले जा रहे थे।

महागुणघाट पहुँच कर पुनः पीछे दो मील जितनी उतराई उतर कर लगभग शेषनाग के धरातल जितनी ऊंचायी पर हम पंचतारिणी पहुँच गये। सायंकाल तक में तो स्थान भी यात्रियों के तम्बूओं के द्वारा खचाखच भर जाने से वहाँ कोई बड़ा भारी मेला लगा हो, ऐसा दृश्य लगता था और वातावरण आनन्दमय बन गया था।

इस स्थान पर पहाड़ों में से निकलती नदियों की पाँच धारायें एकत्र होती हैं इससे उसका नाम पंचतारिणी पड़ा है। बहुत से यात्री शेषनाग तालाब तथा पंचतारिणी में स्नान करते हैं। हम भी वहाँ पर स्नान करके बाद में भोजन करने गये। सायं-समय छड़ी महाराज के डेरे पर 'अमरकथा' का वाचन होता है जिसमें यात्रियों को अमरनाथ की यात्रा का महत्व समझाने में आता है।

रात्रि में थाली पीट कर यह सूचना करने में आयी "अमरनाथ की यात्रा की शुरूआत दूसरे दिन अर्थात् श्रावण शुदि १५ (ता. ३ री अगस्त) के दिन प्रातःकाल चार बजे होगी तथा डोली वालों को प्रातः ४ से ८ पर्यन्त आगे जाने देने में आवेगा।"

हम इस सूचना के अनुसार प्रातःकाल चार बजे डोली में बैठकर रवाना हुये। संवत् २०११ की श्रावण शुदि १५ के बुधवार तारीख तीसरी अगस्त १९५५ का दिन हमारे जीवन में चिरस्मरणीय बना रहेगा। कारण यह है कि उस दिन मैंने भारत की एक अति कठिन मानी हुई यात्रा को पूर्ण कर भगवान् अमरनाथ के दुर्लभ गिने जाने वाले दर्शन को किया।*

पाँच मील की यात्रा करनी थी। आधा एक मील पहुँचे होंगे कि हमें समाचार मिला कि मार्ग में बर्फ पर्याप्त जमी होने से और यात्रियों की संख्या अधिक बढ़ जाने से भीड़ खूब हो गयी है और

---

*सब से कठिन यात्रा कैलास मानसरोवर की गिनी जाती है परन्तु उससे सहज ही छोटी परन्तु दूसरी सभी यात्राओं की अपेक्षा अमरनाथ की यात्रा अधिक कठिन है।

यात्रियों की एक लम्बी क़तार रास्ते में ठहर गयी है इसलिए डोली और घोड़ों को दस बजे तक आगे बढ़ने की मनाही है। इस समाचार को सुनकर डोली अथवा टट्टू पर बैठे यात्री उनसे नीचे उतर कर पैदल आगे बढ़ने लगे। हमें एकाध घण्टा लगा। भीड़ को कम होने देने के लिए हम वहाँ पर ही रुक गये और बाद में हमारे डोली वाले पहाड़ के ऊपर के भाग में वर्फ पर चलाकर आगे ले गये। इस रास्ते से यदि कोई फिसले तो भगवान् अमरनाथ के धाम में सीधा पहुँच जावे - ऐसा जोखम था। परन्तु यदि इस प्रकार उतावलापन न किया होता तो सायंकाल समय से पहुँचा जा सके ऐसा न होता। बाद में ज़रा आगे जाते हुये तीन मील की चढ़ाई आयी। चक्कर-दार घूमघुमैया जैसे मार्ग पर होकर पर्वत पर चढ़ने को था। ज़रा ऊपर अथवा ज़रा नीचे दृष्टि डालें तो चीटियों के समान क़द के दिखायी पड़ते यात्रियों की पंक्तियाँ दिखायी पड़ती थीं।

पर्वत के एक किनारे पर ऊपर १२५ फीट चौड़ी और ७५ फीट ऊँची अमरनाथ की गुफ़ा दृष्टिपथ में आती है।

जब हम इस गुफ़ा के पास पहुँचे तो हमारा हृदय एक प्रकार की विशेष लगन से हृदय धड़कने लगा। जिस तीर्थधाम के लिए बहुत कुछ सुना था, जिसके दर्शन के लिए हज़ार मील से अधिक लम्बे तथा कितने ही स्थानों पर कष्टदायक प्रवास को पूरा कर हम आये थे, उस दर्शन के प्राप्त करने की आखिरी घड़ी आ पहुँचने पर हर्ष से हृदय धड़क उठे यह बिल्कुल स्वाभाविक था। हमारे साथ दूसरे भी अनेक यात्री थे। तथा वे सब हमारी तरह ही गुफ़ा के समीप पहुँचते ही भगवान् अमरनाथ के दर्शन के लिए अधीर हो उठे थे। इस समय का वातावरण देखते हुये ऐसा भास होता था कि मानो मायावी दुनिया का तमाम मोह छोड़कर यात्री प्रभु के पवित्र धाम में पहुँचने के लिए 'मैं पहले' 'मैं पहले' कर रहे हो।

शताब्दियाँ बीतीं कि प्रत्येक वर्ष लाखों यात्री इस पवित्र तीर्थस्थान की यात्रा पर आते रहे हैं। जिनमें भारत की अनेक विभूतियाँ भी सम्मिलित हैं। सन् १८९८ में अमेरिका की अपनी विजय-यात्रा पूरी करके स्वामी विवेकानन्द अमरनाथ के दर्शन को आये थे, स्वामी रामतीर्थ ने भी इस स्थल की यात्रा की थी। तथा दो हज़ार वर्ष से ऊपर हुआ कि वेदधर्म के पुनरुद्धारक भगवान्

आदि शंकराचार्यने भी अमरनाथकी यात्रा की थी–ऐसा वृत्तान्त मिलता है।

गुफ़ाके बायें तरफ नीचे 'अमर गंगा' नाम से जानी जाने-वाली अमरावती नदी आयी है, जिसमें स्नान करने को महापुण्य माना जाता है। इस नदी में सफ़ेद रंग की मिट्टी है, वह बहुत पवित्र मानी जाती है और अनेकों यात्री प्रसादरूप में उसे अपने साथ साथ ले जाते हैं। यहाँ पर यात्री स्नान-संध्या करके, यज्ञो-पवीत बदल कर अमरनाथ के दर्शन के लिए गुफ़ा में जाते हैं। यह गुफ़ा लगभग ८० फीट गहरी है और खूब विशाल होने से सैकड़ों यात्री उसके अन्दर खड़े रह सकते हैं। शिवलिंग के दर्शन के लिए यात्री यदि भीड़-भडक्का करें तो कोई घटना न घटे उसके लिए काश्मीर सरकार ने लोहे की एक मोटी जाली बनाली है और उसके बाहर खड़े रहकर दर्शन कर सकते हैं।

इस गुफ़ा में दाहिनी तरफ एक कोने में लगभग आठ फीट ऊँचा और तीन से चार फीट के घेरे में एक शिवलिंग है जिसका दर्शन अतिशय आश्चर्य और भक्तिभाव पैदा करनेवाला हो जाता है। महीने में उजाले पक्ष के बीच में बर्फ इकट्ठा होकर उसका शिवलिंग बनता है और अन्धेरे पक्ष में यह बर्फ गलने लगती है। परन्तु यह शिवलिंग अपने पूर्णरूप में श्रावण शुदि १५ के दिन ही देखने को मिलता है – ऐसा कहा जाता है।

विज्ञानशास्त्री लोग यह तर्क करते हैं कि समुद्र के पानी में जिस प्रकार ज्वारभाटा और लहरें उठती हैं उसी प्रकार ही इस स्थल में भी ऊपर के पर्वत की छत से टपकते पानी का बर्फ बनता है और उसका शिवलिंग जैसा आकार बन जाता हैं। चन्द्र के आकर्षण से समुद्र में जैसे ज्वारभाटा आता है वैसे ही चन्द्र के आकर्षण से यह शिवलिंग बनता है। उस आकर्षण के दूर होते ही समुद्र में जिस ज्वारभाटे का अभाव हो जाता है वैसे ही बर्फ का यह लिंग पिघलने लगता है। परन्तु हज़ारों वर्ष हुये एक ही निश्चित स्थल ऐसे संपूर्ण आकार का शिवलिंग निश्चित समय पर ही किस प्रकार बनता है – इस विषय में वैज्ञानिक लोग कोई सन्तोष-कारक उत्तर नहीं दे सके। इससे स्वाभाविक रीति से ही यह मान्यता दृढ़ होती है कि इस शिवलिंग की रचना पीछे कोई दिव्य-तत्त्व-दैवीशक्ति बस रही है तथा यात्रियों को उसके प्रति जो श्रद्धा भक्ति उत्पन्न होती है वह यथार्थ होती है।

शिवलिंग की रचना के विषय में चाहे जो मत अथवा विचार-भेद हो, परन्तु इस स्थल पर आने वाले यात्रियों को मानसिक शान्ति मिलती है, उनके विचारों में जो परिवर्तन होता है और उनका हृदय जिस प्रकार प्रभुमय बन जाता है, उस विषय में तो बिल्कुल ही मतभेद नहीं है। ऐसा सुना है कि स्वामी विवेकानन्द ने जिस समय इस गुफ़ा में प्रवेश किया वे उस समय इतने मनस्क हो गये थे, उनका सारा शरीर आनन्द के आवेश से कम्पायमान हो उठा और स्वयं मूर्च्छित बन गये थे। बाद में उन्हों ने कहा कि "मैं हर्ष से इतना विभोर हो गया कि मुझे यह लिंग साक्षात् भगवान् शंकर का ही स्वरूप लगा। यात्रा के किसी भी स्थल में मुझे इतनी शान्ति, भव्यता और आनन्द का अनुभव हुआ नहीं था। मुझे भगवान् शंभु का प्रत्यक्ष दर्शन हुआ और उन्होंने मुझे यह वरदान दिया कि "तुम्हारी इच्छा जब तक न हो तब तक तुम्हारी मृत्यु होगी नहीं।"

ऊपर बताये अनुसार गुफ़ा की चौड़ाई लगभग १२५ फीट, ऊँचायी ७५ फीट और गहराई ८० फीट है। यात्री एक स्थल पर खड़ा रहकर देखे तो दायीं तरफ शिवलिंग और बायीं तरफ दो ओर बर्फ जमी दिखायी पड़ती है और वह बर्फ की शिला बन जाती है। उनमें से एक शिलापट्ट को गणेश और दूसरे को सती पार्वती के नाम से जाना जाता है।

गुफ़ा में प्रवेश करते ही यात्री चमड़े का जूता उतार कर धान के पयाल का बना चप्पल पहन लेते हैं और बाद में शिवलिंग की पूजा विधि पूरी करके, कपड़ा, सूखेमेवे, यथाशक्ति द्रव्य आदि अर्पण कर, श्री गणेश और पार्वती की पूजा करके जीवन को धन्य हुआ मानते हैं। इस बड़ी गुफ़ा की बायीं ओर के कोने में एक दूसरी छोटी गुफ़ा आयी है। उसमें एक संन्यासी बारह मास ध्यानस्थ अवस्था में निवास करता है - ऐसा कहा जाता है। हमने पैंतीस वर्ष की उम्र के एक संन्यासी को वहाँ बैठा हुआ देखा। गुफ़ा के बाहर कोयले की लगभग बारह बोरियाँ देखीं, जो भोजन बनाने के कार्य में लीजाती हुई होनी चाहिए। क्योंकि इस प्रदेश में एक भी वृक्ष दृष्टि में आता नहीं कि जिसमें से लकड़ी मिल सके। यह संन्यासी बारह मास वहाँ पर रहता है अथवा क्या है? इसका कोई भी प्रमाण मिल सके ऐसा नहीं था और शंका उत्पन्न हो, ऐसी बात लगी।

शिवलिंग, श्रीगणेश और पार्वती के बर्फ की

पट्टी पर जो द्रव्य भेंट रखने में आता है उसका उपयोग किस प्रकार होता है – इस विषय में एक दिलचस्प तथ्य है। इस यात्रा के अवसर पर यात्रियों के साथ कश्मीर सरकार से अफसरों का एक कैम्प भेजने में आता है। उसको देव को अर्पण की हुई नक़द रक़म और भेंट का निकाला करने का अधिकार रहता है। इस द्रव्य के तीन भाग करने में आते हैं। उनमें से एक भाग यात्रा के संघ के साथ जानेवाले छड़ी महाराज महन्त को देने में आता है। यह महन्त श्रीनगर में रहते हैं। एक भाग पहलगाम से २० मील के फासले पर आने वाले माट्टन के नाम से प्रसिद्ध पण्डाओं के गाँव में रहने वाले पण्डों को मिलता है। (इस गाँव का मूल नाम मार्तण्ड होना चाहिए। योरोपियनों ने उसे अपभ्रष्ट करके माट्टन कहना प्रारंभ कर दिया। तीसरा भाग पहलगाम में बसते मलिक कुटुम्ब के वंशजों को देने में आता है। इन सभी भागीदारों के प्रतिनिधि यात्रा में साथ रहते हैं जिससे किसीको अपने भाग में कुछ कम मिलने की फरियाद का अवसर न रहे। अन्तिम भाग मलिक वंश के मुसल्मानों को देने की प्रथा के पीछे एक दन्तकथा प्रचलित है कि अमरनाथ की ढूंढ़ पहलगाम में बसते कितने ही मुसल्मान गड़रियों ने की थी। इन गड़रियों के कितने ही जानवर खो जाते थे। वे उनके ढूँढ़ने को निकलते थे। तथा इस ढूँढ़ में लगभग अमरनाथ पर्यन्त पहुँच गये। वहाँ पर उन्होंने बर्फ का शिवलिंग देखा ही परन्तु साक्षात् शंकर भगवान् का दर्शन भी किया। इसके बाद इन चरवाहों ने इस गुफ़ा को दूसरों को भी बताया– इसलिए गुफ़ा को तलाश कर निकालने वाले इन मलिक गड़रियों के वंशजों को देवद्रव्य का तीसरा भाग देने में आता है।

गुफ़ा के बाहर निकल कर हमने ऊपर को देखा तो दो सफेद रंग के कबूतर और दूसरे दो अज्ञात पक्षी दृष्टि में पड़े। ऐसा एक विश्वास चला आता है कि जो कोई अमरनाथ की यात्रा को जावे उसे यदि ये कबूतर दिखाई न पड़े तो उसकी यात्रा निस्फल जाती है। हमें कबूतर दिखाई पड़े इसलिये हमारी यात्रा के निस्फल जाने का भय टल गया था। इन कबूतरों के विषय में एक ऐसी दन्तकथा प्रचलित है कि एक समय भगवान् शंकर सती पार्वती को 'अमरकथा' कहकर सुना रहे थे। उन्होंने सती को सूचना दी कि जब तक तुम हुँकारी भरती रहोगी तब मैं कथा चालू रखूँगा, परन्तु

यदि तुम हुंकारी देना बन्द करदोगी तो मैं कथा भी बन्द कर दूंगा। कथा चल रही थी इतने में सती को निद्रा आने लगी। उस समय दो सफेद कबूतर इस कथा को सुन रहे थे। इन कबूतरों ने देखा कि सती निद्रावश हो गई हैं इसलिये हम स्वयं भी कथा सुनने के लाभ को खो बैठेंगे - ऐसा समझ कर उन्होंने हुँकारी भरना चालू रखा। इस प्रकार सारी कथा उन्होंने सुनी और उससे अमर बन गये। ये ही दोनों कबूतर आज पर्यन्त वहाँ रह रहे हैं-ऐसा कहा जाता है।

दूसरी एक दन्तकथा ऐसी चलती है कि ये दोनों कबूतर पूर्व-जन्म में शंकर के शिष्य थे। एक बार इन्होंने भगवान् की समाधि में विक्षेप डाला इसलिए भगवान् ने उन्हें शाप देकर कबूतर बना दिया।

दन्तकथा की सत्यता के विषय में भले ही मतभेद हो परन्तु जिन कबूतरों को भगवान् शंकर ने अमर किया था वे ही आज हज़ारों वर्ष से यहाँ बसते हैं अथवा जिन्हें हमने देखा वे दूसरे होंगे - यह निश्चय हो सके ऐसा नहीं है। तथा वहाँ की बारह मास की असाध्य ठण्ढी में ये कबूतर बारह मास वहाँ रहते होंगे अथवा क्या? और यदि रहते हैं तो क्या खाकर जीते होंगे - यह कहना मुश्किल है। क्यों कि वहाँ पर बर्फ और पत्थर के सिवा दूसरा कुछ भी नहीं है इसलिए इन कबूतरों की वहाँ पर उपस्थिति एक असमाधेय समस्या बन गयी है। मानव की बुद्धि बहुत ही तीक्ष्ण गिनी जाती है परन्तु ऐसे कितने ही प्रसंगों में यह बुद्धि भी काम कर सकती नहीं।

इस गुफ़ा में एक दूसरा चमत्कार यह देखने में आया कि गुफ़ा के नीचे और गुफ़ा के दाहिने बायें दोनों किनारों पर खूब ही बर्फ जमी होती है परन्तु गुफ़ा की छत पर (बाहर के भाग में) बिल्कुल ही बर्फ देखने में आती नहीं।

गुफ़ा से बाहर निकल कर नज़र डालने पर कैलास पर्वत की झांकी मिलती है। परन्तु उस दिन बादल होने से हम कैलास देख नहीं सके। हिमालय का यह शिखर अमरनाथ से बहुत दूर है। तथा वहाँ पर जाने का मार्ग भी जुदा है।

प्रातः साढ़े ग्यारह बजे अमरनाथ भगवान् का दूसरी बार दर्शन करके हम पंचतारिणी के रास्ते से पीछे लौटे।

चार दिवस की इस अति कठिन और सदा याद रहे ऐसी दुर्गम और दुर्लभ यात्रा के बीच डोली वाले और टट्टू वाले हमारे

परिवार जैसे बन गये थे और यात्रा पूरी होने पर उन्हें विदायी देते हुये स्वाभाविक रीति से खिन्नता हो पड़ी।

अपने देश की जनता अधिकांश में धर्मपरायण है। भारत के २१ करोड़ हिन्दू स्वयं भिन्न प्रकार के अपने माने हुये देव-देवियों की पूजा-प्रार्थना करते हैं। वे ईश्वर पर की जानेवाली अखण्ड और अनन्त श्रद्धा में धर्म की पर्याप्तता मानते हैं। इस श्रद्धा के बल पर हर वर्ष सैकड़ों अथवा सहस्रों मील की कष्ट भरी यात्रा करके हज़ारों नर-नारी यात्री भगवान् अमरनाथ के दर्शन को जाते हैं। इस यात्रा की अनेक कठिनाइयों को गिने विना वे महाकष्ट सहन कर अमरनाथ का दर्शन पाने से जीवन को धन्य और कृतकृत्य बना मानते हैं। हिन्दूधर्म ऐसे श्रद्धालुओं की श्रद्धा पर ही टिका हुआ है - ऐसा कहने में कुछ भी खोट नहीं। भारतवासियों का लोक-जीवन जब तक सुरक्षित रहेगा तब तक धर्म-विषयक हिन्दुओं की इस निष्ठा को बिलकुल आँच नहीं लगेगी।

अमरनाथ की जो पौराणिक कथा है वह बहुत लम्बी है और उसमें केवल भगवान् शिव की ही महिमा गाने में आयी है। यात्रा किस प्रकार करनी चाहिए, रास्ते में पूजा करने योग्य कौन कौन से स्थान आते हैं, कौन कौन सी कथाओं के श्रवण करने से और किन किन नदियों में स्नान करने से किन किन फलों की प्राप्ति होती है, इत्यादि विषयों पर उसमें विस्तार से उल्लेख करने में आया है। परन्तु कथा में वर्णित बहुत से स्थानों का इस समय कोई पता नहीं। ये स्थल लुप्त हो गये हों ऐसा अनुमान होता है। इसलिए कथा में बताये हुये अनुसार कर्मविधि हो नहीं सकती।

कथा में एक ऐसी बात भी आती है कि अमरकथा के महत्त्व को सुनकर सती पार्वती ने महादेव से पूछा कि "यह यात्रा सब से विशेष फलदायक कब होती है - यह कृपा करके कहो।" उसके उत्तर में महादेव ने कहा कि "हे पार्वती! यात्रा का सब से बड़ा पुण्य श्रावण मास की पूर्णिमा को मिलता है, क्यों कि महादेव ने अपना पूर्णरूप रक्षाबन्धन की पूर्णिमा को प्रदर्शित किया है। जो कुछ भी हो, हे देवि! अमरनाथ के दर्शन और पूजन से काशी-विश्वनाथ के ज्योतिर्लिंग के दर्शन और पूजन की अपेक्षा दस गुना, प्रयागयात्रा से सौ गुना और नैमिषारण्य तथा कुरुक्षेत्र की यात्रा से हज़ार गुना पुण्य प्राप्त होता है।"

मलबार तट की छोटी यात्रा

भारत के यात्रा-धामों की कई बार यात्रा की है; परन्तु मलबार किनारे का अमुक भाग रह गया था - जैसा कि कोचीन से त्रिवेन्द्रम पर्यन्त का भाग प्राकृतिक दृश्यों और वनश्री से भरपूर-जो दक्षिण भारत का नन्दनवन कहा जाता है।

जाड़े की ऋतु होने से एक दिन बम्बई में बैठे हुये मलबार किनारे की ज़मीन के रास्ते से यात्रा करने का विचार आया। इसलिए मैं और मेरे मित्र श्री शिवजीभाई सेठिया, जो कलकत्ते में कोयले के बड़े व्यापारी हैं और कोयले की खानें भी रखते हैं, उनके साथ कोचीन से कन्याकुमारी पर्यन्त भूमिमार्ग से यात्रा करने का निर्णय किया।

हम तारीख १६-१-५६ के दिन प्रातः ६ बजे बम्बई से एरोप्लेन में कोचीन जाने के लिए रवाना हुये। बम्बई से कोचीन का पाँच घण्टे का रास्ता है। मार्ग में बेलापुर और बँगलोर में हवाई जहाज़ रुकता है। हम ग्यारह बजे कोचीन पहुँचे।

कोचीन में हमारी कपड़े की दूकान है। वहाँ पर सभी सुविधा की गई थी। परन्तु भाटिया गृहस्थ श्रीमान् सेठश्री मूलजी जेठाभाई वाला, श्री बाबूलालभाई एक उत्तम खानदान वहाँ रहते हैं। उनकी कोचीन में बाप-दादा के समय से फर्म चलती है। उनके बहुत सी एजेंसियाँ भी हैं। बहुत प्रसिद्ध हैं और अच्छा प्रभाव है। वे खूब आग्रह करके हमें अपने यहाँ ले गये और एक दिवस रोका।

हम कोचीन में एक दिन रुके। कोचीन में दो भाग हैं। मध्य में खाड़ी है। एक भाग को कोचीन कहा जाता है जब कि दूसरे भाग को एर्नाकोलम कहा जाता है। खाड़ी पर भारी पुल बँधा हुआ है।

यहाँ पर सुन्दर बन्दरगाह है। भारत सरकार की नेवी का स्थल हैं। कहा जाता है कि कोचीन का बन्दरगाह बनने के पूर्व यहाँ पर कोडुङ्लूर नाम का बन्दरगाह था। तथा देश-विदेश के

सैनिक पोत यहाँ पर ठहरते थे। परन्तु प्राकृतिक परिवर्तन के कारण वहाँ समुद्र के आगे की खाड़ी भरती गई। आज कोचीन भारत के पश्चिम किनारे पर एक अद्भुत नैसर्गिक सौन्दर्यमय बन्दरगाह है। वहाँ पर विश्व के प्रत्येक बन्दरगाह की स्टीमरें यातायात करती हैं। तथा कितना भी तूफान हो परन्तु स्टीमरों के खड़े करने की यहाँ पर पर्याप्त सुविधा है। त्रिवेन्द्रम तक का माल इस बन्दरगाह से विदेश के लिए लदता है।

कोचीन में हमने वास्कोडीगामा की समाधि देखी तथा दूसरे दर्शनीय स्थल देखे। अर्नाकुलम के लिए ऐसी लोकोक्ति है कि ऋषि नाग ने अपने अन्तिम दिन यहीं पर बिताये थे। इसलिए ऋषिनागकुलम् से एर्नाकुलम् नाम पड़ा होगा ऐसा कहा जाता है।

यहाँ पर सौराष्ट्र तथा गुजरात के भाइयों की बस्ती अच्छी है। सभी भाई अच्छी स्थिति में हैं। कितने ही तो १५०-२०० वर्ष पूर्व यहाँ आकर बसे हैं।

हम दूसरे दिन कोचीन से रवाना होकर अलपाई पहुँचे। कोचीन से अलपाई ३८ मील दूर है।

यहाँ पर हिन्दुओं के सुन्दर मन्दिर देखने लायक हैं। यहाँ से ही नारियल की गिरी और नारियल, तेजपत्र, इमारती लकड़ी भारी मात्रा में समुद्र-मार्ग से बाहर जाती है। राज्य का दूसरे नम्बर का बन्दरगाह है। बस्ती लगभग सवा लाख की है। यहाँ भी गुजरात तथा सौराष्ट्र के भाइयों की बस्ती अच्छी संख्या में हैं।

अलपाई में दोपहर को हमने श्रीमान् सेठश्री लीलाधरभाई के यहाँ भोजन किया। वे कच्छ के निवासी हैं और लगभग १५० वर्ष से यहाँ रहते हैं।

दोपहर के बाद अलपाई से त्रिवेन्द्रम् जाने को रवाना हुये। अलपाई से त्रिवेन्द्रम् ९० मील दूर है। रास्ता पक्का और तारकोल का है। मार्ग के दोनों तरफ वृक्षों की घटा बंधी हुई है। किसी किसी स्थान पर तो भगवान् सूर्यनारायण का दर्शन भी नहीं होता है।

कोचीन से त्रिवेन्द्रम् तक जाते हुये मार्ग में दोनों ओर समुद्र है। पश्चिम-पार्श्व में अरब सागर तथा पूर्व-पार्श्व में एक ८० से १०० मील लम्बी क्वीलोन पर्यन्त नहर है। सारे माल का यातायात इस नहर के द्वारा होता है। मोटर बोट, लाइटर तथा किश्तियों में माल भरकर इस नहर के द्वारा कोचीन बन्दर पर पहुँचता है।

तथा वहाँ से परदेश के लिए चढ़ता है। यात्री भी इस नहरमार्ग से यात्रा करते हैं।

त्रिवेन्द्रम् रोम शहर की भाँति पहाड़ियों पर बसा है। वहाँ की आबादी ११ लाख की है। वहाँ पर दो दिवस तक हम ठहरे। देखने योग्य स्थलों में कालेज, कौडियार महल (मा. राजप्रमुख का महल) लेजिस्लेटिव चेम्बर, विक्टोरिया ज़ुबिली, टाउन-हाल, युनिवर्सिटी आदि मुख्य इमारतें हैं तथा म्यूज़ियम, जू, आर्ट-गैलरी जहाँ पर तिब्बत, चीन, जापान, बेलण्डीस आदि के चित्र हैं। राजा रवि वर्मा का पश्चिमी रीति का चित्र तथा उसी प्रकार महान् चित्रकार सर निकोलस रोकी का भी चित्र है।

अक्वेरियम जो कि एशिया में बड़े से बड़ा है, विशेष देखने लायक है। शीशे की फ्रेमवाले २५ कांक्रीट के तालाबों में भिन्न भिन्न प्रकार की मछलियाँ रखने में आयी हैं।

श्री पद्मनाभ स्वामी का मन्दिर-शेषनाग की अनन्त शय्या पर शयन करते हुये भगवान् का समस्त भारत में ऐसा एक ही मन्दिर है। सात तेल्लोंवाला गोपुरम् (मिनारा) वाला यह मन्दिर अद्भुत शिल्पकला से परिपूर्ण है। दूसरे अनेक दर्शनीय स्थलों को देखा।

यहाँ सौराष्ट्र तथा गुजरात के भाइयों की बस्ती न्यून है। त्रिवेन्द्रम् से कन्याकुमारी गया। वह ५४ मील की दूरी पर है।

हिंदमहासाग, अरबीसागर तथा बंगाल का उपसागर - इन तीनों का यहाँ पर त्रिवेणी संगम होता है।

यहाँ का सूर्यास्त देखने जैसा है। भगवान् सूर्यनारायण जिस समय अस्ताचल पर पधारते हैं तब खूब समीप दिखाई पड़ते हैं तथा बहुत प्रकाश फैलता है। सूर्यास्त के बाद भी कुदरती दृश्य इतना सुन्दर दिखायी पड़ता है कि बहुत से लोग उसको देखने के लिए ही आते हैं। यहाँ पर पूर्णिमा के दिवस जिस समय सूर्य अस्त होता है उसी समय चंद्र का उदय होता है-यह विशेष देखने योग्य है।

यहाँ पर कन्याकुमारी देवी का भव्य मंदिर है। वहाँ पर दर्शन करने के लिए पुरुषों को केवल धोती पहन कर जाने की रज़ा है। स्नान करने के लिए यहाँ पर सुन्दर घाट बंधा है।

यहाँ पर एटम बम्ब में उपयोग होनेवाली थोरियम नाम की रेत प्रचुर मात्रा में है। पहले यहाँ से ही हज़ारों टन परदेश के लिए चढ़ती थी। परन्तु हाल में अपनी शान्तिप्रिय भारत सरकार ने

उसकी निकासी बन्द कर दी है।

श्री स्वामी विवेकानन्दजी ने अमेरिका जाने से पूर्व यहीं पर एक शिला पर बैठकर प्रभुप्रार्थना की थी। पूज्य महात्माजी ने भी यहीं समुद्र के मध्य शिला पर बैठकर प्रार्थना की थी।

हम सायं पाँच बजे कन्याकुमारी पहुँचे। सभी दर्शनीय स्थलों को देखकर रात्रि में ९ बजे हम पीछे त्रिवेन्द्रम् वापस आये।

तीसरे दिन त्रिवेन्द्रम् से कोटायम जाने के लिए रवाना हुये। रास्ते में संगनाशेरी नाम का गाँव आता है। थोड़े समय पहले ही अपने उपराष्ट्रपति डॉ. राधाकृष्णन् के वरद वस्तों से वहाँ पर एक नायर कालेज खोला गया है। वह बहुत सुन्दर जगह के ऊपर बना हुआ है तथा खेल-कूद के लिए बड़े बड़े मैदान और बगीचे बनाये गये हैं।

कोटायम ऊँची पहाड़ी पर आया हुआ हवा खाने का स्थल है। वस्ती ४५ हज़ार की है। यहाँ पर एक सीमेण्ट फैक्टरी है। प्रदेश पहाड़ी है। यहाँ पर रेलवे स्टेशन नहीं है परन्तु नहर के रास्ते से कोचीन के साथ जुड़ा हुआ है। हाल में अर्नाकुलम् क्वीलोन की नयी रेलवे लाइन होनेवाली है। उससे यहाँ पर रेलवे-स्टेशन होगा।

यहाँ पर इलायची और मिर्च की फसल बड़ी मात्रा में होती है। मिर्च की मौसम होने से रास्ते में स्थान स्थान पर मिर्च सुखाई जाती हुयी नज़र में पड़ती थी। कोटायम के पीछे चाय और रबर का प्लाण्टेशन शुरू हो रहा है।

कोटायम से टेकडी गया। यहाँ पर एक सुन्दर सरोवर है। उसे 'पेरियार लेक' के नाम से जानने में आता है। जिसकी लम्बाई दस मील तथा चौड़ाई २ मील है। उसमें से नहरें निकाल कर बिजली उत्पन्न की गई है। हाल में भी उसमें से नयी नहरें निकाल कर बड़ी बड़ी टरबाइनें लगाने का कामकाज चलता है।

सरोवर में मोटरबोट में फिरने के लिए बहुत से मौजी आते हैं। त्रावणकोर के महाराज ने यहाँ पर हवा खाने के लिए महल बनवाया है। योरोप, अमेरिका से जो यात्री हिन्द में आते हैं वे सब यहाँ पर आते हैं। पू० पण्डित जी भी थोड़े दिवस आराम करने के लिए यहाँ रहे थे।

यहाँ पर हाथी, बारहसिंगा, हिरण आदि बहुत से उत्तम पशु

देखने में आते हैं। कभी कभी चीते का भी दर्शन हो जाता है।

इस तरफ ईसाई हुये हुये खेती करके श्रीमान् बन गये हुये अनेक कुटुम्ब बसते हैं। एक वर्गमील में लगभग १,२०० मनुष्यों की बस्ती आती है। इतनी घनी आबादी किसी भी भाग में नहीं है।

हम पेरियार लेक में मोटरबोट में घूमे। हाथियों आदि को देखकर दोपहर का भोजन करके हम मदूरा जाने को रवाना हुये। यहाँ से मदूरा ८२ मील दूर है। मदूरा से तत्काल गाड़ी मिल गयी इसलिए सीधे श्री रामेश्वर गये। रामेश्वर में एक दिन रुककर खूब दर्शन किया। वहाँ से धनुषकोटी होकर दूसरे दिन मदूरा वापस आ पहुँचे।

मदूरा में एक दिवस ठहरकर श्री मीनाक्षी देवी के मन्दिर को देखा जो बहुत ही देखने लायक है। तथा तालाब पैलेस आदि दर्शनीय स्थलों को देखकर त्रिचिनापल्ली गये।

त्रिचिनापल्ली से तंजोर गया। तंजोर यहाँ से ३३ मील है। यहाँ पर शिवपार्वती का १३००-१३५० वर्ष पुराना मन्दिर है। यहाँ पर ताँबा, पित्तल के बर्तनों पर हाथ कारीगरी का काम बहुत सुन्दर बनाया जाता है।

तंजोर से त्रिचिनापल्ली वापस आकर मद्रास होकर दसवें दिन बम्बई वापस पहुँचा।

इस सारी यात्रा के अन्दर मैंने देखा कि मलबार किनारे की बस्ती का बड़ा भाग शिक्षित है तथा ७५ प्रतिशत ईसाई धर्म का पालन करते हैं। सारे मार्ग में गाँव की कोई सीमा नहीं है। रास्ते में मकानों की पंक्तिमाला चालू ही रहती है। छोटी ऊँचाई के परन्तु सुविधावाले खूब स्वच्छ और सुन्दर मकान हैं।

समस्त मार्ग में शिक्षण के लिए स्कूल हैं। हर चार छः मील पर एक हाईस्कूल तथा हरएक दस बीस मील पर एक कालेज है।

इस स्थान पर शिक्षा के साथ मानवता के गुण भी देखने में आते हैं। विद्यार्थी और विद्यार्थिनियें साथ चली जाती हों परन्तु दोनों की निर्दोष भावना देखकर मान पैदा होता है। उनके स्वच्छ कपड़े, नम्रता, विवेक, मार्ग पर बीच में न चलकर दोनों फूटपाथों पर चलने की आदत देखकर अपने को सहज संमान की भावना पैदा होती है। जब कि अपने यहाँ सौराष्ट्र में मैंने कितनी ही जगहों पर देखा है कि मनुष्यों को उल्टा चलने की बुरी आदत

पड़ गयी है।

इस तरफ जगह जगह पर शिक्षा के धाम हैं। जब कि सौराष्ट्र में जहाँ भी देखो वहाँ अज्ञानता दृष्टि में आती है।

इस तरफ ईसाई मिशन बहुत अधिक हैं। इन लोगों ने अपने धर्मप्रचार के साथ मानवसेवा भी खूब की है। दूसरे कितने ही धर्मों ने धर्मपरिवर्तन के लिए जो जुल्म किये हैं वैसा जुल्म ईसाई मिशनों ने नहीं किया है। परन्तु ग़रीबों की सेवा, स्वच्छता, उच्च-शिक्षण, मानवता आदि उच्च गुणों को जनता ने उनके सहवास से सीख सकी है। वे अंग्रेज़ों के सहवास से स्वच्छता से रहते हैं तथा शिक्षा लेते हैं। भाषा तामील होने से कुछ समझ में आता नहीं परन्तु अंग्रेज़ी का प्रचार अधिक है।

समस्त मलबार किनारे पर वर्षा १०० से १५० इञ्च जितनी पड़ती है। वहाँ की मुख्य पैदावार नीचे लिखे अनुसार है —

नारियल :- जो वहाँ के कल्पवृक्ष के सदृश है। भारत में नारियल की पैदावार इस प्रदेश में बड़ी मात्रा में होती है। एक समय ऐसा था कि समस्त जगत् को नारियल की गिरी और नारियल यहाँ से पूरा पड़ता था। परन्तु समय बीतने पर नारियल का उपयोग साबुन, सुगंधित तेलों तथा खाने में ज्यों ज्यों अधिक बढ़ता गया त्यों त्यों न्यूनता पड़ती गई। हाल में भारत सरकार ने नारियल के वृक्ष को जितनी चाहिए उतनी खाद देकर नारियल की उपज बढ़ाने के लिए एक जाँच समिति नियुक्त की है।

रस्सी :- नारियल तोड़ने के बाद उसका फल तथा छाल पृथक् करने में आते हैं। पहले इस छाल का प्रयोग जलाने में हुआ करता था। परन्तु समय बीतने पर उसमें से रस्सी बनाने का उद्योग हाथ में लगा। इस छाल को तीन चार मास खारे पानी की ज़मीन में गाड़ने में आता है। जितना ज़्यादा समय यह ज़मीन में अधिक रहे उतना मज़बूत बनती है। मुद्दत पूरी होने पर इस नारियल के बाल को ज़मीन में से निकालने में आता है। उसके बाद इसे कूटने में आता है। इस कूटी हुई छाल में से रेशे जिसे वे लोग अगरी कहते हैं - वह बनता है। इन रेशों से रस्सी बनती है। चर्खे के सहारे से जैसे रूई से सूत बनता है वैसे ही लकड़ी के एक यंत्र की सहायता से रस्सियाँ तैयार होती हैं। पतली और मोटी दोनों प्रकार की रस्सियाँ तैयार होती हैं। इन रस्सियों से

पायदान, चटाई आदि तैयार हैं। यह सब हाथ की मेहनत से होता है। आवश्यकता पड़े तो यंत्रों की सहायता ली जाती है। पायदान केवल भारत में ही नहीं बल्कि विदेश के लिए भी भारी संख्या में जाता है।

बम्बई, कलकत्ता, रंगून, कराँची आदि स्थानों में इस रस्सी की खूब माँग है। रस्सी का मुख्य उद्योग अल्पाई में है, हरएक गाँव में हाथयंत्र की फैक्टरियाँ भी हैं। यह उद्योग गृहउद्योग के रूप में बस्ती का आधा भाग इस उद्योग पर निर्भर रहता है।

• मिर्च :- यहाँ से निकास होनेवाली वस्तुओं में मिर्च अग्रगण्य स्थान रखती है। दूसरे विश्वयुद्ध के दरम्यान मिर्च की सब से अधिक उपज करने वाले इण्डोनेशिया में खाना-खराबी होने से मलबार की मिर्च को अच्छा अवसर मिला। मिर्च का भाव प्रति हण्ड्रवेट १२५ रूपये था। उसमें से बढ़कर चार हज़ार रूपयें जितना होगया। अमेरिका लगभग ७५ प्रतिशत माल खरीदता था। इण्डोनेशिया फिर से मिर्च का उत्पादन बढ़ाने लगा। इससे यहाँ की मिर्च की खपत विलायत में न्यून भाव पर होती है। हाल में उस प्रति हण्ड्रवेट भाव एक हज़ार रूपये के आस-पास है। मिर्च की खेतीवाड़ियों तथा खेतों में वृक्ष पर वेल चढ़ाकर होती है। बोंने के बाद लगभग तीन वर्ष तक फल आता है। इसके गुच्छे होते हैं। पक जाने पर उतार कर सुखाते हैं। सूख जाने पर काली पड़ जाती है। मिर्च थोड़े वर्ष रख छोड़ने पर बिगड़ती नहीं। एक एकड़ ज़मीन में तीन चार हण्ड्रवेट मिर्च तैयार होती है। मिर्च का मौसम नवम्बर से अपरैल पर्यन्त गिना जाता है। यहाँ पर इसकी खेती ९२ हज़ार एकड़ में है। पैदावार लगभग अठारह हज़ार टन होती है। ८० प्रतिशत माल विदेश जाता है- इसलिए लगभग १५ हज़ार टन की निकासी होती है। उसकी क़ीमत तीन करोड़ जितनी होती है। उतने ही प्रमाण में मिर्च अपने को डालर की पैदाइश कराती है कौर निकासी की चुंगी भी मिलती है।

इसके उपरान्त काजू, सोपारी, इलायची, हल्दी, चाय, काफी, रबर आदि बहुत सी पैदावार होती है।

अफ्रीका और दूसरे देशों में से बहुत से भारतीय घूमने आते हैं। वे दिल्ली, आग्रा आदि मुख्य शहरों को देखकर चले जाते

हैं और मानते हैं कि हमने देश देख लिया। उन लोगों को मेरी विशेष सम्मति यह है कि उत्तर में जिस प्रकार हिमालय में समृद्धि भरी पड़ी है, वैसे ही दक्षिण में मलवार तट पर समृद्धि भरी है। जब तक यहाँ पर लोग आते नहीं तब तक देश की सच्ची समृद्धि का पता चलता नहीं। दूसरे देशों को भी भुला देनेवाली सुन्दरता तथा समृद्धि यहाँ भरी पड़ी है। अफ्रीका के अन्दर काँगो जैसा हराभरा देश कहा जाता है उससे भी हराभरा और सुन्दर यह प्रदेश है। दूसरे देश के यात्री गाइड देखकर इस तरफ यात्रा के लिये आते हैं परन्तु अपने देशबन्धुओं को ऐसे विषय में दिलचस्पी तथा ज्ञान भी नहीं वैसा देखने में आता है।

उपसंहार

जीवन के अनुभवों के लिखने की शुरूआत जब कि तो मुझे स्वप्न में भी ख़्याल नहीं था कि इतने अधिक प्रकरण हो जावेंगे। मुझे अनुभव की बातें कहने की आदत सच्ची है परन्तु अनपढ़ मनुष्य होने से कहा नहीं।

'योरोप का प्रवास' और 'तपोभूमि बदरी-केदार' ये दोनों ही मेरे अनुभव की बातें हैं। मुझे छोटेपन से अच्छी पुस्तकें पढ़ने का शौक़ था।

बचपन में मुझे नाश्ता के लिए दो चार आना मिलता था। उसमें से नाश्ता न लेकर किताबें ख़रीदता था। यात्रा में भी मेरे पास पुस्तकें होती हैं। कुछ भी समझने की शक्ति आयी है तो उस वाचन और देशाटन से आयी है। उत्तम पुस्तकों से और देश विदेश फिरकर मैंने ज्ञान प्राप्त किया है। उपन्यास मैंने पढ़ा नहीं, चन्द्रकान्त के तीनों ही भाग में से वार वार दृष्टान्त पढ़ा है। ऐतिहासिक पुस्तकें भी पढ़ीं हैं। एक वार मेरे एक मित्र को पुस्तक लिखनी थी। उसने १५ दिन तक रोटी अपने हाथों पकायी। वरडा पर्वत पर घुमली के शोधने के लिए हम खूब घूमे। सोन-कंसार और लाखापत बावरिया की बात जानने के लिए सिन्दूर और पेंसिल की सलाई ले जाकर पाटी पर घोटकर अक्षर लिखा। गाँव गाँव में ये पाटियाँ खड़ी हैं। ऐसा लोकसाहित्य स्व. मेघाणी भाई ने इस देश को पूरापूरा दिया। मेह-उजली, हलामण जेठवा, सोन-कंसारी आदि के शुद्ध प्रेम का यह किस्सा हमने पढ़ा और सुना। बहुत वार हमारे यहाँ मेहरों और नागड़ियों के मध्य संग्राम हुआ। उसमें घायल हुये को रक्त से लथाफथ चारपायी पर डालकर लोग लाते थे तो उस समय ऐसी लोक-वार्तायें याद आती थीं। आज तो खरा प्रेम, खरी भक्ति, खरा शौर्य, सच्चा हृदय भाग्य से ही देखने को मिलता है। जहाँ देखें वहाँ कृत्रिमता दिखायी देती है।

अफ्रीका में साइकिल पर एक दिवस में सौ मील और पैदल पचास मील का सफर करता था तो थककर बीच में विश्राम लेने के लिए लम्बा होकर सोता था। उस समय थेले में एकाधी पुस्तक साथ होती थी वह पढ़ता था। पुस्तक न हो तो आकाश के सामने देखकर विचार करता था। जगत् के अन्दर सुख-दुःख क्या है? परमेश्वर कहाँ होगा? भगवान् ने जगत् किसलिए बनाया होगा? छोटी उम्र, थोड़ी पढ़ाई - इसलिए अनेक विचार आते थे। कहीं भगवान् मिलें पूछकर देखना चाहिए - ऐसा होता था - परन्तु यह बालपन का अज्ञान था। आज अधिक समझ में आता है: सुख-दुःख केवल मन का माना हुआ विकार है। यह हृदय में उत्पन्न हुई छाया है।

छोटी वय में धन्धे से जुड़ जाने के कारण मैं बहुत पढ़ नहीं सका - इसका दुःख मन में रह गया। इसलिए अपने बालकों को मैंने पढ़ाया। अपने तीनों ही पुत्रों को उनकी इच्छा और सुविधा के अनुसार न्यूनाधिक अध्ययन कराया। अपनी दोनों पुत्रियों को स्नातिका-ग्रेजुयेट करने के बाद इंग्लैण्ड और अमेरिका भेजकर उनकी इच्छा के अनुसार पढ़ाई का प्रबन्ध कर दिया। अपने पुत्रों को भी जापान, योरोप, अमेरिका आदि स्थानों पर भेजा। विश्व-यात्रा करायी। इस प्रकार मैंने अपने कर्तव्य पूरा करने का सन्तोष लिया।

अपने जिस जगह खूब ही आनन्द किया हो, अथवा जहाँ अपने स्वयं सुखी हुये हों, वह जगह देश में हो अथवा भले ही परदेश में हो, परन्तु वह अपने को बहुत याद आती है। ऐसे सुखदायक स्थल का संस्मरण स्मृति-पट से कभी भी हट सकता नहीं। जिस समय ऐसी जगह की स्मृति अपने हृदय में स्फुरित होती है उस समय अपने को कोई वर्णन न कर सके - ऐसा आनन्द आता है। तथा इस प्रकार भूतकाल की पुरानी स्मृतियाँ अभी कल ही बनी हों, वैसा लगता है। ऊपर दिखलाया हुआ कोई भी कुदरती भाव मुझे बहुत बार ईस्ट अफ्रीका के प्रदेशों का हृदय में उठ पड़ता है। क्यों कि इन स्थूल लगते स्थलों के साथ सम्बन्ध भी अपने किसी पूर्व ऋणानुबन्ध से बँधा हुआ होता है।

सन् १९०१ से आज दिन पर्यन्त मैंने अफ्रीका की ४५ सफरें की हैं। सामान्यतया प्रतिवर्ष एक सफर तो होती थी, परन्तु बीच बीच में कई बार ऊपर-ऊपर रुक भी जाता था, उसी प्रकार एकाध

वार यहाँ भी रुक गया। विधि की विचित्रता तो यह है कि, ऐसा होने पर भी हाल के क़ायदों के अनुसार मैं इतनी यात्रायें भी कर आया हूँ और वहाँ के विकास में यथाशक्ति सहायता भी दी है परन्तु वहाँ के वतनी होने का पात्र नहीं बन पाया हूँ - क्यों कि वहाँ पर पाँच वर्ष से ज़्यादा अखण्डरूप से रहना चाहिए, सो मैं रहा नहीं।

× × ×

व्यापार के कामकाज में तथा संस्थाओं के संचालन में हमें कितने ही उत्तम साथी मिले हैं; उसी से इतने अधिक काम के लिए मैं पहुँच पाया हूँ। भाई वल्लभदास अफ्रीका में साइसल का काम संभालते थे। वे बीमार पड़े। तबियत इतनी तक बिगड़ी कि उन्हें स्वदेश में लाना पड़ा। वहाँ उनका खूब उपचार किया। उन्हें कैन्सर का दर्द हुआ। यह पीड़ा जीवहर निकली। उनके अवसान से मूझे बहुत आघात पहुँचा। वे मेरे लिए सगे भाई से विशेष थे। उनका प्रेम भरत जैसा था। लक्ष्मण जैसी उनकी भक्ति थी। उन्होंने मुझ से पूछे बिना कोई काम नहीं किया। सगे भाइयों के साथ न हो ऐसा प्रेम, मीठापन, भाई वल्लभदास की तरफ़ से मिला। उन्होंने रात्रि-दिन को बिना देखे काम किया। उनके सहकार से ही रूई का इतना व्यापार खिला हुआ बना सका। उनका स्मरण आते ही हृदय भर आता है।

बड़े भाई का देहान्त २४ वर्ष पूर्व हो जाने से कुटुम्ब का सारा व्यवहार मेरे सिर पर आ पड़ा। ये सभी भार कुटुम्ब का बड़ा होने पर समझा जा सकता है।

मेरे छोटे भाई मथुरादास टाँगानिका में कामजाज संभालते थे। वहाँ पर उन्होंने व्यापार खिलाया। बाद में वे जुदा हुये और स्वतंत्र कामकाज प्रारंभ किये। दार-ए-सलाम में उन्होंने आर्य-समाज मन्दिर स्थापित किया। कन्याशाला स्थापित की तथा सार्व-जनिक कामों को विकसित किया। उनका दुःखद अवसान हुआ। मेरे जीवन में एक सगे भाई की बड़ी भारी कमी पड़ी।

मेरे चिरंजीवी खीमजीभाई ने लुगाज़ी फैक्टरी और दूसरे कामों को आठ वर्ष तक संभाला। उसके बाद अपनी पत्नी की तबियत खराब होने से वह व्यापार से और भाइयों से पृथक् हुआ। तथा योरोप जाकर रहने लगा। एक दूसरे का ऋण पूरा होता है

तब परस्पर लोग पृथक् होते हैं।

इस समय अफ्रीका का कामकाज चि. धीरेन्द्र भाई तथा चि. महेन्द्र भाई संभालते हैं। लुगाज़ी सुगर फैक्टरी, टी फैक्टरी, आयल रिफ़ाइनरी, कॉफ़ी फैक्टरी, थोड़ी सी जीनेरियाँ – इतना काम वहाँ पर रखा है। मेहता एण्ड सन्स अफ्रीका लि. एजेण्ट के रूप में व्यवहार चलाती है। देश में महाराणा मिल्स, वेजिटेबल फैक्टरी, जीनप्रेस – इतना व्यापार मैं देखता हूँ। इस कामकाज में श्री. जेठालाल भाई राडिया (चि. धीरेन्द्र भाई के मामा) मुझे अमूल्य सहायता कर रहे हैं।

आर्यकन्या गुरुकुल का कार्य चि. सविता बहन ने खूब उत्साह से चलाया और विकसित किया। उसके पीछे नव वर्ष में अपने को घिसा डाला। मेरी छोटी पुत्री चि. निर्मला बहन बनारस यूनिवर्सिटी की बी. ए. की पास की और इसके साथ कार्य में लग गई। गुरुकुल तथा चि. सविता बहन की सेवा-सुश्रूषा में अभी तक वह ब्रह्मचारिणी का जीवन व्यतीत कर रही है। चि. सविता बहन तबियत की खराबी के कारण हवाफेर के लिए बाहर गयी हैं – इस कारण इस कार्य की संभाल मैंने स्वयं पर रखी है। मुझे तथा मेरी धर्मपत्नी के लिए कन्यागुरुकुल महातीर्थ जैसा बना हुआ है।

मेरे भाइयों और साथीदारों ने व्यापार के कार्य में मुझे सहायता की। शिक्षणकार्यों में मेरी पुत्रियों और शिक्षानिष्णात मित्रों की मदद मिली, परन्तु मेरे छोटे बड़े सभी कार्यों में – व्यापार तथा सार्वजनिक कार्यों में, जंगल, दरियाई, हवाई मार्गों के प्रवासों में मेरे साथ रहने वाली मेरी धर्मपत्नी का सहयोग मुझे कन्याशिक्षण के लिए भी निरन्तर मिला है। उनकी तरफ़ से मुझे निरन्तर प्रोत्साहन मिला है।

अफ्रीका के जंगलों में जीनेरियों के निरीक्षण कार्य के लिए मैं मोटर में जाता था तो बहुत वार मेरी पत्नी मेरे साथ आती थी। वह भागीदारों के परिवार के साथ एकरूप बन जाती थी। स्वदेश आने को था तो उस समय स्टीमर की यात्रा में अधिकांश में साथ रहती थी। कामकाज और आनन्द-प्रमोद में हौसले के साथ भाग लेती थी। एरोप्लेन की यात्रा में भी वह साथ ही रहती है। मेरी हिमालय की यात्राओं में एक श्रद्धालु की भावना से साथ आयीं गतवर्ष मेरी पुत्री चिरंजीवी सविता बहन की उपचर्या के लिए वे

स्विट्ज़रलैण्ड गयी थीं। उस समय उन्होंने समस्त यारोप का प्रवास किया। मेरी तरह उन्हें भी स्कूल की पढ़ाई थोड़ी मिली है। परन्तु धार्मिक संस्कार और व्यावहारिक ज्ञान से मेरे हरएक कार्य में वे बुद्धिपूर्वक साथ देती हैं। लाखों की रक़म के धर्मादे में उन्होंने सम्मति दी है, और इतना ही नहीं, अपनी रक़मों का दान भी दिया है।

जीवन के कठिन क्षणों में उनकी सहायता और प्रेरणा मुझे मिली है। मेरे साहस और उन्नति में उनका भारी भाग है।

अफ्रीका में व्यापार बढ़ाना, भारतीय भाइयों को वहाँ पर बसाना, अपने देशकी बेकारी को कम करना, यह मेरी एक धुन थी। बरडा प्रदेश के मेहरों तथा दूसरे लगभग दो हज़ार भाइयों को मैं अफ्रीका ले गया। उनमें से बड़ी संख्या में लोग अफ्रीका में जाकर बसे है। उनके ग्रामों में अफ्रीका की कमायी आने से गाँव उन्नत हुये, समृद्धि बढ़ी और खेती-बारी सुधरी। उनके देशान्तर में बसने से स्वभाव में भी भारी परिवर्तन हुआ है। अब भारतीयों के नियम कड़क बनते जा रहे हैं। अफ्रीका के मूलनिवासी जागृत हो गये हैं। वे विदेशी सत्ता को निकाल फेंकने में तत्पर हो गये हैं। ऐसी स्थिति में भारतीयों के वास्ते अफ्रीका का स्थान छूटता जा रहा है।

मैं बहुत थोड़ा पढ़ा हुआ हूँ। अपने बल और बुज़ुर्गों के पुण्य से जो मिला है उसमें ही सन्तोष मानता हूँ। लाभ-हानि भाग्य की बात है। निश्चय किया होता तो दूसरे दस-बारह उद्योग भी खड़े कर सकते थे। अभी भी शक्ति है परन्तु इच्छा नहीं।

महात्मा तुलसीदासजी ने रामायण में एक दोहे में कहा है:-

"तब लग कुशल न जीव कहँ,
सपने हुँ मन विसराम,
जब लग भजत न राम कहँ,
सोक धाम तजि कामा।"

अन्दर की समस्त इच्छाओं को छोड़कर मन जिस समय श्रीराम का रटन करता है उस समय जीव को शान्ति मिलती है और आत्मा का कल्याण होता है।

यह मेरे जीवन के अनुभवों का सार है।

॥ ॐ शान्ति ॥

परिशिष्ट

१. हाल की परिस्थिति के सम्बन्ध में कुछ एक विचार।
२. सदाचार।
३. दान की यादगार।

वर्तमान परिस्थिति के बारे में कुछ एक विचार

वर्तमान में अपने देश तथा दुनिया की परिस्थितियों के सम्बन्ध में मुझे जो विचार आते हैं उन्हें मैं यहाँ पर अपनी टूटी-फूटी भाषा में उपस्थित करता हूँ।

भारत में इस समय जो राज्य-व्यवहार चल रहा है उसमें बहुत से बुद्धिशाली महापुरुष हैं और बहुत से पवित्र और त्यागी पुरुष हैं। उन्होंने देश के लिए जीवन दे दिया है। काँग्रेस का ध्येय ऊँचा है। उसके प्रधान पू० पण्डित जी देश के महान् नेता हैं। राष्ट्रपति पूज्य राजेन्द्रप्रसाद तथा दूसरे अनेक नेता देश को ऊँचा उठाने में रातदिन कष्ट उठा रहे हैं। परन्तु उनकी मेहनत की मात्रा के अनुसार देश की उन्नति जल्दी नहीं हो रही है। उसके कारण काँग्रेस जैसी महान् संस्था आज प्रयत्न कर रही है फिर भी आज जो वाद खड़े हो गये हैं - उनके कारण देश की उन्नति रुक रही है। सामान्य जनता में बुद्धिभेद पैदा हो रहा है और आदमी के मध्य अन्तर बढ़ता जा रहा है। यह वस्तु देश की शान्ति के लिए खतरनाक है - ऐसा बहुतों को लगता है।

- बेकारी दूर करने का उपाय -

आज देश में जो पूँजी है उसे एकत्र करके बाँट देने से समृद्धि नहीं बढ़ती और असमानता भी दूर नहीं हो सकती। अपने देश में लगभग १४ से १५ अरब की नोटें तथा लगभग २५ अरब के ज़रजवाहिरात मिलाकर कुल लगभ पैंतीस-चालीस अरब की सम्पत्ति है। यदि वह प्रत्येक मनुष्य के मध्य बाँट देने में आवे तो हरएक के हिस्से में लगभ एक सौ रूपया आवे परन्तु वैसा होने से देश का दारिद्रय हट नहीं सकता। पूज्य सरदार जी भी ऐसा कहते थे। ऐसा होने से उल्टा देश के बड़े उद्योग टूट जावेंगे। तथा भुखमरी बढेगी। बेकारी दूर करने के लिए आदमियों को काम करने की ज़रूरत है। देश में जो श्रमशक्ति पड़ी हुई है उसे काम में लगानी

चाहिए। आगे के ज़माने के साथ तुलना करने जावेंगे तो बाद में गुलाम बन जावेंगे। तथा जगत् के वादों के साथ टिक नहीं सकेंगे।

अपने देश के पढ़े लिखे आदमी स्वयं मेहनत नहीं कर सकते हैं। उन्हें इस प्रकार की शिक्षा मिली नहीं है। सैनिकशिक्षा लें तो श्रम के प्रति तिरस्कार कम हो, अनुशासन पला जावे और नवजीवन आवे।

अपने देश की बेकारी हटाने के लिए खूब लम्बी दृष्टि से विचार करके योजना बनानी चाहिए। इस समय चल रहा हुआ प्रयास पर्याप्त नहीं। अपने देश की बस्ती सन् १९८१ में ६० करोड़ की होगीं – ऐसा अन्दाज़ा दो-एक मित्रों ने मुझे बताया। उनके पोषण के लिए छोटे-मोटे उद्योगों को बढ़ाना चाहिए। आज दुःखी भारत से अनावश्यक वस्तुओं के पीछे अत्यधिक धन परदेश को खिंचता जा रहा है। उस ओर सरकार, जनता के शिक्षित वर्ग, व्यापारी, धर्मगुरु लोग, साधुसन्त लोगों के ध्यान देने की ज़रूरत है। भूदान और सम्पत्ति-दान के लिए आज देशव्यापी आन्दोलन चल रहा है। चाय, बीड़ी, तम्बाकू, पान, सिनेमा आदि व्यसन घर कर गये हैं उन्हें छुड़ाने की ज़रूरत है। ऐसे व्यसनों की पकड़ यह महारोग है। उसे हटाने के लिए जीवन अपूर्ण करनेवालों की प्रथम आवश्यकता है। सब से पूर्व अपने देश में जैसे अफीम बन्द की गई उसी प्रकार दूसरी बातों में भी करना चाहिए।

– बीड़ी – सिगरेट –

आज से सौ वर्ष पहले गाँवों में बीड़ी तम्बाकू नहीं थे। हुक्का किसी किसी स्थान पर देखने में आता है। वह भी अपने बाड़े में तम्बाकू पैदा करके, दिवस में दो समय सहस्रों में कहीं एकाध आदमी पीता था। इस समय सौ पीछे ८० आदमी बीड़ी, तम्बाकू और सिगरेट के व्यसनी बन गये हैं। इस समय तो स्त्रियाँ भी पीने लगी हैं। यह भारी दुःखद बात है। उसमें करोड़ों रूपये और स्वास्थ्य दोनों की हानि होती है। सीने का दर्द, दम, क्षय, आदि का लोग शिकार बनते हैं। इसके कारण घर में, बाज़ार में, रास्ते पर जहाँ देखो वहाँ गन्दगी अधिक पड़ती है। अनाज के बदले लाखों एकड़ में तम्बाकू बोया जाता है। उसे क़ीमती खाद दी जाती है। अफीम की तरह इस वस्तु के भी बन्द करने की ज़रूरत है जिस से

लोगों की तन्दुरस्ती बढ़े। नन्हे कोमल बालक भी इन व्यसनों के शिकार बनते हैं। इससे सब से पूर्व इसके लिए आन्दोलन उठाने की ज़रूरत है। उसके बाद दियासलायी का कारखाना शुरू हुआ, जो करोड़ों रूपये बर्बाद करता है तथा लाखों टन जंगल की लकड़ी खा जाती है, जो वृक्ष बाद में बोये नहीं जाते। साथ ही बीड़ी की तैयारी के लिए वृक्ष के कोमल पत्ते काटे जाते हैं जिससे वर्षा के लिए उपयोगी जंगलों का नाश होता है। परिणामतः वर्षा घटती है।

सिगरेट की भी यही दशा है, इसके पीछे विलायती मशीनरी, कागज़ तथा रसायन बर्ते जाते हैं। मेरी अपनी फैक्टरी थी - इससे मुझे मालूम है।

– चाय –

आज से पचास वर्ष पहले चाय नहीं थी। चाय ने घी, दूध तथा छाछ का दुष्काल डाल दिया है। इस समय एक मनुष्य का कम से कम पन्द्रह रूपया प्रत्येक मास में चाय में जाता है। उसीके पीछे कप-रक़ाबी का कारखाना खड़ा हुआ, कोयला, लकड़ी आदि की बर्बादी होती है। इसके पीछे भारत में प्रत्येक वर्ष २२ लाख टन खाँड चाहिए और कितनी अधिक चाहिए इसका अभी अनुमान किया नहीं जा सकता है। परन्तु लोग स्वास्थ्य के लिए खाँड खायें- इसमें हरक़त नहीं परन्तु लाखों मन खाँड जो इसमें खर्च होती है वह तन्दुरस्ती के लिए हानिकारक है। योरोप ठण्ढा प्रदेश है, वहाँ पर चाय की ज़रूरत है, अपने गर्म देश में उसकी आवश्यकता नहीं। तिसपर भी सारे दिन में चाय का काढ़ा करके पीते रहते हैं। वह मीठा विष हो जाता है। इसका परिज्ञान लोगों को नहीं है। परिणाम में धातु-क्षीणता, मन्दाग्नि तथा हड्डी तथा शरीर गलता है। इस समय लाखों एकड़ ज़मीन में चाय की खेती होती है। अपने यहाँ अनाज की तंगी है, बाहर से मँगाना पड़ता है। जिस ज़मीन में अच्छे से अच्छा चावल हो सकता था उसमें चाय की खेती की जाती है। ईख में भी ट्रान्सपोर्ट के लिए लाखों वैगन और मोटरलारियाँ रुकती हैं। इसके उपरान्त छः से आठ लाख टन बाहर से मंगानी पड़ती है। जो देश गुड़ से चलाता था तथा स्वास्थ्य भोगता था; वह आज पश्चिम का अन्धाधुंध अनुकरण करके गन्दगी वाले, अनेक प्रकार के रोगों का घर जैसे, जहाँ खड़ा रहने का भी इच्छा न हो ऐसे सड़े हुये होटलों में चाय पीते हैं। पश्चिम के होटलों, चाय

बनाने के तरीकों और अपने में जमीन आस्मान का फर्क है। वहाँ कितनी स्वच्छता और सुघड़पना होता है। यहाँ गाँव गाँव में चाय की होटलें बढ़ती जाती हैं। वह देश को कहाँ ले जावेगी यह समझ में नहीं आता है। जब तक अपने यहाँ यह खराबी है तब तक देश से ग़रीबी और भुखमरी नहीं जा सकती। समाज-सुधारकों को इस काम में हाथ डालना चाहिए।

– लारी-बस –

लारी-बसों आदि गाड़ियों का व्यवहार आजकल खूब बढ़ गया है। उसमें कितनी दौड़ादौड़ी होती है। मौज शौक की चीज़ों में वर्त्ती जाती है। देश में ग़रीबी है तिसपर भी अरबों रूपये मोटर-बस, पेट्रोल, लुब्रिकेटिंग, टायर, ट्यूब तथा स्पेयर पार्ट्स के पीछे खर्च जाते हैं। समस्त देश का हिसाब लगायें तो प्रत्येक दिन करोड़ों रूपयों का नुकसान होता है। इसमें केवल पचास प्रतिशत उपयोगी और पचास प्रतिशत अनुपयोगी दौड़ादौड़ी होती है। चाहे जो भी आदमी हो परन्तु बस में यात्रा करने की आदत पड़ गयी है। लड़ाई के पूर्व ऐसा नहीं था।

– सिनेमा –

सिनेमों ने आजकल लोगों का जीवन नष्ट कर डाला है। इसमें से अनेक दोष आते हैं। मानवता और चरित्र की हानि हुई है। इसने दुराचार को बढ़ा दिया है। कितने ही कुटुम्बों की बर्बादी की है। उसीकी देखादेखी वैसे प्रकार के कपड़े, चालचलन टीपटाप रखने का फैशन हो गया है। सिनेमा अनेकों स्त्री-पुरुषों की विकृत वासनाओं के पोषण का साधन बन गया है। छोटे कोमल बालकों के लिए तो वह मीठा ज़हर है। देश को वह कहाँ ले जावेगा यह समझ नहीं पड़ता है। यद्यपि सिनेमा की गिनती एक उद्योग में होती है, परन्तु सरकार को उसके लिए इसका राष्ट्रीय-करण करके प्रजा को अनुकूल सुन्दर संस्कार देवें ऐसे उपयोगी चित्रों को उतरवाना चाहिए। आजकल छोटी बालिकाओं ने कसने वाले फ्राकों से अपनी छाती के भागों की मर्यादा को छोड़ दिया है। पैर खुला होता है। अर्धनग्न जैसा ड्रेस छोड़ना चाहिए। योरोप में भी मैंने ऐसा नहीं देखा।

चाय, सिगरेट, सिनेमा, मोटर-सवारी आदि धीमे और मीठे विष हैं। ग़रीबी बढ़ाने वाले अनिष्ट ज़हर हैं।

– फोटोग्राफी और फटाकड़ा –

देश में आज फोटोग्राफी का शौक खूब बढ़ गया है। चाहे कोई भी युवक हो उसके कन्धे पर केमरा लटकता दिखलायी पड़ता है। उसमें यह गर्व समझता है। इसी कारण देश में से चित्रकला का नाश हुआ है। आवश्यक और अनावश्यक फोटो लेने का आजकल व्यसन हो गया है। इसमें अपने को लोग बड़ा भारी कलाकार मानते हैं। देश के करोड़ों रूपयों की इसमें बर्बादी होती है। केमरा, फिल्म तथा उसमें लगने वाले रासायनिक पदार्थ भारत में नहीं बनते हैं। भारत में दीपावली पर प्रतिवर्ष लगभग दस करोड़ रूपयों का पटाखा फोडा जाता होगा। उसमें भारी जीवहानि होती है। आग लग जाती है और उससे करोड़ों रूपयों का नुकसान भी होता है। यह भी एक प्रकार का रोग है। इससे बचने के लिए काँग्रेस को यह प्रश्न हाथ में लेना चाहिए और सरकार को भी ज़रूरी क़ायदा बनाकर इस बुराई को हटाने का प्रयत्न करना चाहिए।

भारत में मानवता, सदाचार, सद्बुद्धि और आरोग्य – सुख को लाना हो तो उपर्युक्त वस्तुओं को तिलांजलि देने की ज़रूरत है। इन चीज़ों के कारण बहुत से मनुष्यों ने शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक शक्ति गुमा दी है और गुमाते जा रहे हैं।

कितनी चीजें ऐसी हैं कि जनता समझाने से नहीं समझती है परन्तु जनहित का विचार करके उसके लिए कठोर नियम बनाने चाहिए। जापान ने आयात की बन्दी करने के लिए कठोर पग उठाया तो वहाँ के लोग स्वदेशी वस्तुएं बनाने और बरतने लगे। बैंक कमीशन तथा डालर जब तक मिलता है तब तक कोई भी व्यापारी ऐसा धन्धा छोड़ेगा नहीं।

सौ वर्ष पूर्व अपने बुजुर्गों को किसी चीज़ का व्यसन नहीं था। वे लम्बे नीरोग आयुष्य का उपभोग करते थे। आज भी ग्रामों में कितने ही खेडूत और मालधारी लोग ऐसा ही सादा व्यतीत करते हैं।

अपने से इन वस्तुओं के बिना नहीं रहा जा सकता यह केवल मन के कारण है। अफीम अब नहीं मिलता है तो उसके बिना कैसे चलता है?

लाखों टन तम्बाकू और करोड़ों पौण्ड चाय होती है। विदेश में भेजने के लिए चाय पैदा की जावे तो आवश्यक है। व्यापारी

दृष्टि से इन सभी बातों का विचार करना चाहिए। ऐसा हो तो देश की समृद्धि में अभिवृद्धि हो।

- आयात-निर्यात -

अपने यहाँ लगभग एक अरब रूपयों की बारीक तार की रूई बाहर से आती है तथा यहाँ से कम से कम लगभग दस करोड़ की क़ीमत की रूई निर्यात की जाती है। अपनी रूई का भाव एक गाँठ का लगभग तीन सौ रूपया है जब कि बाहर से आयात होनेवाली रूई का भाव प्रति गाँठ लगभग एक हज़ार से पन्द्रह सौ होता है। अपने व्यापार की यह स्थिति है। यदि बारीक माल बनानेवाली मिलें स्वयं जितने मूल्य का वस्त्र निकासी करती है उतनी ही क़ीमत की रूई का भी आयात हो तो सरकार को कुछ भी विनिमय दर न देना पड़े। इस प्रकार स्वतंत्रता देने में आवे तो देश का पैसा बाहर न जावे। इस समय कठिनाई से पचास से साठ करोड़ का कपड़ा बाहर जाता होगा।

- सहकार की भावना -

अभी हमारे देश की जनता में यह वृत्ति नहीं पैदा हुई है कि - यह हमारा देश है, ये सब हमारे भाई हैं तथा इनके लिए तन, मन, धन न्योछावर कर देना चाहिए। गाँवों में लोग प्राचीन समय में परस्पर सहकार से काम करते थे परन्तु वह भी आज रह नहीं गया।

जर्मनी में मैं जब उपचारार्थ गया था तब एक छोटे गाँव में भाड़े पर मकान लेकर रहता था। उस समय मैंने देखा कि इटैलियन और जर्मन किसान फसल काटने के समय एक मुहल्ले के सभी स्त्री-पुरुष एक किसान के खेत में फसल की लवनी करने जाते हैं। एक दो दिवस में ही उनका सब कार्य पूरा कर डालते है। बाद में सब दूसरे के खेत में जाते हैं। इस प्रकार बारी बारी से परस्पर मिल कर लवनी का काम पूरा कर देते हैं। किसीके घर में पाँच व्यक्ति हैं, किसी घर में तीन हैं तथा किसीके घर में एक ही लड़का काम करता है। किसीके घर में चार जवान होते हैं। जिनके घर में चार लड़के हैं उनके माँ-बाप कहते हैं कि 'प्रभु का धन्यवाद मानते हैं कि जिससे हमें पड़ोसी की इतनी अधिक सहायता कर सके। इनके एक ही लड़का है तो इनकी मदद करनी चाहिए।'

अपने देश में भी पहले ऐसी ही सहकार की भावना थी। एकता और मेल था। परन्तु आज इससे उल्टा ही दिखलायी पड़ता है। लम्बे समय तक विदेशी दबाव के नीचे रहने से जनता में अनेक दुर्गुण घर कर गये हैं। विश्वासघात, विना कारण झूठ बोलना, चोरी, ईर्ष्या, बेईमानी, मामूली बात में खूनखराबा, ठगी, आलस्य आदि दोष प्रजा में दिखायी पड़ते हैं। जो जनता कर्मवादी है उसमें सद्गुण फैलता है। जो प्रजा अकर्मण्य है उसमें पाप इकट्ठा होता है। जहाँ एकता न हो वहाँ पर दुःख पैदा होता है। जहाँ एकता नहीं होतीं वहाँ से लक्ष्मी विदायी लेती है।

एक व्यापारी के घर में भेद-भाव था। गृहक्लेश से तंग आकर लक्ष्मी घर छोड़कर जाने को तैयार हुई। समझदार व्यापारी ने कहा –' जावो भले ही परन्तु मेरे हाथ पर पग रखकर जाना।' लक्ष्मीने स्वीकार किया। उसने दान की शुरूआत की, दूसरे की भलाई में प्रसन्न रहने लगा। घर में एकता बढ़ी, पुण्य बढ़ा, शांति हुई और लक्ष्मी रुक गयी। लक्ष्मी बोली "अब मैं जा नहीं सकती। जिस दुःख से जा रही थी उसका आप लोगोंने निवारण कर लिया।"

अपने में परस्पर प्रेम, उदारता और सहकार की भावना जमेगी तभी ही देश की उन्नति होगी। दूसरे देशों की भांति अपनी जनता का मानस गढ़ना चाहिए। उसके लिए पुरुषार्थ और परिश्रम करने की आवश्यकता है। आज शायद इसकी खबर न पड़े – दस वर्ष बाद पता चलेगा। इसमें ऐसा होगा कि जो पैसे का लालची होगा, जो पैसे के लिये ही बुद्धि का उपयोग करता है वह देश को खा जावेगा।

उद्योग चलाने, राज्य-व्यवहार चलाने में पीढ़ी दर पीढ़ी के अनुभवों के शक्ति के सदुपयोग करने की आवश्यकता है। आज देश को आगे बढ़ाने में अपने देशनेता रातदिन कष्ट उठा रहे हैं। तिसपर भी चारों तरफ़ असंतोष और निराशा बढ़ती जाती है। मीठे विष की भांति देश स्वार्थ और संकुचितता में फँसता जा रहा है। दर्द बढ़ते दिन लगते नहीं। उसके निदान होने और क़ाबू में लाने में दिन लगता है।

आज बालकों एवं किशोरों पर स्वच्छन्दता का खोटा संस्कार पड़ता है। उसी वातावरण में खाये हुये अन्न का रक्त बनेगा, उसका वीर्य बनेगा और उसमें से आज प्रजा अथवा सन्तानें बनेंगी – वे

कैसी होगी इसकी कल्पना करो। सन् १९१४ से १९१९ पर्यन्त चले हुये महायुद्ध के पीछे पैदा हुई योरोप की प्रजा कैसी हुई? उसमें लड़ाई का मानस फैला। परिणामतः कैसी मारकाट वाली प्रजा हुई इसे हमने देखा। यह प्रजा सन् १९३९ में युवा बनी। सन् १९३९ से १९४६ पर्यन्त में वह जगत् के नाश करने में तत्पर हुई। अपने अभी इस दिशा में घसीटे जा रहे हैं।

इस सब को कहने और लिखने के लिये मैं बहुत छोटा मनुष्य हूँ। पूज्य बापू जी ने भारी तपस्या करके स्वराज्य दिलाया। उसका पूरा लाभ मिल नहीं रहा है। दिन-प्रतिदिन प्रज़ा कंगाल बनती जाती है। देश की संपत्ति बाँट देने अथवा एकत्र करने से अपने सजीव नहीं बन सकते, परन्तु एक दूसरे के सहकार से, राष्ट्रभावना से तथा कार्यशक्ति से उन्नत होंगे। जापान ने आठ वर्ष में चमत्कार करके बताया, भारी शक्ति बढ़ाकर चीन के साथ दस वर्ष तक लड़ा, महायुद्ध में जापान जापान की हार हुई। बाद में अपने कर्मवाद का बल बैठने लगा। ऐसा ही सर्जन अपने यहाँ भी होना चाहिए। पश्चिम का अनुकरण अपने संस्कार के अनुरूप नहीं। भारत की जनता का पेट इसे पचा नहीं सकता। जापान ने जो कुछ किया वह अपनी संस्कृति और ताक़त को विचार कर किया। हमें भी अपनी संस्कृति, शक्ति और परिस्थिति के अनुसार आगे बढ़ना चाहिए।

जर्मनी अन्तिम महायुद्ध में बिल्कुल टूट-फूट गया था। तिसपर भी १० वर्ष में वह पीछे ठीक होने लगा है। वीरजाति होने से अमेरिका जैसा बलवान् और समृद्धिवाला देश उसकी मैत्री करने निकला है। इसी ही रीति से अपने वीर पूर्वजों का वारसा ज्वलंत करना चाहिए।

– भिक्षा का प्रश्न –

दूसरे देशों में भीख माँगना लज्जास्पद गिना जाता है, जब कि अपने देश में भीख माँगकर खाने में मान समझते हैं। दूसरे देशों में भीख माँगना अपराध है जब कि अपने यहाँ इसे धर्म माना गया है। यह वस्तु गंभीरता से विचारने जैसी है। आज अपने देश में लगभग पचास लाख जितने स्त्री-पुरुष समाज के ऊपर केवल भाररूप बने हुये हैं। उन्हें अनिवार्यतया काम देना चाहिए। कम से कम छः से आठ घण्टे तक काम करना चाहिए। रोज़ प्रत्येक आठ आने का

कार्य करे तो भी रोज़ पच्चीस लाख का काम हो सके, महीने में साढ़े सात करोड़ और वर्ष का नवे करोड़ होवे। प्रत्येक मनुष्य चर्खा काते तो पचास लाख चर्खा चले। आदमी बैठे बैठे खाया करते हैं - इसलिए एक अरब का नुकसान होता है। जनसेवा-यह ईश्वरसेवा है ऐसा समझाकर प्रत्येक संप्रदाय साधु-संस्थाओं द्वारा वैसे नियम बनाने चाहिए। श्री रामकृष्ण मिशन के साधु जिस प्रकार सेवा करते हैं वह सब के लिए उदाहरण रूप है।

अपने देश में लोकतंत्र का महान् प्रयोग चल रहा है। उसको सफल बनाने के लिए ग्राम की जनता को तालीम देने की ज़रूरत है। अपने भजनीकों, कथाकारों, संगीतशास्त्रियों के द्वारा बिना किसी बदले की आशा के यह कार्य उठा लिया जावे तो स्वतंत्र प्रजा के रूप का भान लोगों में जागृत हो। सरकार को इस दिशा में विचार करके योजना बनानी चाहिए और जनता के नेताओं को इसमें सहकार देना चाहिए। आधे करोड़ जितने साधु माँगकर खाते हैं, समाज पर बोझरूप हो गये हैं। उनकी योग्यता के अनुसार कार्य देना चाहिए। प्रत्येक गाँव के पीछे दो दो साधु पड़े। गाँव उनके भोजनवस्त्र की आवश्यकता को पूरा करे। वे लोकसेवा के इस कार्य को उठा लें। साधुओं के पीछे वारसा तो पड़ा रहता नहीं। वे ऐसे सत्कार्यों से मान-दान प्राप्त कर सकते हैं। इस ज़माने में अब कोई भगवे वस्त्र की सेवा नहीं करता - परन्तु सेवाभाव देखेगा तो उसकी पूजा करेगा। पहले की भांति साधुओं को जनता का सच्चा सेवक और गुरु बनकर हृदय के साथ एक-रूप बनकर लोगों को बाँधना चाहिए। बर्मा, चीन, जापान आदि देशों में स्वच्छता, आरोग्य, गृह-उद्योग, देशरक्षा, आदि विषयों की शिक्षा साधुओं द्वारा देने में आती है।

- संगीत तथा नृत्यकला -

बालकपने के संस्मरणों को लिखते समय ग्राम-जनता में होनेवाले गरबे, रास, गर्बी आदि निर्दोष आनन्द की बातें मैंने लिखी हैं। संगीत और नृत्य ये मानवजीवन में आरोग्य और आनन्द को भरने वाले हैं। भारतीय नृत्यकला को प्राचीनकाल से जगत् में आदर दिया गया है। उसमें अपने खूब प्रगति कर रहे हैं, परन्तु आज नृत्यकला के नाम पर अधिकांश में विलास को पोषण प्राप्त हो रहा है। स्कूल अथवा गलियों में छोटी कुमारिकायें और युवतियें

निर्दोष गीत गाकर आनन्द लेती है – यह समाज का पोषक है, परन्तु आजकल सिनेमों में अर्धनग्न दृश्यों में गान–तान का अनुकरण होता है – इसमें भारत की अवनति है। युवक–युवतियों का जीवन इससे विगड़ जाता है। पश्चिम का अन्धा अनुकरण करने से कितनी ही बातों में हम पीछे पड़ गये हैं। आधुनिक नृत्यकला की भी ऐसी ही स्थिति है। जीवन की उन्नति के लिए आत्मा के शुद्ध आनन्द के साधनरूप में नृत्यकला आवश्यक है – ऐसा स्वीकार करने पर भी आज जिस प्रकार की हवा बहती है वह बहुत ही हानिकारक है–ऐसा मुझे लगता है। उससे भावी प्रजा को बचा लेना प्रत्येक माता–पिता, शिक्षक, समाज के अगुवों और प्रजा की सरकार का कर्तव्य है।

अपनी भारतीय कला–संस्कृति ऊँचे प्रकार की है। प्राचीन-काल से उसमें हमने कुशलता प्राप्त की है। अपने परदेश के प्रवासों में जगत् के अन्य देशों की कला–संस्कृति का मुझे परिचय प्राप्त हुआ है। वहाँ भी अच्छे कलाकार हैं। अपने जापान के प्रवास में मैंने देखा कि जो कोई जापानी विदेश जाना चाहे उसकी पहले परीक्षा होती है। जापान की प्रतिष्ठा विदेश में बढ़ा सके उसीको पारपत्र मिलता है। अपने यहाँ भी इस प्रकार का नियमन आवश्यक है। अपनी कला–संस्कृति का परिचय विदेशियों को सुयोग्यरीति से करा सकें वैसे ही कलाकारों को परमिट मिलना चाहिए। मेरा यह विचार "विश्व वात्सल्य" में ता. १६–१–५५ के अङ्क में सुन्दर रीति से प्रकाशित हुआ है – उस लेख में से कुछ महत्वपूर्ण अवतरणों को यहाँ पर देता हूँ :–

"स्वराज्य मिलने के बाद अपने देश से अनेक सांस्कृतिक प्रतिनिधि मण्डल विदेशों में जाते हैं और इसी प्रकार विदेशों से अपने देश में आते हैं। इनमें नृत्यकार होते हैं, साहित्यकार और संगीतकार होते हैं और दूसरे भी होते हैं। वे वहाँ जाकर भारतीय संस्कृति के प्रतिनिधि के रूप में एक दो मास व्यतीत कर आते हैं। यहाँ की कला का भी वहाँ के लोगों को अपनी शक्ति के अनुसार विचार देते हैं।

संस्कृति की व्याख्या करना किसी भी व्यक्ति के लिए कठिन कार्य है। यह जितना ही तथ्य है उतना ही तथ्यमय यह भी है कि केवल नृत्य, चित्रकला अथवा साहित्य–संगीत में संस्कृति नहीं समा जाती है। अवश्य इन कलाओं में भारतीय जीवन की छाप है।

इसमें भारतीय जीवन का दर्शन होता है, परन्तु सम्पूर्ण संस्कृति का समावेश इसीमें नहीं हो जाता है। इसलिए भारतीय कला का चाहे जितना निरूपण करने में आवे तो भी यह भारतीय कला का प्रदर्शन है। दूसरे देशों को उत्कृष्ट भारतीय कला का परिचय होता है परन्तु भारतीय संस्कृति तो इससे भी बहुत ऊँची वस्तु है, विशाल बस्तु है।

"यह एक बात हुई। वैसा ही एक दूसरा भी मुद्दा है। एक सुन्दर नृत्यकार अथवा संगीतकार कला के बाहरीरूप में निपुण है, परन्तु उसके जीवन में व्यसन है, वैभव और विलास है, लोभ और महत्वाकांक्षा से वह मस्त बना है तथा उसके जीवन में काम और क्रोध है। ऐसा व्यक्ति चाहे जितना भी सफल कलाकार हो परन्तु क्या हम उसे भारतीय संस्कृति का सच्चा प्रतिनिधि कह सकेंगे?

इस लिए जब एक देश दूसरे देश में सांस्कृतिक प्रतिनिधि भेजे तो उसे बहुत विचार करना चाहिए। संस्कृति का तात्पर्य कला, साहित्य अथवा संगीत नहीं है। संस्कृति का अर्थ जीवन है। जिसके जीवन के प्रत्येक व्यवहार में भारतीय जीवन का दर्शन होता हो वही अपने मत में भारत का सच्चा प्रतिनिधि गिना जा सकता है क्यों कि भारतीय संस्कृति यह तो जीवन का आध्यात्मिक साक्षात्कार और उससे प्रेरित होकर जिया जाता हुआ राष्ट्रीय प्रजाजीवन है। जीवन है तो भौतिक वस्तुयें रहेंगी ही और इनका उपयोग भी होता है। परन्तु जीवन यह सभी वस्तुओं से परे है। जीवन द्वारा चैतन्य का पूरा पूरा साक्षात्कार करना यह सीधे सादे शब्दों में कहें तो भारतीय संस्कृति का यह निचोड़ है। इसमें कला आवेगी परन्तु वह जीवन को ऐसे उन्नत ध्येय पर लेजाती हुई होगी। उसमें नृत्य होगा परन्तु वह इन्द्रियों को बहका कर भोग की ओर न घसीट जा कर चैतन्य का दर्शन करावेगा। इसके ताल, शरीर के प्रत्येक अंग में आती हुई एकाग्रता नृत्यकार को पूर्णरूप में लीन कर देंगे। वहाँ संगीत भी होगा, परन्तु हँसने और कान को मुग्ध करने के लिए नहीं बल्कि स्वरसाधना द्वारा इस महान् चैतन्य के साक्षात्कार के लिए। इस लिए कलाओं द्वारा चैतन्य की अभिव्यक्ति होती रहेगी। जो कोई देखेगा उसका हृदय भी इस अमूल्य अनुभव से छलकता रहेगा। दुनिया के दूसरे देशों की अपेक्षा अपने पास

भौतिक रीति से इन्हें देने के लिए बहुत कम है। अपने पास ऐसा वैभव नहीं परन्तु चैतन्य की साधना का हज़ारों वर्षों का अनुभव है। इस अनुभव में से जो प्रेरणा समग्र राष्ट्र को मिलती है, जो अदृष्ट रहकर भी भारतीय जीवन को आगे ले जाती हैं वह भारतीय संस्कृति है। इस संस्कृति के प्रतिनिधि के समान अपना प्रतिनिधि जानेवाले और भेजनेवाले सब इस विषय पर विचार करें।"

– मातृत्व की भावना –

'भारतीय नारी के स्वरूप और उसका उत्तरदायित्व' विषय पर प्रसिद्ध हिन्दी मासिक 'कल्याण' में हिन्दी साहित्य के समर्थ लेखक श्री. हनुमानप्रसाद पोद्दार ने एक मननीय लेख लिखा है। उसमें से कितने ही महत्त्वपूर्ण अंश यहाँ पर दिये जाते हैं। विद्वान् लेखक के हृदयस्पर्शी विचार वाचकवर्ग को उपयोगी पड़ेगा ऐसी आशा है।

"वर्तमान युग में सभी लोगों में स्वतंत्रता की आकांक्षा जागृत हुई है। स्त्री के हृदय में भी इसका स्थान होवे यह स्वाभाविक है। स्वतंत्रता परम श्रेष्ठ धर्म है और पुरुष तथा स्त्री दोनों को ही स्वतंत्रता होनी चाहिए – इसमें सन्देह नहीं। यह भी परम सत्य है कि जब तक दोनों ही स्वतंत्र न हों तब तक यथार्थ प्रेम उत्पन्न होगा ही नहीं। परन्तु विचारणीय प्रश्न यह है कि दोनों की स्व-तंत्रता का क्षेत्र तथा मार्ग दो है अथवा एक ही। सत्य बात तो यह है कि पुरुष तथा स्त्री का शारीरिक तथा मानसिक विकास नैसर्गिक दृष्टि से कदापि एक समान नहीं होता है। इस लिए दोनों की स्वतंत्रता का क्षेत्र वही परन्तु मार्ग दो ही होते हैं। दोनों ही अपने अपने मार्ग पर चलकर स्वतंत्रता प्राप्त कर सकते हैं। यह ही स्वधर्म है। जब तक स्वधर्म की यथार्थता समझी नहीं जावेगी तब तक कल्याण की आशा नहीं। स्त्री घर की शोभा है। वह वह स्नेहमयी माता तथा आदर्श गृहिणी के रूप में ही है। यही उसकी नैसर्गिक स्वतंत्रता है। इसी लिये ही कहने में आया है कि दस शिक्षक से अधिक श्रेष्ठ एक आचार्य है। सौ आचार्य से अधिक श्रेष्ठ पिता है और हज़ार पिता से अधिक श्रेष्ठ वन्दनीय तथा आदरणीय माता है।

स्त्री का यह सनातन मातृत्व – यह ही उसका स्वरूप है।

वह मानवता की नित्य माता है। भगवान् राम-कृष्ण, भीष्म-युधिष्ठिर, कर्ण-अर्जुन, बुद्ध-महावीर, शंकर-रामानुज, गान्धी-मालवीय आदि महापुरुषों का सर्जन स्त्रियों ने ही किया है। उनका जीवन क्षणिक विषयी आनन्द के लिए नहीं। बल्कि वह तो जगत् को प्रत्येक क्षण आनन्द देनेवाली स्नेहमयी जननी है। उसमें प्राण की हृदय की प्रधानता है। इसी कारण पुरुष की स्वतंत्रता का क्षेत्र शरीर है तथा स्त्री की स्वतंत्रता का क्षेत्र प्राण-हृदय है। स्त्री भले ही शरीर से दुर्बल हो परन्तु वह प्राण से और हृदय से पुरुष की अपेक्षा सदा ही अति शक्तिशाली है। यही कारण है कि पुरुष इतनी त्याग की कल्पना नहीं कर सकता जितना त्याग स्त्री बिल्कुल सहज स्वभाव से सरलतासे कर सकती है। इसीसे स्त्री और पुरुष सर्व क्षेत्रों में समान-भाव से स्वतंत्र नहीं ऐसा कहें तो अनुचित तो न ही गिना जा सके।

"विदेशियों का कौटुम्बिक जीवन अधिक छिन्न भिन्न हो गया है। संयुक्त कुटुम्ब जो दया, प्रेम, स्नेह, परोपकार, सेवा, संयम और शुद्ध अर्थ वितरण करने वाली एक बड़ी संस्था है, जिसमें दादा-दादी, चाचा-चाची, भाई-भाभी, देवर-जेठ, सास-ससुर, मामा-मामी, भाई-बहिन, मासा-मासी, भानजा-भानजी, भतीजा-भतीजी आदि की एक महा-शृंखला से पूर्ण व्यवस्थित संस्था होती है और जिसके भरण-पोषण के लिए गृहस्थ अपने को धन्य और कृतार्थ समझता है। इस संयुक्त कुटुम्ब का नाम निशान भी नहीं रहा है। स्वतंत्रता तथा समानाधिकार के झगड़ों ने उनके सुन्दर और सुशोभित घरों को उजाड़ दिया है। इसी कारण परस्पर बातों में कलह, अशांति, छोड़-छाड़ तथा आत्महत्या आदि की घटनायें घटती है।

"यह भ्रम दूर कर देना चाहिए कि वर्तमान योरोप-अमेरिका में स्त्रियाँ स्वतंत्र होने से सुखी हैं और उन्हें वर्तमान शिक्षण से सच्चा लाभ मिला है। कदाचित् मान भी लें कि कितने ही अंशों में लाभ भी हुआ हो, तो भी वहाँ का वातावरण, वहाँ की परिस्थिति, रीति-नीति, वहाँ के रस्मो-रिवाज़, वहाँ की संस्कृति तथा वहाँ के लक्ष्य आदि सभी पृथक् हैं और अपने उससे पृथक् हैं। वहाँ केवल भौतिक विकास ही जीवन का लक्ष्य है। अपना लक्ष्य प्रभुप्राप्ति है। विलास वासना का त्याग और इन्द्रिय-संयम – ये ही सुख प्राप्ति के सर्वोत्तम साधन है – यह ख़्याल में रखकर ही अपने को अपनी

शिक्षापद्धति बनानी पड़ेगी। ऐसा करेंगे तभी अपने देश की स्त्रियाँ आदर्श माता तथा गृहिणी बनकर जगत् का कल्याण कर सकेंगी।"

– धार्मिक त्योहारों का उत्सव –

अपने धर्मशास्त्र में लोकजीवन में आनन्द के साथ धर्मभावना प्रकट हो इसलिए भिन्न भिन्न पर्वों के अवसरों पर उत्सव मनाने का निश्चय किया है। रामनवमी, जन्माष्टमी, नवरात्रि, दीपावली आदि त्यौहारों में भारी मेला लगता है और गाँव गाँव उत्सव होते हैं। स्त्री-पुरुष और बालक सभी इसमें निर्दोष आनन्द प्राप्त करते हैं। आज इस ज़माने में धर्मभावना लुप्त होती जा रही है। कितनी ही जगहों पर तो धर्म के नाम पर विशुद्ध पागलपन् देखने में आता है। यदि श्रद्धापूर्वक धर्म की भावना हो तो हृदय में दया, प्रेम, उदारता आदि गुण फैलें। परन्तु धर्म के नाम पर नाटक से भी खराब स्वाँग किया जाता है। जन्माष्टमी जैसे पवित्र त्यौहार जुवे के अखाड़े बनें यह वस्तु भावी जनता के जीवन पर बहुत बुरा प्रभाव डालेगी।

ऐसे पर्वों के अवसर पर संपन्न होने वाले उत्सवों के स्वरूप बदलने तथा उनके रूपान्तर करने की आवश्यकता है। लोकजीवन उत्तम बने ऐसे धार्मिक शैक्षणिक संवादो को रचकर ऐसे प्रसंगों पर करना चाहिए। अच्छे कथाकार सुन्दर कथायें करें, भजनिक लोग भजन गावें, रासमंडलियाँ निर्दोष आनन्द दें तभी त्यौहारों की पवित्रता सुरक्षित रह सकती है।

प्राचीकाल में अपने धार्मिक त्योहार बहते झरने की भांति लोकजीवन में निर्मल भावना भरते थे। हरएक की धर्मपिपासा इनसे बुझती थी। आज यह श्रद्धा दिखायी नहीं पड़ती है। निर्मल सरोवर को हमने गन्द मारनेवाला संकुचित कुण्ड बना दिया है। इसी कारण सच्चे धर्म को कोई जान सकता नहीं। ईसाई और ईस्लाम धर्म पर उनके अनुयायियों की श्रद्धा जीवित है। उन्होंने धर्म को जीवित रखा है। अपने को ऐसी श्रद्धा उत्पन्न करनी पड़ेगी।

धर्म जीवित रहेगा तो मृत्यु के मुख में से सजीवनपना प्राप्त होगा। धर्म बिगड़ा तो सारा राष्ट्र डूब जावेगा। सच्ची धर्मभावना ही कलियुग में तारने वाली नौका है।

अपनी बालिकायें ईसाई ढंग के फ्राक पहनना चाहती है।

घुठने तक पैर खुला रखती हैं – यह तो ठीक परन्तु कसाकस फ्राक पहनने से छाती का प्रदर्शन होता है। गोवा के ईसाई बदन पर ढीला कपड़ा पहनते हैं। अपने लोग इनसे दूर निकल गये हैं। आखिरी पाटले पर बैठे हैं। देश के नेताओं और समाज-सुधारकों को इस वस्तु पर ध्यान देने की ज़रूरत है।

– अपराधमय कृत्य –

आजकल अपराधमय कर्म दिनप्रतिदिन बढ़ते जाते हैं। इसका कारण है कि भय जैसी अथवा मानवता जैसी कोई वस्तु रह नहीं गयी है। जेलों में आज कैदियों को बचत रक़म में से चाय, बीड़ी और रेडियो की छूट है। वर्ष में अमुक दिवस कुटुम्ब से मिलने घर जाने दिया जाता है। कैदी यदि गृहस्थ हो तो बालबच्चा और पत्नी के साथ मौज-मज़ा कर आ सकता है। मेरे सुनने के अनुसार ऐसी छूट मिलती हो तो चोर लुटेरों को घर की अपेक्षा जेल अधिक पसन्द आवे। जेल में शारीरिक और मानसिक कष्ट के साथ यदि इनके सुधारने का साधन हो तो मनुष्य फिर से अपराध करने से रुके। आज की जेलों की सुविधा से अभ्यस्त अपराधियों को उत्तेजना मिलती है।

आज की कचहरियों में मुकदमे चलते हैं, उसमें साक्षी न मिलने पर अपराधी निर्दोष छूट जाता है। खून जैसे गंभीर केस में वादी साक्षी कहाँ से लावे? खून करने वाले ज़मीन पर छूटा हुआ घूमता हो तो साक्षी होने की हिम्मत कौन करे? साक्षी देनेवाले के साथ वैर हो जाता है। सौराष्ट्र में और समस्त देश में अन्तिम सात वर्ष में हुये अपराधों का हिसाब निकाला जावे तो पता चलेगा कि चोरी, लूटमार और खून के अपराध पराकाष्ठा पर पहुँच गये हैं।

ग़रीब, अनाथ, असहाय स्त्रियों पर बलात्कार की घटनायें भी बनती हैं। ऐसे समय में साक्षी कहाँ से मिले? चार-पाँच जितने नराधम एक समय में एक निर्दोष अबला पर बलात्कार करें तो उनका साक्षी कोई हो सकता है क्या? प्रतिष्ठा जाने के भय से कितने ही मुकद्में दब जाते होंगे। न्याय महँगा हो गया है। निराधार स्त्रियाँ किसके पास फरियाद करें? ऐसी नीचता, अनीति की चरम सीमा आगई है – ऐसी बताती है। दूसरे किसी देश में ऐसा बनाव बना हो तो यह घड़ी भर भी न चलने पावे। ऐसे

नरराक्षसों का नामोनिशान जगत् में से मिटा दें।

आज कल स्त्रियों को भी मर्यादा में रहकर वर्तने की खास ज़रूरत है। कई स्त्रियाँ बारीक चुस्त और आकर्षक पोशाक में सुसज्जित होकर घूमती फिरती हैं और अपनी मर्यादा को नहीं रखती हैं और मनुष्य इन्हें तंग करते हैं तो इसमें मुख्य दोष तो स्त्रियों का गिना जावेगा। उन्हें ऐसी शिष्ट पोषाक पहननी चाहिए जिसमें कि मर्यादा पूरी पूरी ढँकी रहे। साथ ही वे अपना रक्षण भी कर सकें यह तो कमजोरी ही गिनी जावेगी। सब कोई में अपना रक्षण कर सके इतना आत्मबल तो होना ही चाहिए। स्त्रियों पर कोई कुदृष्टि न कर सके इतना आत्मबल तो रखना चाहिए। शालाओं, कालेज और महिलामण्डल जैसी संस्थाओं में ऐसे शिक्षण के लिए विशेष प्रबन्ध होना चाहिए। स्त्रियों से कोई छेड़खानी करे अथवा उन्हें तंग करे उसको न्याय मिलना भी एक कठिन काम है। क्यों कि हम देखते हैं कि क़ानून के शिकंजे में से ऐसे अपराधी छूट जाते हैं और परिणामतः स्त्रियों की फज़ीहत होती है। इसलिए मर्यादा में रहकर ही स्त्रियाँ अयना रक्षण सरलता से कर सकती हैं। आत्मबल पैदा करने और स्वरक्षण करने की ताक़त प्राप्त करने का कार्य स्त्रियों का ही है यह बात ठीक है; परन्तु उसके लिए स्त्री-उपयोगी सार्वजनिक संस्थाओं को विशेष सावधानी रखने की आवश्यकता मालूम पड़ती है।

रावण और दुर्योधन जैसे महाशक्तिशाली राजाओं ने स्त्रियों के साथ छेड़ की तो उनका क्या हाल हुआ? अपने धार्मिक ग्रन्थों में इसका वैसा वर्णन किया गया है। इसकी गंभीरता समझाने के लिए मोटे पुराण रचे गये। सीता माता और महासती द्रौपदी की लज्जा पर हाथ डाला इससे दो महान् ग्रन्थ रामायण और महाभारत रचे गये। हिन्दू जनता को धर्मभावना, नीतिमत्ता और विशेष करके सतीत्व रक्षा के लिए सर्वस्व का बलिदान करने का पाठ सिखाने के लिए इन ग्रन्थों की रचना हुई है।

आज अपने को स्वतंत्र प्रजा के रूप में इस वस्तु के विचार करने की आवश्यकता है। प्राचीनकाल में भारी नीतिमती प्रजा के रूप में अपना दायाद है। ऐसे नराधम लोग ऐसे कृत्य कर सकते हैं और सबूत के अभाव में छूट जाते हैं। ऐसी वस्तु के सबूत देने की ज़रूरत नहीं होनी चाहिए। एक असहाय आहत अबला की

आह अपने वहो कान को न सुनाई पड़े तो यह प्रभु के दरबार में सुनाई पड़े बिना रहेगा नहीं। यह आह घोर अनीति के मूक साक्षी बनने वाले का भक्षण कर जावेगी।

इस प्रकार के धिक्कार के कृत्य जनता को अधोगति की तरफ लेजानें वाला है - ऐसा घोर दुःख के साथ हमें लिखना पड़ता है। ऐसे कृत्य फिर से न हो इसके वास्ते सरकार और जनता को मिलकर कठिन इलाज करना चाहिए और अपराधियों को कठोर दण्ड होना चाहिए - ऐसा हमें उचित लगता है।

– वर्तमान पत्र –

वर्तमानपत्रों के विषय में किसी भी सम्मति का देना मेरी शक्ति के बाहर की बात गिनी जायेगी। फिर भी भारतीय प्रजा के हित की दृष्टि से अपने नम्र विचारों को यहाँ पर उपस्थित किया है।

आजकल के युग में पत्र एक महान् शक्ति गिने जाते हैं और जनता के संस्कार गढ़ने के एक बड़े साधन भी हैं। वर्तमानपत्रों के विद्वान् संपादक अपने आदर्श विचारों को लेखनी के द्वारा जनता के प्रत्येक वर्ग में उत्तम संस्कार भर रहे हैं।

परन्तु अपने यहाँ कितने ही पत्र ऐसे निकलते हैं कि जो इस ऊँचे आदर्श को बगल में छोड़कर विवेक, मर्यादा का परित्याग कर अतिशयोक्ति भरे लेखों को प्रजा के सामने उपस्थित करने में गौरव मानते हैं। मुझे खेद के साथ लिखना पड़ता है - कोई ऐसे भी उदाहरण उपस्थित होते हैं कि जिसमें गन्दे प्रचार द्वारा पैसा निकालने की कोशिश करने में आती है। जिनके ऊपर ऐसे आक्षेप आदि होते हैं वे कोर्ट में जा सकते नहीं, कारण यह है कि वैसा करने से कार्ट के उटपटाङ्ग प्रश्नों के जवाबों बहन-बेटियों की मर्यादा सुरक्षित नहीं रहती और लम्बे समय तक मुक़दमे की समाप्ति नहीं होती।

ऐसी कक्षा के पत्रों निर्दोष तथा ज्ञानविहीन जनता के हाथ में जाने से ख़राब संस्कार फैलते हैं। आवश्यकता पड़े वहाँ पर भूल बतलानी चाहिए, परन्तु वह इस रीति से उपस्थित की जानी चाहिए कि जिससे वर्तमानपत्रों की खानदानी और संस्कारिता का जनता के मानस पर अच्छी छाप अंकित हो।

विदेशों में ऊपर बताये गये कक्षा के पत्रों पर अंकुश होता है।

सामान्य मनुष्य समाज, सरकार और परमेश्वर के डर से नीति की मर्यादा पालते हैं। यह मर्यादा टूटी कि मनुष्य अंकुश विना का बन जाता है। भारत की संस्कृति, उसका धर्म और आदर्श की प्रणालि सुरक्षित रहे तथा जनता में उच्च संस्कारों का विस्तार हों-इन वर्तमानपत्रों, सरकार और समाज-सुधारक भाई बहनों को इन गंभीर प्रश्नों पर विचार करना चाहिए - ऐसा मेरा नम्र निवेदन है।

- मिल-कारखाना और मज़दूर -

मेरे मिल-मैनेजर श्री. जदुरायभाई अभी जापान के उद्योगों को देखकर आये हैं। उनके अनुभवों को सुनकर समझने को मिला कि अपने यहाँ एक कारीगर ८-१२ करघा चलाता है जब कि जापान में ४० चलाता है। यहाँ का कारीगर ४२० तकुये का एक स्पिण्डल चलाता है जब कि जापान में ४२० के दस फ्रेम चलाता है। आज मिलउद्योग में विकास हो इस कारण मशीनरी में सुधार करने की माँग सरकार के पास करते हैं तो सरकार को बेकारी बढ़ने का भय लगता है। कम उत्पादन होने से जो खर्च बढ़ता है उसका बोझ अन्त में खरीदार जनता पर पड़ता है। मज़दूरों की रक्षा करते जाने पर अधिक भार पड़ेगा तो उद्योग टूट जावेगा।

परदेश में माल भेजने में झूठा खर्च बढ़ जाता है। उसके कारण विदेशी बाज़ारों की स्पर्धा में अपने टिक नहीं सकते। सन् १९१४ से १९२१ पर्यन्त लड़ाई में हमने हरएक देश में पैर फैलाया है। भारत का माल हरएक देश में जाता था। सन् १९२३ से जर्मनी और जापान ने दुनियाँ के बाज़ारों को पकड़ लिया है। उनके सामने स्पर्धा में अपने टिक नहीं सकते। आज भारत का माल २० प्रतिशत मुश्किल से जाता है। बिक्री घटने से कितने ही उद्योग टूट गये। हिसाब करें तो व्यापार गया, उद्योग गया, जनता के शेयर का २० वर्ष में करोड़ों रूपया गया। अपने देश के मज़दूर कारीगर आदि रूपया लेकर १४ आने का काम करते हैं जब कि दूसरे देशों में रूपया लेकर १८ आने का काम करते हैं। इस वजह से अपने यहाँ चीजें महगी पड़ती हैं।

काम करनेवालों के हित की रक्षा पूरी पूरी होनी चाहिए इसमें दो मत नहीं हो सकते, परन्तु मज़दूरों के रक्षण विषय में कितने क़ायदे ऐसे हैं कि जिनके परिणाम स्वरूप उद्योगों को हानि

पहुँचती है, उत्पादन घटता है, माल महँगा पड़ता है और प्रजा को भार पड़ता है। कोई मज़दूर काम न करता हो, अधिक हो तो भी उसको निकाला नहीं जा सकता है। अधिक देकर भी छूटा नहीं किया जा सकता है। ऐसा क़ायदा है। स्त्री-पुरुषों ने विवाह किया हो तो छोड़ सकता है परन्तु उद्योगों में से मालिक अनावश्यक हो ऐसे मज़दूर को निकाल नहीं सकता है। इस प्रकार का नियम किसी दूसरे देश में भी हो ऐसा मेरी जानकारी में नहीं है। इस क़ायदे के पीछे सरकार का उद्देश्य अच्छा होगा परन्तु उसका अनुचित लाभ लिया जाता है। इस क़ायदा के आड़ में कारीगर बेदरकार और आलसी बनते हैं। जो काम न करे उसे भी रज़ा न दी जा सके - यह उद्योगों को सज़ा करने जैसा है।

आज बड़े उद्योगों को चलाना गुनाह हो ऐसी दशा है। कोई कारीगर अपराधी हो तो वह साबित करना पड़ता है। इसके लिये लड़ने के वास्ते कोर्ट में वकील रखना पड़ता है। उद्योग का विकास तो एक तरफ़ रहा, इस प्रकार के झगड़े से ऊँचा नहीं उठ सकता। इस प्रकार के क़ायदे मेरी समझ में उतरते नहीं। अपने निजी अनुभव की बात लिखता हूँ। देश के स्वतंत्र होने के बाद बहुत से श्रीमान् लोग उद्योग खड़ा करना चाहते हैं, अपनी व्यापारिक बुद्धि का देश के हित के लिए सदुपयोग करना चाहते हैं परन्तु वे व्यर्थ के झगड़ों से तंग आकर बैठ रहते हैं। इसकी अपेक्षा समस्त उद्योंगों का राष्ट्रीयकरण हो जावे - यह चाहने योग्य जैसा है। उसमें जो काम करे उसके अनुसार लाभ देवें। इस वस्तु को गंभीरता से विचारने की ज़रूरत है। इसमें देश की समस्त प्रजा का हित समाया हुआ है।

- अस्वच्छ रहन-सहन -

दक्षिण अफ्रीका में भारतीय तिरस्कृत होते हैं उसमें गोरों के रंग-द्वेष की छूआछूत कारणभूत है - यह सच्ची बात है परन्तु उसमें अपनी गन्दी आदतें भी कारण हैं - ऐसा अपने को दुःख के साथ कबूल करना चाहिए। अपने विदेश के प्रवासों में मैंने देखा कि अपने भाई जहाँ जाते हैं वहाँ भारी गन्दगी कर डालते हैं। रेल-गाड़ी के डब्बों में, स्टेशनों पर, रेस्टोरेण्टों में, प्रतीक्षागृहों में थूकना; पान की पीचकारी मारनी, नाक में से गन्दगी निकालना, दातन करना, टट्टी जाना किसी भी स्थल पर देखे विचारे विना गन्दगी करना-

इन आदतों के कारण अपने लोग परदेश में तिरस्कृत होते हैं।

अपना भारत देश नन्दनवन समान सुन्दर है। इसकी भी अपने ऐसी दशा कर रखी है। भगवान् ने अपने को स्वर्ग दिया, उसको हमने नरक जैसा बना दिया और जिनको नरक जैसी जगह मिली उन्होंने उसे स्वर्ग के समान सुन्दर बना दिया। जो गन्दगी में रहते हैं उनके विचार, मानस, रक्त, शरीर सभी गन्धा उठते हैं। जो देश, जो जनता स्वच्छता से रह सके, सुन्दर रह सके उसका मुख कमल के समान सुन्दर बनता है। उसके स्वभाव, वाणी, हवा-पानी, वायुमण्डल सुन्दर सुवासित हो जाते हैं।

अपने भारतीयों ने अपनी गन्दी आदतों के कारण अपने हाथों से अधोगति की है। अपने कितने ही दोष अपने स्वयं से खड़े हुये हैं - इस भगवान् का अथवा किसी दूसरे का दोष नहीं। इस बुरी आदत के कारण देश में बिमारियाँ, रोग विषैले जन्तु फैलते हैं। इसके कारण मृत्यु की मात्रा बढ़ती जा रही है। किसी के चेहरे पर सच्ची तन्दुरस्ती देखने को मिलती नहीं। अपनी इस बुराई को जनता और सरकार को मिलकर दूर करना होगा। देश-विदेश से भारत को देखने के लिए आनेवाले विदेशी भारतीयों के गन्दे रहन-सहन की छाप लेजाते हैं - यह अपने लिए लज्जा की बात है।

छत्तीस करोड़ भारतीय जनता यदि निश्चय करलें तो गाँवों को सुन्दर बना सकती है - नन्दनवन जैसा कर सकती है। आजकल अपने ग्रामों में मकान निर्माण में कोई योजना नहीं है। कोई प्लान नहीं। अनेक प्रकार के टेढ़-मेढ़ ऊभड़-खाभड़, किसी मर्यादा से रहित पशु के साथ रहने के मकान होते हैं। इसमें सरकार का दोष नहीं, दोष अपना निज का है। अपने लोग भूखे मरते हैं कि दुःख भोगते हैं यह सब अपने इन मानसिक पापों के कारण भोगते हैं। सरकार को गालियाँ देने से अपनी बुरी आदतें नहीं टल सकतीं। सरकार रास्ता बताती है, इस रास्ते पर चलने का काम अपना है। बुरी आदतें छोड़ने के लिए सरकार सख़्ती करे तो उसके खिलाफ़ हड़ताल करना, नोर लगाना योग्य नहीं। इसका अर्थ यह होता है कि सरकार प्रजा को चाहिए इसलिए निकम्मी वस्तु भी करे। प्रजा को अस्वच्छ और अव्यवस्थित रहना अच्छा लगे तो कैसे चलने दिया जा सके? चीन की सरकार ने गन्दी बुराइयों को दूर

करने के लिए बहुत सख्त क़ायदे बनाये थे।

अपना देश स्वतंत्र हुआ है। अपने सामने दो वस्तु आकर खड़ी हैं - अवगति तथा उन्नति। हम स्वयं क्या पसन्द करेंगे?

- आज की शिक्षा -

आज स्कूलों और संस्थाओं में जो शिक्षण दिया जाता है उसमें माता-पिता के संस्कार पड़ते नहीं। बालक अपने माता-पिता के पास से जो प्राप्त कर सकते हैं वह किसी दूसरे के पास से प्राप्त नहीं कर सकते हैं। चाहे कितनी ही अनपढ़ माता होगी, वह जो संस्कार अपने बालक को दे सकती है वह बहुत उच्च शिक्षा प्राप्त की हुई शिक्षिका नहीं दे सकती है। आजकल बालक माता-पिता से बिल्कुल अलग-विलग रहने वाले बन गये हैं। उनमें माता-पिता के लिए मर्यादा रह नहीं गई है। माता-पिता के प्रति मान अथवा पूज्य-भावना रही नहीं। माँ-बाप के पास से जो वंशपरम्परागत खानदानी, विनय, मर्यादा, नीतिमता, ईमानदारी, सच्चाई, टेक, सेवाभाव, सहनशीलता आदि गुण आने चाहिए वे आज के शिक्षण में मिलते नहीं। आज के बालकों में यह भारी न्यूनता रह जाती है। शिक्षणशास्त्रियों, अध्यापकों और संरक्षकों को मिलकर इस महान् प्रश्न पर विचार करना चाहिए। आज लड़के समझदार होते हुये भी स्वच्छन्द बन जाते हैं। ये माँ-बाप अथवा शिक्षक एवं सरकार आदि किसी के कहने में रहते नहीं। अपनी भावी प्रजा बिल्कुल निरंकुश बन रही है। बात बात में दंगा करना, हड़ताल करना, शिक्षकों का खून करने तक उनकी स्वच्छन्दता बढ़ गयी है। यह एक जटिल समस्या है। कम से कम बारह वर्ष की उमर पर्यन्त बालकों को माता की देखरेख में ही शिक्षा मिले ऐसा प्रबन्ध होना चाहिए। यह मुझे एक तत्काल करने योग्य उपाय मालूम पड़ता है।

- जीवन का मानदण्ड -

अपना जीवन का मानदण्ड दिवस दिवस बहुत ऊंचा होता जा रहा है। पहले के समय बहुत थोड़ी पूँजी में धन्धा किया जा सकता था। जीवन सादा था। मासिक पाँच रूपये में सुखी थे। उतना आज दसगुणा अधिक आय होने पर सुखी नहीं। चारों तरफ़ भूख और दुःख की पुकार पड़ रही है। ऊँचा जीवन किसे कहें?

यह एक प्रश्न है। सिगरेट, चाय, सिनेमा और मोटर का प्रयोग-यह ऊँचे जीवन की निशानी मानी जाती है। विदेशी तड़क-भड़क के कपड़े तथा वस्तुओं के उपयोग को यदि ऊँचा जीवन कहा जाता हो तो वह देश को नीचे ले जावेगा। अपने देश में जब चीज़-वस्तु सस्ती होंगी तभी देश में सुख आवेगा। आज का खर्चीला जीवन तो अपने को विनाश की ओर ले जावेगा।

आज व्यापारी के बदले किसान संग्रह करने लगे हैं। अलबत्ते अपने परिश्रम से उत्पन्न की हुई वस्तु को संभालने का हरएक किसान को अधिकार है। परन्तु सट्टा और संग्रह - ये दोनों ही व्यापार को खूब खराब करते हैं। इन्हें क़ायदे को सख्ती से पालन कराकर दबा देने की ज़रूरत है।

- विदेश में बसनेवाले भारतीयों का प्रश्न -

अपने स्वतंत्र होने के बाद बहुत से व्यापारी एक महत्वपूर्ण बात सरकार के पास उपस्थित करते हैं। जिन भारतीय व्यापारियों ने विदेश में व्यापार किया है वहाँ से पाँच पैसा कमाई का धन देश में लाते हैं, उनकी संपत्ति अपने देश में स्वतंत्रता के साथ आने देनी चाहिए। हमारे इन्कमटैक्स के कारण यह समृद्धि यहाँ आ नहीं सकती है। दक्षिण अफ्रीका, पोर्टुगीज़ अफ्रीका, मेडागास्कर, मोरिशस आदि स्थानों में अपने व्यापारी भाइयों की संपत्ति रुकी हुई है। इस सम्बन्ध में बहुत से बड़े व्यापारियों ने कईबार सरकार से फ़रियाद की है, माननीय अर्थमंत्री के पास इस बात को उपस्थित किया है परन्तु उसका कोई परिणाम निकला नहीं।

भारत से बाहर लगभग पचास लाख भारतीय बसते हैं। वे बिना किसी कठिनाई के एक सौ रूपया वार्षिक भेज सकें तो भी चालीस करोड़ रूपया देश में आ सकता है। अपने दूसरे से उधार लेने जाते हैं जब कि अपने निजी बन्धु देश में कठोर नियम खड़े हैं। पाकिस्तान में बाहर से आनेवाली सम्पत्ति पर चुंगी नहीं है। वे मानते हैं कि अपनी जनता के पास देश में धन होगा तो काम आवेगा। अपने यदि समय रहते सचेत होकर इन कायदों को नहीं सुधारते हैं तो संभव है कि अपना अरबों रूपया विदेश में रह जावेगा। शायद पाकिस्तान से जो यहाँ आये उन्ही की स्थिति में पहने हुये कपड़े में ही आना पड़े, बाद में कमीशन बैठाने में आवे, उससे कुछ बनता नहीं। अभी थोड़ी बहुत छूट पूर्व अफ्रीका में से

लाने के लिए है परन्तु उस पर इन्कमटैक्स का क़ायदा लगा है।

कोई भी भारतवासी परदेश से यहाँ आवे तो अधिक से अधिक समय तीन मास यहाँ रह सकता है। अधिक समय रहे तो उसे इन्कमटैक्स भरना पड़े - वैसा नियम है। उसको अनेक प्रकार की सताने की बातें होती हैं। अन्त में हैरान होकर वह पीछे वापस जाता है। फिर देश में आने का नाम न ले ऐसी स्थिति है। विदेश में रहने वाले भारतीय भारत से अलग पड़ते जा रहे हैं। जमैका, फीज़ी आदि दूर के टापुओं में बसने वाले भाग्य से ही पीछे आते हैं। वे वहाँ पर धर्मपरिवर्तन भी कर डालते हैं। इस प्रकार अपनी कालोनी हो नहीं सकती है। इस पर समय रहते ध्यान देने की आवश्यकता है। भारत का व्यापार ज्यों ज्यों बढ़ता जावेगा त्यों त्यों अपने माल के बेंचने के बाज़ार जहाँ जहाँ पर भारतीय बसते हैं खड़ा हो सकता है। वे अपने विना वेतन के दलाल बनेंगे।

आज जहाँ अंग्रेज़ों के संस्थान हैं जहाँ अंग्रेज़ों की बस्ती है वहाँ पर इंग्लैण्ड का माल खपता है। उसी प्रकार पोर्टुगीज़, फ्रेञ्च, इटैलियन आदि जहाँ जहाँ बसते हैं अपने अपने देश का माल वहाँ पर बेंचते हैं। भारतवासी भी यदि भारत के साथ अच्छा सम्बन्ध होगा तो अपनी बस्ती में भारत का माल बेंचेंगे। उन्हें यदि अपनी संपत्ति यहाँ पर लाने, आकर देश में निरुपद्रव रहने की अनुकूलता मिलेगी तो अपना व्यापार इन कॉलोनियों में जीवित रह सकेगा। अफ्रीका और विदेश से आनेवाले भारतीय भाइयों को आज भारत में बन्दरगाहों पर कस्टम में अधिक असुविधायें पड़ती हैं। अफ्रीका से आनेवालों को जामनगर, पोरबन्दर, बम्बई और दक्षिण के बन्दरगाहों पर कस्टम की मुसीबते सहनी पड़ती हैं। दो दिन तक उनका सामान उठाया नहीं जा सकता है। बाहर से कमाकर देश में द्रव्य लानेवाले अपने भाइयों को हम शंका की दृष्टि से देखते हैं। जब कि कराँची में बाहर से कमाकर आनेवालों की पेटियाँ खोली नहीं जातीं। हरएक वस्तु लाने की छूट है। कस्टम की यह मुसीबत भारत में बहुत सीमा तक दूर होने की ज़रूरत है।

– उन्नति के मार्ग –

भारत की उन्नति के लिए तीन मार्ग हैं :

(१) जर्मनी और भारत की भांति सभी काम करें, परिश्रम उठावें और उत्पादन के लिए बाज़ार खड़े करने में आवे तो हम टिक सकेंगे।

(२) साम्राज्यवादियों की भांति कालोनी जमाकर वहाँ से धन-दौलत चूस लाना (इसके लिए अपनी शक्ति नहीं इच्छा भी नहीं)।

(३) भारत में खनिज पदार्थों को खोजकर उसकी वृद्धि करना, जैसा कि सोना, चाँदी, ताँबा, कलई, जसत, लोहा, सीसा, अल्मोनियम, पेट्रोल, तेल आदि मूल्यवान् द्रव्यों के उत्पादनसे देश समृद्ध बन सकता है।

- स्वदेश-रक्षा -

अन्त में अपने देश के रक्षण का प्रश्न आता है। अपने नेता, शासनकर्त्ता लोग उसके लिए पूर्णरूप से जागृत हैं। तथा आवश्यक सावधानी रखते हैं। अपनी सेना भी बहादुर तथा देश के प्रति वफ़ादार है। अपने ताजे हिमालय के प्रवास में मैंने उत्तर-काशी की एक सैनिक छावनी देखी थी। धर्मशाला में उनके साथ रहते हुये मालूम हो सका था कि उनमें खूब आनन्द और देशप्रेम भरा था। इन सैनिकों ने रात्रि में भजन तथा देशभक्ति के संवाद किये, उससे देश के लिए बलिदान होने की तैयारी स्पष्ट देखी जा सकती थी। भारत की हरएक सीमा पर अपनी फौजें पड़ी हैं, समुद्रीबेडा और हवायी सेना भी सदा तत्पर है। परन्तु देश की स्वतंत्रता का संरक्षण केवल सेना से नहीं हो सकता, समस्त जनता के तैयार रहने की आवश्यकता है। अपने तो केवल बातें करते हैं। बमवर्षा के समय स्थिर चित्त होकर टिके रहने की तैयारी करनी चाहिए। गाँव-गाँव और शहर-शहर में स्वयंसेवक तैयार होने चाहिए। १८ से ३० वर्ष तक हरएक स्त्री-पुरुष को तालीम देनी चाहिए और आवश्यकता पड़े तो लड़ाई के मोर्चे पर पहुँच जाने की प्रत्येक भारतवासी को तैयारी रखनी चाहिए। अपने निजी स्वार्थ का विचार करने से अपना महान् देश हज़ार वर्ष तक गुलाम रहा।

पू० महात्माजी और हज़ारों भारतीयों के आत्म बलिदान से स्वतंत्रता मिली है। चाहे उसे कोई भोगे परन्तु रक्षण करना तो अपना सब का फ़र्ज़ है।

देश में अपने से अधिक बुद्धिमान पुरुष हैं, समझदार शक्ति-शाली पुरुष हैं जिन्हों ने देश के लिए तन-मन-धन सर्वस्व का अर्पण कर रात-दिन परिश्रम कर रहे हैं, तिसपर भी अपने जीवन के साररूप में मुझे जो सूझा यहाँ पर लिख रहा हूँ। उसमें किसी स्थल पर शायद भारी भूल भी हो तो क्षमा चाहिए। पाठक-गण विवेकपूर्वक इसमें से सार ग्रहण करेंगे - ऐसी आशा है।

सदाचार

(लेखक : पूज्यपाद श्री १००८ स्वामी श्री दयानन्दजी महाराज)

[हम पोरबन्दर में श्री आर्यकन्या गुरुकुल और महिला-महाविद्यालय तथा चौकी में श्री दयानन्द महाविद्यालय की शिक्षण-संस्थाओं में जो संस्कार देने का महासागर में बिन्दु के समान प्रयत्न कर रहे हैं उसका आदर्श पूज्य महर्षि दयानन्दजी महाराज के आदर्श और लेख के अनुसार है। यह विचार 'आर्य-महिला' मासिक में प्रकट हुये एक लेख में भी मूर्त्तिमान् होता है। अपने पूर्वजों के उच्च संस्कारों को भावी प्रजा में भरने के अपने उद्देश्य के 'सदाचार विषय का पूज्य स्वामीजी के मननीय विचारों को इस लेख के रूप में उपस्थित किया है। पश्चिमी शिक्षा केवल व्यावहारिक जीवन को जितनी उपयोगी हो उतनी ही आवश्यक है। बाक़ी भारतीय संस्कृति का महान् वारसा संभालने के लिए जो शिक्षण आवश्यक है उसका सुन्दर निरूपण पूज्य महर्षि ने अपने लेख में किया है। हम जिन संस्थाओं को चला रहे हैं वे हमारी आकांक्षा की प्रतिकृति हैं। उपर्युक्त शिक्षण संस्थाओं में जो कार्यकर्त्ता सेवा कर रहे है उन्हों ने इस भावना का वरण किया है।

पूर्वोक्त लेख का अक्षरशः भाषान्तर यहाँ पर दिया है। मूल संस्कृत श्लोक लेख के आभूषण हैं। सदाचार का समग्र अवलोकन इस लेख में प्रभावशाली ढंग पर दिया गया है।]

जो शारीरिक प्रवृत्ति के अनुसार धर्म आता है उसका नाम सदाचार है। विविध शारीरिक क्रियायें जैसा कि व्यायाम – यह तो अपने अंगों का संचालन मात्र है। इससे अपना स्थूल देह अवश्य बलवान् तथा हृष्टपुष्ट होता है परन्तु ऐसी क्रिया का आत्मा की उन्नति के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। इससे शारीरिक प्रवृत्तियों को अपने आचार नहीं कह सकते। परन्तु जब ये प्रवृत्तियाँ किसी धार्मिक हेतु को ध्यान में रखकर करने में आती हैं तो परिणाम यह होता है

कि स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरों की उन्नति तो होती ही है साथ ही साथ आत्मोन्नति भी शक्य बनती है। इसी से ही धर्मानुसारी क्रिया को 'आचार' कहने में आता है। इस प्रकार 'आचार' और 'धर्म' के मध्य की समता को लेकर ही आर्यशास्त्रों में आचार को 'प्रथम धर्म' तरीके ही नहीं 'परम धर्म' तरीके पर भी दर्शाया गया है। मनुसंहिता में कहा गया है "श्रुति स्मृति आचार के प्रथम धर्म माने गये है, इसलिए हे द्विज! नित्य आचारशील बनकर आत्मशील भी बन।"

इस प्रकार श्रुति-स्मृतियों द्वारा उपदेश किया गया आचार प्रथम धर्म है। ब्राह्मणों को सदा उन्नतिशील बनकर आत्मा की उन्नति सिद्ध करनी चाहिए। इसी अनुसार काशीखण्ड में भी लिखा है कि : आचार अर्थात् परम धर्म और तप। आचार से पाप का विनाश और आयुष्य की वृद्धि होती है।

अपने जीवन के प्रमाणरूप में अपना स्थूल देह है तथा आचार और स्थूल शरीर के बीच सीधा सम्बन्ध है, स्थूल शरीर पवित्र हो तो सूक्ष्म देह भी आध्यात्मिक सिद्धि प्राप्त करने में साधनरूप बनता है - इसीसे भगवान् मनु ने आचार को प्रथम धर्म कहा है। आत्मोन्नति के लिए प्रयास करें परन्तु आचारशील न हों तो फल मिलता नहीं - इसीलिए आर्यशास्त्र में आचार को परम धर्म कहा गया है। मनुसंहिता में एक श्लोक है —

आचाराद् विच्युतो विप्रो न वेदफलमश्नुते।
आचारेण तु संयुक्तः संपूर्णफलभाग्भवेत्॥
एवमाचरतो दृष्ट्वा धर्मस्य मुनयो गतिम्।
सर्वस्य तपसो मूलमाचारं जगृहुः परम्॥

'आचारभ्रष्ट ब्राह्मण वेदज्ञान का फल पा नहीं सकता। केवल आचारवाला ही उसे प्राप्त करता है। इस प्रकार आचार से धर्मप्राप्ति हो सकती है ऐसा जानकर ही मुनियों ने आचार को तपस्या का मूल तथा परम धर्म गिना है।' इस भांति आचार प्रथम परम धर्म है - यह सिद्ध हुआ। ऐसा होने का कारण क्या है? इसको तो आचाररूपी वृक्ष की संपूर्णता तथा फल देने की शक्ति पर विचार करें तभी जान सकते हैं। आचारवृक्ष के सम्बन्ध में शास्त्र में वर्णन है कि —

धर्मोऽस्य मूलान्यसवः प्रकाण्डो वित्तानि शाखाच्छदनानि कामाः ।
यशांसि पुष्पाणि फलञ्च पुण्यम् असौ सदाचारतरूर्महीयान् ॥

'सदाचाररूपी महान् वृक्ष का मूल है धर्म, प्राण धड है, शाखा धन है और पत्ते काम है, फूल यश है और फल है पुण्य।' इस प्रकार यह कल्पवृक्ष महान् है। अब इस वर्णन की सार्थकता को देखना चाहिए।

धर्मानुसारी शारीरिक क्रिया को सदाचार कहें तो सदाचाररूपी वृक्ष का मूल धर्म ही माना जावेगा। प्रत्येक जीवधारी व्यक्ति की प्रवृत्ति सहज रीति से अधर्माचरण की तरफ़ होती है। प्रत्येक को बिना रोक टोक खाने-करने की इच्छा है। यह प्रवृत्ति यदि चालू रही तो मनुष्य में देवांश विकसित न होकर, वह पशु के समान बनकर जीवन को बरबाद कर देगा। सदाचाररूपी अंकुश के कारण मनुष्य की निरंकुश वृत्तियाँ क़ाबू में रहती हैं और वह यथेच्छ आहारविहार में ही मस्त नहीं बनता। प्रत्येक कार्य को नियमित रीति से धर्मानुसारी बनाने का प्रयत्न करें तो अपने आप संयम प्रकट होगा। मनुष्य में देवभाव की प्रकटता हो जाने पर वह स्वयं भगवान् के प्रति प्रगति करेगा, उसका जीवन शतदल कमल के समान विकसित होकर ईश्वर के चरणों में समर्पित होगा और उसके यश का सौरभ चारों दिशाओं को प्रफुल्लित बनावेगा। इसीसे धर्म को सदाचार का मूल कहा गया है। सदाचाररूपी वृक्ष का धड़ आयुष्य है। अर्थात् सदाचार के पालन से आयुष्य बढ़ता है। आयुष्य बढ़ाने के अनेक उपायों में संयम मुख्य है। अपनी इन्द्रियों और मन की इच्छाओं के निग्रह करने से आयुष्य बढ़ता है। अपनी जीवनयात्रा में विविध प्रकार की उच्छृंखलतायें आती हैं उनको संयत करके सदाचार, तपस्या और संयम का उपदेश देता है तथा इस प्रकार आयुवृद्धि में सहायकरूप होता है। इसी कारण सदाचारी स्त्री-पुरुष दीर्घायु होते हैं।

सदाचार वृक्ष की शाखायें धन और पत्तियाँ अपनी वासनायें हैं। सदाचार सर्व प्रकार से धन संग्रह में अनुकूल बनता है। सामान्यरीति से धनलाभ को तीन विभागों में बाँटा जा सकता है, धनप्राप्ति, उसकी रक्षा करना तथा उसमें वृद्धि करना। यदि शरीर बलवान्, काम करने सकने योग्य तथा सुगठित हो, बुद्धि प्रत्येक

वस्तु को योग्य रीति से पकड़ सकती हो, मन स्थिर और उत्साही हो, स्वभाव विश्वासवाला तथा लोकप्रेमी हो धन प्राप्त करना कोई कठिन काम नहीं। सदाचार के पालन से शरीर, बुद्धि और स्वभाव में उपर्युक्त गुण प्रकट होते हैं। तथा धन प्राप्त करना सरल बनता भोगने की वृत्ति को काबू में रखकर विलासी वृत्ति को दबाने से, तथा मिथ्या रोब-देखाव छोड़ने से धन का रक्षण होता है। सदाचार के पालन से धन का रक्षण भी सुन्दर तरीके से होता है। मितव्ययिता के साथ खर्च, परिणाम का ज्ञान तथा सामाजिक व्यवस्था हो तो धन की वृद्धि हो सकती है। सदाचार के पालन से ये गुण बढ़ते हैं और धर्मवृद्धि संभव बनती है। सदाचार-वृक्ष के पत्ते कामनाये हैं। इन कामनाओं का स्वरूप ऐसा है कि जैसे अग्नि में डालते ही वह प्रज्वलित हो उठता है - विषय वासनाओं की वृद्धि से संसार में जीव को बहुत दुःख भोगना पड़ता है। वासनाओं पर अंकुश में रखने से ही सच्चे सुख का अनुभव हो सकता है। सदाचार के पालन से वासनायें काबू में आती हैं - इसीसे उन्हें सदाचारतरु का पत्ता कहा गया है।

सदाचारवृक्ष का फूल यश है अर्थात् सदाचारी की कीर्ति संसार में फैलती है। नम्रता, पवित्रता, सत् चारित्र्य, सुशील, संयम आदि गुणों से ही कीर्ति मिलती है। जिनमें ये गुण हैं वे सब को अपनी तरफ़ आकृष्ट करेंगे। सदाचारी मनुष्य में उपर्युक्त गुण स्वयं प्रकट होते हैं और सदाचारी विशेष कीर्तिमान बनता है। जो गुण सब के लिए इष्ट हैं उनका पालनकर्ता प्रशंसापात्र बने इसमें क्या आश्चर्य? विद्यालय में सुन्दर अभ्यास करने वाले को इनाम मिलता है उसी की तरह इसका भी है। सदाचारी को कीर्तिलाभरूपी इनाम मिलता है तथा यश से तो मानव अमरत्व का वरण करता है - यह कौन नहीं जानता? शास्त्र के सिद्धान्तानुसार 'जिसकी कीर्ति जीती है वह जीवित है' यह ही सदाचार-वृक्ष के पुष्प का फल है।

सदाचारतरु का फल पुण्य है। सदाचारी अपने आप पुण्य प्राप्त करता है। पुण्य से पवित्रता, निर्मलता, निष्पापता, मन की शुद्धि, रजस् और तमस् से वंचित सात्विकता, आसुरी स्वभाव से वंचित देवत्व और पशुभाव रहित वैसी ही आत्मा की उन्नति के समान अनेक लाभ होते हैं। शरीर की जड़ता, बुद्धि की मन्दता,

मन की चंचलता और छः दुश्मनों की प्रबलता से ऊपर दिखलायी गयीं वृत्तियाँ भी नष्ट हो जाती हैं। (छः दुश्मन - काम, क्रोध, मोह, लोभ, मद तथा मत्सर)। प्रगति में बाधा करतेवाले ऐसे दुर्गुणों को सदाचार दूर करता है। इस प्रकार शास्त्र में सदाचाररूपी वृक्ष का कितना सुन्दर वर्णन है।

राष्ट्रीयजीवन का तो सदाचार मेरुदण्ड ही माना जाना चाहिए। सदाचार-पालन विना कोई भी जाति निज जीवन को विशुद्ध और सदैव विकासशील रख सकती ही नहीं। मनुष्य की आन्तरिक और बाह्य प्रवृत्तियों के मध्य क्या सम्बन्ध है इसका निराकरण करने बैठें तो पता चलेगा कि बाह्य प्रवृत्ति आन्तरिक प्रवृत्ति का विकास-मार्ग ही है। जैसी अपनी अन्तर की भावना, वैसी ही अपनी बाह्य प्रवृत्ति। इस वैज्ञानिक सिद्धान्त को लेकर ही सामुद्रिक शास्त्री लोग बाहर के लक्षणों को देख मनोव्यापार भी कह देते हैं। इस प्रकार आन्तर-प्रवृत्ति और बाह्य प्रवृत्ति के बीच इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि मनुष्य की बाह्य प्रवृत्ति उसके आन्तरिक भावों को दर्शाये विना रहती नहीं। प्रत्येक मनुष्य की खाने-पीने, करने-फिरने, बैठने-उठने, सुनने-बोलने, मन की विचार करने की और आचरण की क्रियाओं को देखते ही उनकी किस्म के लक्षण भी स्पष्ट हो जाते हैं। अफ्रीका, मध्य एशिया तथा योरोप, अमेरिका तथा भारत के निवासियों की भाषा, वेशभूषा, रहन-सहन आदि में बहुत फर्क है और इन सब को देखें तो उस उस देश की मानसिक वृत्ति का ख्याल भी मिलता है। हरएक देश में अपने लोग और अपने धर्म के बीच में पर्याप्त सामंजस्य होने से सदाचारी आर्य को पश्चिमी लोगों का बालकशाही लगेगा और पश्चिम निवासी आर्य-रीति-रिवाज़ों के प्रति ठट्ठा उड़ावेंगे। यदि ऐसा हो तो अपने राष्ट्रीय भावों की रक्षा करना तो अपना फर्ज़ है। कारण यह है कि जिस प्रकार आन्तर-प्रकृति का परिणाम बाह्य प्रकृति पर पड़ता है, उसी प्रकार बाह्य-प्रकृति द्वारा आन्तर प्रवृत्ति का संघटन होता है। अपना आचार छोड़कर दूसरे का लेने जावेंगे तो अपनी हस्ती ही दुनिया में नहीं रहेगी अथवा जिस देश का रिवाज़ अपनावेंगे उसी देश में अपने को मिल जाना पड़ेगा और ऐसा करने से एक नयी प्रजा का सर्जन सामान्यतः हरएक प्रजा में दीर्घदृष्टि का अभाव होता है और काल-बल के कारण कोई देश दूसरे देश का अनुकरण से राष्ट्रीय जीवन

नष्ट बनता है। मनुष्य की प्रवृत्ति नवीनता की ओर बहुत खिंचती है और अपनी उत्तम चीज़ भी अपने उससे खूब परिचित हैं फिर भी दूसरे की नवीन वस्तु देखकर अपनी वस्तु फीकी मालूम पड़ने लगती है। ऐसा हो तो विचारशील मनुष्यों को समझना चाहिए कि जो बहुत पूर्व से चला आ रहा है वही टिकेगा। हररोज़ अनेक सुन्दर नयी वस्तुयें पैदा होती हैं और नष्ट होती हैं, उस पर मोहित होने से क्या फायदा? परन्तु दुःख की बात है कि जो देश पराधीन है उसकी सामान्य जनता इस बात को विचारती नहीं और अपने स्वभाव के अनुसार दूसरे देश के तावे में हो जाती है। जब कोई देश दूसरे देश को जीत लेता है, तो पराजित देश विजेता के रीतिरिवाजों का अनुकरण करने लगता है। दुनिया में दो प्रकार की शक्ति है - बड़ी और छोटी, बड़ी शक्ति छोटी शक्ति को सदा तावे में कर लेती है। इसीसे ही सत्वगुण सम्पन्न गुरु शिष्य को अपना बना देता है, धर्मगुरु को अनुयायी लोग ईश्वर का अवतार समझते हैं और पराजित देश पर विजेता अपने रीतिरिवाजों को लाद सकता है।

इतिहास के अध्ययन से पता चलेगा कि विजेता की महती शक्तियों ने पराजित की न्यून शक्तियों को हमेशा दबा दिया है। तथा अन्ततोगत्वा न्यून शक्तिवाला देश अधिक शक्तिवाले देश में समा जाता है और निजी राष्ट्रीयता को खो बैठता है। ऐसे ही यूनानी प्रजा रोमन प्रजा में मिलकर नष्ट हुई। तथा कालचक्र के प्रभाव में यह रोमन प्रजा भी दूसरे देश से हार खाकर अन्त में इटैलियन जाति में परिणत हो गई। केवल एक आर्यप्रजा ऐसी है कि अन्तिम दो हज़ार वर्षों में अनेक विदेशी प्रजाओं से पराजित बनने पर भी अपने स्वरूप को संपूर्णतः भूली नहीं, संसार भले ही अपना मज़ाक करे, हमें अधम गिने परन्तु अभी तक अपने निज स्वत्व को भूले नहीं हैं - यह ही गौरव की बात है। इसका कारण इस प्रजा का सदाचार पालन है। यदि अपनी राष्ट्रीयता टिकी रखनी हो तो अपने सदाचारों के पालन में अपने को अधिक ध्यान देना चाहिए। यदि भारत की सन्तानें सदाचार पालन के लिए जागरुक रहेंगी तो उनकी राष्ट्रिय उन्नति को यह कलिकाल भी नहीं रोक सकेगा।

आर्यशास्त्रों में परंपरा से सदाचार और परमतत्त्व - इनमें ब्रह्म का सम्बन्ध निर्दिष्ट हुआ है। इस पर से सिद्ध होता है कि जीव सदाचारी हो तो ब्रह्मज्ञान के मार्ग पर आसानी से बढ़ सकता है-

यह बिल्कुल ठीक है। सदाचार के पालन के प्रभाव से मनुष्य निज ज्ञान-मार्ग को स्वच्छरूप में देख सकता है। इस कथन का शास्त्रीय प्रमाण देखना चाहिए।

आचारमूला जातिः स्यादाचारः शास्त्रमूलकः।
वेदवाक्यं शास्त्रमूलम्, वेदः साधकमूलकः॥
क्रियामूलः साधकश्च क्रियापि फलभूमिका।
फलमूलं सुखं देव सुखमानन्दमूलकम्॥
आनन्दो ज्ञानमूलश्च ज्ञानं ज्ञेयस्यमूलकम्।
तत्त्वमूलं ज्ञेयमात्रं तत्त्वं हि ब्रह्ममूलकम्॥
ब्रह्मज्ञानं त्वैक्यमूलं ऐक्यं स्यात्स्वमूलकम्।
ऐक्यं हि परमेशान भावातीतं सुनिश्चितम्॥
भावातीतमिदं सर्वं प्रकाशो भावमात्रकम्॥

किसी भी जाति का मूल आचार है। स्वभाव, प्रवृत्ति, गुण और कर्म के भेदों से प्रजा की उत्पत्ति हुई है।

विभिन्न जातियों का सदाचार भी भिन्न भिन्न है। आर्य-जाति का सदाचार शास्त्र में स्थापित होने से आर्य-सदाचारों का मूल शास्त्रों में है। शास्त्र का मूल वेद है। सनातन धर्मियों की श्रद्धा है कि वेद कोमल है। जीव के कल्याण के लिए ही ईश्वर ने वेद प्रकट किया है। सनातन धर्म के समस्त शास्त्र वेद के अनुयानी हैं और त्रिकालज्ञ मुनियों ने निज निर्मल बुद्धि की सहायता से वेदमत के प्रतिपादन के लिए विविध शास्त्रों की रचना की। इससे वेदानुयायियों के सर्व शास्त्रों के मूल में श्री वेदरूपी ईश्वर विराजमान है। जिस प्रकार मलय पर्वत चन्दनवासित वायु से सभी वृक्षों में चन्दन की सुगन्धि पैदा होती है परन्तु बाँस में वैसी सुगन्ध उत्पन्न होती नहीं उसी प्रकार साधन का जिसको ज्ञान नहीं उस जड़ हृदय में ईश्वर की निर्मल ज्योति के समान वेद का प्रकाश उत्पन्न होता नहीं। असाधारण तपस्वी और योग जानकार साधकों के निर्मल दिल में ही वेद का प्रकाश प्रतिबिम्बित होता है। साधना न करें तो केवल ईश्वर-दर्शन की इच्छा से ही उसका दर्शन होता नहीं। असाधारण तप तथा योगसाधन से ही साधकों में श्रेष्ठ महर्षियों में वेदज्ञान प्रकट हुआ था। इससे वेदों का मूल साधक है। अमुक क्रियायें करने से मनुष्य को साधक का पद मिलता है। इसीसे

योग और तपरूपी क्रियाओं को साधकों का मूल गिना गया है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष – इन चार फलों को अथवा इनमें से किसी की इच्छा रखकर मनुष्य क्रियायें करता है। इससे क्रियाओं का मूल फल है, परन्तु जीव इस फल की इच्छा क्यों करता है? इस प्रश्न पर विचार करते हुये मालूम पड़ता है कि जीव सुखप्राप्ति की आशा से इन चार फलों के लिए प्रयत्नशील बनता है। इससे फल का मूल हुआ सुख और वासनागत सुख से परे वह जो अद्वैत–ब्रह्मानन्द है वही सच्चा आनन्द है; और जीव इस आनन्द की खोज में भटकता हुआ भ्रम के वश में पड़कर सांसारिक सुखों में मशगूल हो जाता है। इससे सुखों का मूल आनन्द है। जीव अपनी ज्ञान-शक्ति से पहचान लेता है कि मायामूलक विषयसुख खरा सुख नहीं। क्यों कि क्षणभंगुर पदार्थों से प्राप्त होनेवाला सुख भी क्षणभंगुर ही होता है। परमात्मा का आनन्द ही सच्चा आनन्द है।

इस इस प्रकार के विचारों का कारण ज्ञान है और इससे आनन्द का कारण भी ज्ञान ही समझना चाहिए। लक्ष्य एवं ज्ञातव्य को जानने के लिए जीव के अन्तःकरण में ज्ञान का अंकुर उगता है, इससे ज्ञान का मूल हुआ लक्ष्य अथवा ज्ञेय और ज्ञेय का अन्त आता है परमतत्त्व में, अर्थात् परमतत्त्व का साक्षात्कार होने के बाद कोई वस्तु जानने योग्य नहीं रह जाती है। इसलिए ज्ञेय वस्तु के मूल तत्त्व का अनुभव कर जानना चाहिए। तत्त्व भी जिसका पार न दे सके वैसा परमतत्त्व अर्थात् सच्चिदानन्द ब्रह्म का स्वरूप, इससे सभी तत्त्वों का मूल ब्रह्म हुआ। प्रत्येक शास्त्र, मत, क्रिया और साधन में एकता लाना अथवा उनके सामंजस्य की रक्षा करना चाहिए, तथा उसे ही सब का मूल कहने में आया है। ऐसा एकतापूर्ण सर्व-देशीय ज्ञान ही ब्रह्मज्ञान का मूल है। यह परब्रह्म मानव भाव से परे बनकर सफल विश्व का प्रकाशक बन रहा है। इस भांति आर्यशास्त्र सदाचारमूलक प्रजाधर्म और ब्रह्मसद्भावपद के मध्य जो परम्परा सम्बन्ध है वह दर्शाया गया है। ऊपर के वर्णन से यह स्पष्ट होगा कि सदाचार के साथ परोक्ष तथा प्रत्यक्ष रूप में आधि-भौतिक उन्नति, आधिदैविक उन्नति, आध्यात्मिक उन्नति, सामाजिक तथा राष्ट्रीय एवं राजनैतिक उन्नति – इस तरह सर्व प्रकार की उन्नति अटूट रूप से बंधी हुई है और इसीसे मनु आदि महर्षियों ने आर्यशास्त्रों में सदाचार की इतनी प्रशंसा की है। उदाहरणत :–

आचारो भूतिजननः आचारः कीर्त्तिवर्धनः ।
आचाराद् वर्धते ह्यायुराचारो हन्त्यलक्षणम् ॥
आगमानां हि सर्वेषामाचारः श्रेष्ठ उच्यते ।
आचारप्रभवो धर्मो धर्मादायुर्विवर्धते ॥
आचाराल्लभते ह्यायुराचाराल्लभते श्रियम् ।
आचाराल्लभते कीर्तिं पुरुषः प्रेत्य चेह च ॥
आचाराल्लभते ह्यायुराचारादीप्सिताः प्रजाः ।
आचाराद् धनमक्षय्यमाचारो हन्त्यलक्षणम् ॥
दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः ।
दुःखभागी च सततं व्याधितोऽल्पायुरेवच ॥
सर्वलक्षणहीनोऽपि यः सदाचारवान् भवेत् ।
श्रद्धानोऽनसूयश्च शतं वर्षाणि जीवति ॥

" आचार वैभव का उत्पादक, कीर्ति और आयु का बढ़ानेवाला और बुरे लक्षणों का नाश करने वाला है । सभी शास्त्रों में आचार को ही श्रेष्ठ वस्तु मानने में आया है । धर्म आचार से उत्पन्न होता है और धर्मपालन से आयुष्य बढ़ता है । आचार-पालन से मनुष्य को यह लोक तथा परलोक में आयुष्य, कीर्ति और धन मिलता है । आचार-पालन से आयु, चाही सन्तान और पुष्कल सम्पत्ति मिलती है और बुरे लक्षणों का विनाश होता है । दुराचारी मनुष्य संसार में सब की निन्दा बटोरता है । हमेशा दुःखी, रोग-ग्रस्त और न्यून आयु वाला होता है । मनुष्य में अन्य उत्तम गुण न हों परन्तु वह सदाचारी, शास्त्रों में श्रद्धा रखने वाला और दूसरे से ईर्ष्या न करने वाला हो तो वह सौ वर्ष की आयु प्राप्त करता है । " इस भांति आर्यशास्त्रों में आचार की प्रथम और परम धर्म के रूप में प्रशंसा करने में आयी है ।

(' आर्यमहिला ' मासिक से भाषान्तर)

डेढ़ करोड़ रूपये का धर्मादा

श्री नानजीभाई कालिदास मेहता और इनकी धर्मपत्नी अ. सौ. सन्तोक बाई की तरफ़ से डेढ़ करोड़ रूपये का धर्मादा सन् १९५६ पर्यन्त करने में आया है : (१) ७५ लाख रूपये पोरबन्दर आदि राज्यों में, (२) ४५ लाख रूपये भारतवर्ष में पृथक् पृथक् स्थानों पर, (३) ३० लाख रूपये पूर्व अफ्रीका में भिन्न भिन्न उपयोगी कार्यों में। इसका विवरण पहली आवृत्ति में देने में आया है।